KALYAN 1960

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110331

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष ३४] * * * [अङ्क ८

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०१७, अगस्त १९६०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–कन्हैयाका जादू [कविता]	१०८९
२–कल्याण ('शिव')	१०९०
३–जीवन्मुक्त कौन है ? (स्वामीजी श्रीप्रज्ञानन्दजी)	१०९१
४–निराश मत होओ [कविता]	१०९१
५–ज्ञान और भक्तिके साधनसे अहंता-ममताका अभाव (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१०९२
६–सनातन शौचाचार (पं०श्रीगुप्तेश्वरजी पाण्डेय)	१०९९
७–मुझमें भगवान्‌का प्रकाश हो गया है	११०५
८–त्रिजटा कौन थी ? (पं०श्रीविश्वनाथ-प्रसादजी मिश्र एम्० ए०)	११०६
९–आपका सर्वोत्तम समय और सबसे बड़ी सफलता भविष्यमें आनेवाली है (डा० रामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच० डी०)	१११२
१०–मधुरे	१११४
११–प्रभुकी ही लीला चल रही है	१११५
१२–ब्रह्मचर्यकी महिमा (विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवशास्त्रीजी)	१११६
१३–अपनी स्थिति और प्रार्थना [कविता] (श्रीसूरदासजी)	१११६
१४–असंस्कारीको संस्कारी बनाना (श्री 'तीकर')	१११७
१५–अबेर तो हो ही रही है ! (श्रीवचनेशजी त्रिपाठी)	१११९
१६–मैं राममें स्थित हूँ, प्रकृतिस्थ नहीं [कविता]	११२०
१७–उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्द-दासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्री-गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)	११२१
१८–जन्म व्यर्थ ही बीत गये ! [कविता] (श्रीतुलसीदासजी)	११२६
१९–विशुद्ध आत्मचेतना (डा० श्रीराजेश्वर-प्रसादजी चतुर्वेदी एम्० ए०, पी-एच्० डी०, बी०-एस्-सी०, साहित्यरत्न)	११२७
२०–अनुकूल रहें [कविता]	११२९
२१–कल्याण-योजना (श्रीविश्वम्भरदत्तजी गौड़ 'वसिष्ठ' एम्० ए०)	११३०
२२–श्रीनिमाई-संन्यास [नाटक] (स्व० महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोष, अनु० श्रीव्रजगोपालदासजी अग्रवाल एम्० ए०)	११३३
२३–अमोह [कहानी] (श्री 'चक्र')	११३८
२४–मैं केवल प्रभुमय ही हो रहा हूँ	११४०
२५–परम त्यागी गोस्वामी रघुनाथदास	११४१
२६–गीत [कविता] (डा० श्रीहरिवंशरायजी 'बच्चन एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	११४४
२७–बहुत आवश्यक ध्यान रखनेकी बातें	११४५
२८–हिंदू-नारीका सती-धर्म (पं० श्रीराम-निवासजी शर्मा)	११४७
२९–पढ़ो, समझो और करो	११४८
३०–हमारी प्रगतिका नग्न स्वरूप	११५२

चित्र-सूची

१–मैयाकी गोदमें लाला	मुखपृष्ठ
२–कन्हैयाका जादू	१०८९

वार्षिक मूल्य भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु० १०.०० (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें .४५ विदेशमें .५६ (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्०ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110331
110331

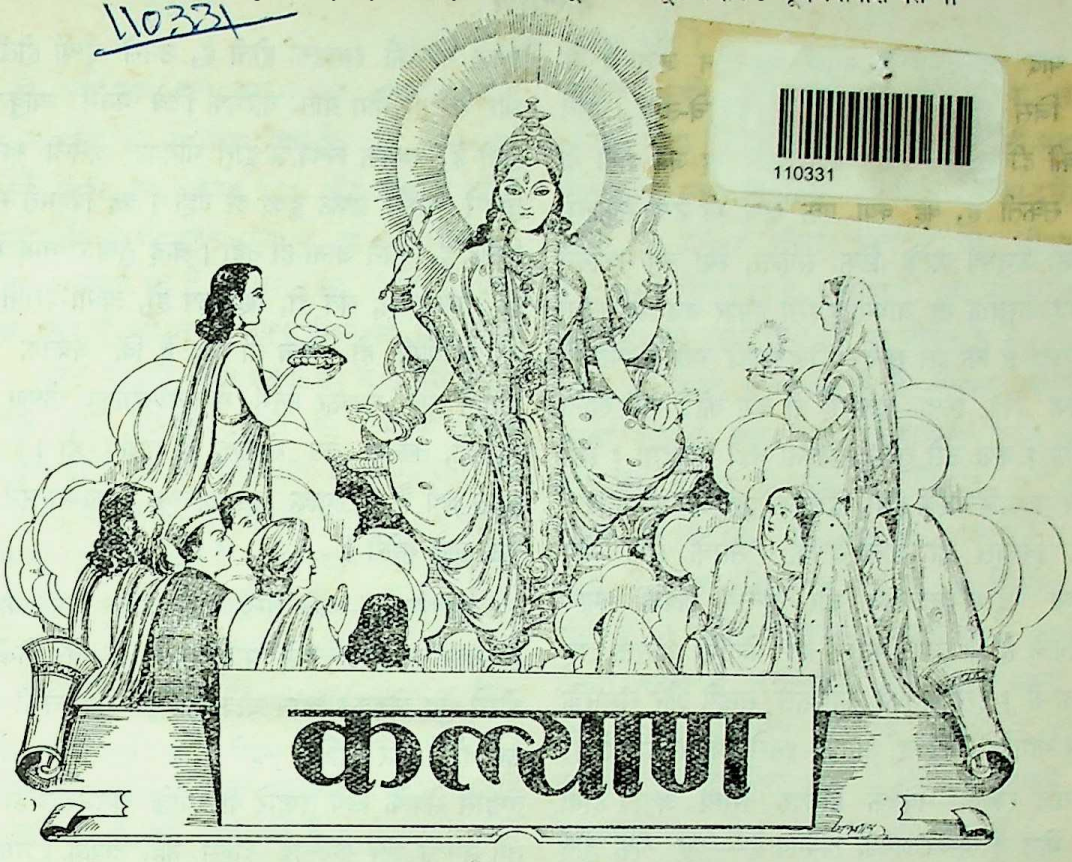

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः । भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥
कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः । सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥

वर्ष ३४ | गोरखपुर, सौर भाद्रप्रद २०१७, अगस्त १९६० | संख्या ८ पूर्ण संख्या ४०५

कन्हैयाका जादू

देखी आजु अनोखी बात ।
गई हुती लै खरिक दोहनी सुमिरत मोहन गात ॥
मनकी जाननहारे आये मुरली मधुर बजात ।
निरखि रहे ग्वालिनि-तन ठाढ़े मधुर मधुर मुसकात ॥
सुनि मुरली धुनि तिरछे नैननि निरखत मुख-जलजात ।
भई बावरी बिसरी तन-सुधि रह्यौ नहीं कछु ज्ञात ॥
गैयाके बदले लै नोई बाँधी बरधा लात ।
प्रेम-सुधा-रस छकी ग्वालिनी ठाढ़ी पुलकित गात ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—जो मनुष्य यह जान जाता है कि वह जिस मकानमें रहता है उसमें नीचे-ऊपर, चारों ओरकी दीवालोंमें बारूद भरी है और वह जब कभी भी फट सकती है, वह क्या एक क्षण भी उस मकानमें सुखका अनुभव करके टिक सकेगा, क्या उस मकानमें उसकी आसक्ति रह जायगी ? इसी प्रकार जब यह मालूम हो जाता है कि इस सुन्दर दीखनेवाली स्वादिष्ट मिठाईमें संखिया विष मिला हुआ है तो क्या कोई उसे खाना चाहेगा ? क्या उसे तुरंत छोड़ना नहीं चाहेगा ? इसी प्रकार सदसद्विचारके द्वारा, विवेकके द्वारा जब यह निश्चय-पूर्वक विश्वास हो जाता है कि संसारके सभी भोग अनित्य दुःख-ज्वालामय और अन्तमें विषके समान मारनेवाले हैं तो क्या मनुष्य इन भोगोंमें आसक्त रह सकता है ? इस बातको विवेकसे समझो और संसारके तमाम भोगोंको विषवत् जानकर इनसे अनासक्त बनो ।

याद रक्खो—विवेक होनेपर वैराग्य अवश्य होगा ही । भोग दुःख-ज्वालामय, विषमय हैं—यह ठीक जान लेनेपर उनमें राग रह नहीं सकता । फिर उन्हें मनुष्य तुरंत छोड़ देना चाहेगा । उसे फिर उनमें रहते भय लगेगा । वह चाहेगा, जितनी जल्दी छुटकारा हो जाय, उतना ही अच्छा है । इस प्रकार भोग-जगत्से छुटकारा पानेकी इच्छा ही 'मुमुक्षा' है । यह जिसमें है वही 'मुमुक्षु' है । इसीको भगवत्प्राप्तिकी इच्छा कहते हैं । इस इच्छाके जाग्रत् तथा तीव्र हो जानेपर मोक्ष या भगवान्की प्राप्ति तुरंत हो जाती है । भगवान्की प्राप्तिमें विलम्ब इसीलिये हो रहा है कि उसकी इच्छा तीव्रतम और अनन्य तो है ही नहीं, अभी पूरी जागी भी नहीं है ।

याद रक्खो—जबतक भोगोंमें सुख दिखायी देता है, भोगोंमें सुख है—इस प्रकारकी आस्था है, भोगोंके लिये जी ललचाता है, दूसरोंके पास भोगोंको देखकर उनके भाग्यकी सराहना होती है, उनसे ईर्ष्या होती है और वैसे ही भोग प्राप्त करनेके लिये मनमें व्याकुलता होती है, तबतक विवेकके द्वारा भोगका असली स्वरूप तुम्हारे सामने प्रकट हुआ ही नहीं । वह विषभरी मीठी मिठाई है, तुमने जाना ही नहीं । चाहे तुम्हारा नाम भक्त हो, महात्मा हो, संत हो, महापुरुष हो, त्यागी-वैरागी हो या कर्मयोगी हो । सच तो यह है कि जबतक तुम भोगोंमें सुख मानकर मनमें भोग-लालसाका पोषण कर रहे हो, तबतक तुम भोगोंके ही गुलाम हो । इसका दूसरा अर्थ है—तबतक तुम अगाध दुःख-सागरमें ही गोते खाते रहोगे !

याद रक्खो—यदि तुम्हें मानव-जीवन सफल करना है, सच्ची सुख-शान्तिको प्राप्त करना है तो भोगोंकी ओरसे मुँह मोड़कर अपने जीवनका मुख भगवान्की ओर कर दो । फिर यदि तुम्हारे पास भोग रहेंगे तो वे तुम्हारी सेवाके लिये तुम्हारे पीछे-पीछे चलनेवाले होंगे । तुम उनकी ओर ललचाई दृष्टिसे नहीं देखोगे । तुम्हारी आँख रहेगी भगवान्की ओर, तुम्हारे पैर आगे बढ़ेंगे भगवान्की ओर और तुम्हारा चित्त लगा रहेगा भगवान्की ओर ।

याद रक्खो—इस अवस्थामें जो भोग तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे, वे भी भगवत्पूजाकी सामग्री बनकर धन्य हो जायँगे । जिन भोगोंमें मनुष्यकी आसक्ति है और जो मनुष्यके भोग्य हैं, वे स्वयं नरकरूप हैं और भोगने-वालेको भी नरकमें ले जाकर दुःखाग्निमें पकानेवाले हैं । भोगोंसे विरक्ति करके भगवान्में अनुरक्त हो जाओ तो तुम्हारा जीवन भी सार्थक होगा । और फिर, यदि कोई भोग तुम्हारे साथ रह सके तो वे भी पवित्र, सार्थक हो जायँगे ।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जीवन्मुक्त कौन है ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लेखक—स्वामीजी श्रीप्रज्ञानन्दजी)

जो अपने-आप प्राप्त सुख-दुःखमें अनासक्त हुआ न प्रसन्न होता है, न उद्विग्न होता है, वह जीवन्मुक्त है, हर्ष, अमर्ष, भय, काम, क्रोध और शोककी दृष्टिसे जिसका अन्तःकरण अछूता रहता है, वह जीवन्मुक्त है। जो सदा आत्मामें रत है, जिसका मन सहज ही पूर्ण-रूपसे पवित्र है, जो परमोच्च शान्त स्थितिको प्राप्त करके जो न किसी वस्तुकी इच्छा करता है, न किसी प्राणी-पदार्थके प्रति आसक्ति रखता है, जिसकी सहज उदासीन वृत्ति है, वह जीवन्मुक्त है। जो राग-द्वेष, सुख-दुःख, लाभ-हानि, फलाफलकी अपेक्षा न करके काम करता है, वह जीवन्मुक्त है। जो अहंभावको छोड़कर, मान तथा मत्सरको त्यागकर, निरुद्वेग तथा संकल्पशून्य होकर कार्य करता है, वह जीवन्मुक्त है। जो सर्वत्र स्नेहरहित होकर साक्षीके समान रहता है तथा बिना किसी इच्छाके ही कर्म करता है, वह जीवन्मुक्त है। यह दिखायी पड़नेवाला सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च जिसकी दृष्टिमें नहीं रह गया है, वह जीवन्मुक्त है। जो चरपरे, खट्टे, नमकीन, कड़वे, मीठे तथा स्वादहीनको एक समान समझकर खाता है, वह जीवन्मुक्त है। जो जवानी-बुढ़ापा, जीवन-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, नीरोगता-रोग, राज्य-दरिद्रता सबको रम्य मानकर स्वीकार करता है, वह जीवन्मुक्त है। जिसने निन्दा-स्तुति, मानापमान तथा जन्म-मृत्युको हृदयसे पूर्णतया त्याग दिया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसने समस्त आसक्तियों, समस्त कामनाओं, समस्त ममताओं, समस्त शङ्काओं और सम्पूर्ण निश्चयोंको मनसे सर्वथा त्याग दिया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसका मन जन्म, स्थिति और विनाशमें तथा उन्नति और अवनतिमें समान रहता है, वह जीवन्मुक्त है। जो न किसीसे द्वेष करता है, न किसीकी आकाङ्क्षा करता है, न किसीकी चिन्ता करता है, न किसीके लिये शोक करता है, वह जीवन्मुक्त है और जो एक आत्मतत्त्वके अभिन्न अनुभवमें ही नित्य स्थित रहता है एवं जो आत्मामें ही पूर्णताका अनुभव करता है, वह जीवन्मुक्त है।

निराश मत होओ

अमावास्या घोर तममयी देख न होओ तनिक निराश।
होगा निश्चय ही ज्योतिर्मय सूर्योदय कर तमका नाश॥
मत घबराओ देख घोर घन-वर्षा-झंझा-विद्युत्पात।
होगा नभ निर्मल उज्ज्वल, सुरभित मृदु मंद बहेगा वात॥
मत भय करो देख क्षुब्धोदधिके भीषण उत्ताल तरंग।
ललित लहरियाँ शान्त पुनः दीखेंगी, बदलेगा यह रंग॥
मत होओ उद्विग्न देखकर घोर ग्रीष्मका भीषण ताप।
बरसेगी शीतल जलधारा हर लेगी सारा संताप॥
प्रलय भयंकर है बस, नव मधुमय सर्जनका गोपन रूप।
छिपे हँस रहे इसमें नित नव लीलामय रसराज अनूप॥
भीषण-सुन्दर प्रलय-सृजनमें एक पूर्ण वे ही हैं नित्य।
सबमें मंजुल दर्शन उनका, यही देखना-पाना सत्य॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान और भक्तिके साधनसे अहंता-ममताका अभाव

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यके पास जितनी अधिक सम्पत्ति और जितना अधिक कुटुम्ब है, उतना ही अधिक बन्धन है। मान लीजिये, किसी एक आदमीके पास सैकड़ों मिलें, खदानें हैं, सैकड़ों आफिस और दूकानें हैं, सैकड़ों मकान हैं, करोड़ों रुपये लोगोंमें जमा हैं, कुटुम्ब भी बहुत बड़ा है, किंतु उनमेंसे किसी एक मिलके या कोयलेकी खदानके आग लग गयी या किसी मिलमें भारी नुकसान लगकर फर्म फेल हो गया या कुटुम्बमें अपना निकटवर्ती पुरुष या अपना लड़का या स्त्री—कोई मर गया अथवा किसी फर्मके दिवालिया होनेसे अपने बीस लाख रुपये उसमें डूब गये या किसी मिल या मकानको सरकारने अपने अधिकारमें कर लिया तो इनमेंसे प्रत्येक घटना ममताके कारण उसे दुःख देनेवाली ही होती है। वह बेचारा रात-दिन इन सबकी चिन्ताग्निमें जलता रहता है; किंतु जिस मनुष्यके पास कुछ नहीं है, उसका क्या नुकसान होगा और यदि थोड़ा है तो थोड़ा नुकसान होगा। जैसे एक सच्चे साधु हैं, उनके पास एक कमण्डलु है, घास-फूसकी झोंपड़ी है, एक-दो ओढ़ने-बिछानेका कपड़ा है। उनका कमण्डलु या कपड़ा कोई ले गया तो उनको किसीसे दूसरा मिल जाता है। कुटिया जल गयी तो दूसरी जगह जाकर बैठ जाते हैं। उनको इनकी इतनी चिन्ता नहीं होती। परंतु जिनके पास अधिक सम्पत्ति है, उनकी पदार्थोंमें अधिक ममता है और जितनी अधिक ममता है, उतना ही अधिक दुःख है।

यदि ममता नहीं है तो न बहुत सम्पत्तिवाले मनुष्यको दुःख है और न थोड़ी सम्पत्तिवालेको ही, किंतु अधिक सम्पत्ति होनेपर अधिक ममता होनेकी सम्भावना है। राजा जनक और अश्वपति आदि विपुल सम्पत्ति और राज्य-वैभव होते हुए भी कहीं किंचिन्मात्र भी ममता न होनेके कारण सदा सुखी रहते थे, सम्पत्ति आदिके विनाशमें भी कभी उनको दुःख नहीं होता था। वस्तुतः अहंता-ममता ही समस्त दुःखोंकी जड़ है। इसलिये देहमें अहंता और देहसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों, पदार्थोंमें तथा शरीरमें ममताका त्याग करना चाहिये।

एकदेशीय किसी भी शरीर (देह) में जो किसी भी प्रकारका अभिमान है; जैसे मैं मनुष्य हूँ, मैं साधु हूँ, गृहस्थ हूँ, ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ—यह अहंभाव है। तथा देहसे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थों और प्राणियों तथा अपने शरीरमें जो मेरापन है, जैसे यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी सम्पत्ति है, यह मेरी कुटिया है, यह मेरा कमण्डलु है, यह मेरी मृगछाला है आदि-आदि, यह 'मम' भाव है। ये दोनों भाव साधकके लिये बड़े ही घातक हैं। अतः इनका त्याग करना परमावश्यक है। इनके सिवा, जिसको हम शुद्ध अहंकार कहते हैं उसका भी अन्तमें त्याग हो जाता है। अहं ब्रह्मास्मि—'मैं ब्रह्म हूँ'—इत्यादि महावाक्योंके अनुसार जो ब्रह्ममें अहंबुद्धि है, वह शुद्ध अहंकार है। अद्वैतवादके सिद्धान्तके अनुसार तो यह उच्चकोटिका साधन है, किंतु इस साधनको हम उत्तम मानते हुए भी सबको इसका अधिकारी नहीं समझते, इस कारण इसे करनेके लिये हम सबको नहीं कहते। इस साधनका अधिकारी वही पुरुष है जिसका देहमें अभिमान वास्तवमें नहीं रहा है और जिसकी ब्रह्मके स्वरूपमें ही स्थिति हो गयी है। देहमें अभिमान रहते हुए इस साधनका होना और इस साधनके द्वारा परमगतिकी प्राप्ति होना कठिन है। गीतामें बतलाया गया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(१२। ५)

'उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्तचित्तवाले पुरुषोंके साधनमें परिश्रम विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंद्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।'

किंतु जो ब्रह्मभूत पुरुष हैं—ब्रह्मके स्वरूपमें जिनकी एकीभावसे स्थिति हो गयी है, उनके लिये यह साधन सुगम है। उन्हें इस साधनसे ब्रह्मकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। भगवान् कहते हैं—

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

(६। २७-२८)

'क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ अनायास ही परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।'

उस ब्रह्मभूत पुरुषके साधनकी स्थितिका वर्णन अगले श्लोकमें किया है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

'सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है।'

साधनावस्थामें यह स्थिति दो प्रकारकी होती है—(१) कल्पित और (२) अकल्पित। कल्पित स्थितिमें साधक कभी ब्रह्ममें स्थित होता है, कभी देहमें; किंतु जब ब्रह्ममें अकल्पित स्थिति हो जाती है, तब फिर वह देहमें स्थित नहीं होता। वह सदा ब्रह्ममें ही स्थित रहता है। इसके लिये यह कसौटी है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६। ३२)

'हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।'

इस कसौटीसे कसनेपर जो खरा उतरता है, जो इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाता है, उसको ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। यह बात गीता (६। २८) में ऊपर बतला चुके हैं। सिद्ध होनेके बाद उस पुरुषकी जो कसौटी है, उसका वर्णन गीता अ० १४ श्लोक २४-२५ में देखना चाहिये—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय और अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है, जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।'

सिद्ध पुरुषके जो ये स्वाभाविक लक्षण बतलाये गये हैं, इनको लक्ष्यमें रखकर साधक पुरुषको उन सिद्ध पुरुषोंकी अन्तिम स्थितिमें स्थित होकर साधन करना चाहिये—इन लक्षणोंका अपनेमें सम्पादन करना चाहिये। इसके लिये **'अहं ब्रह्मास्मि'**—इस प्रकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अहंभावपूर्वक स्थिति रखना साधन है। भाव यह कि 'इस देहमें मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। देहमें जो अहंभाव है और इससे सम्बन्धित वस्तुओं और प्राणियोंमें जो ममभाव है, वह स्वप्नवत् है, मायामात्र है। मैं विज्ञानानन्दघन ब्रह्म हूँ, शरीर और संसारसे मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं।' इस प्रकार एक विज्ञानानन्दघन ब्रह्मका भाव और उसके सिवा संसार और शरीरका अत्यन्त अभाव देखते रहना—यह अद्वैतपरक साधन है। इस साधनकी हर समय जागृति रहनी चाहिये।

जब देहमें अहंता और देहसे सम्बन्धित पदार्थोंमें ममताका अभाव हो जाता है, तब देहमें कोई धर्मी नहीं रहता और धर्मीके न रहनेसे राग-द्वेषका अभाव हो जाता है एवं इच्छा, कामना आदिका अस्तित्व नहीं रहता। उसके मन और बुद्धिमें, सुख-दुःखादि भावोंमें, स्वर्ण, मिट्टी आदि पदार्थोंमें और मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि दूसरेके द्वारा होनेवाली क्रियाओंमें उपर्युक्त गीता अ० १४ श्लो० २४-२५ के अनुसार पूर्ण समता आ जाती है। तब फिर **'अहं ब्रह्मास्मि'** 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा भाव भी नहीं रहता; क्योंकि वह वास्तवमें ब्रह्म ही हो जाता है और ब्रह्मकी दृष्टिमें यह शरीर और संसार है ही नहीं, तब सम्बन्ध किससे किसका हो? वहाँ सम्बन्धका सर्वथा अभाव हो जाता है या यों समझिये कि सम्बन्धका सर्वथा विच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गमें जब **'अहं ब्रह्मास्मि'** आदि महावाक्योंके अनुसार जो शुद्ध अहंभाव है, उसका भी आगे जाकर अभाव हो जाता है, तब उसकी कहीं भी ममता नहीं रहती और वह पुरुष सत्-चित्-आनन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌ने बताया है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८। ५४-५५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी पराभक्तिको प्राप्त हो जाता है। उस पराभक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको मैं जो हूँ और जैसा हूँ ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।'

अहंताके साथ ही उसकी ममताका भी नाश हो जाता है। पहले जब ब्रह्मके स्वरूपमें स्थिति होती है, तब तो उसमें यह शुद्ध अहंकार रहता है कि मैं शरीर नहीं, निर्गुण-निराकार नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म हूँ। अर्थात् उसकी देहमें आत्मबुद्धि हटकर ब्रह्ममें आत्मबुद्धि हो जाती है, किंतु बादमें जब उपर्युक्त साधनके द्वारा उसको पराभक्तिरूप परम ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। तब वह ब्रह्ममें विलीन हो जाता है।

इसी प्रकार भक्तियोगी साधकोंको अहंता-ममताका त्याग करके भक्तियोगका साधन करना चाहिये। देह मैं हूँ और देहसे सम्बन्ध रखनेवाले कुटुम्बी और सांसारिक पदार्थ मेरे हैं—यह अभिमान साधकके लिये साधनमें विघ्न है। मनुष्यको जाति, वर्ण, आश्रम, कुटुम्ब, बुद्धि, बल, गुण, आचरण आदि किसी प्रकारका भी अभिमान नहीं करना चाहिये। जैसे मैं ब्राह्मण हूँ, ऊँची जातिका हूँ, विद्वान् हूँ, साधु हूँ, ज्ञानी-भक्त हूँ, महात्मा हूँ, बुद्धिमान् हूँ, सद्गुणी-सदाचारी हूँ, मेरा बड़ा भारी कुटुम्ब है, मेरी स्त्री पतिव्रता है, मेरा पुत्र मातृ-पितृ-भक्त है, मेरे बड़ी-बड़ी मिलें हैं, अनेक मकान हैं, मेरे समान धनी नहीं, बलवान् नहीं, गुणी नहीं, सदाचारी नहीं, श्रेष्ठ नहीं, यों किसी भी प्रकारका अभिमान होना साधनमें महान् विघ्नरूप और खतरेकी चीज है।

इसके सिवा जो शुद्ध अहंता-ममता है, उसका भी अन्तमें त्याग हो जाता है। जैसे मैं भक्त हूँ, मैं साधक हूँ—यह शुद्ध अहंकार है। यथा—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

इस प्रकार मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं—यह शुद्ध ममता है। यह शुद्ध अहंता-ममता भी आगे जाकर नहीं रहती। अतः साधकको मैं साधक हूँ, भगवान्‌का भक्त हूँ—यह अभिमान भी नहीं रखना चाहिये, किंतु लोग उसको भक्त कहते हैं, महात्मा कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं, इसलिये लोगोंकी दृष्टिमें उनकी मान्यताके अनुसार, उनके विश्वासके अनुसार आचरण करना चाहिये, जैसे कि राजा युधिष्ठिरने यक्षके प्रति कहा था। जब उन्होंने यक्षके पूछे हुए सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दे दिया, तब यक्षने उनसे पूछा—'राजन्! तुम महाबलशाली भीमसेन और अर्जुनको छोड़कर नकुलको क्यों जिलाना चाहते हो?' इसपर युधिष्ठिरने कहा—

धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु॥

(महा० वन० ३१३। १३०)

'यक्ष! मेरे विषयमें लोग सदा ऐसा समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं, अतएव मैं अपने धर्मसे विचलित नहीं होऊँगा। इसलिये मेरा भाई नकुल जीवित हो जाय।'

'क्योंकि मेरे पिताके कुन्ती और माद्री दो पत्नियाँ थीं—उनमें कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ और माद्रीका पुत्र नकुल जीवित हो जाय तो वे दोनों पुत्रवती बनी रहें। मैं दोनों माताओंके प्रति समान भाव रखना चाहता हूँ—यह मेरा धर्म है।'

अतएव साधकको यह भाव रखना चाहिये कि मैं वास्तवमें भक्त और उच्चकोटिका साधक नहीं हूँ, बनना चाहता हूँ, लोग मुझको भक्त या उच्चकोटिका साधक मानते हैं, किंतु मुझमें बड़ी कमी है, मुझे वैसा बनना चाहिये, वैसा ही आचरण करना चाहिये। मैं तो भगवान्‌के दासोंका दासानुदास हूँ, उनका नाममात्रका किंकर हूँ, जैसा कि हनुमान्‌जीने कहा है—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

(राम० किष्कि० २। १-२)

जब हनुमान्‌जी भरतजीसे मिले हैं, उस समय भरतजीने पूछा—

को तुम्ह तात कहाँ ते आए।
मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

तब हनुमान्‌जी उत्तरमें कहते हैं—

मारुतसुत मैं कपि हनुमाना।
नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर·····।

(राम० उत्तर० १। ४-५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः यह समझना चाहिये कि 'मैं भगवान्‌के दासानुदासकी श्रेणीमें आ जाऊँ तो मेरा बड़ा अहोभाग्य है। अर्थात् भगवान्‌के दास हैं हनुमान्‌जी, मैं उनका भी दास बनकर रहूँ तो मेरा अहोभाग्य है, फिर दास होनेकी तो बात ही क्या है? पर मैं ऐसा हूँ नहीं, होना चाहता हूँ। लोग मुझे भक्त कहते हैं, यह मेरे लिये लज्जाकी बात है।' यह तो है उस भक्तके हृदयके भावकी बात और बाहरमें लोग जैसा उसे मानते हैं वैसा ही वह सदाचरण करता है। वह समझता है कि जैसा लोग मुझे मानते हैं, उसीको स्वाँगका रूप समझकर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ठीक उसी प्रकार बरतना है। किंतु वास्तवमें कहीं भी यह अभिमान नहीं करना है कि मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, साधु हूँ, गृहस्थ हूँ, सद्गुणी-सदाचारी हूँ, श्रेष्ठ हूँ, भक्त हूँ इत्यादि।

मैं भक्त हूँ, अमुक भक्त नहीं है—यों दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें अच्छेपनका अभिमान आ जाय तो वह साधनमें बाधा है। भगवान् मेरे ही स्वामी हैं और मैं ही उनका सेवक हूँ—यह भाव न रखकर सब भगवान्‌के हैं और भगवान् सबके स्वामी हैं—वे मेरे भी स्वामी हैं—यह भाव रखना अच्छा है। इसकी अपेक्षा भी यह भाव और अच्छा है कि सब भगवान्‌के स्वरूप हैं या सबमें भगवान् विराजमान हैं, इसलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(राम० किष्कि० ३)

यह बड़ा उत्तम भाव है। मैं सबका सेवक हूँ, तुच्छ हूँ, सब मेरे स्वामी हैं, मैं उनके चरणोंकी धूलके समान हूँ—इस प्रकारके भावसे आगे जाकर शुद्ध अहंकार भी मिट जाता है और यह भाव आ जाता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल भगवान् ही हैं। उसे अपना ज्ञान भी नहीं रहता है, केवल भगवान्‌का ही ज्ञान रहता है। उसमें अहंता-ममताका अभाव हो जाता है। फिर उसकी सारी चेष्टा भगवान्‌के संकेतके अनुकूल अपने आप ही होती रहती है। उसका 'करना' 'होने'में बदल जाता है। जैसे कठपुतली सूत्रधार जैसे नचाता है, वैसे ही नाचती है; वैसे ही उसकी सारी क्रियाएँ नचानेवाले सूत्रधारकी कठपुतलीकी तरह होती हैं। कठपुतलीमें तो अन्तःकरण नहीं है और इसमें अन्तःकरण होते हुए भी काठकी कठपुतलीकी-ज्यों चेष्टा होती है। इसमें कठपुतलीकी अपेक्षा मन-बुद्धि विशेष होनेके कारण मनसे परमात्माका चिन्तन और बुद्धिमें परमात्माका निश्चय विशेषरूपसे रहते हैं। यही असली भक्ति है, यही असली शरणागति है। उस कठपुतलीका अपनी हार-जीतमें भी कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसी प्रकार साधकका भी किसी फलसे सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये। उसे तो अपनी सम्पूर्ण क्रियाओं, उनके फलों और अपने आपको भी भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये। भगवान्‌ने गीतामें बताया है—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥
(१२। ६-७)

'परंतु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।'

वह भक्त सदा-सर्वदा कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता और भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥
(गीता १८। ५६)

'मेरे परायण हुआ कर्मयोगी भक्त तो सम्पूर्ण कर्मोंको करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।'

इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको वैसा ही बननेकी आज्ञा देते हैं—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
(गीता १८। ५७)

'सब कर्मोंको मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण हुआ निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।'

उपर्युक्त प्रकारसे साधन करते-करते जब मनुष्य भगवान्‌के सर्वथा शरण हो जाता है, तब उसकी अहंता-ममताका सर्वथा अभाव होकर उसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह फिर पूर्णतया गीता अ० १२ श्लोक १३-१४ के अनुसार भगवान्‌का ज्ञानी भक्त बन जाता है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
(गीता १२। १३-१४)

'जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थभावरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालोंको भी अभय देनेवाला है तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझे प्रिय है।' यह भगवान्‌को प्राप्त पुरुषकी कसौटी है। इस प्रकार भगवान्‌का साधक भक्त अनन्यभक्तिके द्वारा नेत्रोंसे भगवान्‌का साक्षात् दर्शन पाकर और शुद्ध (पवित्र) बुद्धिद्वारा भगवान्‌को यथार्थरूपसे तत्त्वतः जानकर भगवान्‌में प्रवेश कर जाता है।

गीतामें भगवान् कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
(गीता ११। ५४-५५)

'परंतु हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ। हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।'

इस प्रकार ज्ञानके मार्गमें तो 'मैं साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हूँ।' यों बड़े-से-बड़ा बनकर अहंकारका नाश करना है और भक्तिके मार्गमें 'मैं सबका सेवक हूँ, दासानुदास हूँ, किंकर हूँ, सबके चरणोंकी धूलि हूँ'—यों छोटे-से-छोटा बनकर अहंकारका नाश करना है। सबसे पहले देश, जाति, वर्ण, आश्रम आदि सांसारिक अहंकारका नाश करना है, फिर अन्तमें मैं भक्त हूँ, साधक हूँ, इस शुद्ध अहंकारका भी नाश हो जाता है। ज्ञानके मार्गमें तो यथार्थ ज्ञानसे सब प्रकारके अहंकारका नाश होता है और भक्तिके मार्गमें भगवान्‌की कृपासे सब प्रकारके अहंकारका नाश होता है। इन दोनों साधनोंसे अहंता-ममताका नाश होनेपर उस पुरुषके कर्म अकर्म हो जाते हैं। उनका करना होनेमें बदल जाता है। एवं दोनों ही प्रकारके साधकोंको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। अन्तिम फल दोनोंका एक ही है। (देखिये गीता १८। ५४-५५ एवं ११। ५४-५५)

किंतु बाहरमें उसका व्यवहार वैसा ही होता है जैसा उच्चकोटिके सात्त्विक साधकका व्यवहार होता है। लौकिक दृष्टिमें वह ब्रह्मचारी या साधु या गृहस्थ जो भी है, उस स्वाँगके अनुसार उसका श्रेष्ठ ब्रह्मचारी, श्रेष्ठ साधु या श्रेष्ठ गृहस्थका व्यवहार होता है। उसमें स्वाभाविक ही कोई दोष नहीं आते, वह अपने स्वाँगको नहीं लजाता। इस विषयमें एक छोटी-सी कहानी है—

एक बहुरूपिया था। वह अपने स्वाँगको पूरी तरह पेश उतारा करता था, उसमें किंचिन्मात्र भी कहीं दोष नहीं आने देता था। एक दिन वह राजाके पास गया और इनाम पानेके उद्देश्यसे उसने राजासे कहा—'महाराज! आप कौन-सा स्वाँग देखना चाहते हैं?' राजा बोले—'तुम केशरी सिंहका स्वाँग लाओ।' बहुरूपियेने निवेदन किया—'सिंहका स्वाँग लानेके लिये न कहिये, यह स्वाँग बड़ा क्रूर है। जब सिंहके रूपमें मैं आऊँगा, तब सिंहके स्वभावके अनुकूल ही चेष्टा करूँगा उसमें कोई दोष या त्रुटि नहीं आने दूँगा। स्वाँगको नहीं लजाऊँगा। उस समय यदि स्वाँगकी रक्षाके लिये मुझसे कोई अपराध हो जाय तो उसे आप क्षमा कर देंगे।' राजाने कहा—'बहुत अच्छा, स्वाँगकी रक्षाके लिये तुमसे कोई अपराध होगा तो वह क्षम्य समझा जायगा। तुम सिंहका स्वाँग लाओ।' यह बात सारे शहरमें फैल गयी। इससे शहरके सब लोग सचेत हो गये।

दूसरे दिन वह सिंह बनकर गर्जता, दहाड़ता हुआ बाजार-को लाँघकर राजदरबारमें पहुँचा। शहर और सभाके सभी लोग चुपचाप स्तम्भित हुए-से उसको देखते रहे, किंतु राजाके एक छोटेसे लड़केने 'मैं राजकुमार हूँ' इस अभिमानमें आकर सिंहकी गुदामें एक दातुन घुसा दिया, तब सिंहने दुहत्थीसे—आगेके दोनों पञ्जोंसे उस राजकुमारपर ठीक सिंहकी भाँति प्रहार किया, जिससे उसके प्राण निकल गये। सिंह दहाड़ता हुआ वापस लौट गया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमारकी मृत्यु हो जानेसे राजपरिवार और राजसभाके सदस्योंको बड़ा ही क्षोभ हुआ। दूसरे दिन वह बहुरूपिया भी अपने असली रूपमें आया। उसने खूब दुःख प्रकट किया और निवेदन किया कि 'महाराज! इसीलिये मैं आपसे प्रार्थना करता था कि सिंहका स्वाँग लानेके लिये न कहिये। मुझसे बड़ा भारी अपराध बन गया, जो मैं राजकुमारकी मृत्युमें कारण बना। अब तो मैं बहुरूपिया हूँ, अब आप मेरा चाहे जितना अपमान करें, दण्ड दें, किंतु उस समय मैं केशरी सिंहके स्वाँगमें था, केशरी सिंहके स्वभावके अनुसार चेष्टा कर रहा था। आप बतलाइये यदि कोई केशरी सिंहकी गुदामें दातुन घुसा दे तो उसे केशरी सिंह कैसे बरदाश्त कर सकता है? मैं स्वाँगको नहीं लजाता, स्वाँगको लजाऊँ तो न तो मैं स्वाँगको ही सफल बना सकता हूँ, न जी ही सकता हूँ। मैं भगवान्‌का उपासक हूँ। उन्हींकी कृपासे मेरा स्वाँग सफल होता है और मुझे उसमें विजय प्राप्त होती है। राजा यह सब सुन रहे थे, किंतु उनके हृदयमें राजकुमारकी मृत्युके कारण बहुत दुःख और क्षोभ था, पर वे वचनबद्ध होनेके कारण कुछ भी कर न सके। बहुरूपियेने पूछा—'महाराज! अब दूसरा कौन-सा स्वाँग लाऊँ?' इसपर राजकुमारके मरणशोकसे दुःखित मन्त्रीने कहा—'तुम महात्मा शुकदेवजीका स्वाँग लाओ।' बहुरूपिया चला गया और १५ दिन बाद श्रीशुकदेवजीके ही-जैसा एक उच्चकोटिके ज्ञानी महात्माका स्वाँग बनाकर निकला और शहरके किनारे, उत्तरकी ओर बालूके टीलेपर जाकर बैठ गया। इससे शहरमें तुरंत यह खबर फैल गयी कि एक बहुत बड़े उच्च कोटिके महात्मा बालूके टीलेपर बैठे हैं। यह जानकर दर्शनार्थियोंकी वहाँ भीड़ लग गयी। जब यह खबर मन्त्रीने सुनी तो उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! मेरी समझमें वह बहुरूपिया ही स्वाँग धरकर आया है, राजकुमारको मारनेका मेरे हृदयमें बहुत भारी दुःख था और है, इस उद्देश्यसे ही मैंने उसे शुकदेवजीका स्वाँग लानेको कहा था। यह स्वाँग बहुत कठिन है, इससे वह कहीं इसे लजा दे तो इसे दण्ड दिया जा सकता है, अतः आप भी मेरे साथ उसका दर्शन करने चलिये ताकि उसको विशेष लोभ देकर स्वाँगके स्वरूपसे विचलित किया जाय।' यों बातचीत करके वे दोनों वहाँ गये, मन्त्री और राजाने महात्माको नमस्कार किया और उनके चरणोंमें रत्नों और सोनेकी मुहरोंकी थैलियाँ रख दीं, वे महात्मा उन थैलियोंकी अवहेलना करके झट वहाँसे उठकर जंगलकी ओर चल दिये। मन्त्री उनके पीछे-पीछे गये। जब एकान्त स्थान आ गया, तब मन्त्रीने उनके कानमें कहा—'तू बहुरूपिया है, महात्मा शुकदेवजीका स्वाँग लेकर आया है, यह मैं जानता हूँ। इन थैलियोंमें कई लाख रुपयोंका धन है, अतः मेरा यह अनुरोध है कि तू यह सब द्रव्य स्वीकार कर ले, फिर हम दोनों आधा-आधा बाँट लेंगे।' उस महात्माके रूपमें आये हुए बहुरूपियेने मन्त्रीकी बात बिल्कुल अनसुनी कर दी और विरक्तभावसे जंगलमें चला गया। तब राजा और मन्त्री लौट आये।

दो दिन बाद फिर वह बहुरूपिया राजभवनमें आया और बोला—'महाराज! शुकदेवजीका स्वाँग आपको कैसा लगा?' राजाने कहा—'बहुत अच्छा'। तब बहुरूपियेने फिर पूछा—'अब कौन-सा स्वाँग लाऊँ?' वहाँ राजाका भक्त एक नाई था। उसने सोचा, 'इसने राजकुमारकी हत्या कर दी यह इसका बड़ा अपराध है, इसे विशेष दण्ड मिलना चाहिये।' यह सोचकर उसने कहा—'पतिव्रता सतीका स्वाँग लाओ।' राजा और मन्त्रीने भी इसका समर्थन किया। बहुरूपिया इसे सहर्ष स्वीकार करके घर चला गया।

कुछ दिनों बाद उसने देखा एक मुर्दा तैरता हुआ नदीके किनारे आ लगा है, वह उसे घरपर ले गया। उसने पतिके रूपमें उसे सजाकर स्वयं सोलह शृङ्गारोंसे सम्पन्न पतिव्रता सती स्त्रीका स्वाँग बनाया और पतिकी वैकुण्ठी बनाकर बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजेके साथ बाजारमें होते हुए श्मशान जानेके लिये जुलूस निकाला। यह खबर तुरत सारे शहरमें फैल गयी। हजारों नर-नारी उस मुर्देके साथ होकर श्मशानघाटपर गये। जब यह समाचार मन्त्रीको मिला तब उसने राजासे कहा—'यह वही बहुरूपिया है, पतिव्रता सतीका स्वाँग लेकर आया है, मैं इसे जलानेका प्रबन्ध करनेके लिये स्वयं जाता हूँ।' यों कहकर मन्त्री बहुत-से आदमियोंको लेकर मरघटपर गये। करीब सौ मन काठका ढेर लगवाकर चिता बनवा दी। वह पतिव्रता सती स्त्री अपने पतिके शवको गोदमें लेकर चितामें भस्म होनेके लिये बैठ गयी। चिताके चारों ओर आग लगा दी गयी। उसी समय बड़े जोरसे आँधी-तूफान आया। उसके कारण मन्त्री तथा मन्त्रीके साथ आये हुए आदमी तथा शहरके सब लोग वहाँसे भाग गये। आँधीके साथ घोर वर्षा होने लगी। वर्षा इतने जोरसे हुई कि उसने चिताकी धधकती हुई लपटोंको शान्त कर दिया। तब वह बहुरूपिया चिताके उस ओरसे, जिस ओर आग नहीं लग पायी थी, नीचे उतर पड़ा और उसने फिर चिताके चारों ओर आग प्रज्वलित कर दी। तदनन्तर वह अपने घर लौट गया। उस अग्निसे वह मुर्दा भस्म हो गया। दूसरे दिन मन्त्री और राजाने जाकर देखा—वहाँ भस्म और मुर्देकी हड्डीके सिवा कुछ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ही दिनों बाद वह बहुरूपिया अपने रूपमें राजभवनमें आया और बोला—'महाराज! सतीका स्वाँग कैसा रहा?' राजाने कहा—'बहुत अच्छा।' राजाने फिर पूछा—'तुम जीते कैसे रहे?' उसने कहा—'महाराज! मैं स्वाँग नहीं लजाता, इसलिये भगवान् मेरी रक्षा करते हैं। मैं स्वर्गमें गया था, आपके पिता-पितामहसे भी मिला था, उनके दाढ़ी-मूँछ, नख बड़े-बड़े हो रहे थे। मैंने उनसे पूछा था कि आप सब सकुशल हैं न? कोई कष्ट तो नहीं है न? आपका क्या संदेशा राजासे कहूँ? उन्होंने कहा—'यहाँ और सब तो आनन्द है, केवल नाईका कष्ट है, एक नाईको यहाँ भेज देना।' यह सुनकर राजाने उसी नाईसे कहा—'तुम जाकर उनकी सेवा करो।' मन्त्रीने नाईसे कहा—'जैसे यह स्वर्गमें गया, वैसे ही तुम कल स्वर्गमें जाओ।' तब नाईने बहुरूपियेको अलग ले जाकर कहा—'तुम मुझे क्यों मरवाते हो?' बहुरूपियेने उत्तर दिया—'तुमने ही मेरी अनिष्ट-कामना की थी, मेरे विनाशके लिये सतीका स्वाँग लानेके लिये राजासे प्रार्थना की थी, इसीलिये मैं तुमको भेजता हूँ। जो मनुष्य दूसरेके अनिष्टके लिये चेष्टा करता है, उसका अपना ही अनिष्ट होता है।' नाईने कहा—'मेरा अपराध क्षमा करो, मैं तुम्हारे शरण हूँ, मुझे इस घोर विपत्तिसे बचाओ।'

तब बहुरूपियेने राजसभामें आकर राजाके सामने मन्त्रीसे आदिसे अन्ततक सब सच्ची-सच्ची घटना सुना दी कि 'मैं स्वाँग नहीं लजाता, अतः भगवान् मेरी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं। जब आपलोग चितामें आग लगाकर आँधी-वर्षाके भयके कारण चले आये, तब बड़े जोरसे वर्षा हुई, जिससे आग शान्त हो गयी और मैं बच गया। फिर मैंने चिताके चारों तरफ आग लगा दी जिससे वह मुर्दा जल गया। स्वर्गमें जाकर कोई वापस नहीं आ सकता, मैं तो भगवान्‌की कृपासे बच गया था, इस बेचारे नाईके प्राण नहीं लेने चाहिये।'

इसपर राजाने उससे कहा—'तुम्हारे स्वाँगसे हम बहुत प्रसन्न हैं। जो घटना होनेवाली थी, वह हो गयी। अब तुमको उसका कोई शोक नहीं करना चाहिये।' यों कहकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक उस बहुरूपियेको हजारों रुपयोंका इनाम दिया, वह इनाम लेकर अपने घर चला गया।

इस कहानीसे एक तो यह शिक्षा मिलती है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास—जिस किसी आश्रममें और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—जिस किसी वर्णमें मनुष्य हो, उसे अपना स्वाँग नहीं लजाना चाहिये। जो स्वाँग नहीं लजाता, उसकी भगवान् सब प्रकारसे रक्षा करते हैं जैसे भगवान्‌ने उस बहुरूपियेकी रक्षा की एवं दूसरी यह शिक्षा मिलती है कि दूसरेके अनिष्टका चिन्तन कभी नहीं करना चाहिये, नहीं तो, जैसे नाईको भय प्राप्त हुआ, वैसे भय प्राप्त हो सकता है।

अतएव उपर्युक्त विवेचनसे यह समझना चाहिये कि ज्ञानी महात्मा पुरुष लोकसंग्रहके लिये स्वाँगकी भाँति काम करते हैं। लोग उनको जिस वर्ण-आश्रममें समझते हैं, उनके सामने वे वैसा ही आचरण करते हैं। अपना असली परिचय अपने अन्तरंग लोगोंके सिवा अन्य किसीको नहीं देते। किंतु जो व्यक्ति 'मैं ज्ञानी हूँ, महात्मा हूँ, योगी हूँ, महापुरुष हूँ, अधिकारी पुरुष हूँ'—ऐसा कहते हैं, वे वास्तवमें योगी, ज्ञानी, महात्मा नहीं हैं, वे तो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा-सेवाके किंकर, दम्भी, पाखण्डी हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, वे कञ्चन-कामिनीके लोभसे या अपनी मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये दूसरेकी अपनेमें श्रद्धा बढ़ानेके हेतु नहीं बनते; क्योंकि उनको न कुछ करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है और न कुछ न करनेसे ही प्रयोजन रहता है। उनमें स्वार्थका अत्यन्त अभाव हो जाता है। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

(३।१८)

'उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता।'

अतः परमात्माकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको ज्ञान या भक्तिके साधनद्वारा अहंता-ममताका अत्यन्त अभाव करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110331

सनातन शौचाचार

(लेखक—पं० श्रीगुप्तेश्वरजी पाण्डेय)

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

(मनु० ५ । १०९)

शरीर जलसे, मन सत्यसे, जीवात्मा विद्या और तपसे और बुद्धि ज्ञानसे शुद्ध होती है । इस प्रकार भगवान् मनुके वचनके अनुसार शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा—इन चारोंकी शुद्धि अपेक्षित है ।

वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविड्घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

(मनु० ५ । १३५)

चर्बी, वीर्य, रक्त, मज्जा, मल, मूत्र, कान-नाकका मैल, कफ, नेत्रोंका मैल और पसीना—ये बारह प्रकारके शरीरके मल हैं । मनुष्यके शरीरसे प्रतिक्षण मल निकलते रहते हैं । भगवान् मनुके अनुसार उपर्युक्त बारह प्रकारके मल मनुष्यके शरीरमें पाये जाते हैं, जो उसके शरीरसे बाहर निकलते हैं । इन मलोंके निकलते समय शरीरके ऊपरी आवरणसे उनका संस्पर्श होता है । यों तो उसके शरीरके भीतर ये मल भरे पड़े हैं; किंतु आवरणसे ढके रहनेके कारण उनकी गंदगी छिपी रहती है परंतु ज्यों ही वह शरीरसे बाहर निकलती है त्यों ही शरीरके उस भागको जहाँसे होकर मल निकलता है तुरंत साफ करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है । इसकी तत्काल व्यवस्था न होनेसे शरीरसे दुर्गन्ध निकलने लगती है और संक्रामक रोगोंके फैलनेकी आशङ्का हो जाती है । इसलिये मनुष्यको अपने शरीरके विभिन्न अङ्गोंको प्रतिदिन साफ-सुथरा रखना नितान्त आवश्यक होता है और उसको इसकी उचित व्यवस्था करनी होती है । स्वास्थ्यकी दृष्टिसे शरीरकी सफाईपर विशेष ध्यान दिया जाता है; परंतु धार्मिक दृष्टिसे भी शरीरकी सफाईका विशेष महत्त्व है; क्योंकि शौचके बिना आचारका अनुष्ठान हो ही नहीं सकता । कारण, मनुष्यके आचारकी सब क्रियाएँ शरीरसे ही सम्पन्न होती हैं और शरीरको शुद्ध किये बिना आचारसम्बन्धी क्रियाएँ प्रारम्भ ही नहीं की जा सकतीं ।

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जलम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥

(मनु० ५ । १०५)

अर्थात् ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, जल, अनुलेपन, वायु, कर्म, सूर्य और समय—ये सब देहधारियोंको शुद्ध करनेवाले हैं अर्थात् इन्हींके द्वारा मनुष्य शुद्ध होते हैं ।

दिवासंध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥

(याज्ञवल्क्य प्र० २ । १६)

मनुष्यको दिनमें तथा दोनों संध्याओंमें उत्तराभिमुख तथा रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्र विसर्जन करना चाहिये । द्विजोंमें दाहिने कानपर यज्ञोपवीत चढ़ाकर मल-मूत्र विसर्जन किया जाता है ।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥

(मनु० ५ । १३६)

शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी और जल लगाकर उन्हें धोना चाहिये । मल त्यागनेके बाद लिङ्ग, गुदा और हाथोंको मिट्टी लगाकर जलसे अच्छी तरह धोनेकी प्रथा भारतवर्षमें आज भी प्रचलित है, परंतु शुद्ध मिट्टीके अभावमें इस समय साबुनका प्रयोग भी हो रहा है । इसमें संदेह नहीं कि साबुनके प्रयोगसे गंदगी तत्काल दूर होती है और इस कामके लिये यह सबसे उपयोगी पदार्थ है तथा मिट्टीके अभावमें एवं विशिष्ट शुद्धिके लिये साबुनका व्यवहार होना चाहिये; परंतु भारतीय परम्पराको ध्यानमें रखकर जनसाधारण बुद्धिभेद-निवारणके लिये शुद्ध मिट्टीका व्यवहार ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है । धार्मिक कृत्यों एवं यज्ञानुष्ठानमें मिट्टीके द्वारा ही शुद्धिकरण होना चाहिये ।* मूत्र-विसर्जनके पश्चात् भी शुद्धिके लिये जलका व्यवहार

---

* बढ़िया साबुनोंमें चर्बी भी होती है, जहाँ ऊपरकी गंदगी दूर होती है वहाँ हिंसाके तथा चर्बीके परमाणु हाथ आदिके द्वारा शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं । फिर एक ही साबुनकी बटिया कई दिनोंतक कई लोगोंके काम आती है । मिट्टी तो नयी ली जाती है । इससे सफाई भले ही हो जाय पर साबुनसे शुद्धि नहीं होती । इसके अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्साके अनुसार मिट्टी सर्वरोगनाशक है । अतः मिट्टीका ही प्रयोग करना चाहिये । —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिये। इस प्रकार मल-मूत्र विसर्जनके पश्चात् शुद्धि का अभ्यास बाल्यावस्थासे ही डालना चाहिये। मल-त्यागके पश्चात् शरीरकी शुद्धिके लिये स्नान करनेकी व्यवस्था उत्तम मानी जाती है। साधारणतः सबेरे और शामको मल-परित्यागका समय निश्चित-सा रहता है; इसलिये प्रातः-सायंका स्नान शरीरकी शुद्धिके लिये आवश्यक माना जाता है। यों तो इस देशमें त्रिकाल-स्नानका विधान है, परंतु सबेरे और शाम दोनों समय तो स्नान अवश्य करना चाहिये। किसी प्रकारकी अड़चन होनेपर या ठंढकसे बचनेके लिये संध्या-समय शौचोपरान्त धोती बदलकर भी निर्वाह किया जा सकता है; परंतु सबेरेका स्नान तो अनिवार्य होना ही चाहिये।

स्नानके पूर्व आँख, नाक, कान, मुँह आदिको जलसे साफ करनेकी व्यवस्था करनी चाहिये। दाँतोंको दन्तधावन, अथवा मंजन आदिसे प्रतिदिन भलीभाँति साफ करना चाहिये। यह बात अबतकके व्यवहारसे सिद्ध हो चुकी है कि दाँतोंकी सफाईके लिये दँतौनसे बढ़कर दूसरा कोई उपयोगी पदार्थ नहीं है। इसके व्यवहारसे दाँतके गस्सोंसे भी मल निकल जाते हैं और दाँतोंकी जड़ें भी दँतौनके कसावसे मजबूत होती हैं। इसलिये कसावयुक्त वृक्षों जैसे बबूर, नीम, मौलसरी, सिहोर, साखू आदिके दँतौन उत्तम माने जाते हैं। साथ-ही-साथ इनके रेसे भी पतले और मजबूत होते हैं, जो रगड़नेसे जल्दी नहीं घिसते हैं। सोकर उठनेपर, भोजनोपरान्त तथा मल-मूत्र-विसर्जनके बाद आँख, नाक, मुख, पैर आदिको अच्छी तरह शुद्ध जलसे धोनेकी प्रथा इस देशमें सदासे प्रचलित रही है और इसका अभ्यास बचपनसे ही कराया जाता है। दाँतोंकी सफाई करते समय जीभकी सफाईकी प्रथा भी यहाँ प्रचलित है और इसके लिये दँतौनको ही चीरकर व्यवहारमें लाते हैं; परंतु ब्रसका व्यवहार करनेवाले लोग पीतल आदि धातुओंकी जिभ्भी व्यवहारमें लाते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये दाँत साफ करनेके बाद ब्रसको प्रतिदिन छूत-निवारणके लिये बोरिक लोशनमें डुबाना चाहिये और जिभ्भीको मिट्टी या साबुनसे अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिये। शय्यासे उठकर मल-मूत्र त्यागकर, मुँह-हाथ धोकर स्नान कर लेनेसे शरीरका शौच-कर्म सम्पन्न हो जाता है।

'आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्।'

—के अनुसार भोजन करनेके पहले ही पैरोंको अच्छी तरह धो लेना चाहिये तथा पाँव धोनेके पहले मुँह तथा हाथोंको अच्छी तरह धोना चाहिये और भोजनोपरान्त भी इसी क्रिया-का अवलम्बन करना चाहिये; परंतु गीले पाँवसे सोना नहीं चाहिये। मल-मूत्रका त्याग, पैरोंका धोना, जूँठे अन्नका परित्याग निवास-स्थानसे दूर होना चाहिये। जलमें मूत्र-विष्ठा, थूक अथवा ऐसी वस्तु जिसमें अपवित्र वस्तु लगी हो, नहीं डालनी चाहिये। एक वस्त्र धारण करके अन्न नहीं खाना चाहिये, नंगे होकर स्नान नहीं करना चाहिये तथा भस्म, रास्ता और गोशालामें मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। हलसे तत्काल जोते हुए खेतमें, जलमें, जीवोंके रहनेके बिलमें, नदीके तटपर तथा पर्वतके शिखरपर मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल तथा गौको देखते हुए मल-मूत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। अधर्मियोंके गाँवोंमें तथा जहाँ अनेक व्याधियाँ हों, कदापि वास न करे। अञ्जलियोंसे जलपान न करे और गोदीमें भोज्य वस्तुको रखकर न खाय। मनुस्मृतिके अनुसार जिस वस्तुको अपनी आँखों न देखा हो तथा जिसकी अशुद्धिकी आशङ्का हो, उसको जलसे शुद्ध कर लेना चाहिये और जो ब्राह्मणकी वाणीसे शुद्ध कह दिया जाय उसको शुद्ध मान लेना चाहिये। बोलते समय मुखसे निकली बूँदें शरीरपर गिरनेसे अपवित्रता नहीं करतीं, मुखमें गये दाढ़ी-मूँछके बाल अपवित्र नहीं होते और दाँतोंमें लगा हुआ अन्न तथा आचमन कराते समय, पैरपर पड़ी जलकी बूँदें अपवित्र नहीं करतीं।

सुवर्ण इत्यादिके पात्र, मरकतमणि आदि सब प्रकारके पत्थरके पात्रोंकी शुद्धि भस्म, जल और मिट्टीके द्वारा होती है। जिसमें उच्छिष्ट आदि न हो, ऐसा सोनेका पात्र, शंख, मोती आदि पाषाणके पात्र तथा चिह्नरहित चाँदीके पात्रोंकी शुद्धि केवल जलसे होती है। जल तथा अग्निके संयोगसे सुवर्ण और चाँदी उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनके उत्पादक जल और अग्निसे ही उनकी शुद्धि होती है। ताँबा, लोहा, कांसा, पीतल, राँगा और शीशेके पात्रोंकी शुद्धि क्षार, अम्लोदक और जलसे होती है। केवल जल छिड़कनेसे घृत आदि द्रव पदार्थोंकी, शय्या आदिकी प्रोक्षणसे तथा छीलनेसे काष्ठके पात्रों-की शुद्धि होती है। यज्ञकर्ममें पात्रोंकी हाथसे मार्जन करनेसे शुद्धि हो जाती है। स्निग्ध चरु, शूर्प, शकट, मुसल तथा ऊखल आदिकी शुद्धि गरम जलसे धोनेसे होती है। बहुत-से धान्य तथा वस्त्रकी शुद्धि जलसे प्रोक्षण करनेसे और थोड़े अन्न-वस्त्रकी शुद्धि जलसे धोनेसे होती है। चमड़ा, बाँसके पात्रकी शुद्धि वस्त्रके समान तथा शाक, मूल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलोंकी शुद्धि अन्नके समान होती है। रेशमी तथा ऊनी वस्त्रकी शुद्धि खारी मिट्टीसे एवं रीठेसे होती है। भूमिकी शुद्धि गोबरसे और मिट्टीके पात्रकी दोबारा पकानेसे होती है। कारीगरका हाथ, बाजारका सामान, ब्रह्मचारीकी भिक्षा, दूहते समय बछड़ेका मुख और फल गिराते समय पक्षीका ठोर शुद्ध रहता है।

चित्त-शुद्धि

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

(मनु० ४। १३८)

सत्य एवं प्रिय वचन बोलना चाहिये और जो प्रिय न हो ऐसे सत्यको नहीं बोलना चाहिये। साथ-ही-साथ प्रिय असत्य भी नहीं बोलना चाहिये; यही सनातन धर्म है। आगे मनुजीने कहा है कि किसीके बुरे कामको देखकर भी उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिये और किसीके साथ वैर-विरोध नहीं करना चाहिये। अतः सभी प्राणियोंके हितमें सत्य बोलना चाहिये।

यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥

(मनु० ४। २०४)

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषको नियमोंके साथ-साथ यमोंका भी पालन करना चाहिये; क्योंकि यमोंको न करके केवल नियमोंके ही पालनसे वह पतित हो जाता है। इसलिये मनकी शुद्धिके लिये यम-नियमका पालन आवश्यक है। **'अहिंसा-सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'** पातञ्जलयोगदर्शनके अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इनको यम कहते हैं। **'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः'** योग-दर्शनके इस सूत्रके अनुसार अहिंसाके पालनमें सर्वदा एवं सर्वथा सब प्राणियोंसे अद्रोहकी भावना बनायी रखनी पड़ती है; परंतु ऐसी भावना बनानेके लिये आत्मबुद्धिकी नितान्त आवश्यकता होती है। जैसा ईशावास्योपनिषद्में मन्त्र आया है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ ६॥

जो सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें ही देखता है और समस्त भूतोंमें भी आत्माको ही देखता है, वह सर्वात्मदर्शनके कारण ही किसीसे घृणा नहीं करता। सभी प्रकारकी घृणा अपनेसे भिन्न किसी वस्तुमें दूसरेको देखनेवाले पुरुषको ही होती है। जो निरन्तर अपने अत्यन्त विशुद्ध आत्मस्वरूपको ही देखनेवाला है, उसकी दृष्टिमें घृणाका निमित्तभूत कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं, इसलिये वह किसीसे घृणा नहीं करता।

'अस्तेय' का अर्थ होता है चोरीका अभाव। धर्मविरुद्ध साधनोंसे दूसरोंके धनके अपहरणको स्तेय कहते हैं। अतः धर्मविरुद्ध अर्थ-संग्रहसे बचनेको अस्तेय कहते हैं।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥

(मनु० ५। १०६)

सभी शुद्धियोंमें धनकी शुद्धि श्रेष्ठ कही गयी है; क्योंकि जो धनमें शुद्ध है, वही शुद्ध है और केवल मिट्टी-जलसे शुद्धको अशुद्ध ही मानना चाहिये। **'ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः'** के अनुसार उपस्थ नामक गुप्तेन्द्रियके संयमको ब्रह्मचर्य कहते हैं। **'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'** पातञ्जलयोगदर्शनके अनुसार ब्रह्मचर्यके पालनसे वीर्यलाभ होता है; मनुष्यमें बल, पौरुष एवं तेजकी वृद्धि होती तथा दीर्घायु प्राप्त होती है। आवश्यकतासे अधिक अर्थ-संग्रह न करनेको अपरिग्रह कहते हैं। पारिवारिक जीवनके निर्वाहके लिये केवल उचित मात्रामें ही धनका संग्रह न्यायसंगत माना गया है। जैसे भगवान् मनुने कहा है—

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वकर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्॥

(मनु० ४। ३)

केवल गृहस्थ-धर्मके निर्वाहके लिये वर्णविहित उत्तम वृत्तिसे अपने शरीरको क्लेश न देकर परिवारके पालनके लिये धन संचय करना चाहिये।

'शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।'

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधानको नियम कहते हैं। शौचमें मनकी आभ्यन्तरिक शुद्धिके निमित्त शरीरकी बाह्यशुद्धि भी अपेक्षित रहती है। जिसका वर्णन पहले आ चुका है। श्रीमद्भगवद्गीतामें **'यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः'** ऐसा वर्णन आया है। इसका आशय यह है कि समय और परिस्थितिके अनुसार जो साधन प्राप्त हो जायँ, उन्हींको पर्याप्त मानकर संतुष्ट हो जानेको संतोष कहते हैं। अपने मन एवं बुद्धिको संतुलित रखकर सब प्राणियोंमें समबुद्धि रखते हुए किसीसे द्वेष नहीं रखना ही मनका शौच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और ऐसा करनेसे मनुष्य सुख-दुःखरूप द्वन्द्वसे रहित हो विमुक्त हो जाता है। 'आचारप्रभवो धर्मः' के अनुसार जाता है। गीतामें तपका वर्णन करते समय सत्रहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने बतलाया है कि देवता, ब्राह्मण, गुरु तथा ज्ञानी एवं विज्ञ पुरुषोंका पूजन यानी सेवा-सत्कार, शरीर एवं मनकी पवित्रता, चित्तकी सरलता (सभी प्राणियोंमें समभाव), ब्रह्मचर्य और अहिंसाको शरीरसे किये जानेवाले तप कहते हैं। जो उद्वेग न पैदा करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनका अभ्यास है, वही वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है। मनकी प्रसन्नता, परम शान्ति एवं सौम्यता, मौन, अन्तःकरणका संयम अर्थात् सब ओरसे मनका निग्रह और दूसरोंके साथ व्यवहार करनेमें छल-कपटसे रहित होना, इसको मानसिक तप कहते हैं। यही तपकी संक्षिप्त परिभाषा है।

ज्ञान-प्राप्तिके साधनोंको बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, अहिंसा, क्षमाभाव, मन-वाणीकी सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता और मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह, इस लोक और परलोकके भोगोंमें आसक्तिका अभाव, अहंकारका अभाव; जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बारंबार विचार करना; पुत्र, स्त्री, घर और धन आदिमें आसक्तिका अभाव, ममताका न होना, प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका एक-सा रहना, परमेश्वरमें अनन्ययोगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव तथा विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका अभाव, अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माका दर्शन—यह सब ज्ञान हैं और जो इससे भिन्न—विपरीत है, वह अज्ञान है। उपर्युक्त लक्षणोंसे ज्ञानीकी पहचान होनी चाहिये अर्थात् ज्ञानीमें उपर्युक्त गुणोंका समावेश पहलेसे ही होना चाहिये। वास्तवमें सच्चा ज्ञान वही है, जो उपर्युक्त बीस साधनोंके द्वारा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके स्वरूपको यथार्थरूपमें जान लेनेपर होता है।

आचार

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद् धर्मः पराङ्मुखः॥

(पराशरस्मृति १। ३७)

चारों वर्णोंका धर्म आचारसे ही पालित होता है और जिनका शरीर आचारसे भ्रष्ट है उनसे धर्म भी आचारसे धर्मकी वृद्धि होती है तथा 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' के अनुसार आचारहीन व्यक्तिको वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। धर्मकी व्याख्या करते हुए वैशेषिक दर्शनने बताया है कि 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' जिससे अभ्युदय अर्थात् तत्त्वज्ञान और निःश्रेयस यानी आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्ति—इन दोनोंकी सिद्धि होती है, वह धर्म है। अन्यत्र कहा गया है—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

धर्ममें प्राणिविशिष्टको धारण करनेकी शक्ति होती है और इस धारण करनेकी शक्तिको ही उस प्राणीका धर्म कहा जाता है। जैसे उष्णतामें अग्निको धारण करनेकी शक्ति होती है इसलिये वह अग्निका धर्म कहा जाता है। फलतः उष्णताकी रक्षासे ही अग्निकी रक्षा होती है और उसके अभावमें अग्नि निर्जीव हो जाती है। इसीसे कहा गया है कि '**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**' अर्थात् धर्मकी रक्षा करनेसे ही प्राणी रक्षित रहता है और धर्मको त्याग देनेसे वह नष्ट हो जाता है। इस एक प्रमाणसे धर्मके संरक्षण एवं अभिवृद्धिकी आवश्यकता प्रतीत हो जाती है, जो युगानुरूप शास्त्रविहित आचारसे होती है।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे पुंसां युगरूपानुसारतः॥
कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पाराशराः स्मृताः॥

(पराशरस्मृति १। २३-२४)

सत्ययुगमें पुरुषोंके धर्म और ही थे और त्रेतामें कुछ और तथा द्वापरमें उससे भी भिन्न थे। इसी प्रकार कलियुगके धर्म दूसरे ही हैं, अतः युगके अनुसार ही धर्म होता है। सत्ययुगमें मनुके कहे हुए धर्म, त्रेतामें गौतमके, द्वापरमें शङ्खलिखितके और कलियुगमें पराशरके धर्म माने जाते हैं। आगे बतलाया गया है कि सत्ययुगमें तपस्या ही बड़ा धर्म था, त्रेतामें ज्ञानको परम धर्म मानते थे, द्वापरमें यज्ञको और कलियुगमें केवल दान ही प्रधान धर्म है। कलियुगके आचारकी व्याख्या करते हुए महर्षि पराशरने कहा है—

संध्यास्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने॥

(१। ३९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संध्याओंका स्नान, गायत्रीका जप, देवताओंका पूजन, अतिथि-सत्कार और बलिवैश्वदेव—ये छः कर्म प्रतिदिन कर्तव्य हैं। आगे वर्णन आया है कि इन छः कर्मोंमें सदा रत रहनेवाला, देवता और अतिथियोंका पूजन करनेवाला तथा हुतशेष अर्थात् वैश्वदेव कर्मसे बचा हुआ अन्न भोजन करनेवाला जो विप्र है, उसे दोष नहीं होता।

गायत्री-उपासना

भगवान् मनुने बतलाया है कि प्रातःकालकी संध्यामें सूर्योदय होनेतक स्थिर होकर गायत्री जपता रहे और सायंकालकी संध्यामें तारोंके निकलनेतक गायत्री जपता हुआ बैठा रहे। प्रातःकालकी संध्याके समय जप करता हुआ द्विज रात्रिके पापोंको और सायंकालमें जप करता हुआ दिनके पापोंको नाश करता है। वनमें जाकर जलके समीपमें एकाग्रचित्तसे इन्द्रियोंको रोककर नित्य विधिसे गायत्रीका जप करना चाहिये। परंतु—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(मनु० २। १०३)

जो द्विज प्रातः और सायंकालकी संध्या नहीं करता है, वह द्विजोंके सम्पूर्ण कर्मोंसे बाहर निकालने योग्य है, यानी शूद्रवत् है। मनुजीके इस आदेशके अनुसार प्रत्येक द्विजके लिये प्रातः-सायं संध्या अनिवार्य है। नित्यकर्मोंकी अनिवार्यतापर यहाँतक जोर दिया गया है कि वेदपाठी विद्यार्थियोंके लिये भी अनध्यायके दिनोंमें भी जप, स्वाध्याय, हवन आदि नित्यकर्मोंमें अनध्याय नहीं होता अर्थात् इनको अनिवार्यरूपसे करना ही चाहिये। नित्यकर्ममें अनध्याय नहीं है; क्योंकि उसको 'ब्रह्मयज्ञ' कहते हैं। वेदकी आहुतिका हवन और अनध्यायमें किया हुआ वषट्कार भी पुण्यका स्वरूप है। मनुजीने नित्यके स्वाध्यायकी इतनी महत्ता दी है—

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु॥

(मनु० २। १०७)

जो द्विज वर्षपर्यन्त नित्य-स्वाध्याय करता है, उसे यह स्वाध्याय ही नित्य दूध, दही, घृत और मधु प्रदान करता है।

गायत्रीके सम्बन्धमें कहा गया है कि **'गायत्री वेदजननी गायत्री जगज्जननी, गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च कश्चन।'** अर्थात् गायत्री वेदकी जननी है, साथ-ही-साथ जगत्की भी माता है; अतः इससे परे इस लोकमें या दिव्यलोकोंमें कुछ भी नहीं है। इसलिये अब विचारना यह है कि गायत्रीमन्त्रका रहस्य क्या है? मूल गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।'

इस मूल-मन्त्रपर दो विशिष्ट ज्ञानी पुरुषोंकी व्याख्या अभीतक उपलब्ध हो सकी है। श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्यने संस्कृतमें तथा ज्ञानदेवजीने मराठीमें इस मन्त्रकी व्याख्या की है। अतः शंकराचार्यजीकी संस्कृत और ज्ञानदेवजीकी मराठीका भावानुवाद यहाँ दिया जा रहा है।

इन महानुभावोंने मन्त्रके प्रत्येक पदकी अलग-अलग व्याख्या की है।

तत्—

तद्ब्रह्म परमं नित्यं ध्येयं यत्सूर्यमण्डले।

—आकाशसे भी अधिक व्यापक पूर्णब्रह्म है, जो नित्य एवं शाश्वत पूर्णकाम है। वह सूर्यके समान सबसे वरिष्ठ और स्वयंप्रकाश भी है।

सवितुः—

सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणः।

वह ब्रह्म मायाके कारण विपरीत भासता है और अपने प्रकाशसे प्रपञ्चका विस्तार करता हुआ-सा प्रतीत होता है। अतः इस सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयका महाकारण भी वही है।

वरेण्यम्—

आश्रयणीयं यदाधारमिदं जगत्।

—जैसे पृथ्वी स्थावर-जंगम भूतोंका आश्रय है तथा जल समस्त जलचर प्राणियोंका आश्रय है, उसी प्रकार वह ब्रह्म समस्त जगत्का आश्रय है।

भर्गः—

स्वसाक्षात्कारेण अविद्या तत्कार्यदाहकम्।

वह ब्रह्म ही सदा-सर्वदा स्वप्रकाश, एक एवं पूर्ण है और उसको इस प्रकार जान लेनेपर अविद्या एवं मिथ्या भ्रमका आकाशके रंगके समान निराकरण हो जाता है।

देवस्य—

ज्ञानरूपस्य स्वानन्दे क्रीडितोऽपि वा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ब्रह्म दृढ़ विज्ञानस्वरूप एवं निरन्तर स्वप्रकाश-बोधस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप है और सर्वत्र अपने इस अखण्ड रूपमें विद्यमान रहता है।

धीमहि—

अहं स एवेति तेनैवाभेदसिद्धये।

उस ब्रह्मसे साक्षात्कार हो जानेपर आकाशके रंगके समान बुद्धिके विलासका अन्त हो जाता है और जीव एवं शिवका उसी प्रकार भेदभाव समाप्त हो जाता है जैसे सूर्योदय होनेपर निशाका अवसान हो जाता है।

धियः—

अन्तःकरणे वृत्तिप्रत्यक्प्रवरचारिणी।

सब ओर छिद्रयुक्त घड़ेमें दीपक रख देनेसे जैसे उसके सभी ओर प्रकाश फैलने लगता है, उसी प्रकार इस हृदयस्थित आत्मज्ञानसे सारी इन्द्रियोंसे दिव्य ज्ञान-ज्योति निकलने लगती है।

यः—

यत्यलिंगधर्मं यत्सत्यज्ञानादिलक्षणम्।

उस दशामें अपने शरीरमें ही सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका भान होने लगता है, अपने-परायेकी सभी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और जीव अपने आत्मस्वरूपमें पूर्णरूपसे स्थित हो जाता है।

नः—

अस्माकं बहुधा भेदेऽभिन्नदशाम्।

तब जीव विश्वेश्वरके रूपमें विश्वमें विद्यमान होकर अपने-परायेके सभी भेद-भावको भूल जाता है और सारे विश्वका उपभोक्ता बनकर हेयोपादेयकी कल्पनाके परे चला जाता है तथा विश्वके सारे व्यापारमें समभावसे बर्तने लगता है।

प्रचोदयात्—

प्रेरयतु प्रार्थनीयं विचार्यताम्।

अपने आत्मस्वरूपमें स्थित होकर ईश्वरत्वको प्राप्त हुआ जीव संसारके सभी क्लेशोंकी अन्त्येष्टि कर पाता है। इस मन्त्र-द्वारा समाधान प्राप्तकर प्रतिक्षण इसी भावनाको स्थायी बनानेके लिये मनुष्य बार-बार प्रेरणा करता है तथा इसीके अनुसार व्यवहार करने लगता है।

इस मन्त्रके तीन खण्ड हैं—(१) **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गः** (२) **देवस्य धीमहि** (३) **धियो यो नः प्रचोदयात्**। पहले अंशमें ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन है, दूसरेमें—

'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।'

—के अनुसार ध्यान करके विचारद्वारा जीव और ब्रह्मके भेदभावको मिटानेका प्रयास किया गया है और तीसरे खण्डमें जीवेश्वरभेद मिट जानेपर आत्मस्वरूप होकर संसारमें बर्तनेका विधान है। उस अवस्थामें—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

—के अनुसार मनुष्य आत्मसाक्षात्कारके द्वारा सभी जीवोंको अपनी आत्मामें तथा अपनी आत्माको सभी जीवोंमें देखने लगता है। उस समय वह अपनेको एक शरीरविशेषमें स्थित न समझकर समस्त विश्वमें व्याप्त देखने लगता है और अपने सारे व्यवहार भी उसीके-अनुसार करने लगता है। उस अवस्थामें उसकी देहबुद्धि नष्ट हो जाती है और उसके सब व्यापार लोकसंग्रहके लिये विश्वव्यापी होने लगते हैं।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।

—के अनुसार बालक जन्मसे शूद्रके समान देह-बुद्धिवाला रहता है, परंतु उपनयन-संस्कारद्वारा उसमें द्विजत्वका आविर्भाव होता है। अतः उपनयन-संस्कारको दूसरा जन्म ही कहा है—

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्॥

(मनु० २। १६९)

द्विजातिको पहला जन्म माताके गर्भसे, दूसरा उपनयन-संस्कारके अवसरपर और तीसरा यज्ञकी दीक्षामें होता है। बालकमें जन्मसे देहबुद्धि रहती है, परंतु उपनयन-संस्कारसे उसमें आत्मबुद्धिका प्रादुर्भाव होता है, इसलिये इस जन्ममें माता सावित्री और पिता आचार्य होता है। बालकका दूसरा जन्म गायत्रीमन्त्रसे होता है, जिसका बीजारोपण करनेवाला आचार्य पिता कहा जाता है। इस प्रकार उपनयन-संस्कार करके आचार्य बालकको गायत्री-मन्त्रके आधारपर इस बातका स्मरण दिलाते हैं कि वह केवल एक शरीरमें रहनेवाला जीव न होकर ब्रह्मस्वरूप है और वह इसका चिन्तन एवं मनन प्रतिदिन सायं-प्रातः करता है तथा अपने सब व्यापार भी इसीके अनुसार करनेका प्रयास करता है।

(पञ्चमहायज्ञ)

गायत्री-मन्त्रके चिन्तन एवं मननसे आत्मबुद्धि-सम्बन्धी सिद्धान्तका प्रतिपादन होता है, इसीलिये मानस-जपका विशेष महत्त्व बतलाया गया है; क्योंकि मनमें ही यह धारणा बैठायी जाती है। परंतु इस धारणाके अनुसार व्यापार करनेके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमहायज्ञकी व्यवस्था की गयी है, कारण आत्मबुद्धियुक्त मनुष्यके व्यापार विश्वव्यापी होते हैं और वह अपनेको वैश्वानरका स्वरूप समझकर सब काम सारे विश्वके लिये करता है। इस प्रकारके कर्मको यज्ञकी संज्ञा दी गयी है।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
(मनु० ३। ७०)

अर्थात् पढ़ना-पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, हवन देवयज्ञ है, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ है और अतिथि-सत्कार मनुष्य-यज्ञ है। सृष्टिमें प्राणियोंको ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य एवं पशु-पक्षी-कीट-पतङ्ग आदिको भूतके नामसे—इन पाँच वर्गोंमें विभक्त किया गया है और इन पाँचों वर्गके लोगोंको उनके आहार पहुँचानेके लिये ही पञ्चमहायज्ञकी व्यवस्था की गयी है। ऋषियोंकी तृप्ति शब्दसे ही होती है, इसीलिये उनके लिये स्वाध्यायकी व्यवस्था है। पितरोंके लिये तर्पण, देवताओंके लिये हवन, मनुष्यमात्रके प्रतिनिधिके रूपमें अतिथिके लिये भोजन तथा अन्य प्राणियोंके प्रतिनिधिरूप भूतोंके लिये बलि देनेकी व्यवस्था है। इसलिये यज्ञकर्ता इस यज्ञकी समाप्तिके पश्चात् अवशिष्ट अंशको प्रसादके रूपमें स्वयं ग्रहण करता है और केवल अपने ही भोजनके लिये पाक बनानेसे उसकी आत्मबुद्धि नष्ट होती है एवं आत्मविस्मृति होती है।

जैसा मनुजीने कहा है—

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥
(मनु० ३। ११८)

जो अपने ही भोजनके लिये पाक करता है, वह पाप-भोजन करता है; क्योंकि यज्ञका बचा हुआ अन्न ही सज्जनोंके खाने योग्य होता है।

गीतामें भगवान् कहते हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
(गीता ३। १०-११)

अर्थात् सृष्टिके आदिकालमें यज्ञसहित प्रजाको रचकर प्रजापति ब्रह्माजीने (द्विजोंसे) कहा कि इस यज्ञसे तुमलोग वृद्धिलाभ करो और यह यज्ञ तुमलोगोंको इष्ट कामनाओंका देनेवाला होगा। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा इन्द्रादि देवताओंको उन्नत करो और वे देव तुमलोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरेको उन्नत करते हुए तुम परम श्रेयकी प्राप्ति करोगे। जैसे मनुष्यके हर छोटे-बड़े कामके लिये कोई विधान या व्यवस्था रहती है, उसी प्रकार ब्रह्माकी सृष्टिरचना भी किसी-न-किसी विधानपर ही अवलम्बित है और उसके सब काम उसीके अनुसार चला करते हैं।

यं तु कर्मणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः॥
(१। ८)

अर्थात् पितामह ब्रह्माने सृष्टिके आदिमें जिसको जिस कर्ममें नियुक्त कर दिया, वह बार-बार उत्पन्न होकर उसको आप ही करने लगा। आगे मनुजीने बतलाया है कि जिस प्रकार वसन्त आदि ऋतुएँ समयपर अपने चिह्नोंको आप-ही-आप धारण करती हैं, वैसे ही देहधारी भी अपने-अपने कर्मोंको स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। यह भी वर्णन आया है कि उस परमात्माने वेदके शब्दोंसे ही जानकर सबके अलग-अलग नाम और कर्म सृष्टिके आदिमें बनाये। उस प्रभुने देवता तथा प्राणियोंके गुण और कर्म ही है आत्मा जिनकी, ऐसे अप्राणी और सूक्ष्म साध्योंका गण और सनातन यज्ञकी रचना की।

(शेष अगले अंकमें)

मुझमें भगवान्‌का प्रकाश हो गया है

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मुझमें भगवान्‌का प्रकाश हो गया है। मेरा 'मैं' पन इस शरीरसे निकल गया है। बस, भगवान् ही उसकी जगह आ गये हैं। उनका तेज, उनका सत्य, उनकी पवित्रता, उनकी उदारता, उनकी चेतनता, उनका अभय, उनका आनन्द—इन सभी उनके गुणोंका अब मुझमें अवतरण तथा प्रकाश हो गया है। सारा अन्धकार, सारा असत्य, सारी गंदगी, सारी कृपणता, सारी जड़ता, सारा भय और सारा दुःख-क्लेश-विषाद मेरे अंदरसे निकल गया है। मुझमें भगवान्‌का प्रकाश हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिजटा कौन थी ?

(लेखक—पं० श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र एम्० ए०)

रामचरितमानसके पञ्चम सोपान अर्थात् सुन्दरकाण्डमें तुलसीदासजीने लिखा है—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। रामचरन रति निपुन बिबेका॥

अशोकवाटिकामें जब रावण सीताको धमकाकर लौट गया, तब इसीने अपना स्वप्न सुनाकर अन्य राक्षसियोंको भयत्रस्त कर दिया था। जिज्ञासा हुई कि 'त्रिजटा कौन थी? उसकी रामचरणमें रति कैसे हुई?' हिंदीका सुप्रसिद्ध कोश "हिंदी शब्दसागर" इतना ही कहता है—'विभीषणकी बहिन, जो अशोकवाटिकामें जानकीजीके पास रहा करती थी।' विभीषणकी बहिन थी तो निश्चय ही उसीके-से शील-स्वभावकी रही होगी। मानसमें विभीषणके तो 'भगवंत-पद-कमल-अनुराग' की चर्चा है—

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवंत पदकमल अमल अनुरागु॥

पर 'त्रिजटा' को रामचरणरति कहाँसे हुई? इसका कोई संकेत नहीं। त्रिजटा 'विभीषणकी बहिन है' यह भी मानसकी पंक्तिसे नहीं भासित होता। 'एका' का अर्थ 'कोई' अनिश्चय-वाचक है।

'भारतीय चरिताम्बुधि' में 'त्रिजटा' के सम्बन्धमें इतना ही है—'लङ्केश्वर रावणके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक राक्षसी। यह सीताकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त की गयी थी। अन्य राक्षसियोंका सीताके प्रति निर्दय व्यवहार था, परंतु त्रिजटाका सीताके प्रति व्यवहार सदय था।'

महाभारत वनपर्व अध्याय २८१ में 'त्रिजटा' द्व्यक्षी, त्र्यक्षी, ललाटाक्षी, दीर्घजिह्वा, अजिह्विका, त्रिस्तनी, एकपादा, एक-लोचना आदि अनेक राक्षसियोंके ऊपर नियुक्त थी और सीताकी देखभालके लिये रखी गयी थी। सबके चले जानेपर यह सीताको ढाढस बँधाती थी। यह धर्मज्ञा और प्रियवादिनी थी—

गतासु तासु सर्वासु त्रिजटा नाम राक्षसी।
सान्त्वयामास वैदेहीं धर्मज्ञा प्रियवादिनी॥

यहाँ भी यह पता नहीं चलता कि त्रिजटामें 'धर्मज्ञता' कहाँसे आयी।

रामचरितमानसके काशिराज संस्करणके पाठका शोध करते हुए उसके विभिन्न हस्तलेखोंका आलोडन करना पड़ा। उनमें एक हस्तलेख कैथी लिपिमें ऐसा मिला, जिसमें निम्न-लिखित दोहेके अनन्तर 'नयी कथा' दी गयी है—

उपजे जदपि पुलस्ति कुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्राप ते भए सकल अघ रूप॥

नयी कथा, चौपाई

कहि यह चरित सिया मन भावा। कहि बर बिनै सियहि सिर नावा॥
नाथ कहहु यह कारन काहा। बिषफल लगे अमिय तरु माहा॥
कहहिं निगम मुनि संत अगम सम। निस्चर बिषम गरल अचमाचम॥
मुनि पुलस्ति कुल तेज अपारा। है क्रिपाल जानत संसारा॥
तिन्ह के कुल निस्चर समुदाई। उपजे किमि मोहि कहहु बुझाई॥
उमा बचन सुनि नाथ पुरारी। बोले कहि जय जयति खरारी॥
धन्य सिवा पूछेहु मोहि बाता। जो सब भाँति सबहि सुखदाता॥
परम रुचिर इतिहास भवानी। राम कृपा अब कहौं बखानी॥

पर्वहि कृतजुग माह सुनु सैलसुता सुखधाम।
अब्द अयुत लगि भएउ बर देवासुरसंग्राम॥

कोटि रुद्र त्रैगुन सुर संगा। बरस सहस बसु कृत रनरंगा॥
जीति न सके असुर सन भारी। तब देवन्ह बिधि पाह पुकारी॥
आरत बिबुधन्ह लखि लोकेसा। सबही दिय अति हित उपदेसा॥
कमलापति पद सुमिरन करहू। भय छूटिहि सुर हिअ जनि डरहू॥
बिधि बानी सुनि सुर सचु पाए। सबहि रमापति पद चित लाए॥
बानी मृदुल बिनयरस बोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति नहिं थोरी॥
बिबुधन्ह भीत बिचारि खरारी। आए तुरित सहित उरगारी॥
बदन सरद राकेस लजावन। सीस मकुट छबि खानि सोहावन॥

श्रुति मकराकृत कुंडल पीत बसन तन भाल।
चारि भुजा जुत आयुध दृग सुचि कमल बिसाल॥

देखत ध्यान केरि रुचिराई। काम-कीर सुठि हिये लजाई॥
उदर उदधि अगाध श्रुति गाए। सब दिन सब जग बास सोहाए॥
जानु रुचिर पदकंज अनूपा। नखसिख सुख मानइ सुरभूपा॥
मदन अमित प्रति रोम नाथ के। सील दयानिधि निगम गाथ के॥
सहित ब्रह्म सुरपति समुदाई। प्रभुसुषमा सुरनयन लोभाई॥
कह बिधि नाथ बिलंब न लाइअ। हति असुरन्ह सुर बिपति छड़ाइअ॥
बिधिबानी सुनि साँरँगपानी। बोले प्रभु सुखसीव भवानी॥

होइहि अभय बिबुध कुल सबहि कहौं सति भाउ।
नव सत बरख अवर जब कृत रन त्यागि दुराउ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस बिचारि निर्जर समुदाई । अभय हृदय अब करहु लराई ॥
बिस्नुबचन सुनि देवसमूहा । चले सपदि जहँ निस्चरजूहा ॥
आए देव सकल सुनि काना । दितिसुत उठे सस्त्र गहि नाना ॥
असुर अनेक कहइ को नामा । तेहि मह द्वादस अति बलधामा ॥
एकै तात सकल जग कहई । तिन्ह कर नाम कहौं जो अहई ॥
सत्य जथामति तुम्हहिं सुनावौं । सुनु मुनि मृषा न जुगति मेरावौं ॥
माली[1] प्रथम सुमाली[2] दूजा । माल्यवान[3] तीसर महिरूजा ॥
कटकटंक[4] चौथे कर नाऊँ । जासु त्रास डरपहिं सुरगाऊँ ॥

दुंदुभि[5] मय[6] निरमाया[7] अजय[8] कुमुख[9] जमदंड[10] ।
स्वानकेतु[11] खरकेतु[12] एइ द्वादस रिपु बलिबंड ।

घटकेसी जननी तिन केरी । कपट मया सो जान घनेरी ॥
खरहारी इन्ह सब कर ताता । दितिसुत-सुत को सुत बिख्याता ॥
खरमुख भुजबल सब जग जाना । तेहि ते मैं नहिं करौं बखाना ॥
अब कछु देव असुर मैदाना । तब रुचि समुझि कहौं परवाना ॥

द्वादस आदि अपरबल जेते । करि रव घोर बार एक तेते ॥
दुंदुभि मय सँग खल दस कोटी । कीन्ह सक्र से जुद्ध न छोटी ॥
सुरपति सँचरि हिरंदिनि मारी । कोटि दसो निस्चर संघारी ॥
बचे जुगल दुंदुभि मय बीरा । सुनासीर सँ सो पुनि भीरा ॥

दुहु दिसि बृत रन परसपर निज निज बल अनुमान ।
बसु दूने ते बरख सत गए होत मैदान ॥

छीजत सैन निसाचर जानी । कोपे कटकटंक अभिमानी ॥
बिस्नु निकट सो खल चलि गएऊ । मुठिका एक गरुड़ कहँ दएऊ ॥
कौतुकहित मुठिका के लागे । चकित गरुड़ सत जोजन भागे ॥
बाय ग्रंथि महँ जिमि तरु पाता । तुमै भाँति तिमि निस्चर जाता ॥
भ्रमि भ्रमि मृतक मही खल परहीं । महि पर अमित जंतु डर मरहीं ॥
भे सकोप जब श्रीपति आपू । तब निस्चर सब भे बिन दापू ॥
बिस्नु बिहसि तब गरुड़हि फेरे । चले क्रोध करि कोप घनेरे ॥
हरिअरि पच्छ अनिल के लागे । सपदि उड़े खल बृंद अभागे ॥

सनमत करि सब अमरगन सँचरि अब एक बार ।
इंद्र अद्रि गति अंक सौ कोटि दनुज खँकार ॥

होइ एक एक बार गोसाँई । तड़ित पात लघु खग की नाँई ॥
एहि बिधि समर होत मुनि राजा । हरिअरि-कुल को भएउ अकाजा ॥
पूज्यो अब्द अयुत जब भाई । बिगत प्रान तब खल समुदाई ॥
द्वादस महँ जूझे रन साता । बचे पंच हरि इच्छा ताता ॥
माया[1] दुंदुभि[2] माली[3] सुमाली[4] । माल्यवान खल रिसि उर घाली ॥
पाँचौ दुरे बितल पुर माही । देखा सुरन्ह कतहु रिपु नाही ॥
हरखे समर जीति जस पाए । हनि निसान निज निज मन भाए ॥
सुमन समूह बरखि हरि पर पुनि । करि मंगल आरती बिबिध धुनि ॥

ब्रीदा पंचजन्य धुनि मुदित भए जिव माह ।
बिस्नुसहित सब अमर गन चले पुलकि सिव पाह ॥

कीन्ह सुरेन्ह कैलास प्रबेसा । बिस्नु बिरंचि सहित बिबुधेसा ॥
ससिसेखर अति आदर कीन्हा । स्वागत बूझि सबहि सुख दीन्हा ॥
निरखि रमापति रूप पुरारी । प्रेम मगन धरि धीरज भारी ॥
बूझि मरम गिरिजेस कृपाला । हर अस्तुति हरि कीन्ह बिसाला ॥
हरहु कीन्ह हरि अस्तुति भारी । ब्रह्माजुत आदिक नभचारी ॥
निबसे संभुपुरी बहु काला । नित नव सुनि प्रभु प्रस्न बिसाला ॥
सिव अनुसासन सुनि सब देवा । नीके समुझि जोग मग भेवा ॥
ब्रह्मादिक सब निज निज गेहा । गवने होइ बिगत संदेहा ॥

संदेह बिन होइ गेह निज निज गए सुर ब्रह्मादिकं ।
तब पाइ ससिसेखर रजायसु रमानाथ अनादिकं ॥
छीराब्धि गवने जगनिवास मुनीस सुनु चित लाइ कै ।
अब कहौं श्रीपति कृपाबर सो चरित तुम्हहि बुझाइ कै ॥

१—माली—वाल्मीकीय रामायणमें यह सुकेश नामक राक्षसका पुत्र कहा गया है । सुकेशको विद्युत्केशका पुत्र बताया गया है । विद्युत्केश हेतिका पुत्र था और कालकी पुत्री भया इसकी माता थी । विद्युत्केशकी पत्नी पौलोमी थी । हेतिके भाईका नाम प्रहेति था ।

२—सुमाली—रामायणके अनुसार यह भी सुकेशका पुत्र था । कैकसी इसीकी पुत्री बतायी गयी है । इसीसे रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण चारो जनमे थे ।

३—माल्यवान्—यह भी सुकेश नामक राक्षसका पुत्र था । इसकी माताका नाम देववती था । देववती ग्रामणी गन्धर्वकी पुत्री थी ।

४—कटकटंकका नाम अन्यत्र नहीं मिलता ।

५—दुंदुभि—इस नामके एक राक्षसकी चर्चा वालीके प्रसंगमें आती है । इसे वालीने मारा था और ऋष्यमूक पर्वतपर फेंक दिया था, जिसपर उस पर्वतके मतंग ऋषिने उसे शाप दिया था कि वह उस पर्वतपर न जा सके । सुग्रीवने रामकी परीक्षा लेते समय दुंदुभिकी अस्थि और सप्ततालकी ओर संकेत किया था—

दुंदुभि अस्थि ताल दिखराए । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥

६—मय—इसका नाम पुराणोंमें शिल्पीके रूपमें आता है । रामायणमें यह 'दिति' का पुत्र कहा गया है । इसके दो पुत्र मायावी और दुंदुभी तथा एक पुत्री मंदोदरी थी ।

७—१२—निर्माय, अजय, कुमुख, यमदंड, श्वानकेतु और खरकेतुका नाम अन्यत्र नहीं मिलता । केवल रावणके यहाँ दुर्मुख या कुमुख एक राक्षस था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेहि बिधि मुनि पुलस्तिकुल उपज्या सुरअरि आइ ।
तुम्ह सन कहौं बुझाइ अब हरिचरनहि चित लाइ ॥

सारँग अरि अरि बिनु महि भई । संसै सकल मुनिन्ह कै गई ॥
जाप जग्य ब्रत धर्म अचारा । रुचि समेत सब करहिं अचारा ॥
धर्म प्रभाव नीर अधिकाई । सुखी भूमि नव नित खगराई ॥
अद्रि नाग नभ मुनि मुनि चंदा । अंक भाँति लिखि पुनि जुत नंदा ॥
कृतजुग गत जब एतने अब्दा । कहेउ सिवा सन सिव फुरि सब्दा ॥
दितिसुत सो पायौ बलवाना । अपने मन तेइ कृत अनुमाना ॥
महिप्रबेस नहि बिनु सुरसेवा । सो न सकै करि सुनु द्विज देवा ॥
माल्यवान सो निस्चर भूपा । तासु सुता सुंदरी अनूपा ॥

मारघरनि ते अति रुचिर नाम कैकसी तासु ।
सो पितु निज आयस सुनत चलि पुलस्तिसुत पासु ॥

सपदि सो निस्चरि गवनी तहवाँ । बीसेश्रवा करत तप जहवाँ ॥
गिरि हरिदत तरु सुरसरि तीरा । धरे ध्यान दिढ़ मुनि मति धीरा ॥
तहाँ कैकेसी सेवा लाए । जोरि पानि एक पाव उठाए ॥
जब जब मुनि निज चच्छु उघारहिं । तब तब सनमुख ताहि निहारहिं ॥
संबत रतन सहस जब गएऊ । तब पुलस्तिसुत बोलत भएऊ ॥
प्रिया कहहु केहि कारन लागी । कीन्हेहु तप सब संसै त्यागी ॥
हरिइच्छा मुनिबर मुखबानी । सुनि बोली सो सुनहु भवानी ॥
पतिहित तव पद प्रभु मैं सेवा । करिअ सुफल मम श्रम रिषिदेवा ॥

बिनै तासु निज श्रवन सुनि बीसेश्रवा सुजान ।
बिधि बस निज बानी समुझि अचल हृदय अनुमान ॥

करि बिचार मुनि परम सुजाना । श्रुतिमत यहि सम धरम न आना ॥
बचन बोलि प्रतिपालहि जोई । बुध कह पुन्य बारिचर सोई ॥
बचन बोलि थोरेहि श्रम तजहीं । रवरव नरक सो निज थल सजहीं ॥
जौ अनुचितौ बचन हित लागी । करै कही सब संत बिरागी ॥
तौ न होइ अघ प्रभु उरगारी । यह मत बीबुध प्रगट पुकारी ॥
बचन लागि निस्चर निज घरनी । मुनि कीन्हें सुनु जनमैं हरनी ॥
तासु सिँगार कहौं का गाई । प्रौढ़ तिअन्ह सय रुचि अधिकाई ॥
सो तरुनी पुनि निस्चर तनया । त्रिपित न होइ सिंगार कि समया ॥

भई सगर्भ जानि तेहि मुनि रतिदान न दीन्ह ।
तिअ सुभाव करि बार एक तेइ मुनि सन हठ कीन्ह ॥

मुनि तेहि समय सिंगार न माना । तपनिधान सब भाँति सयाना ॥
कछु दिन गए बहुरि मुनिसंगा । एक बार करि प्रेम अभंगा ॥
कहेउ कैकसी सुनु मम नाथा । निगमागम सब तोहरे हाथा ॥
मोरे सुत होइहि प्रभु कैसा । कहौ दयाल सत्य अब तैसा ॥
हरिइच्छा पुलस्तिसुत कहही । जठरबास जो तव सुत अहही ॥
सो सुत भल होइहि हरिद्रोही । सहित अनुज भगिनी अति कोही ॥
एहि बिधि मुनि कहि तेहि सनमाना । तेइ सुनि अति निज भाग्य बखाना ॥
अति सप्रेम सब संसै त्यागी । बिगत कपट मुनिपद लपटानी ॥

प्रथमहि भयो दसानन घटस्रुत दूजी बार ।
तीजी बार सुपनखा भई कहत संसार ॥

दसमुख कुंभकरन अवतारा । कहेउँ जथामति श्रुति बेवहारा ॥
अब पुनि सुनहु सबर्न सयानी । सुचि हरिजन तेहि सब जग जानी ॥
तासु जननि को नाम सुनावौं । तब रुचि लखि कछु मैं न दुरावौं ॥
मालीसुता नाम कचु केसी । रूप मदनतिअ ते कछु बेसी ॥
सो मुनि पह एक बासर आई । कलरव करि लै हरिजस गाई ॥
हरिहरजुत जस नाम सुनाएसि । धरे ध्यान अति मुनिहि लोभाएसि ॥
बर मुनि मन बस करि रतिदाना । पाइ बहुरि पाएसि बर ग्याना ॥
भई सगर्भ सो परम सभागी । समुझि अधिक मुनिपद अनुरागी ॥

दीन्ह असीस पुलस्तिसुत तेहि निज हृदय बिचारि ।
तव सुत होइहि संतबर मिलिहहिं ताहि खरारि ॥

सुत हरिभक्त सुता हरिदासी । होइहि सत्य सुभग सुखरासी ॥
कंचुकची निज पति कै बानी । सुनि फुर मानि हृदय हरषानी ॥
प्रथमहि प्रसव बिभीषन तासू । भे हरिजन सुचि जस जग जासू ॥
दूसर जठर त्रिजटा सो जाई । रामभक्ति जेहि प्रिय अधिकाई ॥
मुनिबर कुल मह निस्चर जैसे । उपजे कहेउँ कथा सो तैसे ॥
अब सुंदरी सुनहु चित दीन्हे । तिन्ह सबनहु जस कारज कीन्हे ॥
तीनिउ भए श्रेष्ठ कछु जबहीं । जहँ तहँ कानन बिचरहिं तबहीं ॥
मुनि तापसन्ह केर तप देखी । भई तिन्हउ लालसा बिसेखी ॥

तेज प्रताप मूल तप समुझि पितहि सिर नाइ ।
आयसु पाइ सो तुरितहि हरषित तीनिउ भाइ ॥
निकट नर्बदा सघन बन जाइ रुचिर थल देखि ।
बिलग बिलग करि आसन बैठे हरष बिसेखि ॥

पुरानी

कीन्ह बिबिध तप तीनिउ भाई । परम उग्र कछु बरनि न जाई ॥
गए निकट तप देखि बिधाता । माँगहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥
करि बिनती पद गहि दससीसा । बोले बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारे । नर बानरहि जाति दुइ बारे ॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा । मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहँ गएऊ । तेहिं बिलोकि मन बिसमै भएऊ ॥
जौ यह खल नित करिहि अहारू । होइहि सब संसार उजारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी । माँगेसि नींद मास षट केरी ॥

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर माँगु ।
तेइ माँगेउ भगवान पद कमल अमल अनुरागु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयौ

एवमस्तु कहि पितामह ठाढ़ रहे भगवान ।
भावीबस तहँ गवनी निस्चरि एक सुजान ॥

(सोरठा)

रही चरन सिर नाइ, बिहसि कहा बिधि ताहि सन ।
सुनु लंकिनि चित लाइ, जिय मह राखेसु बैन मम ॥
बिकल होसि जेहि बार, तैं हरि कै मुठिका लगे ।
कुल समेत संघार, जानेसु तब दसबदन कर ॥
सो गवनी निज गेह, राखि हृदय बिधिबचन पुनि ।
उर अंतर अति नेह, करि पहुँची त्रिजटा तहाँ ॥

प्रेम समान न आन, सुनु बुध जोग न जग्य ब्रत ।
सो बिचारि हरिजान, गहत चरन बिधि तब कहेउ ॥
पुत्रि माँगु मन भाव, सुरदुर्लभ सो देउँ तोहि ।
तेइ कर जोरि मनाव, हरिपद प्रेमहि देहु दिढ़ ॥

(दोहा)

दीन्ह ताहि मन भावत, जगतपिता सुख मानि ।
सादर तात सुनहु पुनि, मानस हरिगुनखानि ॥

इसमें बताया गया है कि पार्वतीको शङ्का हुई । ब्राह्मण-कुलमें राक्षस क्यों ? शिवकी विनय करके उन्होंने प्रणाम कर पूछा कि क्या कारण है कि अमृतवृक्षमें विषके फल लगे । निगमागम और संतोंका कहना है कि निशिचर भीषण अंधकार-मय विष हैं । उधर मुनि पुलस्तिका भास्वर वंश है, जो सर्वजगद्विदित है । ऐसे ऋषि-मुनिके वंशमें निशिचर ! उनकी उत्पत्तिका विशेष कारण होगा; वह क्या है ? पार्वतीकी जिज्ञासापर रामका जय-जयकार करते शिवने उत्तर दिया । प्रश्न उत्तम है । सबके लिये आकर्षक है । कथा सचमुच रोचक है ।

प्राचीनकालमें सत्ययुगमें दस सहस्र वर्षोंपर्यन्त प्रसिद्ध देवासुर-संग्राम हुआ । करोड़ों रुद्र देवताओंके साथ त्रिगुणात्मक रूप धारण कर आठ सहस्र वर्षोंपर्यन्त युद्ध करते रहे । फिर भी देवता असुरोंको जीत न सके । तब विवश होकर वे ब्रह्माके पास गये और गुहार की । देवताओंको आर्त देखकर लोकपालोंने भी उन्हें समझाया-बुझाया । ब्रह्माने निश्चय कर बताया कि विष्णुके चरणोंका स्मरण करनेसे भय दूर हो जायगा, डरनेकी कोई बात नहीं । इससे देवता आश्वस्त हुए । उन्होंने विष्णुके चरणोंका चिन्तन करना आरम्भ किया । उन्होंने उनकी स्तुति की । अत्यन्त मृदु वाणीसे सरस विनययुक्त विस्तृत स्तुति की उनकी । देवताओंको भीत समझकर वे गरुड़ासनपर आसीन उनके सम्मुख उपस्थित हुए । उनकी आपादशिख शोभा दर्शनीय थी । ब्रह्माने स्वयं कहा कि अब आप विलम्ब न करें । असुरोंको मारकर विपत्तिसे देवोंको मुक्त करें । ब्रह्माकी वाणी सुनकर शार्ङ्गपाणि विष्णुने कहा कि देवकुल निश्चय ही निर्भय होगा । केवल बहुत वर्षोंतक निष्कपट युद्ध करनेकी आवश्यकता है । आप समझ लें कि उसके अनन्तर असुरोंकी एक न चलेगी । निर्भय युद्ध करें । विष्णुके वचन सुनकर देवसमूह निशचर-यूथके पास तुरंत गया ।

देवोंको युद्धके लिये आया जानकर नाना प्रकारके हथियार लेकर असुर युद्धार्थ आ गये । यद्यपि असुर अनेक थे, अगणित थे, कहाँतक उनके नाम गिनाये जायँ, तथापि उन सबमें बारह अत्यन्त बलिष्ठ थे । ये बारहों एक ही पिता-के पुत्र थे—पहला माली, दूसरा सुमाली, तीसरा माल्यवान्, चौथा कटकटंक, पाँचवा दुंदुभि, छठा मय, सातवाँ निर्माय, आठवाँ अजय, नवाँ कुमुख, दसवाँ यमदण्ड, ग्यारहवाँ श्वानकेतु और बारहवाँ खरकेतु । इन बारहोंकी माता घटकेशी थी, जो नानाविध कपटमाया जानती थी । इनके पिताका नाम खरहारी था, यह दितिका प्रपौत्र था । खरहारी या खरमुख बड़ा बली था और जगद्विख्यात था । उसके पराक्रमकी चर्चा इस प्रसंगमें व्यर्थ है । केवल देवासुर-संग्राममें उक्त बारहों असुरोंने क्या किया—इसीका कथन अपेक्षित है । ये बारहों बड़े प्रबल असुर थे । इन्होंने अत्यन्त गर्जनपूर्वक युद्ध किया । दुंदुभि और मयके साथ दस करोड़ असुरोंने इन्द्रसे भीषण युद्ध किया । इन्द्रने अपने वज्रद्वारा उन दसों करोड़ असुरोंका संहार कर दिया । केवल दुंदुभि और मय बच रहे । ये इन्द्रसे फिर जा भिड़े । इन दोनोंमें परस्पर सोलह सौ वर्षोंपर्यन्त युद्ध हुआ । जब असुरोंकी सेना क्षीण होने लगी, तब उसका समाचार पाकर कटकटंक क्रुद्ध हुआ । वह सीधे विष्णुके निकट गया और उसने गरुड़को एक मुक्का मारा, जिसके लगनेसे गरुड़ चार सौ कोस दूर जा पड़े । निशाचर वात्याचक्रकी भाँति चक्कर काटने लगे । कोई निशाचर जब गिरता था, तब डरकर पृथ्वीके अनेक जन्तु मर जाते थे । विष्णुके कुपित हो जानेसे असुरोंका दर्प समाप्त हो गया ।

तब विष्णुने हँसकर गरुड़को सुदूरसे निकट किया । उनके उड़नेसे जो वायुसंचार हुआ उसमें कितने ही निशाचर उड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। एक बार सभी देवताओंने फिर विचार-विमर्श किया। उनके भीषण युद्धसे नौ सौ करोड़ असुरोंका विनाश हो गया। एक-एक बारमें वज्रपातसे उनका संहार वैसे ही होता था जैसे छोटे-छोटे पक्षियोंका। इस प्रकारके युद्धके कारण असुरों-की बहुत हानि हुई। दस सहस्र वर्षोंमें असुरसमूह प्राण-रहित हो गया। उक्त बारहों प्रमुख असुरोंमेंसे युद्धमें सात मारे गये; केवल निर्माय, दुदुंभि, माली, सुमाली और माल्यवान् बच रहे। अपने सात-सात पराक्रमी भाइयोंके संहारसे ये पाँचों अत्यन्त क्रुद्ध हुए। इन्होंने युद्धकी प्रक्रिया परिवर्तित कर दी। ये पाँचों वितल नामक पातालमें जा छिपे। देवताओंने देखा कि अब कोई शत्रु कहीं नहीं दिखायी देता। युद्धविजयसे वे परम प्रसन्न हुए और उन्होंने मनमाने नगाड़े बजाये। विष्णुपर उन्होंने पुष्प-वृष्टि की और उनकी आरती उतारी। विष्णुने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। सभी प्रसन्न होकर शिवके निकट गये।

ब्रह्मा-विष्णुके सहित सभी देवोंने कैलासमें प्रवेश किया। चन्द्रमौलि शिवने सभीका स्वागत-समादर किया। विष्णुने महादेवका भव्य रूप देखा तो प्रेममग्न हो गये। उन्होंने उनकी स्तुति आरम्भ की। फिर शिवने भी विष्णुकी स्तुति की। उन्होंने शिवकी कैलासपुरीमें बहुत दिनोंतक वास किया। वहाँ नाना प्रकारके कठिन विषयोंपर प्रश्नोत्तर हुआ करते थे। शिवसे योगमार्गके रहस्यका ज्ञान भी उन्होंने प्राप्त किया। फिर निःसंशय होकर ब्रह्मादिक सभी देवता अपने-अपने स्थानको लौट गये। महादेवसे आज्ञा लेकर विष्णु भी क्षीराब्धिमें जा सोये।

असुरोंसे पृथ्वीके रहित हो जानेसे ऋषि-मुनि भी निर्भय हो गये। जो धार्मिक आचार अवरुद्ध थे, वे पुनः होने लगे। जप, यज्ञ, व्रतोपवासादि यथापूर्व चलने लगे। धर्मके प्रभावसे यथावाञ्छित जल मिलने लगा और पृथ्वी तृप्त हो गयी। १७७०८७+९० वर्ष जब सत्ययुग समाप्त हो गया, तब वितलमें निवास करनेवाले असुरोंमेंसे माल्यवान्‌ने अपनी पुत्री कैकसीको पृथ्वीपर भेजा। कैकसी रतिसे भी सुन्दरी थी। वह पिताकी आज्ञासे पुलस्तिके पुत्र विश्वश्रवाके निकट गयी। उस समय विश्वश्रवा तप कर रहे थे। हरिदत्त पर्वतके पाद-प्रदेशमें गङ्गातटपर तपश्चर्यामें लीन थे। कैकसी एक पैरपर खड़ी हो हाथ जोड़ उनकी आराधनामें लीन हो गयी। ऋषि जब किसी कारण अपने नेत्र खोलते, तब सम्मुख उसे आराधनामें लीन पाते। ९००० वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हो गये। तब विश्वश्रवाने उससे पूछा कि ऐ प्रिये! तुमने संशयत्यागपूर्वक किसलिये ऐसा तप किया। मुनिके मुखसे 'प्रिये' शब्द ईश्वरेच्छासे ही निकला था। उनके मुखसे अनुकूल सुमुखताकी वाणी सुनकर उसने कहा कि 'मैंने पतित्वके उद्देश्यसे आपकी सेवा की है। आपसे प्रार्थना है कि मेरा श्रम सफल करें।'

उसकी वाणी सुनकर ऋषि बड़े संकटमें पड़ गये। उन्होंने विचारकर देखा कि दैवात् उनके मुखसे क्या निकल गया था। उसकी प्रार्थनापर विचार करते हुए अपनी वाणीके पालनपर उनकी दृष्टि गयी। उन्होंने सोचा कि शास्त्रोंका मत यही है कि यदि ज्ञात या अज्ञातरूपमें कोई वचन निकल गया है तो उसका पालन ही समुचित है। पालनकर्ता पुण्यात्मा है और अपालनकर्ता रौरव नरकमें पड़ता है। यदि कोई अनुचित वचन अनजाने निकल पड़ा है तो भी उसका पालन करनेसे पाप नहीं होगा। इसलिये वचनोंके पालनके लिये उन्होंने कैकसीको पत्नीवत् ग्रहण कर लिया। ऋषिकी सानु-कूलतासे उसमें शृङ्गारीभाव कितना हुआ, कहा नहीं जा सकता। एक तो तरुणी, दूसरे निशाचरी। उसकी शृङ्गार-भावनाकी तृप्ति ही नहीं होती थी। गर्भवती होनेपर भी उसमें रतिरंगकी वासना बनी थी। उसकी याचनापर भी धर्मधुरीण ऋषिने उसे रतिदान नहीं किया।

कुछ दिनोंके अनन्तर उसने मुनिसे प्रश्न किया कि आप वेदशास्त्रके ज्ञाता हैं। विचारकर बताइये कि मुझे कैसा पुत्र होगा। उन्होंने ध्यानावस्थित होनेके अनन्तर ईश्वरेच्छाको मुख्य समझकर बताया कि तेरे गर्भमें जो पुत्र है वह हरिद्रोही होगा। यही नहीं उसका अनुज भी ऐसा ही होगा और उसकी अनुजा भी अत्यन्त क्रोधी होगी। मुनिकी बात सुनकर उसने अपने भाग्यकी प्रशंसा की। निशाचरी तो चाहती ही थी कि सुरद्रोही पुत्र हो। वह प्रसन्नतासे ऋषिके पैरोंसे लिपट गयी। उसके गर्भसे पहले दशानन, फिर कुम्भकर्ण और तदनन्तर शूर्पणखा-का जन्म हुआ।

शिवने पार्वतीसे कहा कि हरिद्रोहीका तो इस प्रकार जन्म हुआ। अब हरिजनका जन्म कैसे हुआ इसे भी सुनो। मालीके कंचुकेशी नामक पुत्री थी। यह भी रतिसे बढ़कर सुन्दरी थी। यह भी एक बार विश्वश्रवा ऋषिके निकट गयी। वहाँ अत्यन्त मधुर स्वरसे इसने भगवद्भजन किया। हरिहर-यशका कीर्तन कर उसने ध्यानमग्न ऋषिको लुब्ध कर लिया। उनके रति-दानसे वह गर्भवती हो गयी। उसको सेवा-विमुग्ध मुनिने आशीर्वाद दिया कि तेरा पुत्र संत-साधु होगा और उसे भगवान्‌का साक्षात्कार होगा। तुझे जो पुत्री इसके अनन्तर होगी वह भी हरिदासी होगी। कंचुकेशी यह आशीर्वचन सुन-कर सुखी हुई। उसने समझ लिया कि ऋषिके वचन सत्य होंगे ही। पहले उसे विभीषण नामक पुत्र हुआ। वे जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिभक्त हुए जगद्विदित है। फिर उसे त्रिजटा हुई। इसे भी भगवद्भक्ति ही प्रिय थी। दशानन, कुम्भकर्ण और विभीषण जब बड़े हुए, तब वे वनमें विचरण करने लगे। वनमें ऋषि-मुनियोंको तपश्चर्या करते देख उनमें भी तपोलालसा हुई। अपने तेजस्वी पितासे आज्ञा लेकर तीनोंने जाकर नर्मदातटपर घने वनमें प्रसन्न-चित्तसे तप करना आरम्भ किया। उन तीनोंने उग्र तपश्चर्या की। उनके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा निकट गये। उन्होंने वर माँगनेको कहा। दशाननने यह वर माँगा कि नर-वानरके अतिरिक्त मैं किसीके मारे न मरूँ। ब्रह्मा और शिवने उसे यही वर दिया। जब ब्रह्मा कुम्भकर्णके निकट पहुँचे, तब उसे देखकर बड़े फेरमें पड़ गये। सोचने लगे कि यदि यह नित्य आहार करेगा तो संसारको साफ कर डालेगा। उन्होंने सरस्वतीको प्रेरित कर उसकी बुद्धि परिवर्तित कर दी। इसलिये उसने छः मासकी निद्रा माँगी। विभीषणसे जब वर माँगनेको कहा तो उसने भगवच्चरण-कमलमें अमल अनुरागकी याचना की। 'एवमस्तु' कहकर जब ब्रह्मा वहाँ खड़े ही थे तभी एक निशाचरी पहुँची। उससे ब्रह्माने कहा कि ऐ लंकिनी ! मेरी बात मन लगाकर सुन ले। जब कोई कपि तुझे मुक्का मारेगा और उसके मुक्केसे तू व्याकुल हो जायगी, तब समझ लेना कि अब दशाननके संहारका समय निकट है।

जब लंकिनी ब्रह्माके उक्त वचनोंको हृदयमें धारण कर अपने घर लौटी, तब उनके निकट त्रिजटा गयी। उसने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनके चरण पकड़ लिये। उसके प्रेमसे वे गद्गद हो गये। उन्होंने कहा कि पुत्री ! तू जो भी माँगे मैं देनेको प्रस्तुत हूँ, भले ही माँगी गयी वस्तु सुरदुर्लभ ही क्यों न हो। उसने हाथ जोड़कर माँगा कि मुझे भगवच्चरणोंमें दृढ़ प्रेम चाहिये। ब्रह्मा उसकी इस वरयाचनासे परम सुखी हुए और उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर वही वरदान दिया।

त्रिजटाका जो वृत्त इस क्षेपकमें दिया गया है वह परवर्ती कल्पना नहीं है। तुलसीदासके पूर्व किसी रामकथासम्बन्धी संस्कृतके ग्रन्थमें इसका उल्लेख होगा। अभीतक मुझे उस मूल ग्रन्थका पता नहीं लगा है। अनुसंधान चल रहा है।

वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्मरामायणमें त्रिजटाकी सीताके प्रति अनुकूलता और उसके भविष्यद्ज्ञात्री होनेका ही उल्लेख है। केवल आनन्दरामायणमें इतना और है कि जब राम पुष्पकारूढ़ होकर जा रहे थे, तब उन्होंने त्रिजटाको कई वर दिये। एक वर तो यह दिया कि कार्तिक, माघ, चैत्र और वैशाख—इन चार महीनोंमें आरम्भिक तीन दिनोंतक श्रेष्ठ नर तेरे प्रीत्यर्थ स्नान करेंगे। जो ऐसा न करेंगे अर्थात् आरम्भिक तीन दिनोंमें स्नान न करेंगे, वे उन महीनोंमें शेष दिन स्नान करके भी पुण्यके भागी न होंगे। तुझे अधिकार है कि तू मेरे वचनसे उनके पुण्यको हर ले। इस प्रकार उक्त चार महीनोंके आरम्भिक तीन दिनोंका स्नान एक तो त्रिजटार्थ होता है और इन तीन दिनोंके स्नानके बिना पूरे महीनेका फल नहीं प्राप्त होता।

दूसरा वर यह दिया कि जो घर अपवित्र हो, जो श्राद्ध-हवि अशुचि हो, जो विधिवत् करनेपर भी क्रोधाविष्ट दान हो, वह त्रिजटाको मिलेगा। दक्षिणाहीन श्राद्ध और तिलहीन तर्पण भी तुझे ही मिलेगा।

अथ रामः पुष्पकस्थः सीतया प्रार्थितो मुहुः ॥ ३६ ॥
तद्वाक्यगौरवात् तुष्टस्त्रिजटायै वरान् ददौ।
वस्त्रालंकारभूषाभिः पूर्वतुष्टां विधाय च ॥ ३७ ॥
त्रिजटे वचनं मेऽद्य शृणु मङ्गलदायकम्।
कार्तिके माधवे माघे चैत्रमासचतुष्टये ॥ ३८ ॥
स्नात्वाग्रे त्रिदिनं स्नानं त्वत्प्रीत्यर्थं नरोत्तमाः।
करिष्यन्ति हि तेनैव कृतकृत्या भविष्यसि ॥ ३९ ॥
यैर्नरैस्त्रिदिनं स्नानं न कृतं पौर्णिमोर्ध्वतः।
तेषां मासकृतं पुण्यं हर त्वं वचनान्मम ॥ ४० ॥
अन्यच्चापि शृणुष्व त्वं दीयते यो वरो मया।
अशुचीनि गृहाण्येव तथा श्राद्धहवींषि च ॥ ४१ ॥
क्रोधाविष्टेन दत्तानि विधिवत्तत्कृतान्यपि।
त्रिजटे तानि तुभ्यं हि शृण्वन्यत् त्वं मयोच्यते ॥ ४२ ॥
पादशौचमनभ्यङ्गं तिलहीनं च तर्पणम्।
सर्वं तत् त्रिजटे तुभ्यं तथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥ ४३ ॥
इति दत्त्वा वरान् रामस्त्रिजटासरमान्वितः ॥
(सारकाण्ड, सर्ग १२)

त्रिजटाके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उसे वस्त्राभरणादिसे विभूषित कर सीताने रामके सम्मुख ही सरमाको सौंप दिया, यह भी वहीं कथित है—

रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी।
ततस्तां त्रिजटां सीता वस्त्रैराभरणादिभिः ॥ ४९ ॥
कृत्वाति तुष्टां रामाग्रे सरमां वाक्यमब्रवीत्।
अनया रक्षिता पूर्वं राक्षसीग्रहभीतितः ॥ ५० ॥
मत्तुल्या माननीयेयं सर्वदा सरमे त्वया।
इत्युक्त्वा सरमाहस्ते त्रिजटाकरमर्पयत् ॥ ५१ ॥
(राज्यकाण्ड, सर्ग ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका सर्वोत्तम समय और सबसे बड़ी सफलता भविष्यमें आनेवाली है

(लेखक—डा० रामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आप शायद यह समझे बैठे हैं कि आपका सर्वोत्तम समय व्यतीत हो चुका है और जीवनमें आपको जो सबसे बड़ी सफलताएँ मिलनी थीं, वे मिल चुकी हैं।

यह एक भ्रान्त धारणा है। इसे त्यागकर आप नया आशावादी दृष्टिकोण अपनाइये।

मनुष्यका जीवन बहुत लंबा है। उसमें प्रतिदिन और प्रतिपल नयी-नयी सफलताएँ मिलती रहती हैं। कोई अलक्षित हाथ प्रतिक्षण नयी प्रगतिकी प्रेरणा देता रहता है।

जीवन एक बड़ी पुस्तककी तरह है, जिसका एक-एक पृष्ठ क्रमवार खुलता जाता है। पता नहीं, इसका कितना विस्तार है। यह आगे कितना चलना है। इसकी मंजिल कितनी लंबी है।

एक दिनकी घटना सुनिये। हम पोस्टआफिसमें बैठे हुए थे कि एक तीस-पैंतीस वर्षीय युवक वहाँ अपनी सेविंग्स पासबुकमेंसे जमाशुदा रकम निकालने आये। उनके मुखपर चिन्ता, उदासी और घोर निराशा थी। चेहरेका रंग पीला-सा पड़ चुका था।

यों ही बातें शुरू हो गयीं। हमने हैरानीसे पूछा—'क्या भाई! खाता क्यों बंद कर रहे हैं?' अपना म्लान चेहरा हमारी ओर उठा निराश आँखोंसे वे बोले, 'डाक्टर साहब! क्या बतायें। मुसीबतमें फँसे हैं।' मैं—'शायद किसी मुकदमेमें फँस गये हैं?'

वह बोले, 'अजी, जीवनभर मैंने कचहरीकी शक्ल नहीं देखी। यह दूसरी ही मुसीबत है।'

मैं हैरान था। मनमें नाना प्रकारके तर्क-वितर्क उत्पन्न हो रहे थे कि स्वयं उन्होंने ही अपनी दर्दभरी गाथा सुनानी प्रारम्भ की।

वे बोले, 'पिछले सालसे मैं डाक्टरोंकी सलाह ले रहा हूँ। मेरे पेटमें भारीपन और कभी-कभी दर्द रहता था। कई डाक्टरोंको दिखलाया, पर अन्तिम डाक्टरने यह बताया है कि मुझे अपेन्डेसाइटस नामक रोग हो गया है। मेरी आँतका आखिरी भाग सड़ गया है। उसीके कारण पेटमें भारीपन, पुराना कब्ज और दर्द बना रहता है। ऑपरेशनद्वारा उस आँतके उस भागको काटकर निकाला जायगा। इस पेटके ऑपरेशनको मैं सालभरसे टालता आया हूँ। अब डाक्टर साहब कहते हैं कि फौरन ऑपरेशन कराओ, अन्यथा मृत्यु निश्चित है। मेरी पत्नी और बच्चे बड़े परेशान हैं। कल ऑपरेशन कराना चाहता हूँ। सोचता हूँ ऑपरेशनके बाद बचूँ, न बचूँ। बादमें पत्नी और बच्चे खराब होंगे। जो कुछ जमा पूँजी है, सब निकालकर उनके सुपुर्द कर दूँ और फिर शान्तिसे मृत्युके लिये तैयार रहूँ।' यह कहते-कहते युवकके नेत्रोंमें आँसू आ गये। मैं भी एक बार तो हैरान हो उठा। फिर बोला, 'आपने किसी औरको भी पेट दिखाया है?'

वे बोले, 'सबसे योग्य डाक्टरोंको दिखा चुका हूँ। मामूली वैद्योंपर मेरी आस्था नहीं है। मेडिकल साइंस इतना विकसित है। फिर संदेहकी गुंजाइश ही कहाँ है?'

मैं—'आप ईश्वर और प्राकृतिक चिकित्सामें विश्वास करते हैं?'

वे—'नहीं, मैं उसी बातमें विश्वास करता हूँ जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कसे साबित हो जाय, जिसे मेरी बुद्धि समझ सके और मस्तिष्क ग्रहण कर सके।'

मैं—'ईश्वरके लिये आप कल ऑपरेशन मत कराइये और मुझे एक सप्ताह अपनी चिकित्सा कर लेने दीजिये। जब मरना ही है, तब एक सप्ताह और इस दुनियाँकी रोशनी और हवाका आनन्द ले लीजिये।'

वह कुछ प्रभावित हुए। उनके छिपे हुए आत्म-विश्वासने उत्तर दिया, 'अच्छा कहिये, आपका क्या उपचार है?'

मैं बोला, 'आप आत्मस्वरूप हैं। आत्माका निकट सम्बन्ध ईश्वरसे है। अतः आप निर्विकार हैं। यह मान लीजिये। अप्राकृतिक रहन-सहन और दूषित नास्तिक विचारधारासे आपने ईश्वरके मन्दिर इस शरीरको रोगोंका घर मान लिया है।

'अब आप ब्राह्ममुहूर्तमें जागिये और अपना ध्यान रोगविकाररहित शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, निर्विकार ईश्वरपर लगाइये। मन-ही-मन कहिये—मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, नीरोग हूँ। किसी दूषित विकारका तनिक भी अंश मुझमें नहीं है। ईश्वरीय-शक्ति मुझमें जाग्रत् हो रही है और वह मेरे सब विकारोंको दूर कर रही है। मेरा सारा शरीर पूर्ण स्वस्थ है। रोगरहित है। रोगसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो शुद्ध निर्विकार शरीरवाला व्यक्ति हूँ। मैं स्वस्थ हूँ। मेरा उदर पाचनका कार्य उचित रीतिसे कर रहा है। उसके संचित विकार दूर हो गये हैं।

'यह तो मानसिक चिकित्सा रही। इससे आपका खोया हुआ आत्मविश्वास जाग्रत् हो जायगा और ईश्वरीय शक्तिका अद्भुत चमत्कार शरीरमें प्रकट होगा।

'दूसरा क्रम प्राकृतिक चिकित्साका है। आप एक लम्बे हैं। आठ-दस घंटे कुर्सीपर बैठे कमर झुकाकर काम करते हैं, टहलते कम हैं। इसलिये आपको जीर्ण कब्ज हो गया है। आप दुगुना जल पीजिये। फलाहार, विशेषरूपसे फलोंका रस अधिक-से-अधिक लीजिये, चूस-चूसकर आम और टमाटर खाइये। अन्तिम बात यह है कि प्रातः दो घंटे और सायं दो घंटे नियमितरूपसे टहलिये। हाथ-पाँवसे काम कीजिये। शरीरका काया-कल्प हो जायगा।'

बातका कुछ ऐसा असर हुआ और ईश्वरकी कुछ ऐसी कृपा हुई कि वे महाशय स्वस्थ होने लगे। एक सप्ताहमें ही भारीपन कम हो गया। जीर्ण इकट्ठे मलको दूर करनेके लिये एनिमाका प्रयोग भी चालू रक्खा गया। आज उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। वे नवजीवन पा गये हैं और उनका एपिन्डिसाइटिसका वहम दूर हो गया है।

वे विचारधारामें पूर्ण आस्तिक हो गये हैं। ईश्वर-प्रार्थना और जल-चिकित्सामें उनका पूर्ण विश्वास है। मुहल्ला नयापुरा कोटा (राजस्थान) में उन्होंने नया मकान बनवाया है। मैं उनसे अब भी कहा करता हूँ, 'आपके जीवनका सर्वोत्तम समय और सबसे बड़ी सफलता भविष्यमें अभी आनेवाली है।'

वे प्रायः उत्तर देते हैं, 'मैंने ईश्वरकी शक्तिका अनुभव किया है और स्वस्थ जीवन पा लिया है। यही क्या कम है। जिस शक्तिको तर्कद्वारा मुझे कोई न समझा सका था, वह श्रद्धाद्वारा मुझमें प्रकट हुई है।' कभी-कभी जिसे हम जीवनका अन्त मान लेते हैं, वह हमारी आनेवाली नयी सफलताका प्रारम्भ होता है। अतः कभी भी निराश नहीं होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकुञ्जमें बैठी भामिनी मार्ग देख रही है। प्रियतम अभीतक निकुञ्जमें नहीं आये। मधुमयी रजनी बीती जा रही है, इससे उसका मन व्यथित है। उस विधुवदनी सौन्दर्यधामिनीके प्राण अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये अत्यन्त छटपटा रहे हैं। वह कोई साधारण संसारी स्त्री नहीं है, स्वयं प्रेममयी प्रियतमप्राणेश्वरी श्रीराधा है। वह अपने प्राणधन श्रीकृष्णके हृदयकी स्वामिनी है, उनके हृदय-पर उसका अधिकार है। वही बिलख-बिलखकर विसूरती हुई पुकार रही है—हाय! हाय! अभीतक प्रियतम क्यों नहीं आये! उसके हृदयके भीतर अत्यन्त विषाद छा रहा है और उसकी बुद्धि-वृत्ति निरन्तर वियोगजनित शोककी ओर प्रवाहित हो रही है।

मग जोहति मन ब्यथित भामिनी!
प्रियतम अजहुँ कुंज नहिं आये,
बीति रही मधुमयी जामिनी॥
छटपटात अति प्रान मिलन कौं,
चंदबदनि सौंदर्य-धामिनी।
प्रेममयी प्रानेश्वरि राधा,
साधारण नहिं जगत्-कामिनी॥
हाय हाय! क्यों प्रिय नहिं आये,
बिलखि बिसूरति हृदयस्वामिनी।
छायौ अति बिषाद उर अंतर
मति भइ संतत सोक-गामिनी॥

(प्रियतमके हृदयपर इतना अधिकार है और ऐसी विलक्षण व्याकुल प्राणोंकी प्रतीक्षा है। प्रियतम उसके हैं और उसे मिलने ही चाहिये; क्यों नहीं आये अबतक।) इतनेमें ही एक दूती आती है और वह यह बात कहती है कि 'राधे! आज तो सचमुच श्यामसुन्दर चन्द्रावली-जीकी कुञ्जमें पधार गये हैं।' (साधारण कामसेविका स्त्री होती तो यह सुनकर मर्माहत हो जाती, रोती, क्षुब्ध और क्रुद्ध होती; पर श्रीराधिका तो सर्वोपरि पूर्ण महान् त्यागकी ही सजीव मूर्ति है।) वह दूतीके मुखसे यह सुनते ही प्रफुल्लित हो गयी। प्रियतमके वियोगमें जो धैर्य छूट चुका था, वह सहज ही पुनः ग्रहण हो गया। उसके हृदयमें आनन्दकी अपरिमित लहरें उठने लगीं। उसने अनुभव किया, अहा! आज मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। इस पृथ्वीतलपर चन्द्रावलीके समान कहीं भी कोई सुन्दरी नहीं है। वह मधुर मृदु-हासिनी तथा परम विलासचतुरा है, उसमें गुणसमूहों-की बाढ़ आयी हुई है। मैं नित्य ही प्रियतमसे कहा करती—'प्यारे! तुम चन्द्रावलीकी कुञ्जमें क्यों नहीं पधारते?' मैं चाहती थी वे वहाँ जाकर वास्तवमें उनके योग्य अधिकारिणीको पाकर सुखी हों; परंतु प्रियतमने मेरी यह विनती कभी नहीं सुनी और ऐसा कहनेके लिये उलटे मुझे उलाहना ही दिया। (यह सब सोचकर प्रेममयी श्रीराधिकाने दूतीसे कहा—) 'दूती! आज विधाता मेरे दक्षिण हो गया है, इसीसे आज मेरे मनकी बात हो गयी!'

आय दूती ने बात कही॥
चंद्रावलि की कुंज सिधारे
साँवर आजु सही।
सुनत प्रफुल्लित भई राधिका
धीरज सहज गही॥
उठी अमित आनंद-लहर उर
मानस-सिद्धि लही।
चंद्रावलि सम नहीं कितहुँ
कोउ सुंदरि अन्य मही॥
मधुर सुहासिनि चतुर विलासिनि,
गुन-समूह उमही।
मैं नित ही कहती पिय तैं,
'तुम क्यौं न जाउ उतही'॥
सुनी नायँ पिय बिनय कबहुँ
उलटे मो कूँ उलही।
दूती! भयो बिधाता दच्छिन
मन की होय रही॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(राधा-हृदयविहारी और राधाहृदयप्रिय प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर श्रीकृष्ण जिस समय निकुञ्जमें पधारे थे, उस समय श्रीराधा वियोगव्यथित हृदयसे निकुञ्जमें बैठी उनकी आतुर प्रतीक्षा कर रही थी ।) उन्होंने अपने वियोगमें प्रियतमा श्रीराधाजीकी यह व्याकुल दशा देखी। उनके मनको हरण कर लिया राधाकी इस विचित्र प्रेम-समाधिस्थ मूर्तिने। वे अपने नेत्रोंसे प्रियतमा श्रीराधाके इन भावोंको देखकर प्रेमाश्रु बहाने लगे । वे जानते थे कि प्रियतमा श्रीराधिकाजीके हृदयके सभी भाव पवित्र, अत्यन्त प्रिय, मधुरतम एवं सुखमय हैं, अतएव वे प्रकट नहीं हुए । उनके मनमें श्रीराधा-हृदयके और भी पवित्र भावोंको देखनेकी लालसा जाग उठी; उन्होंने चाहा कि ऐसा न किया जाय, परंतु वह मनोरथ उनके मनसे हटाये भी न हटा । तब उन्होंने एक दूतीको समझाकर चन्द्रावलीकी कुञ्जमें पधारनेकी बात कहनेको भेजा और स्वयं राधाभावोंके मधुरतम पवित्र रसका आस्वादन करनेके लिये एक किनारे छिपकर खड़े हो गये। (दूतीने आकर जब राधाको समाचार सुनाया और सुनते ही राधा अपने वियोग-दुःखको सर्वथा भुलाकर प्रियतमके सुखकी सम्भावनासे प्रफुल्लित होकर जो भाव प्रकट करने लगी, उनको प्राणप्रियतमने स्वयं देखा ।) प्रियतमा श्रीराधाके वे परम भाव सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर, पूर्णकाम, मुनिमनहारी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका भी मन हरण करनेवाले हैं; क्योंकि वे जगत्की पद्धतिसे सर्वथा विलक्षण हैं। (जगत् से-सुखके लिये रोता है और प्रेममूर्ति राधिका प्रियतम-सुखमें ही सुखका अनुभव करती है ।) उन्होंने देखा प्रियतमाका मुख सुखमय हो रहा है—कहीं भी जरा भी कमी नहीं है, तब उनके प्रेमके फुहारे फूट निकले और उन्होंने अपनेको राधापर न्यौछावर कर दिया । तदनन्तर मुसकराते हुए वे श्रीराधाके सामने आ गये । प्रियतमको सम्मुख पाकर श्रीराधाके अरुणिम मधुर नेत्रों-पर सहज ही लज्जाकी छाया आ गयी । धन्य !

निरखि न्यौछावर प्रानपियारे ॥
भाव प्रिया के परम मनोहर
जग की बिधि तैं न्यारे ।
पठई हुती स्वयं दूती,
छिपि ठाढ़े एक किनारे ॥
व्याकुल दसा देखि प्यारी की
निज बियोग मन हारे ।
निरखि नयन तैं भाव प्रिया के
आँसू ढारत प्यारे ॥
प्रिया हृदय के भाव मधुरतम,
सुचि, प्रिय, सुखमय सारे ।
देखन कौं मन जग्यो मनोरथ,
नहीं टर्यौ सो टारे ॥
देखि प्रिया कौ सुखमय मुख
अब, छूटे प्रेम-फुहारे ।
पिय कौं सनमुख देखि सलज भये
प्रिया नयन अरुनारे ॥

यह परम त्याग राधा-प्रेमकी अलौकिकता तथा विलक्षणताका पावन संकेत करता है ।

प्रभुकी ही लीला चल रही है

मेरे प्रभुका मन ही मेरा मन बन गया है। मेरे प्रभुकी बुद्धि ही मेरी बुद्धि बनी हुई है। मेरे प्रभुके प्राण ही मेरे प्राण हैं। मेरे प्रभुके विचार ही मेरे विचार हैं। सब कुछ बने तथा सब कुछ करते हुए प्रभु ही मेरे जीवनमें ओत-प्रोत हैं। मेरा 'मैं' प्रभुके 'मैं'से ही सत्तावान् है। मेरे 'मैं'में 'मेरा' कहनेवाले भी प्रभु ही हैं। इस ढाँचेमें केवल प्रभुकी लीला ही चल रही है। वे ही अपने अंदर अपने मनमें, अपने मनसे, अपने मनकी लीला कर रहे हैं अनवरत। कबतक करेंगे, कब बंद कर देंगे—वे ही जानें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्यकी महिमा

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवशास्त्रीजी)

उद्यमानस्य विवशं भावानां तीव्रधारया ।
आत्मविश्वासमाधत्ते ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ १ ॥

भावोंकी तीव्र धारामें बेबस होकर बहते हुए मनुष्यमें जो आत्मविश्वासको उत्पन्न करता है, उस ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये ।

शारीरं मानसं वापि स्वास्थ्यमाध्यात्मिकं तथा ।
अभीष्टं चेत्तदा सर्वैर्ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ २ ॥

यदि शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्यकी इच्छा है तो सबको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये ।

चारित्र्यं मानवस्येह जन्मनः सारमुत्तमम् ।
तस्य रक्षाकृते भ्रातर्ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ३ ॥

मनुष्यके जीवनका चारित्र्य ही उत्तम सार है । उसकी रक्षाके लिये भाई ! ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये ।

नानाधिव्याधिखिन्नानां मर्त्यानामौषधं परम् ।
निराशायाः समाधानं ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य नाना प्रकारकी आधियों और व्याधियोंसे खिन्न मनुष्यकी परम औषध है । वह निराशाका समाधान है । उसका पालन करना चाहिये ।

जीवने यः समुत्कर्षो लोकोत्तरमहात्मनाम् ।
तस्य मूलं रहस्यं च ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ५ ॥

लोकोत्तर महापुरुषोंके जीवनमें जो समुत्कर्ष होता है, उसका मूल और रहस्य ब्रह्मचर्य है । इसलिये उसका पालन करना चाहिये ।

जीवने रिक्तता येयं या चोद्देश्यस्य हीनता ।
क्लेशहेतुस्तदुच्छित्यै ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ६ ॥

जीवनमें क्लेशको देनेवाली जो रिक्तता अथवा उद्देश्य-हीनता देखी जाती है, उसको दूर करनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये ।

वासनानां तमोराशौ मग्नानामन्धचेतसाम् ।
प्रकाशरूपं यत्तत्त्वं ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ७ ॥

वासनाओंके घोर अन्धकारमें डूबे हुए तथा सद-सत्की विवेक-बुद्धिसे रहित लोगोंको प्रकाश देनेवाला तत्त्व ब्रह्मचर्य ही है । उसका पालन करना चाहिये ।

मृत्युग्राहेण विभ्रान्तास्त्रस्ताश्चैवानिशं ततः ।
त्राणं यत्केवलं तेषां ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ८ ॥

मृत्युरूपी ग्राहसे घबराये हुए और सदा उससे त्रस्त लोगोंकी रक्षाका एकमात्र साधन ब्रह्मचर्य है । उसका पालन करना चाहिये ।

जीवनस्य महान् पन्थाः पाथेयं तस्य यन्महत् ।
तत्त्ववेदिभिरादिष्टं ब्रह्मचर्यं तदिष्यताम् ॥ ९ ॥

जीवनका पथ अति लंबा है । तत्त्ववेत्ताओंने ब्रह्मचर्यको उसका महान् पाथेय बतलाया है । अतः उसका पालन करना चाहिये ।

अपनी स्थिति और प्रार्थना

हरि ! हौं महापतित अभिमानी ।
परमारथ सौं बिरत, बिषय-रत, भाव भगति नहिं नैकहुँ जानी ॥
निसिदिन दुखित मनोरथ करि-करि, पावत हूँ तृष्ना न बुझानी ।
सिरपर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यौं अंजुलि-पानी ॥
बिमुखन सौं रति जोरत दिनप्रति, साधुनि सौं न कबहुँ पहिचानी ।
तिहि बिनु रहत नहीं निसिबासर, जिहिं सब दिन रस-बिषय बखानी ॥
माया-मोह-लोभके लीन्हें, जानि न बृंदावन रजधानी ।
नवलकिसोर जलद-तनु सुंदर बिसरयौ सूर सकल सुखदानी ॥

—सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंस्कारीको संस्कारी बनाना

(लेखक—श्री 'सीकर')

क्या गुरु-कृपा असंस्कारीको संस्कारी बना सकती है ?

यह प्रश्न एक गुरुजनके सामने एक दिन उपस्थित करके प्रार्थना की गयी कि वे कृपा करके इसपर कुछ प्रकाश डालें ।

उत्तरमें प्रारम्भमें ही यह वाक्य सुननेमें आया कि 'गुरु-कृपा क्या नहीं कर सकती है ?'

तुरंत मेरे मनमें विचार आया कि मुझे अपना आशय ठीक-ठीक समझा देना चाहिये ।

'ईश्वरको सर्वशक्तिमान् मानते हुए यह कहते नहीं बनता कि वह पत्थरको क्षणभरमें हीरा नहीं बना सकता पर क्या मनुष्यदेहधारी गुरुमें यह सामर्थ्य रहती है कि वह एक असंस्कारीमें अध्यात्म-ज्ञान उँडेल दे ।

'असंस्कारी व्यक्तिमें न तो श्रद्धा, न जिज्ञासा और न पुरुषार्थ करनेकी ही शक्ति या सामर्थ्य होती है । वह यदि गुरुकी चाहमें लगता है तो केवल उस दरिद्रीके समान, जो किसी दूसरे दरिद्री पुरुषको उसके पूर्व-संस्कार तथा भाग्योदय होनेपर क्षणभरमें अतुल धन लॉटरीद्वारा प्राप्त हो जाते हुए देखकर, ईर्ष्या और तृष्णासे घिरकर यह चाहने लगता है कि कोई ऐसा गुरु मिल जाय जो क्षणमें ही मुझमें भी भाव भरकर मुझे भी वाल्मीकिके समान पार लगा दे ।

'ऐसे व्यक्तिके लिये तो गुरुकृपाकी शून्यताका उत्तर ही भला । उसकी आशा झूठी । वह व्यर्थके भ्रममें पड़ा रहकर अपनी आयु न गँवावे, उसके लिये तो उसका भ्रमनाशक उत्तर ही उपकारी हो तो हो ।'

'हो सकता है कि चारों ओरसे निराश होकर उसकी स्वावलम्बनकी ओर दृष्टि जाय और जो समय यह झूठी आकाङ्क्षामें लगाये रहता है उसको अभ्यासमें लगाकर अपनी उन्नतिका मार्ग ढूँढ़ने लगे । उसे जो कुछ इधर-उधरसे सीख मिले, उसको अपने विवेकके द्वारा अभ्याससे इस प्रकार शनैः-शनैः बढ़ावे । बाह्य निपुण गुरुकी कृपाका अपनेको अधिकारी बनावे और कठिनाइयोंके उपस्थित होनेपर उनके निवारणार्थ सद्गुरुके दर्शन हो जानेकी आशा रक्खे ।

सद्गुरुका अभाव किसी युगमें नहीं होता । अधिकारीके पास गुरु स्वयं आते हुए माने गये हैं । वे कृपा और दयाके सिन्धु कहे गये हैं । इस धारणासे एकनिष्ठ होकर जैसा जो कुछ भी अभ्यास बने, उसमें लगे रहना ही व्यर्थकी आकाङ्क्षामें लगे रहनेसे कहीं अधिक लाभकारी प्रतीत होता है ।

मनुष्य अपनी स्थितियोंसे बँधा हुआ-सा रहता है । इच्छा होते हुए भी वह उनको पार करनेमें असमर्थ हो जाता है । बलपूर्वक यदि किसीको लाँघता भी है तो उसके ऊपर उठनेकी अपेक्षा नीचेकी ओर ही गिरनेका भय खड़ा हो जाता है । भय ही नहीं, वरं वह गिरने भी लगता है । विवेक उसको सचेत करता है कि निरे बलका प्रयोग अच्छा नहीं, आत्मबलकी न्यूनतामें दूसरा बल क्या काम साधेगा ?

अभ्यासको ही परम मन्त्र समझकर उसमें लगा रहेगा तो प्रायः बहुत-सी त्रुटियाँ तो अभ्याससे स्वयं दीखने लगेंगी । अभ्याससे स्वाभाविक ही बुद्धिमें भी विकास होता रहता है । त्रुटियोंके कारण गतिमें न्यूनता पाकर अथवा स्थितिमें गतिहीनता देखकर भी साहसमें कमी न आने दे । श्रद्धारूपी स्तम्भका सहारा पकड़े रहे । गुरुका सहयोग ऐसे समयमें भगवदीय नियमके अनुसार अवश्य मिलेगा किसी-न-किसी रूपमें और उसकी त्रुटियोंका निराकरण होगा ।

सारांशमें असंस्कारी पुरुषके लिये अपने कम-से-कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकके द्वारा बने हुए कार्यक्रमकी प्रारम्भिक अवस्थामें प्रवेश हुए बिना इस आशामें पड़े रहना कि मुझपर गुरु-कृपा हो जायगी, व्यर्थमें अपना समय नष्ट करना है। वह कर्तव्य-कर्ममें प्रविष्ट हो और गुरु-कृपाकी आशा रक्खे। दोनोंके सहयोगसे ही सिद्धिका रास्ता मिलेगा।

सद्गुरुके पास युक्तियोंका भण्डार रहता है। अकस्मात् संयोग हो जानेपर सद्गुरु उस असंस्कारीमें प्रारम्भिक संस्कार उत्पन्न करनेके लिये उन युक्तियोंमेंसे जो उसके लिये योग्य होगी, उसका उपयोग दया और कृपाभावसे करेगा, जिससे उस असंस्कारीकी पात्रताका विकास होगा और गुरु-शिष्यके सम्बन्धकी स्थापना हो जायगी। चक्रके चल पड़नेपर गतिका आ जाना अनिवार्य होगा।

शास्त्रमें ऋषियोंके अनुभवद्वारा प्राप्त की हुई वस्तुओं, विधियों तथा अन्यान्य सात्त्विक प्रकारोंका ही संग्रह हुआ करता है। शास्त्रपर दृढ़ श्रद्धा बन जानेपर जब गति-की न्यूनताका अनुभव होने लगता है, तब स्वयं त्रुटिकी ओरका विचार होने लगता है और यदि यह अपनी पकड़में नहीं आ पाती तो गुरुकी तलाशका विचार आना शुरू हो जाता है। यह मनोयोग सद्गुरुको खींचकर सामने ला उपस्थित कर देता है। साधक इसको ईश्वरीय नियम समझे।

शास्त्रके उपदेशोंकी सात्त्विकतामें इतनी आकर्षणशक्ति समायी होती है कि एक बार मनुष्यका मुख जिस उपदेश-के आचरणकी ओर हो गया तो वह उसके अभ्यासमें अपने-आप धीरे-धीरे आगे ही बढ़ता जायगा। बुद्धिमान् ज्ञाता उपदेशकका यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह हर प्रकारके अहंभावसे दूर रहकर शास्त्रोपदेशोंकी पवित्रता बनाये रक्खे। अपने अहंभावसे उन्हें दूषित करके कभी दूसरोंके पास न पहुँचावे। एक ओर हित-प्रेरणासे उपदेश सामने रक्खा और दूसरी ओर यदि उसमें अहं-भावकी गन्ध भर दी तो उस उपदेशके प्रभावका बहुत कुछ नाश हो जाता है। इस विषयमें बड़ी सावधानीसे काम किया जाय, न कि केवल इस बातसे अपनेको संतुष्ट माने कि अहंभाव दूर कर दिया, बल्कि यह भी निश्चय करता रहे कि जिसके सामने शास्त्रोपदेश रक्खा जाता है उसकी तुम्हारे अहंभावके प्रति क्या धारणा बन रही है। वास्तविक हित तभी हो सकेगा, जब उसकी श्रद्धा तुम्हारी निःस्वार्थता तथा निरहंकारकी ओर बनी रहेगी।

अपनी शास्त्रोक्त क्रियाओंको प्रकट करनेमें हानि तभी होगी, जब मनुष्य अहंभावके आवेशमें आकर उनके प्रकट करनेकी इच्छा करेगा। प्रसङ्ग आ जानेपर अपने अनुभव सत्यताके साथ प्रकट कर देनेमें तो परस्पर प्रेम तथा श्रेयकी ही भावना रही रहेगी, यदि मनुष्य अहंकार तथा स्वार्थसाधनके विकारोंसे दूर रहकर प्रकाशन-कार्यमें लगेगा। वृत्तिमें न्यूनाधिक समानता नजर आनेपर भी यदि एक व्यक्ति दूसरेके सामने अपनेको प्रकट करनेसे छिपाता है तो इस संकोचमें उसके विचारोंकी दृढ़तामें कमी तो प्रकट होगी। यदि यह मान भी लिया जाय कि उसमें अहंकार और स्वार्थके भाव न भी भरे हों। आत्मविश्वासकी निर्बलता भी तो एक बड़ा दोष ही हुआ। अहंभावयुक्त या स्वार्थी जहाँ मौके-बेमौके अधिक बोलता है, वहाँ संकोची चुप साधे रहता है अवसर प्राप्त हो जानेपर भी। अतएव दोनों प्रकारके दोष त्याज्य हैं। उपयुक्त स्थानपर उपयुक्त कर्म करनेपर ही सब ओरका श्रेय साधन बन पाता है।

भगवान्के आदेशानुसार शास्त्र-ज्ञानके प्रचारसे मनुष्यको ईश्वरका उसपर हुआ प्रेम मिलता है। इस प्रकार कार्यमें अहंकारकी जड़ यदि मिट न भी पाये तो इस हानिकी ओर दृष्टिपात न करके मनुष्य अपनेको ईश्वर-के प्रेमरूप अधिकाधिक लाभका अधिकारी बनानेमें लगा रहे। इससे अहंकारकी जड़का नाश हुए बिना न रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबेर तो हो ही रही है !

(लेखक—श्रीवचनेशजी त्रिपाठी)

साँझ घिर आयी तो मैं सूरजकुंडपर ठहर गया।

घूमकर देखा तो पास ही एक साधु दिखायी पड़ा—हल्की आँचपर मोटी-मोटी बाटियाँ सेकनेमें संलग्न।

अपनी बोलीमें इधर लोग इन मोटी-छोटी और गोल रोटियोंको 'बाटियाँ' या 'भौरियाँ' कहते हैं।

मैं कुंडमें हाथ-मुँह धोने लगा।

'कहाँ जायेंगे नारायण !' साधुने मेरी ओर देखकर पूछा। लगा कि वह सबको शायद 'नारायण' कहनेका अभ्यासी है।

इतनेमें गाँवकी कुछ युवतियोंका झुंड आया और हाथमें हाथ डाले गाते-गाते निकल गया। और धूलका अंबार ऐसा छाया कि मैं और साधु दोनों ढक गये।

'जनकपुर जाना—होत अबेर·····'

'जनकपुर·····'

वे तेज चालसे गाती जा रही थीं। पीछे उनके परिवारके पुरुष भी लपके जा रहे थे।

धूलका अंबार छँटा तो मैं बोला—

'यहीं नानामऊ तक जाऊँगा बाबा !'

'जनकपुर जाना होत अबेर·····'

'जनकपुर·····'

प्रतिध्वनि फिर कानोंसे टकरायी तो जैसे सीधे हृदयको छू गयी।

'सचमुच 'अबेर' तो हो ही रही है·····यह जीवनकी संध्या और·····'जनकपुर' भी दूर है·····'मेरा मन दूर चला गया।

'हम शौच जायँगे नारायण—तबतक इधर देखे रहें·····'

साधुने कमण्डलु भरते हुए कहा।

'हाँ हाँ जाइये आप। मैं तो हूँ ही·····'

और साधु एक टीलेकी ओर बढ़ गया।

बाटियाँ लगभग सिक चुकी थीं। नीचे बिनुआ (हाथसे बीने गये) कंडोंके अंगारे राख बनते जा रहे थे।

मैं बड़ी सजगतासे बाटियोंकी रक्षामें प्रवृत्त हुआ कि कोई कुत्ता आकर भोग न लगा बैठे।

साधु आया। हाथ-मुँह धोकर अपना बड़ा-सा चिमटा उठाया;

परंतु यह क्या ?

मैंने देखा कि वह चिमटेसे एक-एक बाटी (रोटी) उठाकर कुंडमें फेंकने लगा।

बड़ी चोट पहुँची मनको ! सोचा—शायद साधुको भ्रम हो गया है कि बाटियाँ किसीने छू ली हैं या किसी अन्य संदेहवश अब इन्हें खाना नहीं चाहता।

वह अपनेमें गुमसुम बराबर बाटियाँ फेंके जा रहा था। कुल रही होंगी सात-आठ और जिनमें अब दो-एक ही शेष बची थीं कि मैंने टोक दिया—

'यह क्या बाबाजी ! मैं बराबर बैठा रहा। न किसीने आग छुई न बाटियाँ फिर·····'

'राम-राम, ऐसा न कहो नारायण ! छूत-छातकी बात नहीं पर अब मैं कुछ भी पाऊँगा नहीं·····' साधुने किंचित् प्रायश्चित्त-पूर्ण स्वरसे कहा।

'तो लीजिये, मेरे पास आटा बँधा है—आप फिरसे सेंक लें·····' मैंने आग्रहपूर्वक कहा।

'नहीं नारायण ! तुम दुःख न मानो·····'

लगा कि वह आगे बताना नहीं चाहता।

'फिर भी बाबा मेरे मनमें बहुत पछतावा रहेगा कि आपने कुछ पाया नहीं और मेरा विचार है कि दिनभरके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद आपने ये चार टिक्कर सेके थे·····'वास्तवमें मैं समाधान नहीं पा रहा था।

बाबाने कमण्डलु उठाया। जल भरते हुए वहींसे बोले—

'नहीं मानते तो सुनो नारायण! दोष दूसरेका नहीं है। मेरी इन्द्रियाँ ही दोषी हैं। वर्षों हो गये धूनी रमाते, पर ये अब भी मुझपर हुकुम चलाती हैं·····।' कहते हुए वे जलभरा कमण्डलु लेकर लौटे। मुट्ठीभर राख उठायी और बोले—

'जबतक शौचसे निवृत्त होऊँ, स्नान-ध्यान करूँ कि इन्हें (इन्द्रियोंको) चैन नहीं, बस एक ही रट, एक ही धुन·····खाओ·····जल्दी खाओ·····! मैंने कहा— अच्छा ठहरो, अभी खिलाता हूँ सबको।' और इतना कहकर उन्होंने मुट्ठीकी राख कमण्डलुमें उँडेल दी। फिर एकपर एक कई मुट्ठियाँ भरीं और डालते गये।

कमण्डलु हिलाया-डुलाया और लगे 'गट-गट' कर पीने।

बीचमें एक बार जोरसे बोले—

'·····ले खा ले और खा ले·····।'

और वे पूरा-का-पूरा पी गये वह राखका शर्बत। फिर उठे। अपना बड़ा-सा चिमटा उठाया और कमली। और बिना किसी ओर देखे आगे पथपर बढ़ गये, जिधर स्त्री-पुरुषोंका एक झुंड कुछ समय पूर्व जा चुका था।

मैंने सुना—

'जनकपुर जाना·····'

साधुका लंबा-सा चिमटा 'झन झन' कर बज उठा था। अलाप ऊँचा होता गया—

'होत अबेर·····हो होत अबेर·····

जनकपुर जाना·····'

और मैं एकाकी सोच रहा था कि सचमुच 'अबेर' तो हो ही रही है·····।

मैं राममें स्थित हूँ, प्रकृतिस्थ नहीं

राम मेरा बल न मैं असहाय हूँ।
राम मेरा धन न मैं निरुपाय हूँ॥
राम मेरी बुद्धि मैं मतिमान हूँ।
राम मेरी ज्योति मैं द्युतिमान हूँ॥
राम मेरा ज्ञान मैं अभ्रान्त हूँ।
राम मेरी शान्ति मैं नित शान्त हूँ॥
राम मेरा रूप मैं अभिराम हूँ।
राम मेरा सुख सदा सुखधाम हूँ॥

× × × ×

हूँ नहीं अस्वस्थ, मैं नित स्वस्थ हूँ।
राममें स्थित हूँ, नहीं प्रकृतिस्थ हूँ॥
देह भौतिक हूँ नहीं, अमृतत्व, हूँ।
हीन ह्रास-विनाशसे, सत्तत्त्व हूँ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

हरिद्वार, ऋषिकेश और लक्ष्मणझूला

भारतकी धर्मप्राण संस्कृति और उसमें तीर्थयात्राके महत्त्वका कुछ विवेचन उपक्रममें किया गया है और इन तीर्थोंमें उत्तराखण्डके बदरिकाश्रमधाम तथा उत्तराखण्डके अन्य तीर्थोंका क्या स्थान है, इसका भी संक्षेपमें उल्लेख किया जा चुका है।

दिल्लीसे उत्तराखण्डके द्वार हरिद्वार पहुँचनेमें हमें लगभग छः घंटे लगे। हरिद्वार कुम्भके अवसरपर तथा और भी कई बार हम आये थे, परंतु उत्तराखण्डकी यात्राके निमित्त नहीं। अतः इस बार हरिद्वार हमारी तीर्थयात्राका मुख्य स्थल न होकर उसका द्वारमात्र था। हमारे तीर्थोंमें चार धामों अर्थात् बदरीनाथ, जगन्नाथ, द्वारिका और रामेश्वरका सर्वोपरि स्थान है, इसके बाद सप्तपुरियोंका। उन सप्त-पुरियोंमें जिन्हें मोक्षदायिनी माना गया है, उनमें हरिद्वार भी एक है। इसका पुराना नाम 'मायापुरी' है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

इसे गङ्गाद्वार भी कहा गया है; क्योंकि मैदानोंमें गङ्गाके सर्वप्रथम यहीं दर्शन होते हैं। नारदीय पुराणमें इस सम्बन्धमें उल्लेख आया है—

गङ्गाद्वारस्य ते पुण्यं शृण्वतां पठतां शुभम्।
यत्र भूमिमनुप्राप्ता भगीरथस्य चानुगा॥

हरद्वार या हरिद्वार इसके बादका नाम है। परंतु हमारा मत है इस पुरीके नाम हरद्वार और हरिद्वार ही सर्वथा उपयुक्त हैं, चाहे ये नाम इसे बादमें ही क्यों न दिये गये हों; क्योंकि उत्तराखण्डके केदारनाथ और बदरीनाथ 'हर' और 'हरि' दोनोंका ही यह द्वार है। भागीरथीके तटपर बसा यह नगर उत्तराखण्डके चारों धामोंका प्रवेशद्वार होनेके साथ ही तीर्थकी दृष्टिसे भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। भारतवर्षमें जिन चार स्थानोंपर कुम्भ और अर्द्धकुम्भ होते हैं, उनमें हरिद्वार भी एक है। प्रति बारह वर्षमें हरिद्वारमें कुम्भ और उसके छः वर्ष पश्चात् अर्द्धकुम्भ होता है। यह इस स्थानके स्थायी महत्त्वका एक और महत्त्वपूर्ण कारण है। प्राकृतिक दृष्टिसे हरिद्वार अत्यन्त रमणीय स्थान है। हिमालयकी शिखरावली यहींसे आरम्भ होती है और यहाँ जिस शिखरावलीके दर्शन होते हैं, वह सघन वृक्षावलीसे आच्छादित है। गङ्गाका निर्मल शीतल जल वेगवान् प्रवाहमें पुरीके सांनिध्यमें बहता है। फिर मनुष्यने भी इस स्थलपर बहुत कुछ किया है। पक्के और सुन्दर घाट बने हैं, जो भागीरथीकी पवित्रताके साथ ही सदा साफ-स्वच्छ रहते हैं। हरिद्वारमें सबसे अधिक आकर्षक स्थल हरकी पैड़ी है। कहते हैं इस स्थानपर दक्ष तथा देवोंने यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुका साक्षात्कार किया था, इसलिये इस स्थानका नाम 'हरितीर्थ' (हरकी पैड़ी) पड़ा। नारदीय पुराणमें इस सम्बन्धमें वर्णन आया है—

तत्क्षेत्रं पुण्यदं नृणां सर्वपातकनाशनम्।
यत्र यज्ञेश्वरः साक्षाद् भगवान् विष्णुरव्ययः॥

यहाँ नित्य ही मानवोंका मेला लगा रहता है। गङ्गाके शीतल प्रवाहमें लोग खूब जी-भरकर स्नान करते हैं। भक्ति-भावसे भागीरथीका पूजन करते हैं। पुष्पाञ्जलियाँ भेंट करते हैं और ध्यान-मनन। संध्याको यहाँका दृश्य एक उल्लासपूर्ण वातावरणका रूप धारण कर लेता है। गङ्गाकी पावन लहरें थिरकती हैं, जिनपर अगणित प्रज्वलित दीप प्रवाहित किये जाते हैं, जो दूर-दूरतक झिलमिल ज्योति लिये बहते चले जाते हैं। इसी समय गङ्गाकी आरतियाँ होती हैं। सहस्रों नर-नारी भागीरथीकी इन आरतियोंमें भाग लेते हैं, स्तुति-गान करते हैं। मथुरामें यमुनाजीकी विश्रामघाटपर एक ही आरती होती है, किंतु यहाँ ऐसी कोई कैद नहीं है। इन आरतियोंकी संख्या यहाँ घटती-बढ़ती रहती है। यहीं हमें बेशुमार भिखारी भी जनसमूहकी उपस्थितिका लाभ उठाने आतुरभावसे एकके बाद एक यात्रीके समक्ष अपना हस्त या हस्तपात्र बढ़ाते दृष्टिगोचर हुए। इन्हें यहाँ भीख मिलती भी थी; किंतु स्वेच्छासे कितने लोग इन भिखारियोंको दान देते थे? कदाचित् बहुत कम। इसी समय हमने देखा सैकड़ों नर-नारी भागीरथीके प्रवाहमें मछलियोंको चून डाल रहे हैं और अगणित मीनोंके समूहोंको सहज भावसे ही भोजन सुलभ हो रहे हैं। उन्हें यह भोजन इतनी अधिक मात्रामें मिल रहा है कि प्रवाहमें जब वे एक ओर अपना भोजन ले रही हैं तो बीच-बीचमें इधर-उधरसे भी उनके भोज्य-पदार्थकी वर्षा हो जाती है, जिसके कारण वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने समूहसे पृथक् हो कभी इधर भोजन करती हैं कभी उधर। ऐसा मालूम होता है कि भागीरथी उन्हें भरपेट ही नहीं, वरं इतना दे रही हैं कि वे उसे उदरस्थ नहीं कर पा रही हैं। काफी स्वस्थ, सुन्दर, तगड़ी और बड़ी-बड़ी मछलियाँ यहाँ हमने देखीं। किंतु दूसरी ओर भूखे अंधे नंगे हाथपसारे भिखारी इन्हीं यात्रियोंसे तिरस्कृत हो आगे बढ़ते नजर आ रहे थे। वास्तवमें जिन्हें भिखारी माना जा सकता है, उन्हें भी भीख नहीं मिल रही थी। जलचरोंको सहर्ष दान और थलचरोंमें श्रेष्ठ मानवका तिरस्कार—इसमें किसी हिंदी कविकी वह भावना निहित थी—'बिनु माँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख।' हरकी पैड़ीका नवनिर्माण हुआ है। आधुनिक कालमें महामना पंडित मालवीयजी भारतके उन प्रथम पंक्तिके नेताओंमें थे, जिनका स्थान नवीन भारतके निर्माणकर्ताओंमें है। मालवीयजी आधुनिक होते हुए भी प्राचीन धर्मप्राण संस्कृतिके मूर्तिमन्त रूप थे। हरकी पैड़ीका यह भव्य रूप मालवीयजीकी ही देन है। अतः यह उचित ही है कि हरकी पैड़ीपर उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यहाँ गङ्गाका प्रवाह दो धाराओंमें विभक्त है। एक धारा चौड़ी है पर गहरी कम है, इसमें यात्री स्नान करते हैं। इसे 'ब्रह्मकुण्ड' कहा जाता है। कहते हैं सर्वप्रथम ब्रह्माजीने यहीं भागीरथीका स्वागत किया था, तभीसे इस स्थानका नाम ब्रह्मकुण्ड हो गया। दूसरी ओर गहरी और खूब चौड़ी धारा है, जिसमें नावें चलती हैं। प्रवाह दोनोंका तेज है। इन दोनों धाराओंके बीचमें एक विशाल चबूतरा बना है। इस चबूतरेपर एक बड़ा घंटाघर निर्मित है। इस घंटाघरवाले चबूतरेपर जानेके लिये ब्रह्मकुण्डवाली धाराको पुलसे पार करना पड़ता है। हरिकी पैड़ीपर गङ्गा-मन्दिर, बारह-खम्भा-मन्दिर, शंकराचार्यका मन्दिर और नवग्रह आदिके मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंसे लगे बने विशाल लंबे-चौड़े घाटपर एक बाजार-सा लगा रहता है, जिसमें खाने-पीनेकी वस्तुओंकी दूकानोंके अलावा सुन्दर पुष्पोंका संग्रह रहता है। यहींसे यात्री फूल लेकर भागीरथीको भेंट करते हैं तथा मन्दिरोंमें चढ़ाते हैं। इसके निकट ही दक्षिणकी ओर गलीमें जाकर कुशावर्त घाट है, इसका निर्माण इन्दौरकी महारानी अहल्याबाईने कराया था। यात्री यहींपर श्राद्ध और पितृ-तर्पण आदि कृत्य करते हैं। महन्त शान्तानन्दने श्रवण-नाथका एक सुन्दर शिवमन्दिर निर्माण कराया है। इस मन्दिरके साथ गङ्गाका श्रवणनाथ घाट है और एक बृहत् श्रवणनाथ-पुस्तकालय। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य अनेक मन्दिर, धर्मशालाएँ और सार्वजनिक संस्थाएँ भी हैं। मन्दिरोंमें सर्वनाथ, मायादेवी, भीमगोडा, चण्डीदेवी, मनसादेवी और विश्वेश्वरके मन्दिर प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य अनेक छोटे-बड़े प्राचीन मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंसे सम्बन्धित अनेक पौराणिक कथाएँ हैं, जिनके कारण ये देवस्थान जन-साधारणके आकर्षण और आराधनाके केन्द्र बने हुए हैं। कहते हैं दक्षप्रजापतिकी पुत्री सतीका नाम मायादेवी था, अतः उनके नामपर मायादेवीका मन्दिर बना। इसी तरह भीमगोडा नामक स्थानपर, जहाँ एक तालाब है, शिवजीका मन्दिर है तथा भीमकी मूर्ति है। जब पाण्डव उत्तराखण्ड जा रहे थे, तब धर्मराजके कहनेपर भीमने इसी स्थानपर अपना पैर जमाकर (गाड़कर) प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजसे शस्त्र नहीं उठाऊँगा। इसी कारण इस स्थानका नाम भीमगोडा पड़ा।

हालहीमें गोस्वामी गणेशदत्तजीने सप्तस्रोत (सप्त-सरोवर) गङ्गाके तटपर 'सप्तऋषि-आश्रम' नामक एक संस्थाका निर्माण कराया है, जिसमें सप्तऋषियोंके नामका सप्तऋषि-मन्दिर और उनके नामपर पृथक्-पृथक् कुटियाँ हैं। निर्जन वनस्थलीपर बना यह आश्रम और इसका निर्माण तथा यहाँकी प्राकृतिक शोभा आध्यात्मिक प्रेरणामें अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यहाँ गङ्गा सात धाराओंमें विभक्त हैं। पुराणोंमें इस सम्बन्धमें उल्लेख आया है। जब भागीरथीका मृत्युलोकमें प्रादुर्भाव हुआ और राजा भगीरथके रथके पीछे-पीछे बहती हुई यहाँ स्वर्गद्वार हरिद्वारसे तीन मील पूर्व पहुँची, तब सुरसरिने देखा कि वैदिक गोत्र-प्रवर्तक, मन्त्र-द्रष्टा सात ऋषियोंके आश्रम हैं। श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धमें १३ वें अध्यायके ५ वें श्लोकमें सप्तर्षियोंका वर्णन आया है—

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गोतमः।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः॥

इन्हें सप्तऋषि क्यों कहा गया है, इसका उल्लेख भी वायुपुराणमें किया गया है—

सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः।
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः।
वृद्धाः प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये॥

(वायुपुराण ६१। ९१)

ये ऋषि तेजस्वी, प्रतापी, त्रिकालदर्शी, दीर्घायु और धर्मका साक्षात्कार करनेवाले हैं। यदि मैं किन्हीं एकके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमके सामनेसे निकलूँगी और अन्योंकी अवज्ञा करूँगी तो मुझे शाप न दे दें। विष्णुपदी इस दुविधामें पड़ी कुछ सोचमें पड़ गयीं।

राजा भगीरथने सुरसरिके प्रवाहको अवरुद्ध देख उनसे प्रार्थना की। 'देवि! क्या अपराध हुआ मुझसे जो आप आगे बढ़नेसे रुक गयीं।' सुरसरिने अपनी दुविधासे भगीरथको अवगत कराया। भगीरथने अपनी साधनापर यह संकट देखकर भगवान्से प्रार्थना की और उनकी इस प्रार्थनासे प्रसन्न हो भगवान्ने गङ्गाजीको आदेश दिया कि सप्तधारा हो जाओ। भागीरथी इस आदेशको पाते ही 'सप्तधारा संजाता' सात धाराओंमें बँट गयीं और एक-एक ऋषिके आश्रमके आगेसे निकलकर सात धाराओंमें बहीं। इस कथाका जो कुछ भी अर्थ हो, परंतु गङ्गाकी ये सात धाराएँ आज भी इस सप्तस्रोत तीर्थमें प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं! यहाँ दो ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जैसी भारतमें कहीं नहीं। एक गुरुकुल और दूसरी ऋषिकुल। गुरुकुलकी स्थापना आर्यसमाजी स्वामी श्रद्धानन्दजीने की और ऋषिकुलकी सनातनधर्मी महामना पं० मदनमोहन मालवीयने। इन दोनों संस्थाओंने उस कालमें भी, जब देश परतन्त्र था, उपयोगी कार्य किये हैं और आज तो ये एक स्वतन्त्र-राष्ट्रकी दो प्राचीन शिक्षण-संस्थाओं-के रूपमें शिक्षाके क्षेत्रमें देशकी प्रेरणाका केन्द्र बन गयी हैं। शिक्षा-तत्त्वके वे अनेक सिद्धान्त जो आज अनेक शिक्षणालयोंद्वारा स्वीकार किये जा रहे हैं और जिन्हें आज देशके शिक्षा-तत्त्वज्ञ भी स्वीकार कर रहे हैं, सबसे पहले इन्हीं दो विद्यालयोंद्वारा प्रवर्तित हुए। आश्रमिक परिपाटीवाली इन संस्थाओंमें छात्रोंके संख्यातिरेककी प्रधानता न देकर अनुशासनपूर्ण ढंगसे गुरु और शिष्यका सौहार्द और सांनिध्य अधिक-से-अधिक सुलभ रहे तथा अपने जीवनपर दासत्ववृत्तिसे मुक्ति दिलाकर उसका स्वामित्व प्रदान करानेवाली ऐसी शिक्षाकी व्यवस्था हो सके जिसमें मनुष्यके उन प्रधान तीन तत्त्वों—शरीर, मन और आत्माका विकास होकर **'प्राणानाम् आरामः। मनसः आनन्दः। शान्तिसमृद्धिः।'** का अपनेमें सृजनकर मानव-शरीरके विश्राम, मनके आनन्द और आत्माकी शान्तिके अमृत-पीयूषका पानकर वह अपनी आत्मामें इस प्रकारकी सामर्थ्य भर सके, जिसमें उसे नया जीवन—द्वितीय जन्म और द्वितीय लोक (स्वाधीनता और आध्यात्मिकताका लोक) प्राप्त हो जाय, जिसके सम्बन्धमें **'तद् द्वितीयं जन्म माता सावित्री पिता आचार्यः'** कहा गया है। यह अधिक भीड़-भड़क्कावाले वातावरणमें होना सम्भव नहीं रहता।

इन संस्थाओंद्वारा शिक्षाका उक्त आदर्श कायम किये जानेपर हमें यह नहीं समझना चाहिये कि इन संस्थाओंमें विद्याके आदान-प्रदान और दाक्षिण्यके हस्तान्तरणका नाम ही यहाँकी शिक्षा है। यद्यपि यह भी जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति इस योग्य बने कि वह अपनी जानकारी और कार्यपटुतासे अपनी आजीविका चला सके, किंतु यही सब कुछ नहीं है। उदाहरणके लिये यदि आप वैज्ञानिक दृष्टिसे निपुण हो जाते हैं और अपनी आत्माके अन्य पहलुओंका विकास नहीं करते तथा आप यह नहीं मानते कि विद्या और प्रज्ञाके अतिरिक्त भी कोई उदात्त तत्त्व आपके जीवनमें विद्यमान है तो आप अपने जीवनके वास्तविक लक्ष्यको कदापि प्राप्त नहीं कर सकते और उस नैसर्गिक शान्तिनिधिकी आपको अनुभूति नहीं हो सकती, जो मानवके लिये प्रकृतिकी एक अपूर्व देन है। इस दृष्टिसे जीवनको सर्वाङ्गीण बनानेके लिये हमें मानवकी स्वाधीनता **'सा विद्या या विमुक्तये'** वाली शिक्षाके आदर्शको अपनाना होगा और यह आदर्श ही इन संस्थाओंका वास्तविक आधार है। फिर भी इन आदर्शोंके ठीक अनुरूप इन शिक्षालयोंका काम चलता है और यहाँसे निकले हुए स्नातकोंका जीवन इन आदर्शोंके अनुसार हो जाता है, यह नहीं कहा जा सकता। अभी इन गुरुकुलोंमें भी बहुत उन्नतिकी आवश्यकता है। एक और अच्छी बात इन संस्थाओंने की है। मातृभाषा हिंदीकी शिक्षाका माध्यम बनाकर अपनी सारभूत सूझ-बूझका परिचय दिया है।

हरिद्वारके आसपास भी कुछ महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, जिनमें कनखल और ज्वालापुर विशेष उल्लेखनीय हैं। कनखलमें दक्षप्रजापति दक्षेश्वर महादेवका मन्दिर है। शिवरात्रिके अवसरपर यहाँ एक अच्छा मेला लगता है। कहते हैं दक्ष-प्रजापतिने शिव ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना यहींपर की थी। कनखलके धार्मिक महत्त्वका महाभारतके वनपर्वमें उल्लेख आया है, जिसमें कहा गया है—

ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः।
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति॥

यहींसे कुछ दूरपर 'सतीकुण्ड' है, जहाँ शिवकी प्रथम पत्नी सतीने देह-त्याग किया था। दक्षेश्वर महादेवके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त यहाँ शीतलादेवी तथा हनुमान्‌जीके मन्दिर हैं। ज्वालापुर भी एक सुन्दर स्थान है। हरिद्वारके अनेक आश्रमोंके महन्तोंकी यहाँ गद्दियाँ हैं तथा अधिकांश पण्डोंके घर हैं, जिसके कारण विशेष चहल-पहल रहती है।

हरिद्वार अब तो एक बहुत बड़ा नगर हो गया है। बड़े-बड़े बाजार, बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ, बड़ी-छोटी निजी और सार्वजनिक संस्थाएँ, तारघर, डाकघर, होटल, अस्पताल, निजी डाक्टर, वैद्योंके दवाखानों और सभी आधुनिक वस्तुओंकी सुन्दर-सुन्दर दूकानोंसे सजी-धजी एक सुन्दर नगरीके रूपमें यह यात्रियोंका स्वागत करता है। यात्री जैसे ही स्टेशनसे अथवा मोटर-स्टैंडसे इस नगरमें प्रवेश करता है, त्यों ही एक तिराहेपर बनी मृत्युञ्जयकी एक श्वेत और भव्य मूर्तिके उसे दर्शन होते हैं। इस मूर्तिके माध्यमसे मूर्तिके साथ ही बने दो लोटोंद्वारा भगवान् महादेव चौबीसों घंटे शीतल जलधारासे स्नान करते दीख पड़ते हैं। मूर्ति और उसमें निहित भावनाके इस स्थलपर दर्शन होते ही यात्रीको हरिद्वारमें प्रवेशके साथ ही यहाँकी आध्यात्मिक चेतनाका आभास मिल जाता है। हरिद्वारमें धर्मशालाओंकी भरमार है। उत्तराखण्ड यात्राका एक मुख्य केन्द्रस्थल होनेके नाते धर्मशालाओंकी यह विपुलता सर्वथा वाञ्छनीय भी है। वैसे तो यहाँ कोठारी धर्मशाला, नानकीबाई धर्मशाला, मोतीराम धर्मशाला, भीखूमल धर्मशाला, सिंधी धर्मशाला, कोहार धर्मशाला, भामन धर्मशाला, लुधियानेवालोंकी धर्मशाला, खुशीराम धर्मशाला, वृन्दावन धर्मशाला आदि कुछ अच्छी धर्मशालाएँ हैं, किंतु श्रीसेठ सूरजमलजी झुनझुनूवालाकी धर्मशाला, जो उत्तर-प्रदेशकी धर्मशालाओंमें शायद सबसे बड़ी धर्मशाला है, विशेष उल्लेखनीय है। इसके बाद हैदराबादवाले श्रीवंशीलालजी पित्तीका 'नृसिंह-भवन' धर्मशालाकी भी भव्य और विशाल इमारत है। इन दोनों धर्मशालाओंकी आवास-व्यवस्था बड़ी सुन्दर है। आठों पहर यात्रियोंका इन दो धर्मशालाओंमें भारी संख्यामें जमाव रहता है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हम हरिद्वार पहले भी कई बार आ चुके थे; परंतु इस बार उत्तराखण्डकी हमारी यह प्रथम यात्रा यहींसे आरम्भ हो रही थी जिसे कि हम विधिवत् करना चाहते थे। अतः दूसरे दिन अर्थात् वैशाख शुक्ल द्वादशीको हरकी पैड़ीके ब्रह्मकुण्डमें गङ्गा-स्नान कर दान-पुण्यादि कृत्य किये और यात्राकी दीक्षा ली। गोविन्ददासने यहाँ कुशाघाटपर पितरोंका श्राद्ध किया। दूसरे दिन हम गोस्वामी गणेशदत्तजीसे मिलने सप्तऋषि-आश्रममें गये। गोस्वामीजीसे गोविन्ददासका बहुत निकटका सम्बन्ध था। वे मध्यप्रदेशके गो-सम्मेलनमें जबलपुर भी पधारे थे और गोविन्ददासके यहाँ ही ठहरे थे। गोस्वामीजीने हमारी यात्राके लिये शुभ आशीर्वाद दिया और यात्रा पूर्णकर हम उनसे पुनः मिलेंगे इसके लिये आग्रह किया। हम क्या जानते थे कि हमारी यात्राके बीचमें ही गोस्वामीजीका देहावसान हो जायगा और हमें उनके फिर दर्शन न हो सकेंगे। यात्रामें ही हमें श्रीगोस्वामी गणेशदत्तजीके देहावसानका समाचार जब मिला, हमारा मन खेदसे भर गया। मानव अपनेको नैसर्गिक शक्तियोंका विजेता मानता है, परंतु मृत्युके समक्ष वह कैसा निःसहाय, निरुपाय, निरवलम्ब और अकर्मण्य हो जाता है। जीव संसाररूपी महासागरकी यात्राके लिये ही तो आता है। कितने इस यात्राके प्रारम्भके पूर्व ही किनारेपर ही डूब जाते हैं, कितने कुछ दूरतक तैर पाते हैं, कितने मझधारमें विसर्जित हो जाते हैं और कितने पार लग पाते हैं। इस पार लगनेकी परिभाषामें उन्हींकी यात्रा पूरी मानी जा सकती है जो जीवनमें परिस्थिति तथा विपरीत शक्तियोंसे संघर्ष करते हुए सतत आगे बढ़ते रहते हैं और अपने अध्यवसायी जीवनसे कुछ ऐसी रेखाएँ इस यात्रा-पथपर छोड़ जाते हैं जिनके अनुसरणमें भावी पीढ़ीका पथ-निर्देशन होता हो। कालकी गति अविराम चलती ही रहती है। इस सृष्टिको ही नश्वर और क्षणभङ्गुर कहा गया है, फिर मानव-जीवनकी नश्वरता तो न केवल निश्चित है वरं उसके उद्भव और अवसान दोनोंकी कल्पनासे जुड़ी हुई है। इसीलिये हमारे संतोंने कभी अवसानकी चिन्ता न करते हुए जीवन-पथपर सतत सक्रिय रह उस शाश्वत सत्यकी खोजके लिये कहा है, जिसके ह्रास-परिह्रासका परिणाम ही यह सृष्टि है और जिसमें 'भृकुटि विलास सृष्टि लय होई' की कल्पना की गयी है। मानव-जीवनकी सार्थकतापर संकेत करते हुए सूरदासजीने कहा है—'जिस मरनेसे जग डरे मेरे मन आनंद कब मरिहौं' 'कब पाइहौं पूरन परमानंद' तथा 'चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होय।' अतः हमें प्रकृतिप्रदत्त पुरुषार्थद्वारा इस अनहोनीके अन्वेषणकी सतत प्रेरणा हमारे पूर्वज संतोंकी वाणीमें जो सस्वर मुखरित होती रहती है, हमें इस सत्यकी ओर उन्मुख करती है। यही मानव-जीवनका सारभूत सिद्धान्त है, जिसे हमें समझना है, इसे अपनाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और इसकी प्राप्तिकी दिशामें गोचरीसे अग्रसर होना है। गो० गणेशदत्तजीने इस सिद्धान्तको काफी दूरतक सार्थक किया है और उन्होंने भव-सागरकी अपनी इस महान् यात्रामें कुछ महत्त्वपूर्ण ऐसी अमिट रेखाएँ खींची हैं, जो सागरके इस पारसे उस पारतक तैर जानेवाले तैराकीके साथ-साथ दिखनेवाली उस एक रेखाकी तरह ही नहीं है जो उस तैराकीके आगे बढ़ते ही सागरकी लहरोंमें विलीन हो जाती है वरं ये रेखाएँ सागरकी उन ऊर्मियोंके सदृश भारतीय जन-मानसके हृदयमें सदा अध्यात्मकी हिलोरें उठाती रहेंगी और इस यात्रा-पथके असंख्य पथिक उनके कर्मठ, धार्मिक और आध्यात्मिक जीवनका उनकी इन अमोल कृतियोंमें दर्शन पा सकेंगे। भले ही वे आज पार्थिवरूपसे हमारे बीच उपस्थित नहीं हैं; किंतु अपनी इन कृतियोंके माध्यमसे समाजके सामने वे सदा मूर्तरूप रहेंगे, इसमें संदेह नहीं है। गोस्वामी गणेशदत्तजी आधुनिक कालमें धार्मिक रचनात्मक कार्योंके बड़े भारी प्रणेता थे। दिल्लीका श्रीलक्ष्मीनारायणजी-का मन्दिर, जो श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने बनवाया है, वह उन्हींकी प्रेरणासे बना तथा यहाँकी सप्तऋषि-आश्रम नामक संस्था उनकी भव्य स्मृतिकी भव्य-स्मारक है। ऐसे अध्यात्म-वादी कर्मयोगीके प्रति हम सब आज श्रद्धासे नतमस्तक हैं।

दूसरे दिन ही संध्याको गोविन्ददास गुरुकुल देखने और श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पतिसे भेंट करने गये। इसके पूर्व गोविन्ददास गुरुकुल नहीं जा पाये थे। श्रीइन्द्र विद्या-वाचस्पतिसे उनका दो पीढ़ीका सम्बन्ध था। इन्द्रजीके पिता स्वामी श्रद्धानन्दजी एक बार गोविन्ददासद्वारा संस्थापित जबल-पुरके राष्ट्रीय हिंदी-मन्दिरके वार्षिक उत्सवके सभापति होकर जबलपुर आये थे और गोविन्ददासके ही मेहमान हुए थे।

हमलोगोंने यात्रा-विधानके अनुसार तीन रात्रि हरि-द्वार वास कर दिनाङ्क २१ मईको ऋषिकेश जानेकी तैयारी की। ऋषिकेश हरिद्वारसे पंद्रह मील है। हरिद्वारसे ऋषि-केश रेल भी जाती है; किंतु रेलकी अपेक्षा बसकी यात्रा ही हमें अधिक सुविधाजनक प्रतीत हुई और हमलोग मोटर-बसद्वारा ऋषिकेशके लिये रवाना हुए। हरिद्वारसे सात मील चलनेपर सत्यनारायण नामक चट्टी आती है। यहाँ सत्यनारायणका मन्दिर है। हरिद्वारसे ऋषिकेश आनेवाले यात्री यहाँ ठहरकर इस मन्दिरमें दर्शन करते हैं और मोटरें-बसें भी नियमानुसार यहाँ यात्रियोंको दर्शन कराने रुकती हैं। अधिकांश यात्रियोंको इस चट्टीका और मोटरोंके यहाँ ठहरनेके नियमका पता रहता है; किंतु हमलोग जिस बसमें सफर कर रहे थे, उस बसके ड्राइवरने जल्दीके कारण, चूँकि वह हरिद्वारसे ही कुछ देरसे चला था, सत्यनारायणकी चट्टीपर अपनी गाड़ी नहीं रोकी और जब हमारी बस सत्यनारायण चट्टीको पार कर गयी, तब मोटरमें बैठे कुछ यात्रियोंने मोटरको यहाँ न रोकनेपर ड्राइवरसे आपत्ति की। ड्राइवरने जो उत्तर दिया वह संतोषजनक ही नहीं वरं यात्रियोंके असंतोषको और उभाड़नेवाला सिद्ध हुआ। बस, फिर क्या था मोटरमें बैठे सभी यात्रियोंमें एक हो-हल्ला-सा मच गया। सभी ड्राइवरसे इस बातकी कैफियत माँगते कि उसने मोटर क्यों नहीं रोकी? कई कारणोंसे ड्राइवर खामोश था। स्थिति विचित्र थी, हम यदि यात्रियोंका पक्ष लेते हैं तो बेचारा ड्राइवर बिल्कुल असहाय हो जाता है और उस आक्रामक प्रवृत्तिको बल मिलता है जो ड्राइवर-की इस अप्रत्याशित भूलके कारण मोटरमें बैठे कतिपय यात्रियोंके जोश-खरोसपूर्ण कथनोंमें दीख रही थी। एक सज्जन बार-बार जोर-जोरसे चिल्लाकर ड्राइवरको डाँट रहे थे। बोले! 'तूने मोटर क्यों नहीं रोकी?' दूसरा कहता, 'यह महापापी है।' तीसरा कहता, 'यदि कोई मुसल्मान होता तो आज झगड़ा हो जाता।' फिर कोई कहता 'अरे, इसने तो ऐसा पाप किया है जो इसकी जगह यदि कोई मुसल्मान होता तो वह कभी नहीं कर सकता था। यह विधर्मी है, इसे भगवान् कभी माफ नहीं करेगा' आदि·· आदि। इन बौछारोंके बीच ड्राइवर मोटर चला रहा था, हम देख रहे थे—उसके मनमें एक प्रकारके भयका संचार हो गया था। हम चाहते थे कि यात्रियोंको कुछ शान्त करें; किंतु उनकी धार्मिक भावनाओंके महत्त्वको आँकते हुए हममेंसे किसीका भी यह साहस नहीं हुआ कि यात्रियोंके उक्त कथनोंकी अवहेलना कर ड्राइवरका पक्ष ले यात्रियोंके कोप-भाजन बनें। इसी बीच गोविन्ददासने यात्रियोंसे कुछ कहा और बड़ी चखचखके बाद वातावरणमें शान्ति हुई। यह प्रकरण लगभग आधा घंटा चला। इस सारे प्रकरणमें हमें लोगोंकी जिन आस्तिक भावनाओंका दर्शन हुआ उन्हें हम भले ही दकियानूसीपनका रूप दें, किंतु अपने इष्टके प्रति जिस जागरूकताका परिचय हमें यहाँ मिल रहा था, उसकी उपादेयता और महत्त्वको हमें स्वीकार करना पड़ेगा। यह प्रकरण समाप्त हुआ ही था कि पीछेसे एक मोटर-ठेला आ रहा था जो हार्न देकर मोटर बसके ड्राइवरसे कदाचित्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइड रास्ता चाहता था। उसे अपने मिशनमें अचानक देर हो गयी और उसने तेजीसे ठेला हमारी बसके बराबरीपर लाकर खड़ा कर दिया और ठेलेका ड्राइवर गालीगलौज करता हुआ हमारे बस-ड्राइवरको मारने धमका। ठेलेसे वह एक लंबा डंडा भी निकाल लाया। सौभाग्यसे इसी बीच जब वह डंडा लेने अपने ठेलेकी ओर लपका, हमारी बसके ड्राइवरने समीपकी चुंगी चौकीमें जाकर शरण ली और भीतर होकर दरवाजा बंद कर लिया। बाहर ठेलेका ड्राइवर डंडा पीटता रहा और चिल्ला-चिल्लाकर बुरी-बुरी गाली देता रहा। आक्रामक और पलायनवादी दो प्रवृत्तियों-का बिल्ली और कुत्ते, बाज और हंसकी भाग-झपटका यह दृश्य भी अपने ढंगका था। जब ठेलावाला ड्राइवर अपना ठेला लेकर चला गया, तब हमारी बस पीछेसे रवाना हुई और हरिद्वारसे ऋषिकेशकी १५ मीलकी सफर कोई डेढ़ घंटेमें तयकर ऋषिकेश पहुँची।

हरिद्वारकी तरह ऋषिकेश भी हम पहले ही कई बार आ चुके थे; किंतु इस बारके हमारे ऋषिकेश आने और इसके पूर्व अनेक बार यहाँ आनेमें एक बड़ा भावनात्मक और धार्मिक अन्तर था और हमारी इसी भावनाके कारण अनेक बार देखे ऋषिकेशमें भी एक आकर्षण था और उसकी हर वस्तु और वातावरणमें आज एक प्रकारकी नवीनता परिलक्षित हो रही थी। जब हम पहले-पहल ऋषि-केश आये थे, उस समय ऋषिकेश कुछ टपरोंवाला एक छोटा-सा कस्बा था। अब तो एक नगर बन गया है। बड़ी-बड़ी संस्थाओं, धर्मशालाओं, विशाल मन्दिरों, बृहत् बाजार, बस-स्टैंड, तार-घर, डाक्टर, अस्पताल, साधु-संन्यासियोंके आश्रमों और अखाड़ों तथा अटूट भिखमंगोंवाला, आधुनिक सुविधाओं और दुविधाओंसे परिपूर्ण एक विस्तीर्ण सुनि-योजित नगर; किंतु हमारी रायमें आध्यात्मिक दृष्टिसे पुराना ऋषिकेश आधुनिक ऋषिकेशकी अपेक्षा कहीं अधिक अपने नामके अनुरूप था। फिर भी वैज्ञानिक युगके पश्चिमी प्रवाहमें बहता हुआ गङ्गाके दाहिने तटकी सुरम्य वनस्थलीपर बसा हुआ यह नगर अभी भी प्रकृति-प्रदत्त नैसर्गिक सौन्दर्यसे पूर्णतया परिवेष्टित है। चतुर्दिक् ऊँचे-ऊँचे गिरि-शृंग, कल-कल कलरव करती भागीरथी और हमारे संस्कृति-पूजक धर्मप्रिय महत्-जनोंद्वारा संस्थापित अध्यात्म-विद्यापीठ और आश्रम यहाँके वातावरणमें सत्वर वह वायु प्रवाहित रखनेमें समर्थ हैं जिसके कारण दर्शकोंको इस स्थानके प्राचीन महत्त्व और उसकी पवित्रताका विस्मरण नहीं हो पाता। (क्रमशः)

जन्म व्यर्थ ही बीत गये !

ऐसेहि जनम-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ-से प्रभु तजि, सेवत चरन विराने॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलि-मल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने॥
सुखहित कोटि उपाय निरंतर करत न पायँ पिराने।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यौं, कबहुँ न हृदय थिराने॥
यह दीनता दूर करिबे को अमित बचन उर आने।
तुलसी चित-चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने॥

—तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशुद्ध आत्मचेतना

(लेखक— डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी एम्०ए०, पी-एच्० डी०, बी-एस्०सी०, साहित्यरत्न)

नाम-रूपात्मक यह जगत् द्वित्वप्रसूत है । यह सर्वथा द्विधा है । ये दोनों एक साथ स्थित हैं—एक दूसरेके पूरक हैं । एक तो है यह दृश्यमान बाह्य जगत्, जिसे हम 'स्थूल जगत्' कहते हैं । दूसरा है हमारा मानसिक जगत् । इसे हम मानव-मनकी कल्पनाशीलताका जगत् भी कहते हैं; अन्य लोकके पदार्थोंके स्वरूपों एवं दृश्योंकी सृष्टि इसी जगत्में होती रहती है । जब हमारी सृजनात्मक वृत्ति जाग्रत् होती है, तब हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ इसी मानसिक जगत्में विविध रूपोंकी सृष्टि, नाना गतियोंका संचार और हमारी वृत्तियोंका परिष्कार किया करती हैं ।

ये दोनों जगत् देश-कालपरक हैं । इनसे परे, देश-कालकी सीमाओंके परे आत्मजगत् है । यहाँ निम्न दोनों जगत्से भिन्न केवल विशुद्ध चेतनाकी स्थिति है । नाम-रूपात्मकताकी सीमाओंका उल्लङ्घन करनेके पश्चात् ही हमारी चेतना इस आत्मजगत्का स्पर्श करनेमें समर्थ होती है ।

चेतनाकी परिधिके विस्तारका ही नाम 'विकास' है । मानव-जीवनका उद्देश्य 'विकास' अथवा चेतनाका विकास है । इसकी प्राप्तिकी ओर लक्ष्य करते हुए ही सनत्कुमारने देवर्षि नारदसे कहा था कि 'पराविद्याके ज्ञानके अभावमें संसारका समस्त ज्ञान अपूर्ण अथवा निरर्थक है ।'

मानवकी चेतनाके पाँच स्तर हैं अथवा मानवकी चेतना सामान्यतः पाँच रूपोंमें स्थित रहती है । हम यत्नपूर्वक जिस स्तरपर उसका उपयोग करते हैं, हमारे विकासका स्तर वही समझना चाहिये । चेतनाके पाँच स्तर ये हैं—

स्थूल (Physical), सूक्ष्म(Astral),बौद्धिक (Mental) (क) निम्न (ख) उच्च तथा आत्मिक (Causal) ।

इन स्तरोंपर हमारी प्रेरक शक्तियाँ क्रमशः इस प्रकार होती हैं—मूलवृत्तियाँ (Instincts), मनोवेग (Impulses), सामान्य ज्ञान (Intelligence), अन्तर्ज्ञान (Intuition) तथा विशुद्ध ज्ञान (Integration) । सामान्य ज्ञान तर्कबुद्धि एवं विश्लेषणहेतुक होता है । अन्तर्ज्ञानकी प्राप्ति मानसिक जगत् अथवा मनोवेगोंकी सीमाओंके परे होती है । इसके परे देश-कालकी सीमाओंके आलम्बनका सर्वथा लोप हो जाता है और जीव विशुद्ध चेतना एकरसताके आनन्दका भोग करता है । इस स्थितिको प्राप्त चेतना सर्वथा अभेदात्मक, संश्लिष्ट (Integrated) होती है ।

स्थूल जगत्की भेदात्मक चेतना क्रमशः अभेदात्मक होती हुई सर्वथा संश्लिष्ट अथच एकरस एवं अखण्ड बन जाती है । संश्लेषणपरक चेतना (Integrated consciousness) सत्यकी उपलब्धि है । तदनुकूल आचरण सर्वथा अहिंसामय एवं सुख-शान्तिके विस्तारका हेतु होता है । दर्शनके क्षेत्रमें जो अखण्डता अथवा 'योग' है, उसीको व्यवहारके जगत्में अहिंसा, विश्व-प्रेम, सर्वभूत-हितैषिता, बन्धुत्व, शील आदि नामोंसे अभिहित करते हैं ।

कतिपय महापुरुषों अथच आदर्श व्यक्तियोंके प्रयासके परिणामस्वरूप ही विश्व अपनी प्रस्तुत उन्नत दशा एवं विकसित स्थितिको प्राप्त हो सका है । हमारे आदर्श समस्त महापुरुष भेदात्मक बुद्धिके परे संश्लिष्ट चेतनाके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके स्वार्थकी अपेक्षा परमार्थमें अधिक रत रहनेवाले व्यक्ति रहे हैं । इन महापुरुषोंने कदाचित् ही अपने विषयमें कभी विचार किया हो । तुलसीका 'स्वान्तःसुखाय' वस्तुतः 'परजनहिताय' ही था और उसीके द्वारा उनको परम विश्रामकी प्राप्ति हुई थी । जो 'परहित-चिन्तन'में निरत हैं, उन्हें अपने लिये चाहिये ही क्या ? जटायुने परहित-निरत रहकर प्राण-त्याग किया । उसके लिये भुक्ति-मुक्ति सब कुछ तुच्छ थे । यथा—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ काह तुम्ह पूरन कामा ॥

जीवनव्यापी चेतना 'नाम' और 'रूप'की सीमाओंको अस्वीकार करती हुई प्राणिमात्रमें समानरूपसे संचरण करती है । 'राम' शब्दका तात्पर्य ही यह है—जो सबमें रमण करे । अपने विकास-स्तरके अनुरूप हम उसका अनुभव या साक्षात्कार करते हैं—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथाजोग मिले सबहि कृपाला ॥

आत्माका गुण संश्लेषण है । आत्मा और परमात्माका यही सम्बन्ध-सूत्र है । जीव संश्लेषणको त्यागकर विश्लेषणकी सीमाओंमें बद्ध होकर अपने स्वाभाविक एवं जन्मजात आनन्दसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वञ्चित रहता है । इन सीमाओंका उल्लङ्घन करते ही वह आनन्दरूप परमात्माके स्वरूपको प्राप्त होता है । इसी कारण तुलसीके राम मानव भी हैं और ईश्वर या परब्रह्म भी हैं । परब्रह्मरूपिणी एकरसता व्यवहार-जगत्में 'राम'—सर्वव्यापी चेतनाके रूपमें अवतरित होती है ।

यथा—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥

जिस प्रकार ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश और अन्धकार सापेक्ष हैं, उसी प्रकार निर्गुण (Unmanifest) और सगुण (Manifest) परब्रह्म और राम सापेक्ष हैं—

एक दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥

× × ×

अगुन अरूप अमान एक रस । राम सगुन भए भगत प्रेम बस ॥

× × ×

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥

रामको प्राप्त करनेका एक ही उपाय है—'विशुद्ध प्रेम' । 'रामहि केवल प्रेम पियारा' और रामको प्राप्त करनेका अर्थ है रामके स्तरकी चेतनामें अवगाहन, किंवा स्वयं राम-रूपको प्राप्त हो जाना । 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई' का यही तात्पर्य है ।

तुलसीके राम विश्वके कण-कणमें व्याप्त एकरस जीवन हैं । उनके चरित्र-चित्रणका मूलाधार यही सर्वग्राही सत्य है । मारीच-जैसे कपटी एवं समस्त प्रपञ्च एवं विपत्तिके मूल कारणके प्रति रामका व्यवहार देखिये ।

प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि राम समेत सनेहा ॥

समस्त छल-छिद्रका त्याग होते ही विशुद्ध प्रेमका संचार हो उठा । एकरसताकी प्राप्ति उसका अनुसारी परिणाम होना ही चाहिये था—

अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ॥

यहाँतक कि असत्यरूप रावणकी चेतना जिस क्षण सत्य-रूप रामकी ओर उन्मुख होती है, उसी क्षण उसका उद्धार हो जाता है—

गर्जेउ मरत घोर रव भारी । कहाँ रामु रन हतौं पचारी ॥
तासु तेज समान प्रभु आनन । हरषे देखि संभु चतुरानन ॥

महानताका परिचायक महानताका गुण भी है और लक्षण भी । महानतामें संक्रामकता होती है । उसके सम्पर्कमें आते ही 'लघुता' महत्ताकी ओर अग्रसर हो उठती है । लघुत्व-का महत्त्वमें लय होना ही समस्त ज्ञान, योग, भक्ति एवं काव्यका चरम फल है । तुलसीके रामका बड़प्पन ऐसा ही है । उनके सम्पर्कमें आनेवाले भालु-कपि तक अपने-आपको सर्व-सामर्थ्यवान् समझने लगे थे । रामके नामपर रावणकी सभामें अंगदका पैर जमा देना रामकी इसी महानताका परिचायक है । लक्ष्मणको शक्ति लगनेके अवसरपर हनुमान्ने भी यही कहा था—

जो अब हौं अनुसासन पावौं ।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैरु ज्यौं आनि सुधारस प्यावौं ॥
(गीतावली)

विश्व-चेतनाके अवतार रामका शील भी सर्वथा स्पृहणीय था—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

विज्ञ पाठक 'सकुचि' शब्दकी महिमा समझेंगे तो ऋणत्रयीसे उऋण होनेके लिये आजन्म प्रयत्नवान् बने रहेंगे । रामके जगत्में वस्तुतः अपने-परायेकी भावना निर्मूल हो गयी थी । उनके लिये शत्रुभावकी स्थिति ही न थी । रावणके पास दूतकाज-हित अंगदको भेजते समय रामने रावणके हितकी ही कामना की थी—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ । परम चतुर मैं जानत अहऊँ ॥
काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥

भक्त विभीषणको उपदेश देते हुए रामने जिस धर्म-रथका निरूपण किया है, वह तो मानो इसी विश्व-व्यापी चेतनाका ही व्यावहारिक अथवा सगुण स्वरूप है । भगवान् अपना मत स्पष्ट प्रकट कर देते हैं—

सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

विश्व-व्यापी चेतना सर्वथा अभयरूप होती है । न तुम किसीके लिये भयका कारण बनो और न तुम किसीसे भय करो । गीतामें भगवान् कहते हैं—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
(१२ । १५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जिससे कोई उद्विग्न नहीं होता और जो किसीसे उद्विग्न नहीं होता। ऐसा हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगसे मुक्त मुझे प्रिय है।'

रामका लीलामय जीवन सर्वथा अभय ही था। यथा—

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥

तथा—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥

भेदभाव अथवा भेद-बुद्धिकी सीमाएँ देश (Space, matter) और काल (Time, mind) हैं। इन सीमाओंसे परे रामकी चेतनाका निरूपण करनेके लिये इन सीमाओंसे मुक्त अनुभव और वाणी अपेक्षित हैं।

जग पेखन तुम देखनहारे। बिधि हरि संभु नचावनहारे॥
सोउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

जबतक देश-कालकी सीमाएँ रहेंगी, तबतक तर्क-वितर्क-की स्थिति रहेगी। बुद्धिके भेद अथच संदेहके लिये स्थान रहेगा ही। संश्लिष्ट आत्माके अनुभवके लिये विश्लेषण-हेतुक देश-कालका परित्याग अनिवार्य है। जबतक चेतनामें विश्लेषण-हेतुक बुद्धि शेष है, तबतक अखण्ड सत्ताका परिज्ञान कैसा? यथा—

केसव कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये॥

× × ×

कोउ कह सत्य झूठ कहि कोऊ, जुगल प्रबल कोउ माने।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचाने॥
(विनय-पत्रिका)

ज्ञान, बुद्धि और क्रियाका सगुण स्वरूप आत्मा, बुद्धि और मानस है। इन दोनों त्रिभुजोंका संतुलन संसारके सुख-शान्तिका हेतु है। शिवका ताण्डव इनका प्रतीक है। रामके जीवनमें पूर्ण संतुलन था। रामरूपी ज्ञान लक्ष्मण तथा तदनुसारिणी क्रियारूपी सीता एवं धर्मबुद्धि लक्ष्मणसे सदैव सम्पृक्त रहता है।

कीर के कागर ज्यों नृपचीर बिभूषन अंगन उप्पम पाई।
औध तजी मग-बासके रूख ज्यों पंथके साथी ज्यों लोग लुगाई॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजीवलोचन राम चले तजि बापको राज बटाऊकी नाईं॥
(कवितावली)

रामकी उक्त चेतनाका आभास जिसको प्राप्त हो गया, वह मानो कृतकृत्य हो गया—रामरूप ही हो गया। गोस्वामीजीके निम्नलिखित कथनपर इसी दृष्टिकोणसे विचार करना चाहिये—

जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायौ परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥
(रामचरितमानस)

भगवान् रामने स्वयं अपने ही मुखसे कहा है कि जो एक बार इस धारामें पड़ जाता है वह फिर पीछेकी ओर नहीं जाता है। देश-काल ही तो पाप-पुण्यकी सीमाएँ हैं।

जिसे असीमताके महत्त्वके साक्षात्कारका सुख प्राप्त हो जायगा, वह फिर ससीमताकी, लघुत्वकी कामना क्यों करने लगा? रामकी चेतनाका आनन्द मानो अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शीलके अनन्त महासागरके तटपर खड़े होकर उसकी अगणित लहरोंके अनिर्वचनीय आनन्द-का लाभ करना है। यथा—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

मनकी ऐसी स्थितिका सबसे बड़ा प्रमाण है, चित्तका सुशीलताकी ओर आपसे-आप ढल जाना—

हौं अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
(विनय-पत्रिका)

धर्माचरणसम्बन्धी यह सूत्र—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

—उक्त चेतनाप्रसूत ही समझना चाहिये। अन्तः-करणकी इस वृत्तिके लिये अहंकारका उन्मूलन अनिवार्य है, साधन और साध्यकी एकता अपेक्षित है—

यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥

अनुकूल रहें

परम सत्य जो नित्य हैं आत्यन्तिक सुखरूप।
चेतन अमल अनादि अज अव्यय अचल अनूप॥
सर्वरूप, सबसे परे, लीलामय सब मूल।
रामभद्र सो दासपर रहौ सदा अनुकूल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण-योजना

(लेखक—श्रीविश्वम्भरदत्तजी गौड़ 'वसिष्ठ' एम्०ए०)

अपना कल्याण कौन नहीं चाहता, अपने परिवारका कल्याण कौन नहीं चाहता ? सब चाहते हैं। यह चाह क्यों उत्पन्न होती है ? सुख-प्राप्तिके लिये, आनन्दके लिये, शान्तिके लिये। तो ऐसे सर्वप्रिय सर्वेच्छित कल्याणकी प्राप्ति कैसे हो ? वैसा प्रयत्न करनेपर ही। वस्तु-प्राप्ति प्रयत्नपर ही निर्भर है। यही प्रयत्न कर्म है। प्रयत्न भी वही सफल होता है, इच्छित फल देता है जो उचित विधि-विधानसे किया जाता है। जैसे ओषधिका गुण रोग-निवारण करना अवश्य है, किंतु उसकी सेवन-विधिमें अव्यवस्था, आलस्यादि, उसके विधान, अनुपान, पथ्यापथ्य आदिके यथोचित पालनके अभावमें, रोगी रोगमुक्त नहीं होता, उसे आराम नहीं होता—उसका कल्याण नहीं होता। अतः कल्याण-प्राप्तिके साधनोंकी विधि-विधानपूर्वक साधना ही कल्याणकारिणी होती है। फल बीजसे ही होता है। 'बोये बीज बबूलका आम कहाँसे होय।' इस प्रकार बीजानुकूल ही फल-प्राप्ति सम्भव है। कारणके बिना कोई कार्य नहीं होता। अतः कल्याण-कारणके लिये तथोचित प्रयत्न (कर्म) अपेक्षित है। बीज भी है किंतु घुना हुआ है तो अङ्कुरित नहीं हो सकता। अङ्कुरन-प्रस्फुटन शक्तिके अभावमें बीज-स्थिति भी अभीप्सित फल नहीं दे सकती। मान लीजिये बीज भी अच्छा है, किंतु भूमि, वातावरण, जलवायु आदिके अभावमें अथवा उनके प्रतिकूल होनेपर भी वह स्वच्छन्दरूपसे अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित नहीं हो सकता। इस प्रकार मूल कारणपर ही दृष्टि रखते हुए उसके क्रमशः विकासकी जानकारी और पूर्ण प्रयत्न ही हमें वस्तु-लाभतक पहुँचा सकते हैं।

आत्म-कल्याण तथा कुटुम्ब-कल्याणका भाव बीजरूपमें हमें प्राप्त है; किंतु हम उसे क्रियारूप देनेमें, उसके निर्वाहमें कहाँ-कहाँ भूल कर जाते हैं, भूल ही नहीं उपेक्षा भी कर जाते हैं; फिर मनोभिलषित फल न मिलनेपर चिन्तित और दुखी होते हैं। इसमें दोष किसका, भूल किसकी ? हमारी ही तो है। उसे हम भगवान् अथवा भाग्यपर डाल उन्हें भी बदनाम करते हैं। प्रथम तो हम प्रयत्नकी योजना बनाकर ही नहीं चलते। यदि बना भी लेते हैं तो अधिक फल-लोभमें अपनी शक्तिके बाहर लंबी-चौड़ी बना लेते हैं या उसके क्रममें गड़-बड़ा जाते हैं अथवा उसके सम्पादनमें, साधनामें तनिक-सी कठिनाइयों और बाधाओंके आनेपर अनुत्साही और निराश हो उसे अधूरा ही छोड़ बैठते हैं। ऐसे हमें अभीष्ट सिद्धि या सफलता कैसे मिल सकती है ? प्रयत्नका भी भावरूप बीज होता है। जबतक हम उस भावके यथार्थको न समझकर कोरे उसकी आदर्श स्थापनापर ही ध्यान देते रहेंगे, हमें ऐसी ही रुकावटें जो वास्तवमें हैं तो नहीं किंतु हमारेद्वारा ही पैदा कर ली जाती हैं, हमें अपने मार्गपर चलनेसे रोकती रहेंगी।

इसी तरह वस्तु भावके आदर्शको न समझकर उसके यथार्थ-पर ही विचार करते रहनेसे भी हमें वैसी ही बाधाओंका सामना करना पड़ेगा। हम संसारको आदर्श दृष्टिसे स्वप्न और असत्य कहते हैं; किंतु यथार्थमें उसे ऐसा नहीं देखते। उसकी प्रत्येक वस्तुसे हम प्रलोभित, मोहित, दुखी और सुखी होते हैं। ऐसा क्यों है ? इसीलिये कि वह हमें सत्य ही प्रतीत होती है। मिठाई खाते समय हम मीठे रसका अनुभव करते हैं, वस्तुका आकार भी हमारे समक्ष रहता है तथा जन्मसे सुखी और मृत्युसे दुखी होते हैं; इसीलिये कि यह सब कुछ हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं। तो इसमें असत्यताका भान कैसे किया जाय ? निस्संदेह आदर्श तो आदर्श ही है। यह सत्य ही है कि संसार स्वप्न ही है; किंतु वह तभी जब हम उसका पूर्णरूपेण अनुभव कर लें। उचित पूर्णानुभवके पूर्व ही उसे असत्य और असार कह देने और मान लेनेसे, आदर्शका आरोपण कर देनेसे उसके वास्तविक स्वरूपको जानने-पहचाननेसे पूर्व ही हम यथार्थ-के प्रति उदासीन हो जाते हैं। कर्ममें शिथिल और अकर्मण्य हो जाते हैं।

यही भूल भाग्यवादी और पुरुषार्थवादी भी परस्पर आलोचना करते हुए पाये जाते हैं। एक दूसरेसे अपने मतको श्रेष्ठ समझता है; किंतु पालन दोनोंमेंसे कोई एकका भी वास्तविक रूपमें नहीं करता। अपना तो यही विश्वास है कि पुरुषार्थके बिना भाग्य-निर्माण और भाग्यके बिना पुरुषार्थका उत्साह नहीं मिलता। दोनों अन्योन्याश्रित ही हैं। पुरुषार्थ न करके कोरे भाग्यपर आश्रित बैठे रहनेसे भी काम नहीं बनता और न भाग्य बिना पुरुषार्थद्वारा अर्जित वस्तुका उपभोग ही सम्भव है। विज्ञजन इस ऊहापोहमें न पड़कर सीधे-सरल उपायसे ही अपनी बनायी हुई कल्याण-योजनाको कार्यरूप देते रहते हैं। अतः हमें भी उसी प्रकार कल्याण-योजना बनानी है तथा आदर्श और यथार्थ अथवा भाग्य और पुरुषार्थ दोनों किनारोंसे मर्यादित हो गम्भीर सरिताकी भाँति चलते रहना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वस्तु भावके दोनों पक्षोंपर गम्भीर विचार करके दृढ़ संकल्पसे उनके सामञ्जस्यका ध्यान रखते हुए उन्हें कार्यरूप देना ही श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार भाव, विचार और कर्मके साम्य-संगठनद्वारा किया हुआ प्रयत्न ही अवश्य हमारे लिये फलदायी और कल्याणकारी होगा। आजके वातावरणको देख सचमुच हैरत होती है, दुःख होता है। अरे! कोरी कल्याणकी चाहसे क्या बनता है? गुड़-गुड़ कहनेहीसे क्या कभी मुँह मीठा हुआ है? हम कौन हैं? पैदा क्यों हुए हैं? हमें क्या करना है? तदनुरूप हम क्या कर रहे हैं? यह सब कुछ इस योजनाके ही अन्तर्गत आ जाता है। तो कल्याण-योजना क्या है? आत्मकल्याण करके, कल्याण करनेके लिये जीना यही यथार्थ और आदर्श भौतिक और आध्यात्मिक दोनों रूपोंमें मानव और मानवताका जीवन है—इसीमें उसका कल्याण है।

इस जीवनकी प्राप्तिके लिये क्या कुछ नहीं करना पड़ेगा? इसकी क्रिया हम भूले हुए हैं। हम घरके बाहर दीप जलाये बैठे हैं, हमें घरके अन्धकारकी चिन्ता नहीं। बाहरी उजाला चाहते हैं और बाहरी उजाला करते हैं। यही भूल हमें असल और नकलकी पहचान करनेमें भ्रमित करा रही है। यही नकल कालान्तरमें असलरूपमें प्रयुक्त होने लगी है। अब हम नकल-को ही असल समझने लगे हैं। शरीरको हम यथोचित भोजन नहीं देते; किंतु आबदार कपड़ेके आवरणसे उसे सजाकर अपने बड़प्पन, मालियत और आबरूका परिचय देते हैं। सरे बाजार इमिटेशन (नकल) बिक रहा है, असलका अब फैशन नहीं है, सचाईका अब जमाना नहीं है। इस प्रकार जान-बूझकर आँखोंपर पट्टी बाँध रहे हैं, सत्यतापर भ्रान्तिका आवरण डाल अपना भरम बना रहे हैं। हमारा यह कृत्य कभी मजबूरीकी ओट लेता है तो कभी चलनकी आड़। ऐसी भी क्या बात है जो नकलियतको असलियतका जामा पहनाकर इंसानियतकी दुहाई दी जा रही है। यदि इस नकलको दिखाने-को नहीं अपनाते तो औलाद ही हमारा मजाक बनाती है। कहती है—'रहने भी दो उन दकियानूसी खयालोंको अपने ही पास, अब जमाना बदल गया है, अब तो हमारे साथ कदम बढ़ाकर चलो। हमें अब रोशनी मिली है, जिससे हम दुनियाँको चमका देंगे। सादा जीवन उच्च विचारके मन्त्र यहाँ काम नहीं करेंगे। आज मन्त्रशक्ति यन्त्रशक्तिके सामने नमस्कार कर रही है।'

कितनी भोली है वह जिसे स्वयं अपने यन्त्रका तो ज्ञान ही नहीं है और यन्त्र-निर्माणका दम्भ भर रही है। इसी चमकमें वह अपने धर्म, ज्ञान, कर्तव्यादिको भी नकली जामा पहनाती जा रही है। उस बेचारीका भी क्या दोष? जब हमारे बुजुर्ग भी तो इसीकी कदर कर रहे हैं; वे भी तो जमानेकी बाढ़में बह रहे हैं। उन्हींका अनुकरण यदि संतान करे तो उसका इसमें क्या दोष? सो तो भगवान् श्रीकृष्णने पहलेसे ही चेतावनी दे दी है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २१)

'श्रेष्ठजन जिन कर्मोंको करते हैं, साधारण लोग भी उनका ही अनुसरण करते हैं। जिन्हें वे प्रमाण मानते हैं, लोग भी उन्हें प्रमाण मानते हैं।' मैं यन्त्रनिर्माणका विपक्षी नहीं, विरोधी नहीं, किंतु मन्त्रको भी नहीं भुलाना चाहता। मन्त्रबलसे यन्त्र अधिक शक्तिशाली हो सकता है, कल्याणकारी हो सकता है। मन्त्रशक्ति उसे उसके अमानुषिक प्रयोगसे रोकेगी, जिससे मानव-जातिका कल्याण होगा ध्वंस नहीं। विश्वमें शान्ति होगी अशान्ति नहीं। हाँ, तो ऐसी ही कुछ भ्रम-भ्रान्ति भावनाएँ हमें भ्रमित कर रही हैं, हमारे कल्याणमार्गमें रोड़ा बनी अड़ी खड़ी हैं, जिन्हें हटाये बिना, जिनका सुधार किये बिना इंसानियत इसी तरह लुढ़कती रहेगी।

पर ऐसी भावनाओंका सुधार दमनसे नहीं, परिष्करणसे ही सम्भव है। प्रत्येक वस्तुकी चाहका जनक भाव है। **'भावो मूर्ध्नि वर्तते'** सचमुच भाव ही प्रधान है। यही बीज है। इसे ही अविकारी, सशक्त और विशुद्ध बनाना है। इसीमें हमारी कल्याण-योजनाका कल्याण निहित है। भाव बिना किसी वस्तुका कोई मूल्य नहीं, महत्त्व नहीं। यह भाव ही हृदयका अधिदेवता है। यही देवता निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास और भक्तिसे तुष्ट हो, साकार होकर हमारे इष्टरूपमें, भगवान्-रूपमें प्रकट होता है। अतः भाव ही भावोंमें वर्तता है। यदि शंकरका भाव है तो वह शंकर है अन्यथा भाव बिना कंकर ही है। भाव ही भक्त और भगवान्का योगमार्ग है, इसीपर दोनोंका अस्तित्व आश्रित है। भाव हृदय-तत्त्वका विषय है और हृदय ही भगवान्का मन्दिर कहा गया है (Heart is the temple of God) जो सदा हमारे साथ रहता है। तो जिस स्थानमें भगवान् निवास करते हैं उसे किसी भी विरोधीभावसे कलुषित करना कहाँकी समझदारी है। तनिकसे स्वार्थ-लोभके पीछे, छोटी-छोटी बातोंसे इसे दूषित कर लेना कहाँकी अक्लमंदी है। भला सोचिये हमारा अधिदेवता क्या कहेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव ही शब्दद्वारा दो हृदयोंको जोड़ और तोड़ सकता है। तो तोड़में ही क्या रक्खा है। हम तो जोड़नेके लिये ही पैदा हुए हैं। एक हृदयको दूसरेसे जोड़ते रहनेमें ही, इस सद्भावनामें ही मानवताकी समृद्धि और जनकल्याण निहित है। इस उदारतासे ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अनुभव हो सकता है। ऐसी आत्मस्थितिमें ही सब हृदयोंमें एक ही आत्मारामके दर्शन सम्भव हैं। अतः हमारा कर्तव्य हो जाता है कि इस मन्दिरकी रक्षा मनसा वाचा कर्मणा जैसे भी हो करते रहें। यह भी हमारी कल्याण-योजनाका एक प्रस्ताव है, सुझाव है और आयोजना है। भावोंसे ही विचार उत्पन्न और प्रभावित होते हैं, हृदयसे ही मस्तिष्क संदेश पाता है। भाव और विचारकी एकरूपता, एकाग्रता ही तदनुकूल कर्म करनेके लिये मनको प्रेरित करती हैं और मन इन्द्रियोंको तुरंत तदनुसार आचरण करनेके लिये बाध्य करता है। इस प्रकार एक ओर भाव, विचार और कर्म दूसरी ओर हृदय, मस्तिष्क और मन परस्पर संगठित होकर क्रिया करते हैं। वही प्रयत्नरूपमें हमारे सामने आता है। इस प्रकार हृदय, मस्तिष्क और मनकी शुद्धता, दृढ़ता और उच्चता क्रमशः भाव, विचार और कर्मपर ही निर्भर है।

तो विकारी, अशुद्ध एवं अशक्त भावोंको हम अपनी कल्याण-योजनामें भाग ही क्यों लेने दें? यह तो हमपर ही निर्भर है। इसमें तो किसीसे हमें कुछ विचार-विनिमयकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती, यदि पड़ती भी है तो स्वयंसे ही पूछें कि क्या करना उचित है? वह स्वयं आत्मा कभी हमें गलत राय नहीं दे सकता। वह तो सदा हमें पतित और घृणित कर्मोंको करनेसे रोकता है, राय देता है; किंतु हम उसकी सुनते कब हैं! हम तो चञ्चल मनके क्रीतदास रहते हैं। यही तो अन्तर पड़ जाता है मन और आत्माकी आवाज पहचाननेमें। दोनों अपनी ओर खींचते हैं। यहींपर विवेककी हमें आवश्यकता होती है। मनके इशारेपर चलकर हम कभी सुखी नहीं रह सकते, हमारी कोई योजना सफल नहीं हो सकती; क्योंकि उसका स्वभाव ही चञ्चल है, वह नित्य नव-नूतन संकल्प-विकल्प करता है। ऐसी दशामें हमें स्थिर, गम्भीर और उदार आत्माके ही संकेतपर चलना चाहिये। ऐसा करनेपर हम कभी कहीं मात्त नहीं खायेंगे, हमें सुमति मिल सकेगी और हमारी कल्याण-योजना सहजरूपेण सफल हो सकेगी। यहाँ हमें केवल भावुक और विचारक होकर ही चैन नहीं मिलेगा अपितु उचित कर्तव्य-कर्मके लिये कटिबद्ध भी होना पड़ेगा। यही कर्म हमारे वर्तमान और भावी भाग्यका निर्माण करेगा। वही सौभाग्य-सुसंस्कार हमें इहलोक और परलोक तथा हमारे बाह्य-आभ्यन्तर जगत्का समुचित सुधार भी कर सकेगा।

अतः हमारे भाव, विचार और कर्ममें जो 'कु' का कुरा लगा है, जो कीटाणु भीतर-ही-भीतर क्षयरूपमें हमारी हड्डियोंको घुन रहा है, दीमककी तरह हमारे राष्ट्रभवनकी नींव खोखली कर रहा है, क्लोरोफार्मकी तरह जो मानव-जीवनको चेतनाहीन बना रहा है, उसीके उपाय-उपचारके लिये हमारी कल्याणयोजना है। इसके मूलपर विचार करने, तत्पश्चात् तदनुकूल उपाय करनेपर ही वह दूर हो सकता है। उन उपायोंमें मूल उपाय संततिकी सदाचार-शिक्षा है, जिसकी तीव्र गन्धसे यह कुरा दूर हो सकता है, जिसकी प्राणदा वायुसे संक्रामक कीटाणु नष्ट हो सकते हैं, जिस ऑक्सीजनसे मानवको पुनश्चेतना मिल सकती है। यह सदाचार-शिक्षा मानव-संस्कृतिकी बेल है। यही सहृदयता, सद्भावना, सहानुभूति, सहकारिता आदि शाखा-प्रशाखाओंके रूपमें, सुमतिकी तरह गुँथी हुई, उदारताकी तरह फैलती हुई, प्रेम-वेगसे बढ़ती हुई, संयम-सद्गुण-सुमन-सुगन्ध फैलाती हुई ज्ञान, भक्ति, योग, त्याग, वैराग्य आदि रूपमें फल दे सकती है; जिसका उपभोग कर मानव-संतति सुदृढ़ बन सकती है, जिसकी छायामें बैठकर वह आराम और शान्तिका अनुभव पा सकती है और अपनी भावी कल्याण-योजनापर विचार कर सकती है, सत्याचरणद्वारा राष्ट्रकी नींव सुदृढ़ कर सकती है। इस प्रकार व्यष्टिसे समष्टि कल्याणका मार्ग खुल सकता है।

आजके अस्वस्थ मानवको सुमति, संगठन, संयम और सदाचरणकी परमावश्यकता है। इसका सेवन किये बिना उसका फैशन, स्वार्थ और भ्रष्टाचारजनित त्रिदोष (सन्निपात) दूर नहीं हो सकता। सादा जीवन और उच्च विचारदायिनी सदाचार-शिक्षाकी चन्द्रोदय-ओषधि बिना उसकी नाड़ी ठिकाने नहीं आ सकती, उसके दिलकी धड़कन ठीक नहीं हो सकती, वह सुखकी स्वस्थ साँस नहीं ले सकता। साथ ही उसे स्वास्थ्य-वर्धक सात्त्विक शुद्धाहार-विहारकी भी नितान्त आवश्यकता है, तभी धीरे-धीरे उसकी धमनियोंमें धर्माचारका शुद्ध रक्त पवित्र संस्कारगतिसे संचरित हो सकता है, वह जीवित रह सकता है, उसे चरित्रबल प्राप्त हो सकता है, इस प्रकार आत्मकल्याण बिना विश्वकल्याण असम्भव है। एक चन्दन-विटप जैसे सारी वनस्थलीको सौरभित कर देता है वैसे ही एक आत्मा अपनी सद्गुण-सुगन्धसे अनेक आत्माओंको सुगन्धित कर सकता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार सदाचार-शिक्षासे एक ग्राम, एक घर, घरसे गली, गाँव, नगर, प्रान्त और शनैः-शनैः सम्पूर्ण राष्ट्र नैतिक चरित्रकी सौरभसे सौरभित हो सकता है। इसी होम-हुताशनधूमसे सारा वातावरण शुद्ध-स्वस्थ हो सकता है। महामारीमें जैसे एक ओर ही ध्यान न देकर समूचे वातावरणकी शुद्धिका प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार भ्रष्टाचारकी इस प्रचण्ड महामारीसे त्रस्त मानवजातिके त्राणहेतु हमें वर्तमान वातावरणकी शुद्धता-स्वस्थतापर विशेष बल देना है। वातावरणको दूषित बनानेवाली इस दूषित वायुको सदाचार-शिक्षाके द्वारा शुद्ध और पवित्र बनानेके लिये ही हमारी कल्याण-योजना है। इससे मानवकी बाह्य शुद्धि ही नहीं, अपितु आन्तरिक शुद्धि-सुधार भी हो सकता है, उसे व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त हो सकती है, वह उदारचेता हो सकता है, तभी 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की, विश्वबन्धुत्वकी सद्भावनाद्वारा विश्वशान्ति और विश्वकल्याणकी मङ्गल-कामनापूर्ति, हमारी कल्याणयोजनाके मुख्योद्देश्य—'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु' की सिद्धि सम्भव है।

श्रीनिमाई-संन्यास

[नाटक]

(लेखक—स्व महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोष)

(अनुवादक—श्रीव्रजगोपालदासजी अग्रवाल एम्० ए०)

[गताङ्कसे आगे]

तृतीय अङ्क

(१)

(निमाईका घर; निताई, शची और निमाई बैठे हैं। नेपथ्यमें 'हरिबोल' ध्वनि; कुछ भक्तोंका प्रवेश और गान)

गान

प्रभु दयाल, आमि साधुमुखे शुनेछि।[१]
अकुल पाथारे पड़े डाकतेछि।[२]
अस्पृश्य पामर आमि,
दयार[३] ठाकुर तुमि।
अगतिर गति प्रभु मने जेनेछि।[१]
करिते[२] पतितोद्धार; एबार[३] नदेय[४] अवतार,
आमार[५] समान प्रभु पतित कोथा[६] पावे[७] आर।
तुमि दिये[९] चरणतरी, उठाओ हे केशे[१०] धरि[११],
आमि आशा करिये चेये रयेछि।[१२]

१. मैंने संतपुरुषोंसे सुना है कि प्रभु बड़े दयालु हैं। २. मैं तटहीन जलाशयमें पड़ा हुआ पुकार रहा हूँ। ३. दयाके।

१. मैंने मनमें जान लिया है कि प्रभु अगतिके गति हैं।

२. करने। ३. ४. इस बार नवद्वीपमें। ५. मेरे। ६–८. और कहाँ पायेंगे। ९. देकर। १०. ११. केश पकड़कर। १२. मैं आशा लगाये बैठा हूँ।

(भक्तोंका प्रभुको प्रणाम और हाथ जोड़कर आगे खड़े होना)

निताई—प्रभु, इस समय बहुतसे लोग नगर छोड़कर आपके दर्शन करने चले आ रहे हैं।

निमाई—(स्वगत) क्योंकि इस समय मैं विदा होने जा रहा हूँ।

निताई—प्रभु! क्या कहा, समझा नहीं?

निमाई—(भक्तोंके प्रति) तुम सभीकी श्रीकृष्णमें रतिमति हो।

प्रथम भक्त—प्रभु! आज्ञा दीजिये, यह पुष्पमाल आपके गलेमें पहना दूँ।

निमाई—आओ, आओ। (निमाईद्वारा अपने गलेकी माला भक्तके गलेमें डाल देना तथा भक्तके द्वारा नयी माला प्रभुको पहनाना और प्रणाम करना)

द्वि०भ०—थोड़ी-सी दूधकी मलाई लाया हूँ, प्रभु स्वीकार कर मेरी गोष्ठीका उद्धार कीजिये। (मलाईका पात्र रखकर प्रणाम करना)

तृ०भ०—मैं थोड़ा-सा दूध लाया हूँ। प्रभु, लीजिये। मेरे कुलका उद्धार कीजिये। (दुग्ध-पात्र रखकर प्रणाम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च०भ०—मैं किंचित् मक्खन लाया हूँ, ग्रहण कीजिये। (मक्खन रखकर प्रणाम) प्रभु ! हम भव-सागर पार होंगे, उपाय बताइये।

निमाई—तुमलोग 'हरिनाम' लो। दस-पाँच व्यक्ति मिलकर कीर्तन करो। नहीं, माता-पिता-पुत्र, भाई-बहन आदिके साथ ही कीर्तन करो। मृदङ्ग-करताल न हों, तो हाथसे ताली बजाकर ही करो। हरिनामके लिये कोई नियम नहीं है। शुचि, अशुचि, दिन-रात किसीका भी नियम नहीं है। हरिनाम प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक समय लिया जा सकता है।

सभी भक्त—जय शचीनन्दन ! जय पतित-पावन ! जय अनाथ-नाथ !

निमाई—तुम जितना कर सको, हरिनाम जप करो। नाम यह है—

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'

(कोई भक्त गान करता है)

गान

जय शचीनन्दन !

करुणा करिये दासे करो हे स्मरण।
तुमि आमार, आमि तोमार,
भुलिऊ मोर मन।
तव बदन-कमल, परिमले टलमल,
कोटि इन्दु सुशीतल, भुवन उज्ज्वल,
देहि चरण-कमल-मधु-पान।
तव बदन-चन्द्रमा, शारद पूर्णिमा,
छार चाँद कि उपमा, बलरामे दाओ हे क्षमा,
देहि देहि भक्ति-दान। *

(गानके समय प्रभुका लज्जित-भावसे बैठे रहना)

सभी भक्त—हरि हरि बोल !

निमाई—तुम मुझे लज्जित क्यों करते हो ?

(श्रीधरका लौकी लेकर प्रवेश; और लौकी रखकर प्रभुको प्रणाम)

निमाई—कौन श्रीधर ! इतनी रातमें लौकी !

श्रीधर—खाली हाथ दर्शन करने कैसे आता प्रभु ! और कुछ नहीं बन सका, इसलिये लौकी ही ले आया।

निमाई—रात अधिक हो गयी है, जाओ घर जाओ। (स्वगत) श्रीधरका द्रव्य नष्ट नहीं होना चाहिये। अभी रातमें ही लौकीका भोग लगेगा। (प्रकट) माँ, दूध-लौकी मिल गये, खीर बनाओ। और माँ, मेरे लिये हार कैसा बनाया है, मुझे दिखाया नहीं; उसे लेती आना तथा श्रीअद्वैत आचार्यने शान्तिपुरसे जो धोती भेजी है, उसे भी लेती आना।

शची—(प्रसन्नतासे) जाती हूँ, बहूसे खीर बनानेको कहती हूँ; मैं हार और धोती लाती हूँ। निमाई अभी पहनेगा, मैं देखकर नेत्र शीतल करूँगी। (प्रस्थान)

(श्रीधर गान करते हैं)

गान

ए तरंगे कूल दाओ गोरा गुणमनि !
कूले कूले भेशे बेड़ाइ,
कोथा ओहे दयामय,
धरो-धरो, दाओ-दाओ, चरण-तरणी॥*

(शचीका प्रवेश)

शची—यह लो धोती और हार ! अभी पहनो। मैं नेत्र भरकर देखूँ !

निमाई—(वस्त्राभूषण पहनते हुए) हाँ, पहनता हूँ माँ ! (स्वगत) नहीं तो तुम्हारे मनमें बड़ा दुःख होगा। (पहनकर) देखो कैसा लगता हूँ, माँ ! लेकिन इसे पहनकर बाहर जानेसे लोग हँसेंगे।

---

* (पद्यानुवाद) हे श्रीशचीनन्दन ! आपकी जय हो। मैं यह भूल गया हूँ कि आप मेरे हैं और मैं आपका हूँ। कृपाकर इस दासको स्मरण करते रहिये। आपका मुख-कमल सुगन्धसे परिपूर्ण है, वह करोड़ों चन्द्रोंके समान सुशीतल है तथा उससे समस्त विश्व प्रकाशित होता है। कृपाकर मुझे अपने चरण-कमलोंका मधुपान करने दीजिये। आपका श्रीमुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है, नहीं, नहीं; वह बेचारा चन्द्रमा आपके मुखकी क्या समता करेगा ! मुझे इस मिथ्या उपमा देनेके लिये क्षमा कीजिये और अपनी भक्तिका दान कीजिये।

* (भावानुवाद) हे गुणमणि गौर ! इस भवसागरकी तरङ्गोंसे निकालकर मुझे आश्रय प्रदान कीजिये। मैं भवसागरमें डूबा जा रहा हूँ, कहीं भी किनारा नहीं मिल रहा है। हे दयामय ! आप कहाँ हैं ? कृपाकर मुझे अपनी श्रीचरण-नौकाका आश्रय प्रदान कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शची–क्यों, तू अब बच्चा तो नहीं है। नवद्वीपमें तुझे शिशु-अध्यापक कहते हैं। भोजन तैयार है, रात्रि अधिक हो गयी है, शीघ्र आहार कर ले और सभीको विदा दे!

(सभीका प्रस्थान)

(२)

(निमाईका शयनकक्ष, पलँगपर निमाई बैठे हैं)

निमाई–(स्वगत) हार धारण कर लिया और धोती भी; दो-चार घड़ियोंके बाद संसार-त्याग करना है। यदि यह सब पहनकर न जाता तो माँके मनमें यही बड़ा दुःख रहता कि मैंने इस नयी वस्तुका एक भी दिन उपभोग नहीं किया। विष्णुप्रियासे पहले ही विदा ले चुका हूँ। शेष रात्रिमें गृह-त्याग करूँगा। यह वह नहीं जानती। कोई भी नहीं जानता। आज मैं प्रेम-तरङ्गें उछालकर विष्णुप्रियाको आनन्द-सिन्धुमें डुबा दूँगा। आज युवती स्त्रीके युवा पतिके रूपमें उसके साथ क्रीड़ा करूँगा। लोग मुझपर आक्षेप करेंगे कि उसे सदाके लिये त्यागनेके समय ऐसी प्रीति क्यों बढ़ायी! इससे तो उसका विरह-दुःख और भी बढ़ा! इसमें संदेह नहीं, मेरे इस रात्रिके व्यवहारसे उसकी विरहाग्निमें वृद्धि होगी, किंतु वह मुझे बिल्कुल भूल जाय, यह तो ठीक नहीं। मेरे प्रति उसकी प्रीति जैसे भी बढ़े, वही करना तो मेरा कर्तव्य है। स्त्रीके लिये उचित है कि वह स्वामीकी मूर्तिको अपने मानस-पटलसे एक मुहूर्तके लिये भी दूर न करे। फिर मेरा विरह तो जीवके लिये, विशेषतः विष्णुप्रियाके लिये बहुमूल्य धन है।

(पुष्पहार, चन्दन आदि सामग्री लेकर विष्णुप्रिया देवीका प्रवेश कर शयनगृहके कपाट बंद करना)

निमाई–(सहास्य) आओ, आओ प्रिये! मेरी प्राणप्रिये!

विष्णु०–आज इतना आदर, इतना सम्मान देखकर मुझे भय लगता है। तुम सदा शयनगृहमें आते समय भाव-विह्वल रहते थे और मेरे प्रति लक्ष्य न कर केवल 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर रोने लगते थे। आज मेरे भाग्यको क्या हो गया है?

निमाई–देखो, मेरे मनमें बहुत दिनोंसे एक इच्छा थी, आज उसे पूर्ण करूँगा; तभी इतना आदर कर रहा हूँ। आज मैं तुम्हें सजाऊँगा।

विष्णु०–क्या पुरुष भी सजाना जानते हैं? अच्छा, तुम मुझे सजाना, किंतु पहले मुझे सजाने दो।

निमाई–अच्छा तो सजाओ।

विष्णु०–अजी, तुमने यह दिव्य हार, दिव्य धोती कहाँ पायी?

निमाई–तुम नहीं जानतीं? माँने मेरे लिये हार तैयार किया है और धोती श्रीअद्वैत आचार्यने शान्तिपुरसे भेजी है।

विष्णु०–सुना तो था; किंतु दिन-रात मुझे देखनेका अवकाश कहाँ? अतिथि-सेवा, कितना भोजन बनाना पड़ता है; यह तुम क्या जानते हो? यह हार मुझे दो, मैं ठीकसे पहना दूँगी।

निमाई–पहले तुम्हें पहना दूँ। (हार पहनाना) यह हार तो तुम्हारे लिये है, पुरुष क्या हार पहनते हैं? और फिर मैं कोई बालक थोड़े ही हूँ!

विष्णु०–आज ही हो गये बड़े प्रवीण और वृद्ध! चौबीस वर्षके भी तो नहीं, और अभीसे वृद्ध!

(अपने गलेसे हार उतारकर स्वामीके गलेमें पहनाना)

निमाई–यह क्या करती हो, मुझसे हार बदल लिया; तब तो तुम मेरी हो गयीं!

विष्णु०–तो पहले किसी औरकी थी?

निमाई–यह क्या पता?

विष्णु०–तुम्हारा यह भाव देखकर सुख तो नहीं, उलटा भय होता है। तुम्हें इस तरह कभी नहीं देखती थी। मैं तो तुम्हें ईश्वर समझती थी, पास आते भी भय लगता था।

निमाई–तुम्हें भय खाती जानकर कहीं काट न लूँ! क्यों, सजाया नहीं?

विष्णु०–सजाती हूँ। कैसा सुन्दर मुख, कैसी सुन्दर छवि! (श्रीनिमाईको सजाना)

निमाई–अब मेरी बारी है। (विष्णुप्रियाको सजा और उनके हाथमें दर्पण देकर) देखो, कैसा सजाया है?

विष्णु०–(दर्पण लेकर पहले निमाईको देते हुए) पहले तुम देखो, तुम्हें कैसा सजाया है?

निमाई–तुम्हारे रूप-वर्णनमें एक पद रचा है। मैं गाता हूँ, तुम नृत्य करो।

विष्णु०–स्त्री होकर नृत्य करूँ! यह क्या?

निमाई–क्यों, मैं जब बाहर कीर्तनमें नृत्य करता हूँ, तब तुम भी तो यहाँ नृत्य करती हो?

विष्णु०–तुमने कैसे जाना? उस समय क्या तुम्हें ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है । उस समय तो सभी लोग अपनेको खो देते हैं। ज्ञानशून्य होकर जैसे-जैसे तुमलोग कृष्ण-कृष्ण कहकर नृत्य-कीर्तन करते हो, मैं भी उसीके साथ-साथ नृत्य करती हूँ ।

निमाई—तो तुम दोहारकी करो, मैं गाता हूँ । टेक है—'चाँदबदनी धनी मृगनयनी !'

विष्णु०—क्या कहते हो, मुझे लज्जित करते हो !

निमाई—मेरे सामने लजाती हो, बड़ा अन्याय है ।

विष्णु०—तुमने मेरी लज्जा नष्ट कब की । जब कभी मेरे पास आये, स्वामीके रूपमें आये और मैंने प्रणाम किया ।

निमाई—अच्छा, पद सुनो—

सलाजनयनी बाला मुख नाहिं तोले[1] ।
पड़िले[2] पड़िल भ्रमर पद्ममधु भोले[3] ।
हिङ्गुले[4] रंजित ठोंटे[5] काँपे मृदु मृदु ।
प्रेम-सरोवर आँखि झरे बिन्दु बिन्दु ।
नयनेर तारा आध पद्मदले[6] ढाका ।
जनमेर मत हियार माझे रहल आँका ।[1]
नानाभाव खेले मुखे चंचल चपल ।[2]
कठिन पुरुष आमाय करिले पागल ।[2 अ]
विष्णुप्रिया-आज्ञा पेये[3] बलाइ[4] माला गाँथे[5] ।
अंजलि करिया दिल प्रियाजीर हाते ।[6]

तुम्हारे नेत्र निद्रासे भर आये हैं, आओ शयन करो ।

विष्णु०—नहीं, मैं नहीं सोऊँगी ।

निमाई—(स्वगत) तो फिर मैं कैसे सोऊँ ! (प्रकाश्यमें) आओ, शयन करें । बत्ती कुछ कम कर दो, जिससे बिल्कुल अँधेरा न हो जाय ।

विष्णु०—नहीं, मैं नहीं सोऊँगी ।

निमाई—क्यों, कष्ट होगा ! क्यों नहीं सोओगी ?

विष्णु०—तुम्हारा भाव देखकर लगता है कि तुम आज रात्रिमें मुझे छोड़कर चले जाओगे । तभी तो इतना आदर है । नहीं, मैं नहीं सोऊँगी !

निमाई—(स्वगत) बड़ी कठिनाई है । (प्रकाश्यमें) अच्छा आओ, हम दोनों सोयेंगे ।

विष्णु०—मैं बिल्कुल नहीं सोऊँगी । सो गयी तो धोखा देकर चले जाओगे ।

निमाई—(स्वगत) तो क्या जीवोद्धार नहीं होगा ! हठ-पूर्वक सुलाना होगा । (प्रकाश्यमें) शयन करो, शयन करो । (दृढ़तासे) मेरी आज्ञासे शयन करो, अभी शयन करो ।

विष्णु०—यह क्या, मेरी आँखें नींदसे भर आयीं । मैं नींद-को नहीं हटा सकती । (हाथ जोड़कर) हे निद्रादेवी ! मुझे क्षमा करो । क्षमा न करोगी, तो प्रभु मुझे छोड़ जायेंगे । क्यों, क्षमा न करोगी ? तो तुम नारी-हत्याके लिये जिम्मेवार होओगी ।

निमाई—प्रिये ! तुम ठीक समझती हो, मैं अभी जाऊँगा । निद्रादेवीको जो तुम शाप दे रही हो, वह उन्हें नहीं लगेगा; क्योंकि मेरे जानेका उद्देश्य है—जीवोद्धार । प्रिये ! स्मरण रक्खो, तुम्हारे कष्टमें जीवोंका मङ्गल है ।

विष्णु०—नींदको नहीं हटा सकी, नहीं हटा सकी ! निद्राने चेतनाहीन कर दिया । अच्छा तो आओ, तुम्हें हृदयसे लगाकर भुजाओंमें बाँधकर सोऊँगी ।

(निमाईको गाढ़ालिङ्गनकर पलंगपर गिरना)

(कुछ समय बाद निमाईका धीरे-धीरे उठना, अपनी बगलका तकिया विष्णुप्रियाके पैरोंके नीचे तथा सिरका तकिया उनकी गोदके पास रखना । फिर स्वर्णहार खोलकर रखना और सूक्ष्मवस्त्र उतारकर मलिन वस्त्र धारण करना । तत्पश्चात् प्रियाके कपोल चूमकर बत्ती बुझाकर शयनगृहके कपाट खोलना और धीरेसे बाहर निकल जाना । *)

विष्णु०—(चकित हो उठकर) क्या प्रभु ! (स्वामीको पलंगपर न देखकर पलंगपर हाथ फैलाना और प्रभुको न पाकर रो उठना तथा सिर पीटना) क्यों प्रभु, तुम कहाँ गये ?†

---

१. उठाती । २. गिर पड़ा । ३. (के) भ्रमसे । ४. लालीसे । ५. अधर । ६. नेत्रोंका अर्द्ध पद्मदलसे ढका हुआ है ।

१. जन्मभरके लिये (यह स्वरूप) हृदयमें अङ्कित हो गया है । २. चञ्चल चपल मुखपर विभिन्न भाव प्रकट होते रहते हैं । २ अ. मैं बड़ा कठोर हृदयवाला हूँ, पर मुझे भी उन्होंने अपनी रूप-सुधाका पान करा पागल कर दिया है । ३. पाकर । ४. ग्रन्थकार-का श्रीगुरुदत्त नाम बलरामदास । ५. गूँथता है । ६. और वह माला । अञ्जलिमें लेकर विष्णुप्रिया देवीके हाथोंमें अर्पित की ।

* निद्रिता श्रीविष्णुप्रियार श्रीदामचरणे ।
पाश्वोपधानपरि करिया रक्षणे ॥
वक्षस्थले निज गंड उपाधान दिया ।
बाहिर हइल गोरा द्वार उद्घाटिया ॥
—श्रीवंशीशिक्षा

† एथा विष्णुप्रिया, चमकि उठिया,
पालङ्के बुलाय हात ।
प्रभु ना देखिया, उठिल काँदिया
शिरे मारे कराघात ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार खोलकर देखूँ। (कमरेसे निकलकर) क्यों, यहाँ भी तो नहीं हैं, तो क्या गये ? (पुनः कमरेमें आ बत्ती जलाकर) यह कण्ठहार पड़ा हुआ है, नयी धोती भी पड़ी है। दूसरी धोती पहनी है। कहाँ गये ? ओ माँ ! उन्होंने कहा था न पहले कि 'मैं गृह-त्याग करूँगा !' ठीक, समझी, उन्होंने इतना ही कहा था कि अभी जाऊँगा। तब वे निश्चय ही मुझे छोड़ गये। हा श्रीकृष्ण ! दुखियाके साथी ! यह क्या हुआ ? वे निश्चय ही चले गये। समझी, तभी इतना प्रेम ! अब समझी, जीवनभरको विदा होनेके लिये एक सुखकी रात्रि देकर मुझे इतने सुखमें डुबोया था। मेरी ओर जो देखा, वह दृष्टि नहीं गुप्त रोदन था। नेत्रोंमें हँसी थी, पर हृदयमें पीड़ा। (धीरे-धीरे शचीके कमरेके पास जाकर कपाटोंमें धक्का देना) माँ, उठो, उठो ! ओ माँ।

शची—(कपाट खोलकर) कौन, बहू माँ ! निमाई तो ठीक है ?

विष्णु०—मुझे नींद आ गयी थी, जगनेपर देखा तो कमरेमें नहीं हैं। * जो धोती पहने थे, वह पड़ी हुई है और गलेका हार भी। पता नहीं मेरे सिरपर वज्रपात कर वे कहाँ चले गये ?'

शची—(शीघ्रतासे बत्ती जलाकर विष्णुप्रियाके साथ घरसे बाहर आना) यह घरका द्वार खुला हुआ है। ओ निमाई, ओ निमाई ! तू कहाँ चला गया ? अरे निमाई ! लौटकर घर आ। निमाई, ओ निमाई मेरा बेटा !† मैं तेरे संकीर्त्तनमें बाधा नहीं दूँगी। (विष्णुप्रियासे) बेटी ! राजमार्गपर तुम्हारा चलना ठीक नहीं; मैं बाहर द्वारपर बैठी हूँ, तुम भीतर जाओ। (विष्णुप्रियाका भीतर जाना) ईशान, इधर आओ। मेरा हृदय फट रहा है। (ईशानका प्रवेश और उपवेशन; शचीका ईशानके सहारे बैठना) ओ ईशान ! (संकेतसे बताना कि निमाई चला गया है)

(प्रातः गङ्गास्नान कर श्रीनिमाईके दर्शनार्थ श्रीवासका प्रवेश)

श्रीवास—माँ, बाहर द्वारपर क्यों ?

(शचीका संकेतसे बताना कि निमाई चले गये हैं)

(क्रमशः निताई एवं अन्यान्य भक्तोंका प्रवेश *)

निताई—क्या बात है ?

शची—भाई, मैं कुछ नहीं जानती। मेरा घर धन-धान्यसे भरा है, तुम सब उसे भोगो; मैं गङ्गामें प्रवेश करूँगी, तुम मुझे रोकना नहीं। निमाई चला गया है !

श्रीवास—घबरा क्यों रही हो। कैसे जाना कि उन्होंने बिल्कुल ही गृह-त्याग कर दिया ? कुछ स्थिर होओ, हम सब परामर्श करते हैं। (निताईके प्रति) आओ, हम सब एक ओर बैठें। (कुछ दूर जाकर) श्रीपाद ! आपका क्या विचार है ?

निताई—और क्या विचार होगा ? जो होना था; हो चुका। मेरे विचारमें तो प्रभुने गृह-त्याग किया है।

श्रीवास—मुझे भी यही लगता है। हम सबको भी संसार त्यागकर उनका अनुगामी होना चाहिये। फिर भी, एक बार उनकी खोज करना कर्तव्य है। जिन-जिन स्थानोंमें संन्यासके क्षेत्र हैं, उन सबका स्मरण करो। मैं क्षेत्रोंका विभाग किये देता हूँ। प्रत्येक क्षेत्रपर उन्हें खोजनेके लिये चार-पाँच व्यक्ति जाने चाहिये।

निताई—परंतु सबसे पहले कटवा देख लेना चाहिये। एक दिन प्रसंगवश प्रभुने मुझसे कहा था कि मैं कटवा नगरमें केशव भारतीसे संन्यास ग्रहण करूँगा। मैं कुछ जानकार

---

* शचीर मन्दिरे आसि, दुयारेर पाशे बसि-
धीरे धीरे कहे विष्णुप्रिया।
शयन-मन्दिरे छिलो, निशाजोगे कोथा गेलो,
मोर मुंडे बजर पाड़िया।

† गौराङ्ग जागये मने, निद्रा नाहिं दु नयने
शुनिया उठिल शची माता।
आलू थालू केशे धाय, बसन ना रहे गाय,
शुनिया बधूर मुखे कथा।
त्वरिते ज्वालिया बाती, देखिलेन इति उति,
कोन ठाँइ उद्देश्य ना पेये।
विष्णुप्रिया बधू साथे, काँदिते काँदिते पथे,
डाके शची निमाइ बलिये।—श्रीबासुघोष।

* सकल महान्त मेलि, सकाले सिनान करि,
आइल गौराङ्ग देखिवारे।
गियाछे गौराङ्ग छाडि ! विष्णुप्रिया आछे पड़ि,
शची कान्दे बाहिर दुयारे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियोंके साथ वहाँ जा रहा हूँ। चलो शची माँसे कह आवें। (शची माँके पास आकर) 'प्रभु कहाँ गये हैं, शायद मैं जानता हूँ। मैं जा रहा हूँ। आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि उनको आपसे मिला दूँगा। देवी विष्णुप्रिया कहाँ है ?'

ईशान—यह अपने पलंगके नीचे चेतनाहीन पड़ी हैं।

निताई—अच्छा, उनसे कह देना, मैं प्रभुको लेने जा रहा हूँ। (सभीका प्रस्थान)

(क्रमशः)

अमोह

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'मेरा पुत्र ही सिंहासनासीन हो, यह मोह है वत्स !' आज सातवीं बार कुलपुरोहित समझा रहे थे मद्राधिपतिको—'सम्पूर्ण प्रजा ही भूपतिके लिये अपनी संतान है और उसकी सुरक्षा संदिग्ध नहीं रहनी चाहिये।'

मद्रनरेशके कुमार बाल्यकालसे कुसंगमें पड़ चुके थे। वे उग्रस्वभावके तो थे ही, दुर्व्यसनोंने उन्हें अत्यधिक लोक-अप्रिय बना दिया था। प्रजा चाहती थी कि उत्तराधिकारी कुमार भद्रबाहु हों, जो मद्रनरेशके भ्रातृ-पुत्र थे; किंतु पिताकी ममता भी दुर्बल कहाँ होती है !

'तुम क्या अपने त्यागका सुफल प्राप्त कर सकोगे, यदि तुम्हारे ही कर्म तुम्हारी प्रजाको संतप्त करें ?' कुलपुरोहितने गम्भीरतापूर्वक समझाया—'अरण्यका तपस्वी जीवन तुम्हें कैसे शान्ति देगा जब तुम्हें यह समाचार मिलेगा कि तुम्हारा पुत्र प्रजाको उत्पीडित कर रहा है।'

'उत्तरदायित्व मनुष्यको स्वयं संयत कर देता है।' मद्रपतिने तर्क उपस्थित किया—'उसे अवसर ही न मिले, इतना कठोर निर्णय आप करेंगे, ऐसी सम्भावना नहीं थी।'

'मैं नहीं चाहता था कि मेरे किसी वाक्यसे इस समय तुम्हें क्षोभ हो।' कुलपुरोहितका स्वर गद्गद हुआ। राज्यका त्याग कर तारुण्य एवं वार्धक्यकी संधिमें ही जो यजमान तपका पावन-पथ स्वीकार करके वनवासी होने जा रहा हो, उसे क्लेश देना ब्राह्मणको कैसे अभीष्ट हो सकता है। मैं चाहता था कुमारका भी मङ्गल और तुम्हारा भी।'

'कुमारका मङ्गल ?' महाराज समझ नहीं सके थे कुलपुरोहितका तात्पर्य।

'बेनका चरित तुम जानते हो। उत्पीडित प्रजाकी सहनशक्ति जब समाप्त हो जाती है, उसके असंतोषसे ध्वंसका अट्टहास उठता है और'—अत्यन्त गम्भीर स्वर था—'अरण्यगमनसे पूर्व यदि नव-तापस मोहको मनसे दूर न कर चुका हो तो उसका तप अनेक बार उसे आबद्ध करनेकी शृंखलाओंका सृजन करता है। तप संकल्पको सबल बना देता है और आसक्ति उसे अनर्थकी दिशामें उन्मुख नहीं कर देगी, कैसे कहा जा सकता है।'

'श्रीचरणकी आशङ्का अनाधार नहीं होगी; किंतु·····।'

'मोह मानता नहीं, यही तो कहना चाहते हो ?' महाराजके वाक्यको कुलपुरोहितने सम्पूर्ण किया।

'आशङ्काकुल चित्तने सदा इन चरणोंमें समाधान पाया है।' पुरोहित और गुरुके पास भी यदि यजमानके मनके दौर्बल्यको दूर करनेका यत्न न हो तो उनका पौरोहित्य किस कामका। मद्रनरेशने जब स्वीकार कर लिया कि वे अपने मोहकी विवशता अनुभव करते हैं, अब उत्तरदायित्व कुलपुरोहितपर आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं रात्रिके प्रथम प्रहरान्तमें पुनः राजसदन आऊँगा।' दो क्षण मौन रहकर कुलपुरोहितने कुछ निश्चय कर लिया और वे उठ खड़े हुए।

× × ×

'अब हम दोनोंके मध्य यह एक सुकुमार प्राणी आ गया है।' एक नारीकण्ठ किसीसे कह रहा था—'यह इस कठोर शीतको कैसे सह सकेगा।'

'मैं भी कई दिनोंसे यही सोच रहा हूँ।' पुरुष-स्वरने कहा—'तुम तनिक और खिसक आओ और मैं भी समीप हो जाता हूँ। हमारे शरीरोंकी गरमी इसे ठंडसे बचायेगी।'

'नहीं, तुम तनिक दूर ही रहो।' नारीस्वर कह रहा था—'तुम इसके सुकोमल हाथ-पैरोंको कुचल डालोगे। निद्रामें कितने सावधान रहते हो, यह मुझे पता है।'

बहुत पुराना वृक्ष था वटका। वह फैलता रहा, शाखाओंसे जटाएँ फूटकर जड़ें बनती रहीं और वृक्ष बढ़ता रहा। शाखाएँ जीर्ण होकर मध्यसे टूटती गयीं। नवीन वृक्ष बनते गये। अब लगभग कोसकी चौथाई भाग भूमि वटवृक्षकी परम्पराने घेर ली है। ग्रीष्ममें शीतल छाया और शीतमें उष्णता देनेवाला यह अकिञ्चनोंका सखा—भिक्षुकोंके एक पूरे समूहने आश्रय ले रक्खा है यहाँ।

पतली टेढ़ी-सीधी लकड़ियाँ भूमिमें गाड़कर उनके चारों ओर जीर्ण वस्त्र लपेट लिये गये हैं और एक घेरा बन गया है। इसे आप घर समझें, झोंपड़ा समझें, डेरा समझें—भिक्षुकका यही राजसदन है। उसका पूरा परिवार उसके चिथड़े और मिट्टीके घड़े-सकोरे-ठीकरे सब इसी घेरेमें आश्रय पाते हैं।

वटवृक्षके नीचे थोड़ा-थोड़ा स्थान छोड़कर अनेक घेरे हैं जीर्ण वस्त्रोंके। रात्रिका अन्धकार वटकी छायाके नीचे और भी सघन हो गया है। भिक्षुकोंके घेरोंमेंसे अधिकांशमें द्विपाद प्राणी पेटमें घुटने दबाये सिकुड़े सो गये हैं या सो जानेके प्रयत्नमें हैं। केवल कुछ घेरोंमें कभी-कभी फुसफुसाहट होती है।

'मैंने देखा है कि आज कहींसे वह बूढ़ा मंडल एक कम्बल ले आया है।' उसी घेरेमेंसे पुरुष-स्वर फुसफुसाहटमें कह रहा था—'वह है तो छोटा और फटा हुआ ही किंतु·····।'

'मैंने देखा है। अपने मुन्नेपर दुहरा आ जाय इतना बड़ा है।' नारी-स्वर फुसफुसाया 'किंतु मंडल पूरा कृपण है। अपने सब चिथड़ोंके बदले भी देगा नहीं।'

'उससे माँगता कौन है?' पुरुष-स्वर फुसफुसाया—'थोड़ी देर और रुको और फिर····।' भीतर कोई बात संकेतमें कही गयी।

'नहीं, नहीं!' नारी-स्वरमें कुछ कम्प था भयका।

'उहँ, उसे वैसे भी अबतक मर जाना चाहिये था।' पुरुष-स्वरने उपेक्षापूर्वक कहा—'जीकर कौन-से सुख भोगने हैं उसको और अपना मुन्ना····।'

लगता था कि नारीने प्रस्तावको मौन स्वीकृति दे दी। इसी समय दो पुरुषाकार छाया-मूर्तियाँ उस घेरेके समीपसे हटीं और वटवृक्षकी सघनतासे बाहर आकर उनमेंसे एकने दूसरेसे कुछ कहा।

एक और व्यक्ति थोड़ी दूर दो घोड़े पकड़े खड़ा था। दोनों छायामूर्तियोंमेंसे एकने उस घोड़े पकड़नेवालेको कोई आदेश दिया और वे दोनों घोड़ोंपर बैठ गये। घोड़ा पकड़नेवाला वटवृक्षकी छायामें अदृश्य हो गया।

× × ×

'मैं कर्तव्यच्युत होता यदि श्रीचरण मुझे वहाँ न ले जाते।' मद्रनरेश राजसदनमें लगभग अर्ध रात्रिको अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकान्त कक्षमें राजपुरोहितके चरणोंके समीप बैठे थे—

'वृद्ध भिक्षुककी प्राणरक्षा किसी प्रकार न हो पाती। किंतु इस दुरवस्थामें भी यह पाप-संकल्प ?'

'वे अनेक शीतकाल इसी प्रकार व्यतीत कर चुके हैं। उन्हें अब भी अपने लिये कम्बलकी आवश्यकता नहीं है।' राजपुरोहितने कहा—'लेकिन, इस शीतकाल-के प्रारम्भमें उनके मध्य एक सुकुमार प्राणी आ गया है। वे दण्डके पात्र नहीं हैं।'

'उस सुकुमार प्राणीको, उन्हें, और सभी भिक्षुओंको पूरे वस्त्र कल प्रातः मिल जायँगे।' नरेशने खिन्न स्वरमें कहा—'उनके प्रति अपने कर्तव्यकी उपेक्षाका मुझे खेद है। उनके आवासकी व्यवस्था राज्य करेगा; किंतु इस दरिद्रतामें भी दाम्पत्य और हिंसाको उद्यत मोह····।'

'राजन्! वे अपनी उदर-ज्वालाको ही पूर्ण नहीं कर पाते। उनके समीप शीत-निवारणके लिये पर्याप्त चिथड़े तक नहीं। विचारका उदय हो, इसके लिये अवकाश कहाँ है उनके समीप। किंतु।' स्वर अत्यधिक गम्भीर हो गया—'जहाँ अवकाश है, जहाँ शास्त्रका अध्ययन एवं श्रवण है, वहाँ भी मोह कहाँ कम दुर्बल रहता है ? वहाँ भी विवेकको कहाँ अवकाश देता है वह ?'

'देव!' नरेशने कातर भावसे मस्तक रख दिया ब्राह्मणके चरणोंपर।

'केवल तुम्हारा विवेक ही तुम्हारे मोहको दूर कर सकता है।' राजपुरोहित अब स्वस्थ स्वरमें बोल रहे थे—'तुम उचित समयपर तप करने जा रहे हो; किंतु तपका अर्थ है देहसे ऊपर उठना। देह मैं नहीं हूँ, देह मेरा नहीं है—यह समझ तपसे न आवे तो तप सिद्धियों-के बन्धनमें बाँधेगा अथवा भोगेच्छाके प्रलोभन उसे भङ्ग कर देंगे।'

'देह और मैं!' नरेश गम्भीर हो गये।

'मैं देह हूँ, यह अभिनिवेश ही शोक और मोहकी जड़ है। तुम देह नहीं हो तो तुम्हारा पुत्र कहाँसे आया ?' राजपुरोहितकी दृष्टि नरेशके मुखपर स्थिर हो गयी—'जीव किसीका पिता-पुत्र नहीं हुआ करता। सम्बन्ध सब देहका है, जडका है और उसमें ममत्व तुम्हें जडके साथ अवश्य बाँध रक्खेगा। तुम कौन हो—देह या चेतन आत्मा ? विचारको उद्बुद्ध होने दो और वह मोहको नष्ट कर देगा।'

'मैं देह ?' राजपुरोहित मौन हो गये थे और नरेश-के हृदयमें मन्थन चलने लगा था। विवेक केवल बौद्धिक तर्क नहीं है, वह प्रकाश है और जब वह अन्तःकरणमें अनन्त-अनन्त जन्मोंके पुण्यसे कभी प्रकट हो जाता है—अन्धकारकी युगयुगीन राशि प्रकाशकी नन्हीं किरण-को भी श्रीहीन करनेमें कभी समर्थ नहीं हुई।

'मैं देह नहीं हूँ।' महाराजने मस्तक उठाया और पुनः श्रद्धासमन्वित उसे राजपुरोहितके चरणोंपर रक्खा।

× × ×

प्रातःकाल मद्र-प्रजाने शोकाकुल चित्त सुना—महाराज रात्रिमें ही अरण्य जा चुके हैं। परम साध्वी महारानीने पतिका पदानुसरण किया। महामन्त्रीको आदेश है—'कुमार भद्रबाहुको सिंहासन दे दिया जाय और राजकुमार यदि कुलगुरुके निर्देशमें रहना न स्वीकार करें तो उन्हें राज्यसे निर्वासन-दण्ड दिया है स्वयं महाराजने।'

मैं केवल प्रभुमय ही हो रहा हूँ

मेरे प्रभुकी कृपासे अब मुझे सदा-सर्वत्र प्रभुकी ही रूप-माधुरीके दर्शन, प्रभुका ही परम सुख-रसमय स्पर्श, प्रभुकी ही स्वर-लहरीका श्रवण, प्रभुके ही मधुरतम अङ्ग-सुगन्धका पावन गन्ध और प्रभुके ही महान् प्रसादका विशुद्ध अमृतमय रस प्राप्त होता है। कभी-कभी तो संसार रहता ही नहीं। जब रहता है, तब भी केवल प्रभुका लीलारूप होकर ही। इस प्रकार मैं केवल प्रभुमय ही हो रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम त्यागी गोस्वामी रघुनाथदास

सच्चे महात्मा श्रीरघुनाथदासका जन्म आजसे लगभग चार सौ वर्ष पूर्व बंगालके श्रीकृष्णपुर नामक स्थानमें सप्तग्रामके बहुत बड़े जमींदार श्रीगोवर्धनदासके घर हुआ था। गोवर्धनदास जातिके कायस्थ थे। राज्यकी ओरसे इन्हें 'मजूमदार' उपाधि मिली हुई थी। इनकी वार्षिक आय थी बारह लाख रुपये। जिस जमानेमें एक रुपयेके कई मन चावल मिलते थे उस जमानेके बारह लाख आजके बारह करोड़के बराबर समझिये। इतने बड़े सम्पत्तिशाली और आमदनीवाले गोवर्धनदासके एकमात्र पुत्र थे रघुनाथदास!

इनके कुलपुरोहित थे श्रीबलराम आचार्य और रघुनाथदासने उन्हींसे विद्या पढ़ी थी। एक समय श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनन्यभक्त श्रीहरिदास बलरामजीके घर आकर ठहरे थे। रघुनाथदास उस समय वहीं थे। श्रीहरिदासजीके मुखसे वहाँ उन्होंने पहले-पहले श्रीचैतन्य महाप्रभुकी महिमा सुनी और श्रीहरिदासको कीर्तन करते हुए प्रेममग्न देखा, तभीसे इनके मनमें भगवान्‌की ओर लगन लग गयी। इन्हें संसारके भोग बुरे मालूम होने लगे और भगवान्‌के विशुद्ध प्रेममार्गमें पहुँचनेके लिये इनके मनमें महाप्रभु चैतन्यके दर्शनकी प्रबल लालसा जाग उठी।

रघुनाथदास अब युवावस्थाको प्राप्त हो गये। अतुल ऐश्वर्यके एकमात्र उत्तराधिकारी थे ये, पर जिनके सामने भगवत्कृपासे भोगोंका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है, जो भोगोंकी विषमयताको जान लेते हैं और भगवान्‌के मधुरतम अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यकी कल्पना जिनके मनमें परम विश्वासके साथ जम जाती है, उन्हें ये भोगबहुल घर-द्वार कैसे अच्छे लग सकते हैं? उनका मन कैसे इनमें रम सकता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
(२।२२)

'इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले ये जो भोग हैं, वस्तुतः दुःखकी उत्पत्तिके स्थान और आदि-अन्तवाले हैं, अतएव अर्जुन! बुद्धिमान् पुरुष इनमें रमण नहीं करता।'

रघुनाथदासके मनमें भोगोंकी परिणाम-दुःखमयता तथा असारताका प्रत्यक्ष हो रहा था, इससे उसका जीवन सर्वथा विरक्त-सा रहने लगा। विषयीकी दृष्टिमें जो आनन्दकी वस्तु है, वही विषय-विरागीकी दृष्टिमें भयानक और त्याज्य होती है। यही दशा श्रीरघुनाथदासकी थी। पिता गोवर्धनदासने पुत्रकी ऐसी मनोदशा देखकर एक अत्यन्त सुन्दरी रूप-लावण्यमयी कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया। शील-संकोचवश तथा अन्यमनस्क रघुनाथने विरोध नहीं किया।

कुछ समय बाद रघुनाथदासको पता लगा कि महाप्रभु श्रीचैतन्य शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर पधारे हुए हैं। यह सुनते ही रघुनाथदास शान्तिपुर गये। गोवर्धनदासने पुत्रकी देख-रेख तथा उसे वापस लौटा लानेके लिये विश्वासी पुरुषोंको साथ भेजा। रघुनाथदास महाप्रभुके चरणोंमें उपस्थित हुए। महाप्रभुने उनसे बातचीत की। अभी वैराग्यमें कुछ कचाई मालूम दी, इसलिये बड़े स्नेहसे महाप्रभुने रघुनाथसे कहा—

यों मत पागल बनो, चित्त स्थिर कर जाओ घर।
क्रम-क्रमसे ही तरता है मानव भवसागर॥
उचित नहीं करना मर्कट-वैराग्य दिखाकर।
अनासक्त हो, भोगो युक्त विषय तुम जाकर॥
भीतरसे निष्ठा करो, बाहर जग व्यवहार।
तुरत तुम्हारा करेंगे, कृष्ण चरम उद्धार॥

'भैया! यों पागलपन मत करो, मन स्थिर करके घर जाओ, मनुष्य क्रम-क्रमसे ही योग्यता प्राप्त करके भवसागरसे पार हुआ करता है। लोगोंको दिखाकर मर्कट-वैराग्य नहीं करना चाहिये। अभी तुम घर लौटकर भोगोंकी आसक्ति छोड़कर उचित भोगोंका भोग करो। अंदर भगवान्‌में निष्ठा रक्खो, बाहरसे यथायोग्य जगत्‌का व्यवहार करो, श्रीकृष्ण तुम्हारा शीघ्र ही उद्धार करेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुनाथ घर लौट आये और महाप्रभुके आज्ञानुसार अनासक्त होकर जगत्‌का कार्य करते हुए अपनेको योग्य बनाने लगे। कुछ वर्षों बाद पानीहाटीमें श्रीनित्यानन्द प्रभुका उत्सव चल रहा था। रघुनाथने पानीहाटी आकर उनके दर्शन किये और श्रीचैतन्य-चरणोंकी प्राप्तिके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

रघुनाथ फिर घर लौट आये, पर उनके मनमें व्याकुलता बढ़ती गयी। वे नीलाचल (पुरी) जाकर महाप्रभुके चरण प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त आतुर हो उठे। हृदयमें भयानक व्याकुलता और आँखोंसे निरन्तर बहती हुई सलिलधारा—यही उनका जीवन बन गया। भगवान् जिसको अपने पास बुलाना चाहते हैं, उसके जीवनमें स्वाभाविक ही यह स्थिति आ जाती है। वह फिर सहन नहीं कर सकता—क्षणभरका विलम्ब। अनन्य और तीव्रतम लालसा उसको केवल भगवान्‌की ओर खींच ले जाती है। उसे अपने-आप पथ प्राप्त हो जाता है।

पिताने रघुनाथका सारा भार सौंप दिया था श्रीयदुनन्दन आचार्यको। अतः रघुनाथदास एक दिन रात्रिके समय अपने आचार्यजीके पास गये और उनसे महाप्रभुके पास जानेकी आज्ञा माँगी। गुरुदेवने पता नहीं क्यों, यन्त्र-चालित कठपुतलीकी भाँति कह दिया—'हाँ, जा सकते हो।' बस, फिर क्या था, रघुनाथ उसी क्षण चल दिये। अतुल ऐश्वर्य, अप्सराके समान रूपवती पत्नी, जन्मदाता पिता कोई भी उनको नहीं रोक सके।

पीछेसे लोग आकर कहीं रास्तेमें पकड़ न लें, इसलिये रघुनाथदास सीधा रास्ता छोड़कर गुप्त मार्गसे चले। कहीं घना बीहड़ जंगल, कहीं काँटे-कंकड़से भरी पगडंडी, कहीं भयानक सिंह-बाघोंकी गर्जना, न खाना न पीना, अनजान रास्ता—किसीका कुछ भी ध्यान नहीं है। चले जा रहे हैं नींद-भूख भूलकर। लगातार बारह दिन बीहड़ पथसे पैदल चलकर रघुनाथदास नीलाचल पहुँचे और वहाँ श्रीकाशी मिश्रके घर जाकर महाप्रभुके चरण-दर्शन कर सके। महाप्रभु वहाँ भावुक मण्डलीसे घिरे थे।

महाप्रभुके श्रीचरणोंमें लकुटीकी तरह पड़कर भावाविष्ट रघुनाथने कहा—'प्रभो! मैं श्रीकृष्णको नहीं जानता, इतना ही जानता हूँ कि आपकी कृपाने ही मुझे जालसे निकाला है।' महाप्रभुके दर्शनका आनन्द-रस उमड़कर रघुनाथके नेत्रोंसे पवित्र अश्रुधाराके रूपमें बह चला। उनका शरीर अचेतन होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। महाप्रभुके परिकरके लोग श्रीकृष्णनाम-कीर्तन करने लगे, तब कुछ देर बाद रघुनाथदासको चेत हो आया। महाप्रभुने उन्हें उठाकर जोरोंसे हृदयसे चिपटा लिया। और श्रीस्वरूप गोस्वामीजीसे कहा—'स्वरूप! मैं रघुनाथको तुम्हारे हाथमें सौंप रहा हूँ।' रघुनाथकी वैराग्यमूर्ति देखकर महाप्रभु बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—'भजनका असली आनन्द संयम और वैराग्यके द्वारा ही प्राप्त होता है और संयमी तथा सच्चे विरक्त भक्तोंको ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है—

इत उत जो धावत फिरै रसना-रस बस होय।
पावे नहिं श्रीकृष्ण कौं सिस्नोदर-पर सोय॥'

तदनन्तर श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीरघुनाथदासको पाँच उपदेश दिये—

(१) (भगवच्चर्चाके सिवा) लोकचर्चा, ग्राम्य-कथा न कभी सुनना और न कभी करना।

(२) बढ़िया चीजें न खाना और बढ़िया कपड़े न पहनना।

(३) स्वयं मानरहित होकर सबको मान देना।

(४) सदा श्रीकृष्णनामका जप करना। और

(५) मानस-व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी सेवा करना।

कभी सुनो मत लोकवार्ता कभी करो मत जान असार।
कभी न बढ़िया खाओ बढ़िया पहनो, तजो साज-श्रृंगार॥
स्वयं अमानी मानद होकर कृष्णनाम-जप-गान करो।
मानस व्रजमें लाल-लाड़िलीका नित पूजन-ध्यान करो॥

पाँचों ही उपदेश प्रत्येक सच्चे भक्ति-साधकके लिये आदर्श हैं। नहीं तो मनुष्य परनिन्दा-परापवाद, खाने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहननेके पदार्थोंकी आसक्ति, [illegible] अभिमान, व्यर्थ वार्तालाप तथा असार दुःखमय जगत्के चिन्तनमें लगकर भक्तिसाधनासे सर्वथा गिर जाता है।

उधर रघुनाथदासके पिता गोवर्द्धनदासको जब पता लगा, तब उन्होंने कुछ धन तथा आदमी नीलाचल भेज दिये। रघुनाथकी इच्छा हुई महाप्रभुको महीनेमें दो बार बुलाकर भोजन कराया जाय। इस उद्देश्यसे वे पिताके भेजे हुए धनमेंसे कुछ लेकर उसे महाप्रभुकी सेवामें लगाने लगे। परंतु कुछ ही समयमें रघुनाथ इस बातको जान गये कि महाप्रभु उनके संकोचसे सेवा स्वीकार करते हैं; परंतु उनके मनमें इससे प्रसन्नता नहीं है—तब उन्होंने विचार किया कि 'ठीक ही तो है, अन्नसे ही मन बनता है। विषयीके अन्नसे मन मलिन होता है और मलिन मनसे श्रीकृष्णका स्मरण नहीं होता—

विषयी-जनके अन्नसे होता चित्त मलीन।
मलिन चित्त रहता सदा कृष्ण-स्मृतिसे हीन॥'

इसी क्षणसे रघुनाथदासने महाप्रभुको बुलाकर जिमाना छोड़ दिया और स्वयं भी उस अर्थसे सर्वथा अलग हो गये। शरीर-निर्वाहके लिये वे मन्दिरके द्वारपर बैठकर नाम-कीर्तन करते और भीखमें जो मिल जाता, उसीसे काम चलाते। पर वहाँ भी बड़े आदमीका लड़का समझकर लोग कुछ बढ़िया चीज देने लगे, तब इन्होंने सोचा कि 'मन्दिरके सिंहद्वारपर बैठकर भिक्षा करना तो वेश्याका आचार है।' इसे भी छोड़ दिया।

फिर अयाचक-वृत्तिसे कुछ दिन माधुकरी भिक्षा की। तदनन्तर इसका भी त्याग कर दिया। अब वे मन्दिरके आँगनमें बिखरे हुए, गायोंके प्रसाद खानेपर गिरे हुए, नालीमें प्रसादकी जूठन बहकर उसमें गये हुए सड़े भातके दानोंको बटोरकर उन्हें धोकर उन्हींसे पेट भरने लगे। महाप्रभुको रघुनाथदासकी इस वृत्तिसे बड़ा ही अनुपम आनन्द प्राप्त हुआ। वे एक दिन अचानक पहुँचे और रघुनाथके हाथसे इस महाप्रसादको छीनकर बोले—'रघु! तुम जो यह देवदुर्लभ अन्न प्रतिदिन पा रहे हो, इसके सम्बन्धमें मुझसे तो कभी कुछ नहीं कहा, न मुझे कभी कुछ इसका हिस्सा ही दिया।' महाप्रभुकी यह लीला देखकर रघुनाथ व्याकुल होकर रोने लगे—'अहा, मेरे समान अभागेके उद्धारके लिये ही महाप्रभुने ये सड़े दाने खाये हैं।'

इस प्रकार सोलह वर्ष तीव्र भक्ति-साधना करनेके बाद श्रीमहाप्रभुके अन्तर्धानके बाद श्रीरघुनाथदास वृन्दावनमें 'राधाकुण्ड' पर आ गये। यहाँ इनके जीवनका कार्यक्रम था—

अन्न-जलका त्याग करके ये नियमित दो-चार घूँट मट्ठा लेते। एक हजार दण्डवत् करते, लाख नामका जप करते, प्रतिदिन दो हजार वैष्णवोंको प्रणाम करते। दिन-रात श्रीराधा-माधवकी मानस पूजा करते, एक प्रहर रोज महाप्रभुका चरित्रगान करते, प्रातः-मध्याह्न-सायं तीनों काल श्रीराधाकुण्डमें पवित्र स्नान करते, व्रजवासी वैष्णवोंका आलिङ्गन करते। इस प्रकार साढ़े सात पहर रसमयी प्रेमभक्तिकी साधनामें बिताते। केवल चार घड़ी सोते सो भी किसी-किसी दिन नहीं।

इस प्रकार वैष्णवचूडामणि गोस्वामी श्रीरघुनाथदासने महान् आदर्श दैन्यपूर्ण, तपोनिष्ठ, संयम-नियमपूर्ण, भक्ति-प्रेमप्लावित जीवन बिताकर श्रीराधामाधवका अनन्य प्रेम प्राप्त किया।

करके त्याग अन्न-जल पूरा लेते थोड़ा मट्ठा माप।
एक सहस्र दण्डवत करते, करते लक्ष नामका जाप॥
प्रतिदिन करते दो सहस्र वैष्णव जनको अति नम्र प्रणाम।
करते मानस-सेवन राधामाधवका दिनरात ललाम॥
एक पहर करते प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुका मधु लीला-गान।
तीनों संध्या करते राधाकुण्ड-सलिलमें पावन-स्नान॥
व्रजवासी वैष्णवको करते सदा समुद आलिंगन दान।
साढ़े सात पहर करते यों भक्ति-प्रेम-साधन रसखान॥
चार घड़ी सोना केवल, पर उसमें भी होता व्यवधान।
श्रीरघुनाथदास गोस्वामी वैष्णवाग्र आदर्श महान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गीत

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रचयिता—डा० श्रीहरिवंशरायजी बच्चन, एम्०ए०, पी०-एच् डी०)

अब तुमको अर्पित करनेको मेरे पास बचा ही क्या है ?
दूध कहाँ मेरे बचपनका
और कहाँ जगके परनाले,
इनसे मिलकर दूषित होने-
से ऐसा था कौन बचा ले;
वह था जिससे चरण तुम्हारा
धो सकता तो मैं न लजाता,
अब तुमको अर्पित करनेको मेरे पास बचा ही क्या है ?
यौवनका वह सावन जिसमें
जो चाहे जब रस बरसा ले,
पर मेरी स्वर्गिक मदिराको
सोख गये माटीके प्याले,
अगर कहीं तुम तब आ जाते
जी भर पीते, भीग-नहाते,
रससे पावन, हे मनभावन, विधनाने विरचा ही क्या है ?
अब तुमको अर्पित करनेको मेरे पास बचा ही क्या है ?
अब तो जीवनकी संध्यामें
है मेरी आँखोंमें पानी,
झलक रही है जिसमें निशिकी
शंका, दिनकी विषम कहानी···
कर्दमपर पंकजकी कलिका
मरुथलपर मानस रस-कलकल···
लौट नहीं जो आ सकता है, अब उसकी चर्चा ही क्या है ?
अब तुमको अर्पित करनेको मेरे पास बचा ही क्या है ?
मरुथल, कर्दम निकट तुम्हारे
जाते, जाहिर है, शरमाए,
लेकिन मानस-पंकज भी तो
सम्मुख हो सूखे, कुम्हलाए;
नीरस-सरस, अपावन-पावन
छू न तुम्हें कुछ भी पाता है,
इतना ही संतोष कि मेरा
स्वर कुछ साथ दिए जाता है,
गीत छोड़कर पास तुम्हारे मानवका पहुँचा ही क्या है ?
अब तुमको अर्पित करनेको मेरे पास बचा ही क्या है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत आवश्यक ध्यान रखनेकी बातें

सबसे विनयपूर्वक मीठी वाणीसे बोलना।

किसीकी चुगली या निन्दा नहीं करना।

किसीके सामने किसी भी दूसरेकी कही हुई ऐसी बातको न कहना, जिससे सुननेवालेके मनमें उसके प्रति द्वेष या दुर्भाव पैदा हो, या बढ़े।

जिससे किसीके प्रति सद्भाव तथा प्रेम बढ़े, द्वेष हो तो मिट जाय या घट जाय, ऐसी ही उसकी बात किसीके सामने कहना।

किसीको ऐसी बात कभी न कहना जिससे उसका जी दुखे।

बिना कार्य ज्यादा न बोलना, किसीके बीचमें न बोलना, बिना पूछे अभिमानपूर्वक सलाह न देना, ताना न मारना, शाप न देना। अपनेको भी बुरा-भला न कहना, गुस्सेमें आकर अपनेको भी शाप न देना, न सिर पीटना।

जहाँतक हो परचर्चा न करना, जगच्चर्चा न करना।

आये हुएका आदर-सत्कार करना, विनय-सम्मानके साथ हँसते हुए बोलना।

किसीके दुःखके समय सहानुभूतिपूर्ण वाणीसे बोलना, हँसना नहीं।

किसीको कभी चिढ़ाना नहीं।

अभिमानवश घरवालोंको कभी किसीको मूर्ख, मन्दबुद्धि, नीच वृत्तिवाला तथा अपनेसे नीचा न मानना, सच्चे हृदयसे सबका सम्मान-हित करना। मनमें अभिमान तथा दुर्भाव न रखना, वाणीसे कभी कठोर तथा निन्दनीय शब्दोंका उच्चारण न करना। सदा मधुर विनम्रतायुक्त वचन बोलना। मूर्खको भी मूर्ख कहकर उसे दुःख न देना।

किसीका अहित हो ऐसी बात न सोचना, न कहना और न कभी करना।

ऐसी ही बात सोचना, कहना और करना—जिससे किसीका हित हो।

धन, जन, विद्या, जाति, उम्र, रूप, स्वास्थ्य, बुद्धि आदिका कभी अभिमान न करना।

भावसे, वाणीसे, इशारेसे भी कभी किसीका अपमान न करना, किसीकी दिल्लगी न उड़ाना।

दिल्लगी न करना, मुँहसे गंदी तथा कड़वी जबान कभी न निकालना। आपसमें द्वेष बढ़े, ऐसी किसीको भी कभी सलाह न देना। द्वेषकी आगमें आहुति न देकर, प्रेम बढ़े, ऐसा अमृत ही सींचना।

फैशनके वशमें न होना, कपड़े साफ-सुथरे पहनना, परंतु फैशनके लिये नहीं।

घरकी चीजोंको सँभालकर रखना। इधर-उधर न फेंकना। घरकी चीजोंकी गिनती रखना।

अपना काम जहाँतक हो सके, हाथसे करना। अपना काम आप करनेमें लजाना तो कभी नहीं ही, बल्कि जो काम नौकरोंसे या दूसरोंसे कराये बिना अपने करनेसे हो सकता हो, उस कामको अपने ही करना। काम करनेमें उत्साहित रहना, काम करनेकी आदत न छोड़ना।

किसी भी नौकरका कभी अपमान न करना। तिरस्कारयुक्त छोटी बोलीसे न बोलना।

स्त्रियोंको न तो पुरुषोंमें बैठना, न बिना काम मिलना-जुलना, न हँसी-मजाक करना। इसी प्रकार पुरुषोंको स्त्रियोंमें न बैठना, न बिना काम मिलना-जुलना, न हँसी-मजाक करना।

दूसरोंकी सेवा करनेका अवसर मिलनेपर सौभाग्य मानना और विनम्रभावसे निर्दोष सेवा करना।

खर्च न बढ़ाना, खर्चीली आदत न डालना, अनावश्यक चीजें न खरीदना। अनावश्यक वस्तुओंको संग्रह न करना, दूसरोंकी देखा-देखी रहन-सहनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबूगिरी, खर्च बढ़ानेका काम, दिखानेका काम न करना। बुरी नकल किसीकी न करना।

संतोंके गुण लेना, दोष नहीं।

मनमें सदा प्रसन्न रहना, चेहरेको प्रसन्न रखना, रोनी सूरत न रखना तथा रोनी जबान न बोलना।

जीवनसे कभी निराश न होना। निराशाके विचार ही न करना।

दूसरोंको उत्साह दिलाना, किसीकी हिम्मत न तोड़ना, उसे निराश न करना। किसीको बारबार दोषी बताकर उस दोषको उसके पल्ले न बाँधना।

आपसमें कलह बढ़े, ऐसा कोई काम शरीर-मन-वचनसे न करना।

दूसरोंकी चीजपर कभी मन न चलाना। शौकीनीकी चीजोंसे, जहाँतक बने अलग रहना।

सदा उत्साहपूर्ण, सर्वहितकर, सुखपूर्ण, शान्तिमय, पवित्र विचार करना, निराशा, उद्वेग, अहितकर, विषादयुक्त और गंदे विचार कभी न करना।

दूसरेको नीचा दिखानेका न कोई काम करना, न सोचना और न किसीकी नीची होती देखकर जरा भी प्रसन्न होना। सदैव सभीको सम्मान देना तथा ऊँचे उठते देखकर प्रसन्न होना।

बुरा कर्म करनेवालेके प्रति उपेक्षा करना, उसका सङ्ग न करना, पर उसका बुरा न चाहना। बुरे कामसे घृणा करना, बुरा करनेवालेसे नहीं। उसको दयाका पात्र समझना।

गरीब तथा अभावग्रस्तको चुपचाप, अपनेसे होसके उतनी तथा वैसी सहायता करना, पर न उसपर कभी अहसान करना, न बदला चाहना और न उस सहायताको प्रकट ही करना।

दूसरेसे सेवा कराना नहीं, दूसरोंकी सेवा करना।

दूसरोंसे आशा रखना नहीं, दूसरा कोई आशा रखता हो तो भरसक उसे पूरी करना।

दूसरेसे मान चाहना नहीं, सर्वथा अमानी रहकर दूसरोंको मान देना।

दूसरेके हककी कभी चोरी करनेकी बात ही न सोचना। करना तो नहीं ही।

किसीसे द्वेष न करना, पर बेमतलब मोह-ममता भी न जोड़ना।

कम बोलना, कम खाना, कम सोना, कम चिन्ता करना, कम मिलना-जुलना, कम सुनना।

बढ़िया खाने-पहननेसे यथासाध्य परहेज रखना, सादा खान-पान, सादा पहिराव रखना।

धनकी सात्त्विक दानमें, शरीरकी सेवामें, वाणीकी भगवन्नाम-गुणगानमें, मनकी भगवच्चिन्तनमें, जीवनकी भगवत्प्राप्तिमें, क्रियाकी परदुःखहरण तथा परोपकारमें, समयकी भगवत्स्मरण तथा सेवामें सार्थकता समझना।

कपटका व्यवहार न करना, किसीको ठगना नहीं।

आमदनीसे कम खर्च करना, कम खर्च करने तथा सादगीसे रहनेमें अपमान न समझना, बल्कि गौरव समझना। अपनी आवश्यकता न बढ़ाना।

किसी भी प्रकारके व्यसनकी आदत न डालना।

अतिथिका अत्यन्त विनयपूर्वक निर्दोष यथासाध्य सत्कार करना।

गरीब-परिवारके भाई-बन्धुओंके साथ विशेष नम्रता तथा प्रेमका व्यवहार करना। किसीको अपनी किसी प्रकारकी शान कभी न दिखाना।

हम कमाते हैं और तो सब खानेवाले हैं—यह न कभी कहना, न मानना ही।

विकार पैदा करनेवाला असत्-साहित्य न पढ़ना, चित्र न देखना, बातचीत न करना।

आजका काम कलपर और अभीका पीछेपर न छोड़ना।

स्त्रियोंको चाहिये देवरानी-जिठानीका सम्मान करना, उनके बच्चोंको अपने बच्चोंसे अधिक आदर-स्नेह देना, पतिको ऐसी सलाह देना जिससे घरमें कभी कलह न हो तथा परस्पर प्रेम बढ़े, सासकी सेवा-सम्मान करना। बहूको पुत्रीसे बढ़कर प्यार करना। ऐंठ न रखना, अभिमान न करना, अपनेको किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारणसे बड़ा न समझना । सबसे नम्र तथा विनयी होकर रहना । भाभीका ननदसे तथा ननदका भाभीसे सम्मान तथा प्रेमका बर्ताव करना ।

यथासाध्य किसीकी निन्दा, बुराई, दोषचर्चा न सुनना, अपनी बड़ाई तथा भगवन्निन्दा न सुनना । ऐसी बातोंमें साथ तो देना ही नहीं ।

प्रतिदिन कुछ समय गीता, रामायण, अन्यान्य सद्-ग्रन्थोंके स्वाध्याय, स्तोत्र-पाठ, मन्त्र और भगवन्नाम-जप, भगवत्प्रार्थना तथा इच्छानुसार भगवत्पूजनमें लगाना । बड़ोंको यथायोग्य प्रणाम करना ।

जीभसे सदा-सर्वदा भगवन्नाम-जपका अभ्यास करना ।

हिंदू-नारीका सती-धर्म

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

१—हिंदू-संस्कृतिमें नारी परम तत्त्वके रूपमें निरूपित हुई है ।

२—नारी भगवती शक्तिका ही अपर रूप है ।

३—हिंदू-नारीका सती-धर्म तो आद्याशक्ति जगदम्बाका ही अविकल पर्याय है ।

४—सतीत्व एक ऐसी शक्ति है जिससे असम्भव भी सम्भव हो सकता है ।

५—सतीत्वमें लोकालोकको प्रभावित करनेकी क्षमता है ।

६—सतीत्व चरित्र-प्राण व्रत है । इससे आध्यात्मिक और नैतिक स्तरको बल मिलता है ।

७—'पतिव्रता-धर्म' सतीत्वका साधन है, साध्य तो सतीत्व ही है ।

८—हिंदू-नारीका तो इष्टदेव सतीत्व 'शिवं' ही है । पति तो उसके इष्टदेवका बिल्वपत्रमात्र है, इष्टकी पूजाका साहित्य है एवं इष्ट-उपासनाका माध्यम ।

९—हिंदू-नारी माध्यमकी परवाह तथा पूजा-प्रतिष्ठा सतीत्वकी दृष्टिसे ही करती है ।

१०—वह इष्ट सतीत्वपर पति-साहित्यको कभी विशेषता नहीं दे सकती ।

११—अवश्य ही चरित्र-हीन पतिके सतीत्व-घातक अनुचित आदेश-निर्देशपर सतीत्वको तरजीह देती है परंतु फिर भी वह निरपेक्ष पतिव्रता-धर्मकी पूरी परवाह करती है ।

१२—बंगीय साहित्यकार श्रीद्विजेन्द्रपाल रायने 'उस पार' अपने नाटकमें सरस्वतीसे उसके दुराचारी पतिके प्रति इसी आशयके शब्द कहलवाये हैं । सरस्वती कहती है—

'देखो, मैं सती हूँ या असती—इसका निर्णय मैं एक शराबीके मुखसे, एक वेश्यागामीके मुखसे सुनना नहीं चाहती । सतीत्व मेरा अपना धर्म है तुम्हारा नहीं ।' वह फिर कहती है—

'सतीत्व मेरा इष्टदेव है—तुम तो उस देवताकी पूजाकी सामग्री फूल-पत्तीभर हो ।'

१३—इस तरह हम देखते हैं हिंदू-नारी आज भी अपने तथाकथित दिव्य व्यक्तित्व और विश्व-दुर्लभ सतीत्वसे हिंदू-संस्कृतिकी रक्षक-पोषक बनी हुई है एवं हमारे नैतिक स्तरकी एकान्त प्रश्रय ।

१४—यहाँ अन्तमें यह कहते हुए हर्ष तथा गर्व होता है कि संस्कृत-भाषामें नारीका पर्याय तत्त्वतः देवी है और देवीका पर्याय भगवती जगदम्बा एवं नारी, देवी और भगवती जगदम्बाका आपसका पर्याय-मूलक दिव्य अविभाज्य सम्बन्ध है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गरीबकी ईमानदारी

गत वर्षकी बात है। मैं और मेरे भाई साहब श्रीकेशवप्रसाद चौधरीजी आरा बैंकसे पंद्रह हजार रुपयेका चेक भुनवाकर थैलीमें रुपये रक्खे साइकिलद्वारा घर आ रहे थे। हम दोनों भाई बड़ी तेजीसे साइकिल चला रहे थे। रास्तेमें चाचा संतलालजी 'वियोगी' मिल गये। कुछ बातें हुईं। फिर हमलोग कुछ दूर आगे बढ़कर नाश्ता करनेके प्रयोजनसे होटलमें गये। वहाँ श्रीअनन्तलालजी एवं बाबा गुलजारजी मिल गये। नाश्ता करनेके बाद हमलोग तेजीसे चलकर घर आ गये। घरपर आकर रुपयेकी थैली देखते हैं तो थैली नदारद थी। हम दोनों भाइयोंके होश-हवाश उड़ गये। पिताजीने हमलोगोंके आते ही पूछा—'रुपये मिल गये?' हमलोगोंने रुपये खो जानेकी बात कही। इसपर पिताजी नाराज हुए; पर नाराज होकर करते ही क्या? फिर, उन्होंने पूछा कि 'रास्तेमें किन-किनसे भेंट हुई थी।' हमलोगोंने कहा—'रास्तेमें चाचा संतलालजी एवं बाबा गुलजारजी तथा श्रीअनन्तलालजी मिले थे।' पिताजी इतना ही पूछकर रह गये।

मेरे भाई साहब श्रीकेशवप्रसादजी रुपयेकी आशा छोड़कर भी एक बार तलाश करनेके लिये साइकिल लेकर चल पड़े। वे साइकिलद्वारा बड़ी तेजीके साथ जा रहे थे। हमलोगोंने जहाँ बैठकर नाश्ता किया था, वहींका एक नौकर 'सिंघासन' था। रुपयेकी थैली उसीको मिली थी। इनको देखते ही उसने बड़े जोरके साथ चिल्लाकर कहा—'बाबूजी! अपनी थैली लेते जाओ।' सुनते ही एकाएक शरीरमें चेतनाशक्ति आ गयी और आकर अपनी थैली उससे ले ली। गिननेपर उन्हें ज्यों-के-त्यों पूरे रुपये मिले।

उस गरीबकी इस सचाई—ईमानदारी तथा परोपकार-वृत्तिको देखकर मेरे भाई साहब गद्गद हो गये।

मेरा मुरझाया मुखकमल खिल उठा। मेरा रोम-रोम उसकी ईमानदारी तथा मानवताके उपकारसे दब गया। मेरे भाई साहबके बहुत दबाव डालनेपर उसने पचास रुपये स्वीकार किये। मैं उस गरीबकी ईमानदारी और सचाईको देखकर आश्चर्यचकित रह गया। कोई बड़ा आदमी होता तो शायद ही इस लोभसे अपनेको बचाता।

—कन्हैयालाल चौधरी एम्०एस्-सी०,सा०रत्न

(२)

प्रभुकी कृपा—एक आप बीती

लगभग २५ वर्ष पहलेकी बात है। स्वास्थ्य-सुधारके लिये मैं मंसूरी गया हुआ था। किशोरावस्थाका आरम्भ था। होश कम, जोश ज्यादा। एक दिन, 'कामटी फॉल्स' सैर करनेके लिये चला गया। चोटीपर चढ़नेकी इच्छा हुई। चोटी बड़ी चिकनी और नुकीली थी। ब्रिचेज, मोजा और जूता पहने था। जूता पहने ही चढ़ने लगा। उन दिनों ईश्वरमें विश्वास रखनेकी बात कौन कहे, नाम लेना भी गुनाह तथा शानके खिलाफ समझता था। चढ़ता गया, बढ़ता गया। एक-ब-एक पैर फिसला। लुढ़कने लगा, लुढ़कता गया। नीचे हजारों फीटकी गहराई थी। अनायास हृदयसे आवाज निकली—"हे भगवान् रक्षा करो"। आप मानें या न मानें, तत्काल ही एक वृक्षकी जड़ हाथमें आ गयी। तिनकेका सहारा मिला। जड़ पकड़कर झूलने लगा। डर भी रहा था कि कहीं जड़ टूट न जाय? दूसरा कोई सहारा भी तो नहीं था। इतनेमें ही साथी लोग आ गये। उन लोगोंने अपना साफा खोलकर नीचे लटकाया। साफाके सहारे किसी तरह ऊपर आ सका। जानमें जान आयी। उस दिनसे ईश्वरमें अपार श्रद्धा हो गयी। नियमित रूपसे संध्या-वन्दन भी करने लगा।

× × ×

दूसरी घटना सन् १९५९ के नवम्बर ३० की है। अकस्मात् अर्धरात्रिके पश्चात् याद पड़ा कि 'आज सोमवती अमावास्या है, काशी चलकर बाबा विश्वनाथका दर्शन और गङ्गास्नान करना चाहिये।' गाँवसे स्टेशन तीन मील दूर। कच्ची सड़क। गाड़ीके समयमें केवल डेढ़ घंटेकी देर थी। पैदल ही चल पड़ा। स्टेशन आनेपर देखा कि जिस प्लेटफार्मपर काशी जानेवाली गाड़ी लगती है, उसपर एक मालगाड़ी लगी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। पूछनेपर पता चला 'इंजनमें पानी नहीं है और यह गाड़ी इसी प्लेटफार्मपर रहेगी।' बनारस जानेवाली 'देहरादून एक्सप्रेस' बीचवाली लाइनपर आ रही है स्टेशनपर दो ही प्लेटफार्म हैं। एक अप ट्रेनोंके लिये, दूसरा डाउन ट्रेनोंके लिये। बीचवाली लाइन अकस्मात् कोई गाड़ी आ जाय तो उसके लिये है। अप प्लेटफार्मपर तो पहलेसे ही मालगाड़ी लगी थी। मैं डाउन प्लेटफार्मपर चला गया। डाउन प्लेटफार्मपर जाते ही देहरादून एक्सप्रेस आ गयी। कुछ समय तो दौड़-धूपमें बीता। ऊँचे दर्जेके सारे डिब्बे और खिड़कियाँ बंद थीं। एक पहले दर्जेके डिब्बेकी खिड़की खुली थी। छड़ पकड़कर मैं फुटबोर्डपर चढ़ गया। अंदर एक सज्जन आराम कर रहे थे। मैंने पुकारकर दरवाजा खोलनेको कहा। उन्होंने टिकटके विषयमें पूछा। टिकट देखनेके पश्चात् उन्होंने द्वार खोल देनेका वचन दिया। मैं आश्वस्त हुआ। सोचा अभी खोल ही देंगे। गाड़ी खुल गयी। आउटर सिगनलतक तो गाड़ीकी गति धीमी रही। परंतु सिगनल पार होते ही गति बड़ी तेज हो गयी। मारे ठंढके मेरे हाथ ठिठुरने लगे। मैंने अंदरवाले सज्जनसे दरवाजा खोलनेके लिये पुनः प्रार्थना की। इस बार वे कुछ झल्ला गये। उठकर उन्होंने दरवाजा खोलनेके बजाय खिड़की भी बंद कर ली। दरवाजा अंदरसे बंद था। मेरी रही-सही आशा भी समाप्त हो गयी। ठंढी हवाके तेज झोंके और सर्दीसे मेरे हाथ फिसलने लगे। मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरा अन्त अब निश्चित है। मेरे हाथ कब छूट गये मुझे याद नहीं। जब मुझे होश आया तो मैंने अनुभव किया कि मैं डाउन लाइनके बीचमें पड़ा हूँ। लाइन हिलने लगी। मैंने समझा भूकम्प हो रहा है। फिर विचार आया कि कोई गाड़ी आ रही होगी। यह भी याद आ गयी कि मैं गाड़ीसे गिर गया हूँ। लाइनका हिलना बढ़ता ही जा रहा था। दाहिने अङ्गमें चोट काफी आयी थी। दाहिने अङ्गसे निकम्मा था। बायें हाथकी कोहुनीपर जोर देकर उलटनेकी कोशिश करने लगा। प्रभुकी कृपा देखिये! ऐसा लगा कि किसीने मुझे लाइनके बीचसे उठाकर किनारे लुढ़का दिया। मेरे लाइनके किनारे आते ही एक गाड़ी उसी लाइनसे झपाकेके साथ गुजरी। यदि आधा मिनटकी देर होती तो मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जाते। लाइनके किनारे मैं असहाय पड़ा था। कहीं कोई आता-जाता भी दिखायी नहीं पड़ता था। दस-पाँच मिनटके बाद तीन-चार आदमी आते दिखायी पड़े। एक आदमी आगे बढ़ने लगा तो दूसरेने मना किया—'ए कहाँ जाते हो? पता नहीं मरता है या बच रहा है? नाहक थाना-पुलिसके चक्करमें पड़ोगे!' आगे बढ़नेवालेने कहा—'जो कुछ भी हो मैं तो जाऊँगा ही।' मैं पड़ा-पड़ा सब सुनता रहा। वह व्यक्ति मेरे पास आ गया। मैं उसे नहीं पहचान सका, किंतु उसने मुझे पहचान लिया। वह मुझे टाँगकर अस्पताल लाया। एक मासतक गयाके 'पिल्ग्रिम अस्पताल'में रहा। इतना होनेपर भी कोई सांघातिक चोट नहीं आयी थी। दाहिने हाथमें कुछ चोट आयी थी और सिरमें पत्थर धँस गया था, जो साधारण उपचारमें ही ठीक हो गया। डाक्टर हैरान, देखने आनेवाले हैरान! गयाके स्टेशन मास्टरने कहा—'देहरादून एक्सप्रेस और बम्बई मेलसे गिरनेवाला तो कोई बचा नहीं। यह कैसे बच गये? लगता है किसीने खड़े होकर बचाया है।' अब आप ही सोचिये किसने मेरी रक्षा की? मेरे पास तो एक ही उत्तर है—'उसी बाबा विश्वनाथने, जिनके दर्शनोंके लिये मैं जा रहा था।'*

—कुमार रणविजयसिंह

(३)

छोटेका बड़ा मन

जाड़ेका कँपाता प्रातःकाल था। मैं अपने कमरेमें खिड़कीके पास बैठा पढ़ रहा था। इतनेमें मेरे कानमें आवाज आयी—'माई! कोई फटा-पुराना कपड़ा हो तो दो न! सर्दीसे मरी जा रही हूँ।'

मैंने खिड़कीसे बाहरकी ओर देखा तो सामने

* इस घटनाको पढ़नेवाले दो बातोंको जीवनमें उतार लें—(१) चलती गाड़ीमें फुटबोर्डपर खड़े मनुष्यको दरवाजा खोलकर अवश्य अंदर ले लें और (२) विपत्तिमें पड़े हुएके पास जाकर उसे बचानेका अवश्य प्रयत्न करें। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहनेवाले सेठके मकानकी देहलीके पास बाहर एक भिखारिन खड़ी थी। बुढ़ापेके कारण उसकी कमर बिल्कुल झुक गयी थी। सारे शरीरपर झुर्रियाँ पड़ी थीं। देहको गला दे, ऐसी सर्दीसे काँपते हुए शरीरपर एक-मात्र कपड़ा था। उसने जब दो-चार बार इस तरह करुण आवाज लगायी, तब अंदरसे सेठानीकी जोरकी आवाज सुनायी दी—'इतने सबेरे कौन निकम्मा बैठा है तुझे देनेको ? जा, चली जा।'

'माजी ! भगवान् तुमको·····' उसके पूरे बोलनेके पहले ही सेठानी चीख उठी—'अरी जमकू ! निकाल, निकाल इसको यहाँसे, ऐसे न मालूम कितने चले आयँगे·····'

और मैं मन-ही-मन सोचने लगा—'क्या कच्छके दातारोंकी पाली-पोसी हुई मानवता मर गयी ?·····'

वहाँ आँगनमें कूड़ा बुहारती हुई 'जमकू' मालकिनका हुक्म सुनकर बाहर आयी। मैंने सोचा—यह अभी भिखारिनका हाथ पकड़कर बाहर ढकेल देगी; पर वहाँ तो इस गरीब नौकरानीके हृदयमें अचानक करुणाका झरना फूट निकला। इसने भिखारिनकी रोनी सूरत देखकर तुरंत अपने सिरकी ओढ़नी उतारकर उसके शरीरपर फेंक दी।

मैं देखकर सोचने लगा—'नहीं, नहीं, वह मानवता अभी मरी नहीं है। किसी-किसीके हृदयमें अब भी बस रही है।' (अखण्ड आनन्द) —धीरेन्द्र मेहता

(४)

पीपल—भयंकर-से-भयंकर विषधर सर्पका अचूक इलाज

उपर्युक्त शीर्षकसे मेरा एक लेख 'कल्याण' वर्ष ३४ अंक २ (फरवरी) सन् १९६० के पृष्ठ ७६६ पर पीपल-पत्रके द्वारा सर्प-विषनाशके प्रयोगके सम्बन्धमें प्रकाशित हुआ था। उसके बाबत मेरे पास सैकड़ों पत्र पूछ-ताछके लिये आये हैं। कुछ ऐसे पत्र भी आये हैं, जिनमें प्रयोगसे पूर्ण लाभ होनेकी घटनाओंका उल्लेख है। इस सम्बन्धमें कई सज्जनोंने प्रश्न किये हैं, उनका उत्तर मैं यहाँ लिख रहा हूँ। वे सज्जन अपने-अपने प्रश्नोंका उत्तर समझ लें। स्थानाभावसे प्रश्न नहीं लिखे जा रहे हैं, उत्तरसे ही प्रश्नका पता लग जायगा।

(१) सर्प काटनेके चाहे जितनी देर बाद भी यह प्रयोग किया जा सकता है। यदि रोगी जीवित है तो इस प्रयोगसे उसका विषमुक्त होना निश्चित है।

(२) बेहोशी हो जाने तथा नाकी बैठ जानेके बाद भी यह प्रयोग काम करेगा, बशर्ते कि खूनकी चाल बंद न हो गयी हो। मैंने मूसानगरके श्रीबद्रीप्रसादजीकी पुत्रीपर साँप काटनेके ६ घंटे बाद प्रयोग किया था, उसकी नाकी बैठ गयी थी, पर वह अच्छी हो गयी और आज मौजूद है।

(३) रोगीको पाँच ही आदमी पकड़ें—कम-ज्यादा नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है। अभिप्राय इतना ही है कि रोगी किसी प्रकार भी हिल-डुल न सके, फिर चाहे कितने ही आदमी पकड़ें। पाँच आदमियोंके पकड़नेसे प्रायः हरेक अङ्ग पकड़ा जाता है, इसलिये पाँचकी संख्या लिखी गयी थी।

(४) रोगीको लिटाकर या बैठाकर चाहे जैसे प्रयोग किया जा सकता है। पर मेरी समझमें बैठाकर पत्ते डालनेमें अधिक सुविधा रहेगी।

(५) मैंने अबतक काले सर्पोंके काटे रोगियोंपर ही यह प्रयोग किया है; क्योंकि इधर दूसरी तरहके साँप हैं ही नहीं। अतः मैं निश्चित नहीं बता सकता। आप प्रयोग करके देख सकते हैं।

(६) मैंने मनुष्योंपर ही इसका प्रयोग किया है। जानवरोंपर कभी प्रयोग नहीं किया। इससे मेरा अनुभव नहीं है। किसी पशुको साँप काटनेकी घटना सामने आवे तो आप प्रयोग करके देख सकते हैं।

(७) सर्पका विष उतारनेका जैसा यह सिद्ध प्रयोग मैं जानता हूँ, वैसा बिच्छू आदि अन्य जहरीले जन्तुओंके विषनाशका मैं नहीं जानता। थोड़ा-थोड़ा जैसे और लोग जानते हैं, वैसा ही मैं भी जानता हूँ।

(८) पीपलसे कुछ पत्तोंकी एक डाली तोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीजिये। डालीमें जो पत्ते होते हैं उनमें प्रत्येक पत्तेके पीछे एक सींकके समान डंडी होती है। जब पत्ते डालीसे तोड़ें तो उस सींक या डंडीके समेत ही तोड़ें। उसी डंडी या सींककी नोकको रोगीके कानमें डालिये।

(९) आप रोगीके सामने बैठ जाइये। अपने दोनों हाथोंमें एक-एक पत्ता ले लीजिये और दाहिने हाथके पत्तेकी सींक रोगीके बायें कानमें और बायें हाथके पत्तेकी सींक रोगीके दाहिने कानमें डालिये।

(१०) अनुमानसे एक इंच डालनेकी बात लिखी थी। असलमें कानके पर्देतक नोक पहुँच जानी चाहिये। यदि नोक दूर होगी और जहर होगा तो रोगी चिल्लायेगा नहीं। वह न चिल्लाये, तबतक सींकको कानमें डालते रहें। जब चिल्लाना शुरू करे, तब रोक दें।

(११) जबतक जहर कमर और सीनेसे ऊपर नहीं पहुँचेगा, तबतक पत्ता काम नहीं करेगा। अतः बंध बँधा होनेपर यदि जहर रुका होता है तो पत्ता काम नहीं करता। किंतु चाहे जितना ही बंध हो, धीरे-धीरे जहर बंधको पार करके कुछ देरमें ऊपर जरूर आयेगा। जब पत्ता लगानेपर रोगी चिल्लाने लग जाय, तब उसी समय बंध खोल देना चाहिये। अन्यथा पत्ता बंधके ऊपरका ही जहर खींच सकेगा। बंधके नीचेका जहर ज्यों-का-त्यों रह जायगा।

(१२) मैंने हरे पत्तेका ही प्रयोग किया है और मैं समझता हूँ सूखा पत्ता काम नहीं करेगा।

(१३) जहर कमर और सीनेके ऊपर चढ़ा या नहीं, इसकी परीक्षाके लिये नीमकी पत्ती रोगीको चबवाइये। नीमकी पत्ती कड़वी लगे और रोगी थूक दे तो समझिये जहर नहीं है। चबाता जाय तो जहर है। नीममें भी विषनाशक गुण है। रोगीको नीमकी पत्ती चबवानेसे जहर मरता है और जहर मरते ही पत्ती कड़वी लगने लगती है। फिर रोगी उसे चबाता नहीं।

(१४) अपने स्थानमें पीपलका पेड़ न हो तो जहाँ पेड़ हो, वहींसे डाली तोड़कर मँगवा सकते हैं।

(१५) पीपलके वृक्षके नीचे रोगीको ले जानेकी आवश्यकता नहीं है। जहाँ रोगी हो, वहीं डाली मँगवाकर पत्तोंका प्रयोग कर सकते हैं।

(१६) सर्प काटनेपर घाव नहीं होता। उसे यदि चीर दिया गया हो तो फिर उस जगह कुएँमें डालनेवाली लाल दवा (पोटाश परमैंगनेट) भर देनी चाहिये। दस-पाँच दिनोंमें घाव आप ही ठीक हो जायगा।

(१७) रोगीके ठीक हो जानेपर उसे एकसे डेढ़ छटाकतक गायके शुद्ध घृतमें १०-१२ काली मिर्च पीसकर मिलाकर पिला देना चाहिये और कम-से-कम ८ घंटे सोने नहीं देना चाहिये।

(१८) मुझे विश्वास है कि इस प्रयोगसे अवश्य लाभ होगा। बहुतोंको लाभ पहुँचा है यह मेरा अनुभव है। मैंने न तो कोई उनकी सूची बनाकर रक्खी है और न किस-किसको आराम हुआ, उनके नाम बतानेकी आवश्यकता ही है। आपको विश्वास हो तो प्रयोग करके देखिये। 'कल्याण' में प्रकाशित होनेके बाद इस प्रयोगसे लाभ होनेके मुझे कई पत्र मिले हैं। *

(१९) जिनको फिर भी कोई शङ्का हो वे मुझसे नीचे लिखे पतेपर जवाबी कार्ड लिखकर पूछ सकते हैं। पर मुझको पत्र हिंदी या अंगरेजीमें ही लिखना चाहिये।

—मेवालाल तार्किक, पो० मूसानगर (कानपुर) उ० प्र०

* हमारे पास भी इस प्रयोगसे लाभ होनेके कई पत्र आये हैं। एक पत्र अभी हालमें श्रीवीरसिंहजी चौहान, नयागाँव, पो० खोड़ (शिवपुरी) का आया है, जिसमें लिखा है कि "यहाँ सेठ रामसेवकजी गुप्तकी धर्मपत्नीको संध्या ६ बजे एक भयंकर काले सर्पने डँस लिया। स्थानीय तथा बाहरी बहुत-से जानकार महानुभावोंके सभी तरहके उपचार किये, पर कोई भी लाभ नहीं हुआ। उनको मृतक मान लिया गया। सब निराश हो गये! तब ईश्वरीय प्रेरणासे मुझे 'कल्याण'में प्रकाशित प्रयोगकी बात याद आयी। प्रयोग आरम्भ किया गया और करीब १४ पत्ते बदलनेपर वह पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। समस्त विष उतर गया। जब रोगिणीने स्वयं बतलाया, तब सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ।"—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी प्रगतिका नग्न स्वरूप

इस समय चारों ओर उन्नति, उत्थान, प्रगति, विकासके नारे लग रहे हैं। अरबोंकी योजनाएँ बन रही हैं। रेल, सड़क, मोटर, नहर, कारखाने, वैज्ञानिक यन्त्र आदि बढ़ रहे हैं। यह सब ठीक है। परंतु नैतिक पतन किस तेजीसे हो रहा है, इसपर ध्यान नहीं दिया जाता। बल्कि शराबके नशेमें चूर आदमी जैसे गंदे नालेमें पड़ा हुआ अपने सुखकी घोषणा करता है, वैसे ही हम भी आज इस पतनमें जीवनकी सफलताका शोर मचा रहे हैं! उन्नतिके कुछ नमूने देखिये—

हिंसा-प्रवृत्ति बढ़ रही है—मानसिक राग-द्वेष-कलहके कारण एक दूसरेका पतन देखनेके रूपमें और जीवोंके प्राण-हननकी योजनाके रूपमें। सरकारी तौरपर हिंसाके कारखाने—बड़े-बड़े यान्त्रिक कसाईखाने, हिंसामय दवाओंके कारखाने, मछली-शूकर-मुर्गे आदिकी उद्योग-व्यवस्था इत्यादि भयानक हिंसामयी योजनाएँ सामने हैं। लोगोंमें मांस खानेकी प्रवृत्तिको बढ़ाया जा रहा है योजनापूर्वक। धर्मकी दृष्टिसे तो कोई भयकी बात रही ही नहीं।

प्रान्त, भाषा, जातिको लेकर घोर कलह, मार-काट, स्त्रियोंपर अत्याचार, आग लगाना आदि सब प्रत्यक्ष है।

वादों और दलोंको लेकर परस्पर झगड़े और विनाशके भीषण प्रयत्न।

धर्मके तथा अध्यात्मके नामपर ठगी, धोखेबाजी, परस्वापहरण, अनाचार आदिका प्रसार। अभी पूनाके एक डाक्टर और मीरजगाँवके एक मुसलिम भाई पकड़े गये हैं, जो साँईबाबाके प्रत्यक्ष दर्शन करानेके नामपर बरसोंसे लोगोंको ठग रहे थे। वृद्ध मुसलमान साँई बाबाका स्वाँग सजकर रामी नदीके किनारे एक पुराने मन्दिरमें बैठ जाया करते थे और डाक्टरसाहब भावुक भक्तोंको ला-लाकर उनके दर्शन कराते तथा माल ऐंठते थे।

चोरी, भ्रष्टाचार, अनाचार तो घृणाकी वस्तु न रहकर स्वभावगत हो गया है। अधिकारियोंकी घूसका नाम 'दस्तूर' या 'दस्तूरी' और व्यापारियोंकी चोरीका नाम 'ऊपरकी कमाई' है।

टैक्सोंकी भरमार—इन्कमटैक्स, सुपरटैक्स, सेलटैक्स, सम्पत्तिटैक्स, दानटैक्स, खर्च-टैक्स, मृत्यु-टैक्स और विविध प्रकारके अन्यान्य टैक्स—जो अधिकारी तथा टैक्स देनेवाले दोनोंको चोर-बेईमान बनाते हैं तथा वस्तुओंको महँगी करके गरीब गृहस्थोंके जीवनको अत्यन्त कष्टमय बना रहे हैं।

खाने-पीने तथा दवाइयोंमें भी धन कमानेके लिये मिलावट, नकली इंजैक्शन, नकली टैबलेट, नकली आयुर्वेदिक ओषधियाँ। कच्चे शहतूतसे पीपल, पपीतेके बीजोंसे काली मिर्च, बकरीकी भींगनीसे शिलाजित, शकरकंदसे च्यवनप्राश आदि बनते हैं। अभी दिल्लीमें खाद्य-वस्तुओंके परीक्षणसे पता लगा—दूधमें औसतन ४९ प्रतिशत, दहीमें ३९ प्रतिशत, खोवेमें २९ प्रतिशत, आइसक्रीममें ३१ प्रतिशत, गेहूँके आटे-मैदा-सूजीमें १५ प्रतिशत और मक्खनमें ४५ प्रतिशत वनस्पति तेलकी मिलावट मिली है। मसालोंमें मिलावट, केसरमें मिलावट। दिल्लीमें एक कारखाना पकड़ा गया है जिसमें जूटके रेशों और रंगीन आटेसे नकली केसर बनायी जाती है। चायमें पेड़ोंकी छाल तथा पत्तियाँ मिली पकड़ी गयी हैं। कहीं-कहीं चमड़ेके महीन टुकड़े भी मिलाये जाते सुने गये हैं। यह कुछ नमूनेके तौरपर है। शायद ही कोई खाद्य वस्तु हो, जो नकली न हो।

इधर एक दिल्लीमें कितनी चरित्रगत प्रगति हुई है—देखिये—जहाँ सन् १९५५ में २३६२८४ गैलन शराब पी गयी, वहाँ १९५९ में २५९३८५ गैलन। १९४९ में दिल्लीके लोगोंने प्रतिमास १०० सिनेमाकी फिल्में देखी थीं तो १९५९ में २६०। १९५५में ५६०२० रेडियो लाइसेन्स बने तो १९५९ में ९९४३२।

१९५५ में ४२ खून हुए, १९५९ में ७०; १९५५ में ४२२३ चोरियाँ हुईं और १९५९ में ५६०६।

सब ओर प्रगति ही प्रगति है, जीवनका स्तर जो ऊँचा उठ रहा है!!

यह सब देखकर असली प्रगतिकी ओर ध्यान देकर भोग-की जगह भगवान्‌को लक्ष्य बनावें। सब प्राणियोंमें आत्मा या भगवान्‌को देखें और त्याग-प्रधान व्यवहार करें तो अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। हम इस मोहसे निकलकर अपना वास्तविक उत्थान कर सकते हैं। पर हमारा तो दृष्टिकोण ही बदल गया है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत एक लाख श्लोकोंका महान् ग्रन्थ

सचित्र, महाभारत (सरल हिंदी-अनुवादसहित)

(सम्पूर्ण ग्रन्थ छः खण्डोंमें सजिल्द)

आकार २२×३० आठपेजी, कागज ३० पौंडके मोटे ग्लेज, पृष्ठ-संख्या ६६२०, चित्र-संख्या बहुरंगे ७९, सादे २२५ तथा लाइन ५६४ कुल ८६८, मूल्य ६५ रुपये। १०० रुपये के मूल्यकी सब पुस्तकें मिलाकर लेनेवालोंको उनके रेलवे स्टेशनतकका रेलभाड़ा तथा पैकिंग मुफ्त। नियमानुसार १५ प्रतिशत कमीशन भी मिलेगा।

महाभारतके प्रत्येक खण्ड अलग-अलग भी मिलते हैं। विवरण इस प्रकार है—

खण्डोंमें आये पर्वोंके नाम	पृष्ठ-संख्या	रंगीन चित्र	सादे चित्र	लाइन चित्र	मूल्य
(१) प्रथम खण्ड—आदिपर्व और सभापर्व	९६२	९	४०	१०८	११.००
(२) द्वितीय खण्ड—वनपर्व और विराटपर्व	१११०	१२	४०	२१४	१२.५०
(३) तृतीय खण्ड—उद्योगपर्व और भीष्मपर्व	१०७६	२३	३६	८०	१२.५०
(४) चतुर्थ खण्ड—द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व	१३४६	१३	४०	९१	१५.००
(५) पञ्चम खण्ड—शान्तिपर्व	१०१४	१०	३१	१६	११.५०
(६) षष्ठ खण्ड—अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व	१११२	१२	३८	५५	१२.५०
कुल जोड़	६६२०	७९	२२५	५६४	७५.००
पूरा ग्रन्थ एक साथ लेनेपर रियायती मूल्य					६५.००

महाभारत—मूलमात्र, सम्पूर्ण ग्रन्थ चार भागोंमें (सजिल्द)

आकार २२×३० आठपेजी, मोटे कागज, चार जिल्दोंमें सजिल्द, कुल पृष्ठ-संख्या २७७६, चित्र—बहुरंगे १४ तथा सादे ४, कुल १८, मूल्य २२.५० मात्र।

सम्पूर्ण महाभारत मूलका इतना मूल्य बहुत ही सस्ता कहा जा सकता है। चारों भाग अलग-अलग भी मिलते हैं। विवरण इस प्रकार है—

भाग १—आदि, सभा और वनपर्व। रंगीन चित्र तीन, पृष्ठ ८०४, सजिल्द, मू० ६.००

भाग २—विराट, उद्योग, भीष्म और द्रोणपर्व। रंगीन चित्र चार, पृष्ठ ७४४, सजिल्द मू० ६.००

भाग ३—कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री और शान्तिपर्व। रंगीन चित्र चार, सादा एक, पृष्ठ ७५६, स० मू० ६.००

भाग ४—अनुशासनसे स्वर्गारोहणतक शेष छः पर्व। रंगीन चित्र तीन, सादे तीन, पृष्ठ ४७२, स० मू० ४.५०

इस प्रकार अठारह पर्व तथा एक लाख श्लोकोंका यह दुर्लभ और बृहद् ग्रन्थ केवल २२.५०में मिल सकता है। विद्वानोंको इससे लाभ उठाना चाहिये।

आर्डर देते समय अपने रेलवे स्टेशनका नाम स्पष्ट लिखना चाहिये। पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

हमारी शाखाएँ—कलकत्ता, दिल्ली, पटना, कानपुर, वाराणसी, हरिद्वार तथा ऋषिकेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आपसे एक निवेदन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो आप जानते ही होंगे कि गीताप्रेसके द्वारा सरल, सुन्दर, सचित्र, शिक्षाप्रद साहित्य बहुत ही सस्ते मूल्यमें सबको मिल सकता है। अधिकांश पुस्तकोंके दाम वही हैं जो द्वितीय महायुद्धके पूर्व थे। इस महान् देशकी साधारण-से-साधारण जनता भी इन उपयोगी पुस्तकोंको खरीद सके, इसीलिये कागज, स्याही तथा अन्य मुद्रण-सामग्रियोंके दामोंमें इतनी अधिक वृद्धि हो जानेपर भी यही प्रयत्न किया जा रहा है कि जहाँतक सम्भव हो, मूल्य-वृद्धि न की जाय।

राष्ट्रके निर्माणमें सत्साहित्यके प्रचारकी कितनी आवश्यकता है, यह किसीसे छिपी हुई बात नहीं है। सदाचारी लोग ही अच्छे नागरिक बन सकते हैं। यदि आप यह मानते हों कि गीताप्रेसकी पुस्तकें इस कार्यमें सहायता कर सकती हैं तो आपका कर्तव्य हो जाता है कि आप अधिकाधिक संख्यामें इन पुस्तकोंका प्रचार करें।

अनेक राज्य-सरकारोंके शिक्षा-विभागोंने 'कल्याण' तथा गीताप्रेसकी पुस्तकोंको स्वीकार किया है। अन्य राज्य-सरकारोंसे भी 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा 'मासिक-महा भारत' और प्रेसकी पुस्तकें शिक्षा-प्रसारके लिये स्वीकृत करवानी हैं। घर-घरमें बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, विद्वान्-मूर्ख सभीमें इनका प्रचार-प्रसार करना है। आप जिस तरह ठीक समझें अपने योग्यतानुसार इस पुनीत प्रचारमें हमारी सहायता करनेकी कृपा करें, यही विनम्र निवेदन है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

सूचना

हिंदी मासिक 'कल्याण' तथा अंग्रेजी मासिक 'कल्याण-कल्पतरु' का आन्ध्र-प्रदेश, हैदराबादके डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शनने आज्ञापत्र सं० Rc N0 629—M 4। 59 दि० १२-५-६० के द्वारा सम्पूर्ण आन्ध्र-राज्यभरके स्कूल, कालेज तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें उपयोग करनेकी स्वीकृति दी है। अतः उस राज्यके स्कूलों, कालेजों तथा सार्वजनिक पुस्तकालयोंके अधिकारियों तथा प्रबन्धकोंसे निवेदन है कि वे इन दोनों मासिक-पत्रोंका अधिकाधिक उपयोग करनेकी कृपा करेंगे।

वार्षिक मूल्य 'कल्याण' का रु० ७.५० तथा कल्याण-कल्पतरुका रु० ४.५०।

व्यवस्थापक—'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

उत्तर-प्रदेश सरकारद्वारा स्वीकृत गीताप्रेसकी पुस्तकें

उत्तर-प्रदेश सरकारके शिक्षा-विभागने पत्र-सं० १२९३। १५, २२७३। १९५९ दिनाङ्क १३ जुलाई १९६० के द्वारा सूचित किया है कि गीताप्रेसकी पुस्तकें पहिलेसे ही निम्न माध्यमिक विद्यालय तथा भ्रमणशील और सचल ग्रन्थागारोंके बालक, बालिकाओं तथा अध्यापकोंके लिये शिक्षा-संचालक उत्तर-प्रदेशद्वारा स्वीकृत हैं। पुस्तकोंके नाम शिक्षा-संचालक उत्तर-प्रदेश, पाठ्य-पुस्तक-विभाग, आदेश-संख्या बी। ६४७-७। ८ अ १८-४-८। ५५-५६ दिनाङ्क १७ अगस्त १९५५ में दिये हुए हैं, जो इस प्रकार हैं—

नाम पुस्तक	मूल्य नये पैसे	नाम पुस्तक	मूल्य नये पैसे	नाम-पुस्तक	मूल्य नये पैसे
१—वीर बालिकाएँ ...	.२०	७—स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	.१०	१५—भगवान राम भाग १ ...	.२५
२—वीर बालक ...	.२५	८—बाल-चित्रमय चैतन्य-लीला	.३१	१६—भगवान राम भाग २ ...	.२५
३—दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ ...	.२०	९—उपयोगी कहानियाँ ...	.३१	१७—बालकोंकी बातें ...	.२५
४—गुरु और माता-पिताके भक्त बालक ...	.२५	१०—भगवान कृष्ण भाग १ ...	.३१	१८—कुछ विदेशी वीर बालक ...	.०
५—बाल-चित्रमय बुद्ध-लीला	.३१	११—भगवान कृष्ण भाग २ ...	.३१	१९—पिताकी सीख ...	.३
६—बाल-प्रश्नोत्तरी ...	.१०	१२—चोखी कहानियाँ ...	.३१	२०—बड़ोंके जीवनसे शिक्षा ...	.३
		१३—बाल-चित्र-रामायण भाग १	.२५	२१—पढ़ो, समझो और करो ...	.३
		१४—बाल-चित्र-रामायण भाग २	.२५	२२—दैनिक-कल्याण-सूत्र ...	.२

सम्बन्धित अधिकारियोंकी सेवामें नम्र निवेदन है कि शिक्षा-विभागके इन आदेशोंपर ध्यान देकर इ पुस्तकोंका बालक-बालिकाओंको अधिक-से-अधिक लाभ मिल सके, इसके लिये विशेष प्रयत्न करनेकी कृपा क

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

कल्याण

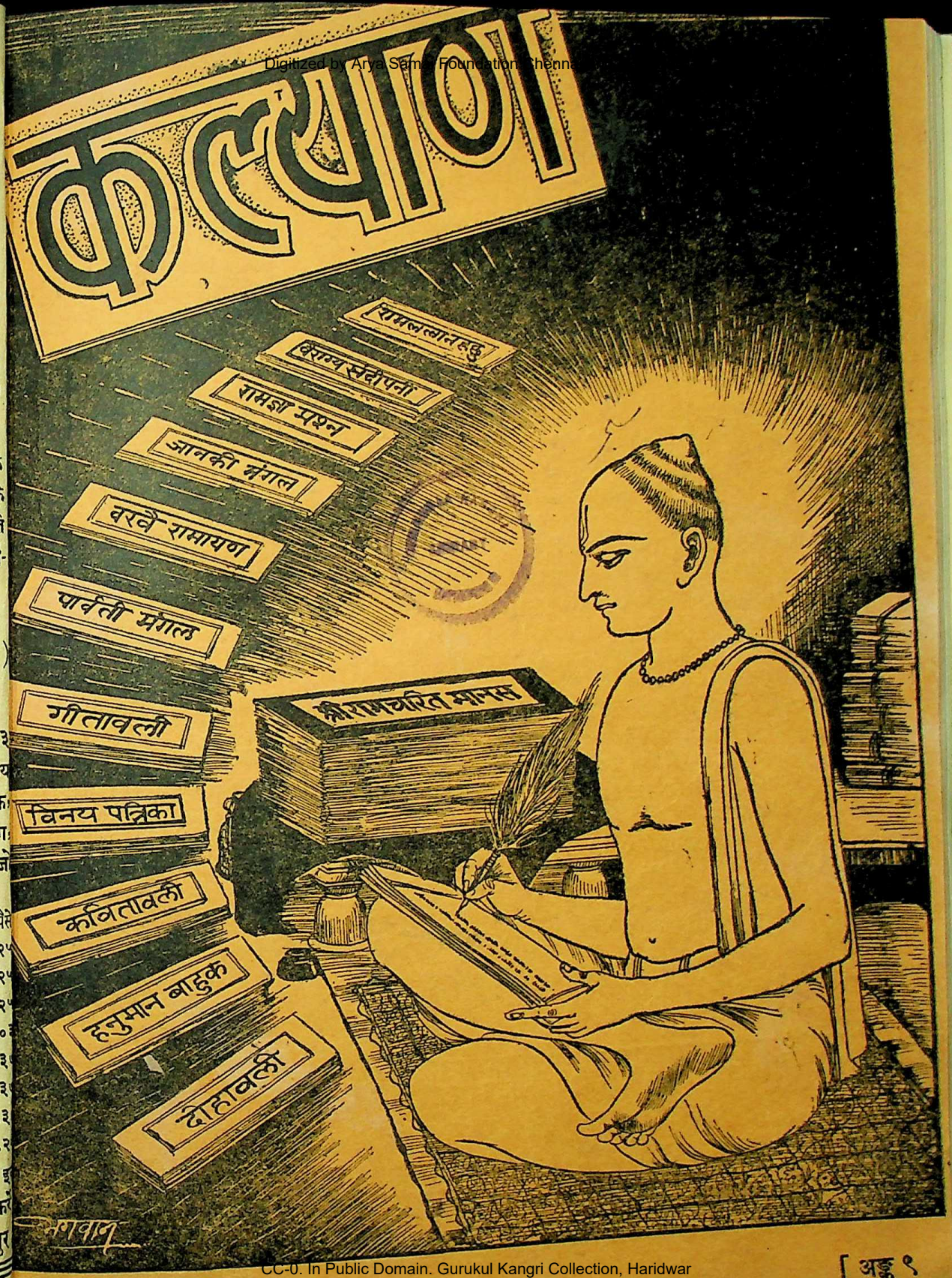

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–भगवती गौरीदेवी ! [कविता] ...	११५३
२–कल्याण ('शिव') ...	११५४
३–सत्यकी महिमा (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	११५५
४–संतोषसे शान्ति (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी)	११५८
५–सनातन शौचाचार (पं० श्रीगुप्तेश्वरजी पाण्डेय)	११५९
६–श्रीगणेश-प्रार्थना [कविता] (श्रीपद्मकान्तजी मालवीय) ...	११६४
७–गीतोक्त कर्मयोगी (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र, एम्० एल्० सी०) ...	११६५
८–धन्यो गृहस्थाश्रमः (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़ वेदाचार्य, काव्यतीर्थ)	११६७
९–आपको तीन प्रकारके कलुषित विचार दुखी बनाते हैं ! (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	११७०
१०–वनवैभव [कविता] (मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न) ...	११७२
११–अन्नशुद्धि (श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम्० ए०, काव्यतीर्थ) ...	११७३
१२–मैं भगवान्‌के रंगमें रँगा सदा निश्चिन्त, नम्र, निर्भ्रम और निर्भय रहता हूँ [कविता]	११७५
१३–संत-महात्माओंकी दृष्टिमें जीवित प्राणी (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ...	११७६
१४–मधुर	११७८
१५–यदि तुम सबका शुभ चाहोगे [कविता] (श्रीबालकृष्णजी बलदुआ) ...	११७९
१६–भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य-महोत्सव (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ...	११८०
१७–व्रतसे आत्मविशुद्धि (विद्यामार्तण्ड डा० मङ्गलदेवशास्त्रीजी) ...	११८७
१८–संयम [कहानी] (श्री'चक्र') ...	११८८
१९–जीवन-संगीत (श्रीशारदाशंकरजी कोचक)	११९०
२०–राहीकी मंजिल (श्रीशंकरदयालसिंहजी एम्० ए०, साहित्यरत्न) ...	११९१
२१–उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव) ...	११९३
२२–भगवान्‌का दिव्य अंश होनेसे मेरा मृत्यु-रुग्णतादोषरहित दिव्य रूप विलास कर रहा है [कविता] ...	११९९
२३–श्रीनिमाई-संन्यास [नाटक] (स्व० महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोष, अनु० श्रीव्रजगोपालदासजी अग्रवाल एम्० ए०)	१२००
२४–संगका रंग (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')	१२०५
२५–ज्ञान-विज्ञानका रहस्य-रस—प्रेम (पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी))	१२०६
२६–मेरा जीवन प्रभुका मङ्गलमय धाम बन गया है	१२०८
२७–दान-धर्मकी आवश्यकता और उसका महत्त्व (श्रीअगरचंदजी नाहटा)	१२०९
२८–इस प्रभुकी वस्तुके द्वारा प्रभुका ही कार्य होता रहता है	१२१२
२९–महामानव श्रीकृष्ण (श्रीमंगलदेवजी शास्त्री आर्योपदेशक) ...	१२१३
३०–पढ़ो, समझो और करो ...	१२१४
३१–मेरे द्वारा भगवान् ही बोल रहे हैं ...	१२१६

चित्र-सूची

१–गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२–भगवती गौरीदेवी	(तिरंगा) ...	११५३

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५९
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः । भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥
कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः । सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥

वर्ष ३४ } गोरखपुर, सौर आश्विन २०१७, सितम्बर १९६० { संख्या ९ पूर्ण संख्या ४०६

भगवती गौरी देवी !

गौरारुण शुभ वर्ण मुकुट सिर रत्न विराजित ।
नील वसन गल रत्न-कुसुम हारावलि राजित ॥
शूल-बाण-धनु-परशु हस्त भुजबंध सु-राजित ।
कटि काञ्ची सुक्वणित रणित पग नूपुर भ्राजित ॥
तेज-पुंज तन तीन नेत्र उज्ज्वल सुषमामय ।
हर-प्रिया हिम-गिरि-वासिनि मा गौरी ! जय जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—तुम अपने मनमें जिस प्रकारके विचारोंको स्थान दोगे, जिस प्रकारके विचारोंका पोषण करोगे, वही तुम्हारा आदर्श होगा और तुम सहज ही वैसे ही बनते चले जाओगे। तुम यदि यह निश्चय करोगे—सदा इसी प्रकारके विचारोंका पोषण करते रहोगे कि 'ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, वे मेरे परम सुहृद् हैं, मैं उनका अपना हूँ, अतएव उनके सहज सौहार्दसे मेरे जीवनमें त्याग, प्रेम, आनन्द, पुण्य, सफलता, दया, परदुःख-कातरता और सबमें भगवान्‌को देखकर सबकी सेवाके भाव सदा जाग्रत् रहेंगे। मेरा जीवन ऐसा ही बन रहा है और बनेगा। मैं जहाँ रहूँगा, वहीं मेरे द्वारा वातावरणमें इन्हीं सद्भावोंका प्रसार होगा। लोगोंके ऐसे सत्-चित्‌के निर्माणमें मैं सहज सहायक बनूँगा।' तो सचमुच तुम ऐसे ही बन जाओगे और दूसरे लोगोंको भी ऐसा बननेमें सहायता दोगे।

याद रक्खो—जैसे प्रकाश जहाँ जाता है, वहीं अपना प्रकाश फैलाता है। चन्द्रमा जहाँ जाता है, वहीं अमृत बरसाता है, सुगन्धित पुष्प सर्वत्र अपनी सुगन्ध फैलाता है, वैसे ही तुम भी अपने जीवनके द्वारा सर्वत्र प्रकाश, अमृत और सुगन्धका प्रसार कर सकते हो। तुम्हें देखते ही लोगोंके अन्धकारका नाश, विषका शमन और दुर्गन्धका अभाव होने लगेगा और बदलेमें उजियाला, मधुर अमृतरस तथा सुन्दर सुगन्ध पाकर लोग प्रमुदित और पुलकित हो जायँगे।

याद रक्खो—तुम भगवान्‌के सनातन अंश हो, उनके सभी दिव्य गुणोंका तुम्हारे अंदर विकास तथा प्रकाश हो सकता है, बस, उनका चिन्तन करो, उनको जगाओ और उनका पोषण करो उनको अपनाकर। तुम्हारा जीवन भगवान्‌के दिव्य गुणोंसे—दैवी सम्पदासे सम्पन्न होकर परम सुन्दर, परम पवित्र, परम सुखमय और परम मधुर मनोहर बन जायगा। फिर तुम्हारे द्वारा इन्हींका प्रसार-प्रचार होगा।

याद रक्खो—तुम सदा सात्त्विक दैवी विचार रक्खोगे, तब उन्हींके अनुसार सहज ही तुमसे बर्ताव-व्यवहार होगा। दूसरोंके साथ तुम वैसे ही बरतोगे। परिणाम यह होगा कि सारे जगत्‌से बदलेमें तुम्हें भी वही सात्त्विक दैवी व्यवहार प्राप्त होगा। इससे परस्पर प्रेम-आनन्द फैलेगा तथा जगत्‌के अशुद्ध अशान्तिमय वातावरणको भी तुम सहज ही शुद्ध शान्तिमय बनानेमें अपना अमूल्य हिस्सा दे सकोगे। यह भी भगवान्‌की बहुत बड़ी सेवा होगी तुम्हारे द्वारा। तुम्हारा अपना तो परम कल्याण होगा ही, तुम औरोंको भी कुपथसे हटाकर कल्याण-पथपर ला सकोगे।

याद रक्खो—जगत्‌की सबसे बड़ी सेवा है जगत्‌के प्राणियोंमें सद्भावोंको, भगवद्भावोंको जाग्रत् करके उनको बढ़ाना, उन्हें भगवान्‌की ओर लगाना। यह काम सदुपदेशसे उतना नहीं होता, जितना सत्-जीवनसे होता है। तुम्हारा जीवन पवित्र भगवद्भावसम्पन्न होगा तो उसके द्वारा अपने-आप जगत्‌के लोग भगवद्भावकी सच्ची शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर सकेंगे। पर यदि तुम अपने अशुद्ध भोगासक्तिमय भावोंसे जगत्‌के लोगोंके अंदर आसुरी भावोंको भरते, जगाते और बढ़ाते रहोगे तो तुम अपनी तथा जगत्‌की बहुत बड़ी हानि करोगे। फलस्वरूप तुम्हें स्वाभाविक ही भगवान्‌का भी कोपभाजन होना पड़ेगा, जिसका, रोग-नाशके लिये कड़वी दवाकी भाँति, मङ्गलमय दयामय भगवान् तुम्हारे लिये मङ्गल विधान करेंगे।

याद रक्खो—यदि तुम अपने अंदर रहे परमात्माको जगा सके, देख सके, उनके प्रति अपनेको अर्पण करके उनके आदेशानुसार चल सके और उनके दिव्य गुणोंका अपने अंदर विकास-प्रकाश कर सके तो तुम्हारा मानव-जीवन परम सफल होगा। तुम जगत्‌में धन्य ही नहीं बनोगे, तुम तो तरन-तारन बन जाओगे। तुम्हारे अंदर भगवान् नित्य विराजित हैं, उनके साथ ही उनके दिव्य गुण भी, दिव्य भाव भी वर्तमान हैं। उनको देखो, प्रकाश करो और उन्हें अपने सहज जीवनमें उतारकर धन्य हो जाओ।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकी महिमा

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सत्यवादी धर्मात्मा राजा थे। उनके नगरमें कोई भी साधारण मनुष्य बिक्री करनेके लिये बाजारमें अन्न, वस्त्र आदि कोई वस्तु लाता और वह वस्तु यदि सायंकालतक नहीं बिकती तो उसे राजा खरीद लिया करते थे। लोकहितके लिये राजाकी यह सत्य प्रतिज्ञा थी। अतः सायंकाल होते ही राजाके सेवक शहरमें भ्रमण करते और किसीको कोई वस्तु लिये बैठे देखते तो वे उससे पूछकर और उसके संतोषके अनुसार कीमत देकर उस वस्तुको खरीद लेते थे।

एक दिनकी बात है। स्वयं धर्मराज ब्राह्मणका वेष धारण करके घरकी टूटी-फूटी व्यर्थकी चीजें, जो बाहर फेंकने योग्य कूड़ा-करकट थीं, एक पेटीमें भरकर उन सत्यवादी धर्मात्मा राजाकी परीक्षा करनेके लिये उनके नगरमें आये और बिक्रीके लिये बाजारमें बैठ गये, किंतु कूड़ा-करकटको कौन लेता? जब सायंकाल हुआ, तब राजाके सेवक नगरमें सदाकी भाँति घूमने लगे। नगरमें बेचनेके लिये लोग जो वस्तुएँ लाये थे, वे सब बिक चुकी थीं। केवल ये ब्राह्मण अपनी पेटी लिये बैठे थे। राजसेवकोंने इनके पास जाकर पूछा—'क्या आपकी वस्तु नहीं बिकी?' उन्होंने उत्तर दिया 'नहीं'। राजसेवकने पुनः पूछा—'आप इस पेटीमें बेचनेके लिये क्या चीज लाये हैं? और उसका मूल्य क्या है?' ब्राह्मणने कहा—'इसमें दरिद्र (कूड़ा-करकट) भरा हुआ है। इसका मूल्य एक हजार रुपये हैं।' यह सुनकर राजसेवक हँसे और उन्होंने कहा—'इस कूड़ा-करकटको कौन लेगा, जिसका एक पैसा भी मूल्य नहीं है।' ब्राह्मणने कहा—'यदि इसे कोई नहीं लेगा तो मैं इसे वापस अपने घर ले जाऊँगा।' राजसेवकोंने तुरंत राजाके पास जाकर इसकी सूचना दी। इसपर राजाने कहा—'उन्हें वस्तु वापस मत ले जाने दो। मूल्य जो कुछ कम-ज्यादा हो सके, उन्हें संतोष कराकर वस्तु खरीद लो।'

राजसेवकोंने आकर ब्राह्मणसे उस पेटीके दो सौ रुपये मूल्य कहा, किंतु ब्राह्मणने एक हजारसे एक पैसा भी कम लेना स्वीकार नहीं किया। राजसेवकोंने पाँच सौ रुपयेतक देना स्वीकार कर लिया परंतु ब्राह्मणने इन्कार कर दिया। तब राजसेवकोंमेंसे कुछ व्यक्ति उत्तेजित होकर राजाके पास आये और बोले—'महाराज! उनकी पेटीमें दरिद्र (कूड़ा-करकट) भरा हुआ है, एक पैसेकी भी चीज नहीं है और पाँच सौ रुपये देनेपर भी वे नहीं दे रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें आपको उनकी वस्तु नहीं खरीदनी चाहिये।' राजाने कहा—'नहीं, हमारी सत्य प्रतिज्ञा है, हम सत्यका त्याग कभी नहीं करेंगे, इसलिये ब्राह्मणको, वे जो माँगें, देकर उस वस्तुको खरीद लो।' यह सुनकर राजसेवक राजाके इस आग्रहको देखकर हँसे और लौट आये। उन्होंने निरुपाय होकर ब्राह्मणको एक हजार रुपये दे दिये और उनकी पेटी ले ली। ब्राह्मण रुपये लेकर चले गये और राजसेवक पेटीको राजाके पास ले आये। राजाने उस दरिद्रसे भरी पेटीको राजमहलमें रखवा दिया।

रात्रिमें जब शयनका समय हुआ, तब राजमहलके द्वारसे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित एक बहुत सुन्दर युवती निकली। राजा बाहर बैठकमें बैठे हुए थे। उस स्त्रीको देखकर राजाने पूछा—'आप कौन हैं? किस कार्यसे आयी हैं? और क्यों जा रही हैं?' उस स्त्रीने कहा—'मैं लक्ष्मी हूँ। आप सत्यवादी धर्मात्मा हैं, इस कारण मैं सदासे आपके घरमें निवास करती रही हूँ, पर अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो आपके घरमें दारिद्र्य आ गया है। जहाँ दारिद्र्य रहता है वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। इसलिये आज मैं आपके यहाँसे जा रही हूँ।' राजा बोले—'जैसी आपकी इच्छा।'

थोड़ी देर बाद राजाने एक बहुत ही सुन्दर युवा पुरुषको राजमहलके दरवाजेसे निकलते देखा तो उससे पूछा—'आप कौन हैं? कैसे आये हैं और कहाँ जा रहे हैं?' उस सुन्दर पुरुषने कहा—'मेरा नाम दान है। आप सत्यवादी धर्मात्मा हैं, इस कारण सदा मैं आपके यहाँ निवास करता रहा हूँ। अब जहाँ लक्ष्मी गयी है, वहीं मैं जा रहा हूँ; क्योंकि जब लक्ष्मी चली गयी, तब आप दान कहाँसे करेंगे?' तब राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

उसके बाद फिर एक सुन्दर पुरुष निकलता दिखायी दिया। राजाने उससे भी पूछा—'आप कौन हैं? कैसे आये हैं और कहाँ जा रहे हैं?' उसने कहा—'मैं सदाचार हूँ। आप सत्यवादी धर्मात्मा हैं, अतः आपके यहाँ मैं सदासे निवास करता रहा। अब आपके यहाँसे लक्ष्मी और दान चले गये तो मैं भी वहीं जा रहा हूँ; क्योंकि बिना सम्पत्तिके आप सदाचारका पालन कैसे करेंगे?' राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

तदनन्तर फिर एक युवा पुरुष दिखलायी दिया। राजाने पूछा—'आप कौन हैं? कैसे आये और कहाँ जा रहे हैं?' उसने कहा—"मेरा नाम यश है। आप धर्मात्मा सत्यवादी हैं, अतः मैं आपके यहाँ सदासे रहता आया हूँ; किंतु आपके यहाँसे लक्ष्मी, दान, सदाचार सब चले गये तो उनके बिना आपका यश कैसे रहेगा? इसलिये मैं भी वहीं जा रहा हूँ, जहाँ वे गये हैं।' राजाने कहा—'ठीक है।'

तत्पश्चात् एक सुन्दर पुरुष फिर निकला। उसे देखकर उससे भी राजाने पूछा—'आप कौन हैं, कैसे आये और कहाँ जा रहे हैं?' उसने कहा—'मेरा नाम सत्य है। आप धर्मात्मा हैं, अतः मैं सदा आपके यहाँ रहता आया हूँ; किंतु अब आपके यहाँसे लक्ष्मी, दान, सदाचार, यश—सब चले गये तो मैं भी वहीं जा रहा हूँ।' राजाने कहा—'मैंने तो आपके लिये ही इन सबका त्याग किया है, आपका तो मैंने कभी त्याग किया नहीं, इसलिये आप कैसे जा सकते हैं? मैंने लोकोपकारके लिये यह सत्य प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि कोई भी व्यक्ति मेरे नगरमें बिक्री करनेके लिये कोई वस्तु लेकर आयेगा और सायंकालतक उसकी वह वस्तु नहीं बिकेगी तो मैं उसको खरीद लूँगा। आज एक ब्राह्मण दारिद्र्य लेकर बिक्री करने आये जो एक पैसेकी भी चीज नहीं; किंतु सत्यकी रक्षाके लिये ही मैंने विक्रेता ब्राह्मणको एक हजार रुपये देकर उस दारिद्र्य (कूड़ा-करकट) को खरीद लिया। तब लक्ष्मीने आकर कहा कि आपके घरमें दारिद्र्यका वास हो गया, इसलिये मैं नहीं रहूँगी। इसी कारण मेरे यहाँसे ये लक्ष्मी आदि सब चले गये। ऐसा होनेपर भी मैं आपके बलपर डटा हुआ हूँ।' यह सुनकर सत्यने कहा—'जब मेरे लिये ही आपने इन सबका त्याग किया है, तब मैं नहीं जाऊँगा।' ऐसा कहकर वह राजमहलमें वापस प्रवेश कर गया।

थोड़ी ही देर बाद 'यश' लौटकर राजाके पास आया। राजाने पूछा—'आप कौन हैं और क्यों आये हैं?' उसने कहा—'मैं वही यश हूँ और आपमें सत्य विराजमान है। चाहे कोई कितना ही सदाचारी, दानी और लक्ष्मीवान् क्यों न हो, किंतु बिना सत्यके वास्तविक कीर्ति नहीं हो सकती। इसलिये जहाँ सत्य है, वहीं मैं रहूँगा।' राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

तदनन्तर सदाचार आया। राजाने उससे पूछा—'आप कौन हैं और किस लिये आये हैं?' उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'मैं वही सदाचार हूँ, जहाँ सत्य रहता है, वहीं मैं रहता हूँ, चाहे कोई कितना ही दानशील और लक्ष्मीवान् क्यों न हो, किंतु बिना सत्यके उसमें सदाचार नहीं रह सकता। आपमें सत्य है, अतः मैं यहीं रहूँगा।' राजा बोले—'बहुत अच्छा'।

तत्पश्चात् दान आया। राजाने उससे भी पूछा—'आप कौन हैं और कैसे आये हैं?' उसने कहा—'मैं वही दान हूँ। आपमें सत्य विराजमान है और जहाँ सत्य रहता है वहीं मैं रहता हूँ; क्योंकि कोई कितना ही लक्ष्मीवान् क्यों न हो, बिना सद्भावके दान नहीं दे सकता। आपके यहाँ सत्य है, इसलिये मैं यहीं रहूँगा।' राजा बोले—'बहुत अच्छा!'

इसके अनन्तर लक्ष्मी आयी। राजाने पूछा—'आप कौन हैं और क्यों आयी हैं? उसने कहा—'मैं वही लक्ष्मी हूँ। आपके यहाँ सत्य विराजमान है। आपके यहाँ यश, सदाचार, दान भी लौट आये हैं। इसलिये मैं भी लौट आयी हूँ।' राजा बोले—'देवि! यहाँ तो दारिद्र्य भरा हुआ है, आप कैसे निवास करेंगी?' लक्ष्मीने कहा—'राजन्! जो कुछ भी हो, मैं सत्यको छोड़कर नहीं रह सकती।' राजा बोले—'जैसी आपकी इच्छा।'

तदनन्तर वहाँ स्वयं धर्मराज उसी ब्राह्मणके रूपमें आये। राजाने पूछा—'आप कौन हैं और कैसे आये हैं?' धर्मराज बोले—'मैं साक्षात् धर्म हूँ, मैं ही ब्राह्मणका रूप धारण करके एक हजार रुपयेमें आपको दारिद्र्य दे गया था। आपने सत्यके बलसे मुझ धर्मको जीत लिया। मैं आपको वर देनेके लिये आया हूँ, बतलाइये, मैं आपका कौन-सा अभीष्ट कार्य करूँ?' राजाने कहा—'आपकी कृपा है। मुझको कुछ भी नहीं चाहिये। आप जिस प्रकार सदा करते आये हैं, उसी प्रकार करते रहिये।'

इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध हो गया कि जहाँ सत्य है, वहाँ सब कुछ है। वहाँ कभी सम्पत्ति, दान, सदाचार, यशकी कमी भी हो जाय तो मनुष्यको घबराना नहीं चाहिये। यदि सत्य कायम रहेगा तो ये सभी आप ही लौट आयेंगे और ये न आयें तो भी कोई हानि नहीं, उसका परम कल्याण है। अतः कल्याणकामी पुरुषको सत्यका कभी त्याग नहीं करना चाहिये, बल्कि निष्कामभावसे उसका अवश्य दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिये।

सत्य—यथार्थ भाषण, सद्गुण और सदाचारका नाम ही सत्य है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥
(१७। २६-२७)

'सत्—इस प्रकार यह परमात्माका नाम सत्यभाव (परमात्माके अस्तित्व) में और श्रेष्ठभाव (सद्गुण) में प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्म (सदाचार) में भी सत् शब्दका प्रयोग किया जाता है तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति (निष्ठा) है वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ (भगवदर्थ) कर्म तो निश्चय ही 'सत्' ऐसे कहा जाता है।'

किसी कविकी यह उक्ति प्रसिद्ध है—

बंदा सत नहिं छाँड़िये सत छाँड़े पत जाय।
सतकी बाँधी लच्छमी फेरि मिलैगी आय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतोषसे शान्ति

(लेखक—स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी)

सारा संसार सुखकी चाह करता है। दुःख तो किसीको चाहिये ही नहीं। पर होता है विपरीत ही। सुखके भोगी तो कोई-कोई ही होते हैं। सभी दुःखकी ज्वालामें ही संतप्त हो रहे हैं। दुःख और अशान्तिका साम्राज्य बहुत बड़ा हो गया है। इसका कारण क्या है? किसी संतने इसके दो कारण बताये हैं—अभाव और अतृप्ति। अभावकी पूर्ति तो कभी हो भी जाय, पर तृष्णाका पेट इतना बड़ा है कि किसीने भी अभीतक उसे नहीं भर पाया।

तृष्णा तो आकाशकी तरह अनन्त है। एकके बाद दूसरी उत्पन्न होती ही रहती है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार और उच्चपदाधिकारी भी तृष्णाके कारण अशान्त जीवन बिता रहे हैं। वरं उनसे वे गरीब ही अच्छे हैं जो सूखी रोटी खाकर भी शान्तिकी निद्रामें सोते हैं। आज खाया तो कलकी चिन्ता नहीं। 'मेहनतसे कमाया और बनाकर खाया' उन्हें चिन्ता ही क्या? मस्त पड़े रहते हैं। पर इन धनवानोंकी तो बात ही निराली है। रात-दिन बेचैनी। साँस लेनेतककी भी फुरसत नहीं। इससे सिद्ध है कि सुख-शान्ति किसी धन-सम्पत्ति अथवा बाह्य साधनसे नहीं मिल सकती। यह तो संतोषका ही फल है। जहाँ संतोष है वहीं शान्ति है, वहीं सुखका राज्य है। श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीका भी यही मत है—

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

वस्तुकी प्राप्ति प्रारब्धके अनुसार ही होती है अथवा प्रभुकी जैसी इच्छा होती है वैसा ही होकर रहता है—ऐसी विचारधारा बन जानेपर संतोष आ ही जाता है और तभी सुख और शान्ति मिल जाती है।

या तो आप प्रारब्धके अनुसार प्राप्त सुख-दुःखको प्रसन्नतापूर्वक भोगते हुए अपने वर्तमान कर्त्तव्यका पालन करते रहिये अथवा अपना सब भार परम प्रभुके पदारविन्दोंपर छोड़ दीजिये। वे भक्तोंके योग-क्षेमका स्वयं वहन करते हैं और उसीमें उनको आनन्द भी मिलता है। वे जैसे रखना चाहें वैसे ही रहिये। कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। बस, ये मार्ग ही शान्तिके मार्ग हैं। आप जो पसंद करें। 'येनेष्टं तेन गम्यताम्।'

जब कभी भी दुःख आयेगा, भोगना तो होगा ही। रोकर भोगें या हँसकर। विवेकी दुःखको हँसकर भोगता है और अविवेकी रोकर। आप भी विवेकका आदर कीजिये। दुःखमें ही सुखके दर्शन कीजिये। वास्तवमें तो सुख-दुःख कुछ हैं ही नहीं। यह तो केवल मनकी मान्यता है। जिससे एक व्यक्तिको सुख मिलता है, उसीसे दूसरेको दुःख मिलता है। एक ही व्यक्तिको एक वस्तु कभी सुखद और कभी दुःखद हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि सुख-दुःख किसी वस्तुमें नहीं, वह केवल कल्पनामात्र है।

सच्चा वीर मानव वही है, जो हर प्रकारकी परिस्थितिमें प्रसन्न रहता है। ऐसे पुरुषोंके संतोष और सुख साथी बन जाते हैं। वह सुखमें भी और दुःखको पाकर भी एकरस रहता है। वह समझता है कि रात और दिनकी तरह सुख-दुःख भी मेहमान ही हैं। जो आया है वह जायगा भी अवश्य। रज्जबजी कहते हैं—

रज्जब केहि लगि रोइये, हँसिये कौन विचार।
गये सो आवन को नहीं, रहे सो जावनहार॥

आने-जानेका ही नाम संसार है। सुख जायगा तो दुःख और दुःख जायगा तो सुख। आप भगवान्की इस मधुर लीलाका अवलोकन करते रहिये। इसीमें चिर शान्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतोष धारण करनेसे आपको सुख-शान्ति मिलेगी। मन प्रसन्न रहेगा। रोगोंमें भी आपकी रक्षा होती रहेगी; क्योंकि असंतोष ही नाना प्रकारके रोगोंका कारण है। चिन्ता-साँपिनिको संतोष ही खा सकता है। संतोषसे ईर्ष्या और द्वेष भी मिट जाते हैं। विनाश और वियोगका भय नहीं रहता, यदि संतोष है। स्मरण रखें—'तृष्णा आग है और संतोष जल, तृष्णा विष है और संतोष अमृत, तृष्णा मृत्यु है और संतोष जीवन।' जबतक तृष्णारूपी आग धधकती रहेगी, तबतक आप चिन्तारूपी चितापर जलते ही रहेंगे। अतः आप संतोष कीजिये, फिर तो सुख-शान्ति और आनन्द आपके पीछे लगे रहेंगे।

सियावर रामचन्द्रकी जय

सनातन शौचाचार

(लेखक—पं० श्रीगुप्तेश्वरजी पाण्डेय)

[गताङ्क पृष्ठ ११०५ से आगे]

इसी प्रकार उक्त योजनाके अनुसार ही विभिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न वर्गके प्राणियों तथा उनके कर्मोंकी रचना हुई है, जो सृष्टि-क्रमके संचालनमें सभी सहायक हैं। इसलिये संसारके हर प्राणीको विधिके विधानके अनुसार ही बर्तना आवश्यक है; क्योंकि ऐसा करनेसे ही सृष्टिकी सुव्यवस्था कायम रहती है तथा इसके विपरीत आचरणसे अव्यवस्था फैल जाती है। इस प्रकार सबका काम बँटा हुआ है और सबको अपने कर्तव्योंका पालन करके दैवी व्यवस्थाको कायम रखना है। संसारमें आवश्यक वस्तुओंके उत्पादनमें देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सभी जीवोंका पारस्परिक सहयोग वाञ्छनीय होता है। इसमें मनुष्यकी प्रधानता होती है। वह कोई नयी सृष्टि तो करता नहीं, वरं प्रकृतिप्रदत्त साधनोंका उपयोग करके उनको अपने व्यवहारके अनुकूल बनानेका प्रयत्न करता है। इस काममें वह पशुओंकी सहायता लेता है, उनको अपने कामोंमें नियुक्त करता है, परंतु सब कुछ करनेपर भी जबतक उसको देवताओंका सहयोग या प्रसाद प्राप्त नहीं होता, तबतक प्राकृतिक तत्त्व उसके अनुकूल नहीं होते। फलतः दिव्य पुरुषोंका सहयोग प्राप्त करनेके लिये उसको उनकी उपासना करनी पड़ती है।

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनं च दैवतम्।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

प्राकृतिक तत्त्वोंपर देवताओंका नियन्त्रण होता है और देवताओंका आवाहन वैदिक मन्त्रोंद्वारा होता है। उन वैदिक मन्त्रोंकी सिद्धि ब्राह्मणोंके हाथमें रहती है और इसी प्रकार ब्राह्मणोंको देवताओंका सांनिध्य प्राप्त होता है। यज्ञानुष्ठानमें वैदिक मन्त्रोंका सस्वर उच्चारण होनेपर देवता प्रकट होते हैं और उनमें दिये गये अपने भाग ग्रहण करते हैं। इस प्रकार तुष्ट होकर देवता मनुष्योंके कामोंमें सहायक बनते हैं और उनका यथेष्ट सहयोग प्राप्त करके मनुष्य अपने व्यापारमें सफलीभूत होता है। दिव्य पुरुषोंके ऊपर उक्त कर्मोंके सम्पादनकी जिम्मेवारी विधाताने स्वयं दी है। इसलिये उन कर्मोंमें उनका प्रवृत्त होना स्वाभाविक ही है। वे अपने कर्म आपसे-आप करते रहते हैं, परंतु मनुष्यको आवश्यकताके अनुसार उनका सहयोग प्राप्त करनेके लिये उनको अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। यही कारण है कि मनुष्यको नियमितरूपसे यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहना चाहिये और इसी प्रणालीके अनुसार पञ्चमहायज्ञोंकी व्यवस्था की गयी है।

इन यज्ञोंकी अनिवार्यताके विषयमें एक बहुत ही रहस्यपूर्ण बात यह है कि मनुष्य जो कुछ जीवनोपयोगी वस्तुओंका उत्पादन करता है, उसमें देवता, मनुष्य, पशु आदि सभी सहायक होते हैं, परंतु उत्पादित पदार्थ केवल मनुष्योंके हाथमें ही जाते हैं तथा वे ही उनको रखनेके अधिकारी हैं। अतः उन पदार्थोंके उचित वितरणका काम मनुष्योंको ही करना पड़ता है और उस वितरणकी समुचित व्यवस्थाके लिये यज्ञोंका अनुष्ठान होता है।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥

(गीता ३। १२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यज्ञद्वारा संतुष्ट किये हुए देवता तुमलोगोंको इच्छित भोग देंगे। उन देवताओंके दिये हुए भोगोंको उन्हें न देकर जो केवल स्वयं उपभोग करता है, वह देवताओंके स्वत्वको हरण करनेवाला चोर ही है। इस प्रकार देवताओंके प्रसादसे उपभोगकी सामग्री प्राप्तकर, जिसमें उनका भी भाग है, जो उनको दिये बिना सब अपने उपभोगके लिये रख लेता है, वह उनके स्वत्वको अपहरण करनेका दोषी होता है। इस प्रकार संसारचक्रको चालू रखनेके लिये यज्ञोंकी व्यवस्था की गयी है। आगे बतलाया है कि भक्षण किये हुए अन्न रक्त और वीर्यरूपमें परिणत होनेपर उससे प्राणी प्रत्यक्ष ही उत्पन्न होते हैं। पर्जन्य अर्थात् वृष्टिसे अन्नकी उत्पत्ति होती है और यज्ञसे वृष्टि होती है। क्रियारूप कर्म वेदरूप ब्रह्मसे उत्पन्न होता है और वेदरूप ब्रह्म साक्षात् परमात्मा नामक अक्षरसे निःश्वासवत् उत्पन्न हुआ है तथा वह सर्वगत होता हुआ भी सदा यज्ञमें प्रतिष्ठित है। इस प्रकार यह जगत्-चक्र चलता रहता है और जो मनुष्य ईश्वरद्वारा यत्नपूर्वक चलाये गये इस चक्रके अनुसार नहीं वर्तता, उस पापीका जीना व्यर्थ ही है।

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन् न स जीवति॥
(मनु० ३। ७२)

जो अन्नादिसे देवता, अतिथि, सेवक आदि तथा भृत्य, पिता, माता आदि गुरुजनों और अपने आत्माको संतुष्ट नहीं करता, वह जीवित भी मृतकके समान है। इस कारण वेदाध्ययन और देव-कर्ममें नित्य लगे रहना चाहिये; क्योंकि देवकर्ममें लगा हुआ मनुष्य भगवान् मनुके अनुसार चराचर जगत्का पालन करता है। अग्निकी आहुति सूर्यको प्राप्त होती है, सूर्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है। जिस प्रकार वायुके अवलम्बनसे समस्त प्राणी जीते हैं, इसी प्रकार गृहस्थके सहारे ही सम्पूर्ण आश्रमोंके लोग जीवन धारण करते हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी वेदार्थव्याख्या तथा अन्नादि सदैव गृहस्थसे ही प्राप्त करके अपना पोषण करते हैं। इसलिये सारे आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। जो मरनेपर स्वर्ग और जीते-जी सुख भोगनेकी इच्छा रखते हैं, उनको यत्नपूर्वक गृहस्थाश्रमका पालन करना चाहिये। अतः इस आश्रमको दुर्बल इन्द्रियोंवाला मनुष्य नहीं सँभाल सकता। ऋषि, पितर, देवता, भूत और अतिथि—ये सब गृहस्थोंकी आशा करते हैं, इसलिये ज्ञानवान् गृहस्थको वेदपाठके द्वारा ऋषियोंका, हवनसे देवताओंका, श्राद्धसे पितरोंका, अन्नसे मनुष्यका तथा बलिकर्मसे भूतोंका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये।

इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा।
सम्प्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः॥४०॥
दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम्।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतम्॥
(पराशर० ४१ अ० १)

अर्थात् मित्र हो अथवा शत्रु, मूर्ख हो या पण्डित, चाहे जैसा भी मनुष्य वैश्वदेवके अन्तमें आ जाय, वह स्वर्ग प्राप्त करानेवाला 'अतिथि' कहलाता है। जो दूरसे आया हो, थका हो और वैश्वदेवके समय पहुँचा हो, उसे अतिथि जानना चाहिये; परंतु पहलेसे आया हुआ अतिथि नहीं कहा जाता। एक ही गाँवमें रहनेवालेको अतिथिके रूपमें कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये; क्योंकि अतिथिका अर्थ यही है कि जो नित्य न आवे। समयपर आये हुए अतिथिका स्वागत करके, आसन देकर और पाँव धोकर पूजन करे।

अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिर्यथा।
वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वं दिने दिने॥
(पराशर० ४९ अ० १)

अर्थात् अच्छे व्रतवाला ब्राह्मण अतिथि तथा वेदाभ्यासमें रत रहनेवाला मनुष्य—ये प्रतिदिन भी आवें तो इन्हें अपूर्व अतिथि मानना चाहिये। वैश्वदेवके समय यदि कोई भिक्षुक घरपर आ जाय तो वैश्वदेवके लिये अन्न निकालकर उस भिखारीको भिक्षा दे देनी चाहिये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर चला जाता है, उसके पितर पंद्रह वर्ष भोजन ग्रहण नहीं करते।

अनुष्ठान-विधि

संध्या

शास्त्रोंमें त्रिकाल-संध्याकी व्यवस्था है; परंतु प्रातः-सायं संध्या अनिवार्य है। इसलिये इस युगमें प्रातःकाल और सायंकालके संध्याकी व्यवस्था होनी चाहिये। जो इस युगमें भी त्रिकाल संध्या कर सकेंगे, उनको 'अधिकस्य अधिकं फलम्' प्राप्त होगा। वास्तवमें संध्योपासनके समय जो चिन्तन किया जाता है उसका परिणाम यह होना चाहिये कि उसी तरहकी मानसिक वृत्ति संध्या करनेवाले व्यक्तिकी सदा बनी रहे। अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातःकालकी संध्याके लिये ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारण करके पवित्र तथा एकान्त स्थानमें कुश एवं कम्बल आदिके पवित्र आसनपर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख सिद्धासनसे बैठकर प्रातःकालकी संध्याकी उपासना करनी चाहिये। संध्या करनेवालेके लिये एक जोड़ा शुद्ध यज्ञोपवीत तथा संध्या करते समय देहपर धौतवस्त्रके अतिरिक्त एक उत्तरीय वस्त्र डाल लेना आवश्यक है। आसनपर बैठनेके पहले इस मन्त्रको पढ़कर जल छिड़क देना चाहिये—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

'हे पृथ्वी देवि! तुमने सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रक्खा है और भगवान् विष्णुने तुमको धारण किया है। हे देवि! तुम मुझे धारण करो तथा मेरे आसनको पवित्र कर दो।' तत्पश्चात् अपने शरीरपर जल छिड़ककर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशामें स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर सब ओरसे शुद्ध हो जाता है।' इसके बाद इन मन्त्रोंसे तीन बार आचमन करे—

ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा।

तत्पश्चात् मनमें गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करते हुए एक बार या तीन बार पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायाम करनेकी विधि यह है कि सिद्धासनपर तनकर बैठा हुआ दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिनी नाकके छिद्रको दबाकर मनमें गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करता हुआ तथा भगवान् श्रीरामकी मूर्तिका ध्यान करता हुआ नाकके बायें छिद्रसे श्वास भरना चाहिये और उसी अवस्थामें मन्त्र-जप तथा ध्यान करता हुआ बीचकी दो उँगलियोंसे बायीं नाकको भी दबाकर श्वासको रोकना चाहिये तथा इसी प्रकार दाहिनी नाकसे वायु बाहर निकाल देना चाहिये। तत्पश्चात् उपर्युक्त विधिसे भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करता हुआ उपर्युक्त विधिसे दाहिनी नाकसे वायु भरकर, उसको रोककर पुनः बायीं नाकसे वायुको निकाल देना चाहिये। श्वास छोड़ते समय स्थिर ध्यान नहीं रहने, श्वास उभड़नेका भय रहता है; इसलिये सावधान होकर प्राणायाम करना चाहिये।

तत्पश्चात् संध्याके अन्यान्य आवश्यक अङ्गोंको सम्पन्न करके गायत्रीमन्त्रके अर्थको हृदयंगम करता हुआ स्थिर बैठकर ध्यान करे तथा स्थिरचित्तसे गायत्रीमन्त्रका जप करे। अपनी शक्ति एवं समयके अनुसार जप होना चाहिये। साधारणतः एक मालाके जपका विधान होना चाहिये। गायत्री-मन्त्रका पूरा स्वरूप इस प्रकारका होना चाहिये—

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

इस मन्त्रका अर्थ पहले दिया जा चुका है।

गायत्रीमन्त्रका जप करके स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्यायके लिये अपने योग्यतानुसार पुस्तकका चुनाव कर लेना चाहिये। साधारण संस्कृत जाननेवालेके लिये श्रीमद्भगवद्गीता और असंस्कृतज्ञके लिये तुलसीकृत रामायण सरल होगा। गीतामें एक अध्याय, तीन अध्याय अथवा छः अध्यायका प्रतिदिन स्पष्ट शब्दोंमें शुद्ध उच्चारणके साथ पाठ होना चाहिये। स्वाध्यायकी समाप्ति भगवान् श्रीरामचन्द्र या श्रीकृष्णके ध्यान एवं 'श्रीराम जय राम जय जय राम' या 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' आदि मन्त्रोंका ग्यारह बार उच्चारण करके करनी चाहिये। इसके बाद तर्पण करना चाहिये अथवा तर्पणका काम स्नानके पश्चात् तुरंत भी इन मन्त्रोंसे किया जा सकता है—

(१) ॐ देवासुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः।
तृप्तिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः॥

(२) येऽबान्धवा बान्धवाश्च येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति॥

(३) ॐ ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
तेषां हि दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम्॥

(४) ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥

(५) ॐ अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमहायज्ञ

भोजन तैयार हो जानेपर गृहाग्निमें बनाये हुए अन्नसे देवताओंके लिये नित्य विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। अग्निमें हवन करनेके ये संक्षिप्त मन्त्र उपयुक्त हो सकते हैं—

(१) ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा।
(२) ॐ मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा।
(३) ॐ पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा।
(४) ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा।
(५) ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा।
(६) ॐ यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा।

(शुक्लयजुर्वेदसंहिता ८। १३)

इसके पश्चात् भूतोंके लिये इस मन्त्रसे बलि निकालकर रख देना चाहिये—

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाश्च यक्षोरगदैत्यसंघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया प्रदत्तं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु॥
शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

(मनु० ३। ९२)

सम्पूर्ण अन्नको निकालकर कुत्ते, पतित, श्वपच, कुष्ठादि पापरोगियों, कौवे तथा कृमि आदिके लिये भूमिपर धीरे-धीरे रख देना चाहिये, जिससे उसमें धूलि न लग जाय। इस प्रकार बलिकर्म करके पहले अतिथिको भोजन कराना चाहिये और तब क्रमानुसार अन्य सभी लोगोंको भोजन करना चाहिये।

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते॥

(मनु० ३। १०२)

जो ब्राह्मण दूसरेके घरमें एक रात निवास करे उसको अतिथि कहते हैं; क्योंकि वह नित्य नहीं ठहरता और इसी कारण उसे अतिथि कहते हैं। भोजनकी जिस सामग्रीको अतिथिको भोजन न कराया जाय, उसको स्वयं भी भोजन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणके घरमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र, सम्बन्धी और गुरु अतिथि नहीं होते। इन लोगोंको साथ खिलाना चाहिये।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(मनु० ३। १०१)

रहनेका स्थान, चटाई, जल तथा प्रिय वचन असमर्थ गृहस्थके यहाँ भी अतिथिको मिलना चाहिये।

शिष्टाचार

भगवान् मनुके अनुसार जीवोंमें प्राणधारी, प्राणधारियोंमें बुद्धिमान्, बुद्धिमानोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें पण्डित, पण्डितोंमें कृतबुद्धि अर्थात् नित्य कर्म करनेवाले, कृतबुद्धियोंमें शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले और ऐसे कर्मनिष्ठोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणकी उत्पत्ति धर्मका अविनाशी शरीर इस कारण है कि ब्राह्मण धर्मके लिये उत्पन्न होता है और धर्मसे उत्पन्न आत्मज्ञानसे मुक्ति पाता है। उत्पन्न होते ही ब्राह्मण पृथ्वीमें सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि वह सब प्राणियोंके धर्मसमूहकी रक्षाके लिये सामर्थ्यवान् है।

पराशरऋषिके अनुसार सत्ययुगमें प्राण हड्डियोंमें रहता है, त्रेतामें मांसमें, द्वापरमें रुधिरमें और कलियुगमें अन्नादिमें प्राण रहता है। हर युगके जो धर्म हैं तथा उन-उन युगोंमें जो द्विज होते हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वे युगोंके अनुरूप ही होते हैं। हर युगकी सामर्थ्य तथा जो विशेष बातें हैं उनका पराशर आदि ऋषियोंने वर्णन किया है। उससे जो कुछ न्यून हो, उसीके लिये प्रायश्चित्तका विधान है।

श्रेष्ठ पुरुषके सामने आनेपर छोटेके प्राण ऊपरकी ओर उठने लगते हैं और उठकर नमस्कार करनेसे मनुष्य उनको सँभाल पाता है। वृद्धोंको प्रणाम या उनकी सेवा करनेसे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं, अतः वृद्ध जनोंको नम्रतापूर्वक नमस्कार करना चाहिये।

गुरुजनोंकी शय्या और आसनपर नहीं बैठना चाहिये और यदि स्वयं अपनी शय्या अथवा आसनपर बैठा हो तो उनके आनेपर उठ जाना चाहिये। गुरुजनोंकी ओरसे प्रेरणा हो या न हो, उनकी सेवा-शुश्रूषा यत्नपूर्वक करनी चाहिये। मन, वाणी तथा शरीरपर संयम रखकर गुरुजनोंके साथ व्यवहार करना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुषोंके सामने विनम्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावसे खड़ा होना चाहिये और जब वे चलने लगें, तब थोड़ी दूरतक उनके पीछे-पीछे जाना चाहिये।

सावधान होकर श्रुति-स्मृतिमें कहे हुए सदाचारका आलस्यरहित होकर अनुष्ठान करना चाहिये। सदाचारसे आयु, वाञ्छित संतान एवं अक्षय धनकी प्राप्ति होती है। संसारमें दुराचार ही मनुष्यको निन्दित, रोगी, दुःखभागी और अल्पायु बना देता है।

जो पराधीन कर्म हैं, उन्हें प्रयत्न करके त्याग देना चाहिये और जो कर्म अपने अधीन हों, उनको यत्नपूर्वक करना चाहिये। पराधीन होकर किया हुआ सब काम दुःखका मूल और अपनी स्वतन्त्रतासे किया गया सब काम सुख-मूलक होता है। जिस कर्मके करनेसे अपनी आत्मा संतुष्ट होती हो उसको यत्नपूर्वक करना चाहिये और जिस कर्मसे आत्मा संतुष्ट न हो उसको त्याग देना चाहिये।

सत्य बोलते हुए भी प्रिय वचन बोलना चाहिये तथा अप्रिय एवं दूसरोंके मर्मको स्पर्श करनेवाली सत्य बात नहीं बोलनी चाहिये। साथ-ही-साथ दूसरोंकी प्रसन्नताके लिये झूठी बात भी नहीं बोलनी चाहिये। हर हालतमें मितभाषी होना श्रेयस्कर है, इसलिये बिना प्रयोजनके नहीं बोलना चाहिये। कटुवचन तो कभी नहीं बोलना चाहिये।

धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और शिक्षा—ये पाँच सम्मान-के स्थान हैं। इनमें धनीसे बहुत बन्धुवाला, बन्धुवालेसे अवस्थावाला, अवस्थावालेसे उत्तम कर्म करनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवालेसे विद्वान् अधिक माननीय है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यमें इन पाँचों गुणोंमेंसे जितने गुण अधिक हैं, उतना ही वह मान्य है तथा नब्बे वर्षसे अधिक आयुवाला व्यक्ति सम्माननीय है।

रथवाले, नब्बे वर्षसे अधिक अवस्थावाले, रोगी, बोझ ले जानेवाले, स्त्री, स्नातक, राजा और वर—इनको देखकर रास्ता छोड़ देना चाहिये। यदि ये सब एक जगह मिल जायँ तो इनमें स्नातक तथा राजा माननीय हैं और इन दोनोंमें स्नातक अधिक सम्माननीय है।

उपाध्यायसे दसगुना आचार्य और आचार्यसे सौ गुना पिता तथा पितासे हजार गुना माताका गौरव है। जन्मदाता तथा पिता ये दोनों पिता कहे गये हैं, इनमें जन्मदातासे वेद पढ़ानेवाला श्रेष्ठ है; क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्म ही इस लोक और परलोकमें नित्य है। माता-पिता कामवश जन्म देते हैं। वेदका जाननेवाला आचार्य विधिपूर्वक गायत्रीके उपदेश-से बालककी जिस जातिको उत्पन्न करता है, वही जाति संसारमें सत्य, अजर तथा अमर है। वेद पढ़नेके लिये जन्म देनेवाला तथा अपने धर्मोंका शिक्षक ब्राह्मण बालक होकर भी वृद्धका पिता माना जाता है। जो उपाध्याय थोड़ा या बहुत पढ़नेमें उपकार करता है, उसको भी गुरु जानना चाहिये।

न अधिक वर्षोंके सफेद बालोंसे, न धनसे, न बन्धुओंसे कोई बड़ा होता है। इस विषयमें ऋषियोंने ऐसा माना है कि जो अङ्गोंसहित वेदपाठी हो, वही बड़ा है। ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे, क्षत्रियोंकी बलसे, वैश्योंकी धन-धान्यसे तथा शूद्रोंकी अवस्थासे श्रेष्ठता होती है। सिरके बाल सफेद होनेसे कोई वृद्ध नहीं होता। विद्वान् यदि युवा भी हो तो उसे देवता लोग वृद्ध कहते हैं। जिस प्रकार काठका हाथी और चमड़ेका मृग होता है उसी प्रकार बिना विद्याका ब्राह्मण है। ये तीनों नामके लिये हाथी, मृग और ब्राह्मण कहे जाते हैं।

धर्मकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको अहिंसाके पालनके लिये मधुर, विनम्र एवं कल्याणकारी वचन बोलने चाहिये। जिसकी मन-वाणी सुरक्षित एवं विशुद्ध है, वही वेदान्तके फलको प्राप्त करता है। दुःखके समय किसीके हृदयको न दुखावे और न कभी द्रोह ही करे तथा उद्वेगकारी वाक्य न बोले। अहिंसा-पालनके लिये देखकर पृथ्वीपर पैर रखना चाहिये, छानकर जल पीना चाहिये, सत्यसे पवित्र की हुई वाणी बोलनी चाहिये तथा पवित्र मनसे आचरण करना चाहिये।

बुद्धिमान् पुरुषको सदैव सम्मानसे विषके समान डरना चाहिये और अपमानको अमृतके तुल्य समझना चाहिये। अपमान सहन करनेवाला सुखपूर्वक सोता, जागता तथा विचरता रहता है, परंतु अपमान करनेवाला नष्ट हो जाता है। तप करता हुआ द्विज सदा वेदका अभ्यास करता रहे; क्योंकि वेदका अभ्यास परम तप कहा गया है।

गुरुके समीप विद्यार्थीको सदा सामान्य अन्न, वस्त्र एवं वेशका उपयोग करना चाहिये। उसकी शय्या तथा आसन गुरुकी संनिधिमें सदा नीचा होना चाहिये। गुरु-शिष्यको ऐसे स्थानोंमें नहीं बैठना चाहिये, जिससे एककी हवा दूसरेको लग सके। जहाँ गुरुकी निन्दा होती हो, वहाँसे हट जाना चाहिये अथवा कानोंको बंद कर लेना चाहिये।

यदि गुरु मुँह फेरकर खड़े हों तो उनके सामने जाकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर हों तो संनिकट जाकर, सोते और समीप बैठे हुए गुरुको प्रणाम करके शिष्यको सम्भाषण करना चाहिये। बैठे हुए गुरुके सामने खड़े होकर और खड़े हुए गुरुके सामने जाकर तथा चलते हुएके पीछे चलकर बातें करनी चाहिये। उनकी आज्ञाका स्वीकार तथा सम्भाषण सोकर, आसनपर बैठकर, भोजन करते समय तथा मुँह फेरकर नहीं करना चाहिये।

गुरुकी अनुपस्थितिमें भी उनका खाली नाम नहीं लेना चाहिये और न कभी उनकी बोली, चाल एवं चेष्टाकी ही नकल करनी चाहिये। गुरुके साथ एक या समान आसनपर कभी नहीं बैठना चाहिये; परंतु किसी सवारीपर, मकानकी छतपर, शिला या काठके पटरेपर तथा नावमें शिष्य गुरुके साथ बैठ सकता है।

गुरुके गुरुके साथ आचार्यके समान व्यवहार करना चाहिये और गुरुके सम्मुख अपने माता-पिता एवं चाचा आदिको भी गुरुकी आज्ञा लिये बिना प्रणाम न करे। धर्मके उपदेशकके साथ भी गुरु-जैसा ही व्यवहार करना चाहिये। सवर्णा गुरुपत्नी गुरुके समान ही पूजनीया होती है। पुरुषोंको दोष लगा देना स्त्रियोंका स्वभाव है; इसलिये नवयुवक शिष्यको स्त्रियोंके बीचमें असावधानीसे नहीं रहना चाहिये। माता, बहन, लड़की आदिके साथ भी एकान्तमें नहीं रहना चाहिये।

आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति है, पिता ब्रह्माकी, माता पृथ्वीकी और भाई अपनी ही मूर्ति है। माता-पिता जो क्लेश पुत्रोत्पत्तिमें सहन करते हैं, उसका बदला सौ वर्षमें भी नहीं दिया जा सकता। अतएव माता-पिताका नित्य तथा आचार्यका सदैव प्रिय करते रहना चाहिये; क्योंकि इन्हीं तीनोंके प्रसन्न होनेपर सारे तप सम्पन्न हो जाते हैं। इन तीनोंकी शुश्रूषा ही परम तप है; इनकी आज्ञा बिना दूसरे कर्मोंको नहीं करना चाहिये। ये ही तीन लोक, तीन आश्रम, तीन वेद तथा तीन अग्नि कहे गये हैं। पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीयाग्नि हैं। अतः इन तीनों अग्नियोंका समूह श्रेष्ठतम है। इन तीनोंमें प्रमाद न करता हुआ गृहस्थ तीनों लोकोंको जीतता है तथा तेजस्वी होकर स्वर्गसुख भोगता है। माताकी भक्तिसे इस लोकको, पिताकी भक्तिसे मध्यलोकको और गुरुकी भक्तिसे ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। जिस मनुष्यने इन तीनोंका आदर किया, वह सारे धर्मोंका आचरण कर चुका और जिसने इनका अनादर किया, उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। इन तीनोंके जीवनकालमें किसी दूसरे कर्मकी आवश्यकता नहीं है, इसलिये इन्हींकी सेवा-शुश्रूषा एवं प्रिय करनेमें सदा लगे रहना चाहिये। यदि कुछ करना भी हो तो इनकी आज्ञासे करना चाहिये।

जैसे कुदालसे खोदते-खोदते जल मिल जाता है, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करते-करते गुरुके पासकी विद्या प्राप्त हो जाती है। श्रद्धापूर्वक शूद्रसे भी शुभ विद्याको तथा चाण्डालसे भी परम धर्मको ग्रहण करना चाहिये। विषसे अमृतको, बालकोंसे सुन्दर वचनको, शत्रुसे शुभ आचरणको और अशुद्ध जगहसे भी सुवर्णको ले लेना चाहिये। स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुन्दर वचन तथा अनेक प्रकारकी कारीगरी सबसे ले लेनी चाहिये। आपत्कालमें अब्राह्मणोंसे भी पढ़ लेना चाहिये और पढ़ते समयतक उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये। परंतु उत्तम गतिको चाहनेवाले शिष्यके लिये उचित है कि जो ब्राह्मण न हो और अङ्गोंसहित वेद न जानता हो, उसके पास न रहे।

श्रीगणेश-प्रार्थना

(मालकोश)

विघ्नहरण विघ्न हरो।
मंगलमय, महामहिम, महिमामय, मया करो॥
श्रीयुत पिंगाक्ष कृष्ण, विघ्नराज, गज आनन।
गौरीसुत, सुविनायक, हेरम्ब, पाप हरो॥
वक्रतुंड, एकदन्त, शूर्पकर्ण, लम्बोदर।
गणपति, गजवक्त्र, विकट, भालचन्द्र अमृत झरो॥
गिरिजाप्रिय, धूम्रवर्ण, बुद्धिराशि, विघ्नेश्वर।
मूषक-आरूढ़ मधुर-मोदकप्रिय, दया करो॥
ब्रह्मा, श्रीविष्णु, सरल शंकर पूजित सुरेश।
देवोंके देव ईश, तेजपुंज, तिमिर हरो॥

—पद्मकान्त मालवीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतोक्त कर्मयोगी

(लेखक—प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र, एम्० एल्० सी०)

समस्त भारतीय दर्शन जिस सिद्धान्तको आधार मानकर चले हैं, वह है 'दुःखवाद'। उनके अनुसार यह संसार दुःखमय है और इस दुःखका मूल कारण जानकर उसके निवारणका उपाय निर्देश करना ही दर्शनशास्त्रका लक्ष्य है। जैसा कि जरमन पण्डित मोक्षमूलरने कहा है। "The principal systems of philosophy in India .....start from the conviction that the world is full of suffering and that this suffering should be accounted for and removed."—Maxmuller: 'The six systems of Indian Philosophy'. भारतीय दर्शनोंमें कहा गया है कि यह संसार अनित्य एवं मृत्युपीड़ित है। संसारमें जो कुछ आपातरमणीय एवं सुखद प्रतीत होता है, वह केवल क्षणभङ्गुर ही नहीं है, उसके मूलमें दुःख है। संसारमें जीव सांसारिक सुखोंका चाहे जितना ही उपभोग करे, किंतु वह कभी सुखी नहीं हो सकता। इसलिये दुःखनाशके उपायका उद्भावन करना जीवका परम पुरुषार्थ है। समग्र शास्त्रोंके चिन्तन एवं मननका यही सार-मर्म है। दर्शन-शास्त्रोंमें भी दुःख-नाशके उपायोंका ही निर्धारण किया गया है, किंतु सब दर्शनोंने किसी एक ही उपाय या मार्गका निर्धारण न करके भिन्न-भिन्न मार्गोंका निर्देश किया है। उनके मतसे दुःखहानिके भिन्न-भिन्न उपाय हैं।

भगवद्गीतामें भी संसारको अनेक स्थलोंपर दुःखमय कहा गया है। यथा—

'पुनर्जन्म दुःखालयम् अशाश्वतम्'; 'अनित्यम् असुखं लोकम्'; 'मृत्युसंसारसागरात्'; 'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःख-दोषानुदर्शनम्' इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीताके मतसे यह संसार अनित्य एवं असुखकर है, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिरूप दुःखसे ग्रस्त है, इसलिये इसके सुखोंमें न रमकर शाश्वत सुख-प्राप्तिके प्रयत्नोंमें लगना ही कल्याणप्रद है। इसके लिये गीतामें जिस उपायका निर्देश किया गया है, वह दर्शनोंद्वारा उपदिष्ट उपायसे कुछ बातोंमें भिन्न है। संसारको दुःखालय अर्थात् दुःखका घर मानते हुए भी गीता हमें बताती है कि इस कर्ममय संसारमें रहकर भी संसारको जीता जा सकता है और 'ब्रह्मभूत' बनकर जीवन धारण किया जा सकता है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(गीता ५। १९)

'जिनका मन साम्यावस्थाको प्राप्त हो चुका है, वे इस लोकमें ही संसारको जीत चुके हैं। ब्रह्म 'सम' एवं 'निर्दोष' है, इसलिये वे ब्रह्ममें ही अवस्थान करते हैं।' आत्मज्ञान प्राप्त करनेपर समदर्शिता प्राप्त होती है और तब सब प्राणियोंके प्रति समभाव होता है। ज्ञानी जब निरन्तर ब्रह्ममें अवस्थान करता है, तब उसका मन साम्यावस्थामें प्रतिष्ठित होता है। आत्मज्ञान-लाभके लिये ज्ञान, ध्यान, कर्म, भक्ति आदि भिन्न-भिन्न मार्ग बताये गये हैं। गीता इन विभिन्न मार्गोंके बीच समन्वय स्थापित करते हुए हमें बताती है कि इस संसारमें रहते हुए हम किस प्रकार जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

जीव कर्मद्वारा इस संसारमें बद्ध होता है और उसे बार-बार जन्म-मरणके चक्रमें फँसना पड़ता है। कर्मफल भोगे बिना उसका निस्तार नहीं, इसलिये ज्ञानवादियोंके मतसे कर्म ही सब दोषोंका मूल है, अतएव कर्मसंन्यास ही श्रेयस्कर मार्ग है। कर्म करते हुए मोक्षलाभ सम्भव नहीं, किंतु गीताके अनुसार 'कर्मसंन्यास'की अपेक्षा 'कर्मयोग' श्रेयस्कर है। यह ठीक है कि कर्म बन्धनका कारण है, किंतु कर्म जब इस ढंगसे किया जाता है कि कर्तामें कर्तृत्वका अभिमान नहीं रहता और फलकी आकाङ्क्षा न करके वह ईश्वरार्पणबुद्धिसे कर्म करता है, तब शुभ-अशुभ सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे वह मुक्त हो जाता है। यह जो ईश्वरार्पणबुद्धि है—अर्थात् मनुष्य जो कुछ कर्म करे, सब ईश्वरके निमित्त और कर्म करते हुए भी अपनेको अकर्ता समझे, यही गीतोक्त कर्मयोग है। इस कर्मयोगके केन्द्रमें ईश्वर है। ईश्वरमें अविचल आस्था एवं आन्तरिक विश्वास हुए बिना इस कर्मयोगका अनुष्ठान सम्भव नहीं।

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

जो कुछ कर्म किया जाय—भोजन, यजन, दान, तप सब भगवान्‌के निमित्त और भगवान्‌में ही अर्पित कर दिया जाय। ऐसा करनेसे कर्मयोगीको कर्मफलमें बद्ध होना नहीं पड़ता। कर्म करते हुए भी वह कर्मसंन्याससे युक्त होकर ईश्वरको प्राप्त होता है। ज्ञानी आत्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मलीन होता है, किंतु जबतक वह शरीर धारण किये रहता है तबतक उसे मुक्ति प्राप्त नहीं होती। संसारबन्धनके कारण भूत कर्मफलका निःशेष विनाश शरीरपतनके बाद ही सम्भव हो सकता है। इसलिये तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी मुक्ति-लाभमें विलम्ब होता है। शरीरके नष्ट हो जानेपर ही सम्पूर्ण मुक्ति होती है—ऐसा ज्ञानवादियोंका मत है। किंतु गीतोक्त उपदिष्ट कर्मयोगकी विशेषता यह है कि संसारमें रहते हुए भी 'इहैव' मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यह जीवन्मुक्ति है। गीताने उस मुक्तिपर विशेष जोर दिया है। उसमें मनुष्य कर्ममय संसारमें रहते हुए मुक्त एवं दिव्य जीवन व्यतीत करता है। गीताके अनुसार मुक्तिका अर्थ है अज्ञानसे, अहंभावसे मुक्त होकर ब्रह्मभावमें प्रतिष्ठित रहना और दिव्य कर्म करते हुए दिव्य जीवन व्यतीत करना। यह दिव्य जीवन क्या है, इसकी विशद विवेचना गीतामें की गयी है। भगवान् श्रीकृष्णने जिस कर्मयोग-मार्गका निर्देश किया है, उसका अनुसरण करते हुए कर्मयोगी दिव्य जीवन व्यतीत करता है। वह संसारको अनित्य एवं दुःखमय समझते हुए भी उससे पलायन नहीं करता। ब्रह्मलीन होनेका अर्थ दुःखमय संसारसे पलायन करना नहीं, उसे जीतना है।

दिव्य जीवन व्यतीत करनेके लिये दैवी सम्पद्‌से युक्त होकर कर्म करना है। दैवी सम्पद् क्या है? गीतामें इसका वर्णन इस रूपमें किया गया है:—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

(१६ । १-३)

अर्थात् जो व्यक्ति दैवी सम्पद्‌से युक्त होते हैं उनमें निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं—निर्भयता, अन्तःकरणकी शुद्धि, ज्ञाननिष्ठा, दान, संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निश्छलता, सब प्राणियोंमें दयाभाव, निर्लोभता, मृदुता, लज्जा, अचपलता, तेज, क्षमा, धैर्य, शुचिता, अद्रोह एवं अनभिमान। इन दैवी सम्पद्‌की उपेक्षा करके मनुष्य यदि आसुरी सम्पद्‌के संचयमें लगा रहेगा तो उसके जितने कर्म होंगे, सब बन्धनके कारण होंगे और उनके सम्पादनसे कल्याणके बदले अकल्याणका मार्ग प्रशस्त होगा। जैसा कि गीतामें कहा गया है—'दैवीसम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।' आसुरी सम्पद्‌से युक्त व्यक्ति कर्मफलसे बद्ध होकर दुःख भोगता है।

आधुनिक विज्ञानकी उपासना करके मनुष्य आज आसुरी सम्पद्‌का अधिकारी बन गया है, किंतु इस सम्पद्‌का किस प्रकार सद्व्यवहार किया जा सकता है, इसके लिये जो ज्ञाननिष्ठा एवं आस्तिक बुद्धि चाहिये उसका उसमें अभाव है। जबतक विज्ञानके साथ-साथ सात्त्विक ज्ञान नहीं होगा, तबतक मनुष्यमें सत्य, ऐक्य एवं मैत्रीकी अनुभूति उत्पन्न नहीं होगी। सात्त्विक ज्ञान होनेपर ही उसमें ब्रह्मजिज्ञासा होगी और वह सब प्राणियोंमें 'एकत्व' का अनुभव करेगा। सात्त्विक ज्ञान होनेपर—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

—सब प्राणियोंमें एक ही अविनाशी तत्त्व एवं बहुमें एकका ज्ञान होना ही सात्त्विक ज्ञान है।

विज्ञान-लक्ष्मीकी आराधना करके आजके मनुष्यने जो अपरिसीम क्षमता एवं प्रभूत अर्थ अर्जन किया है, उसकी चमक-दमकमें उसका सात्त्विक ज्ञान आच्छन्न हो गया है। विज्ञानके व्यावहारिक ज्ञानको तात्त्विक ज्ञानसे विच्छिन्न करके मनुष्य विपथगामी बन गया है। उसके समस्त कर्मोद्यम अशुभ परिणामजनक सिद्ध हो रहे हैं। सात्त्विक ज्ञानकी होमाग्निमें दग्ध करके कर्मका परिशोधन करना होगा, तभी कर्म सार्थक सिद्ध होंगे।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।

सब कर्मोंकी परिणति ज्ञानमें होनी चाहिये और जब इस रूपमें ज्ञानोदय होगा, तभी चिर शान्ति लाभ करके मनुष्य ब्रह्मभूत होकर ब्रह्मको प्राप्त करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

× × × ×

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश देते हुए कहा है ।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ॥

अर्थात् 'तपस्वी, ज्ञानी एवं कर्मीसे भी बढ़कर कर्मयोगी है, इसलिये हे अर्जुन ! तुम कर्मयोगी बनो ।' यहाँ कर्मयोगी बननेका तात्पर्य है ईश्वरार्पणबुद्धिसे फलाशात्यागपूर्वक कर्म करते रहना । इस प्रकार कर्म करते रहनेसे कर्मयोगी शरीर धारण करते हुए भी मुक्तिलाभ करता है और ब्रह्मके साथ युक्त होकर विश्वलीलाका रसास्वादन करता है । पहलेके वेदान्तियोंने जिस मुक्तिपर जोर दिया है उसके अनुसार जबतक ज्ञानलाभके बाद देहका नाश नहीं होता, तबतक बाध्य होकर ज्ञानीको अपूर्ण मुक्तिके बीच रहना पड़ता है । उन्होंने भी जीवन्मुक्ति स्वीकार की है, किंतु उनके मतसे यह चरम मुक्ति नहीं है । किंतु गीताकी शिक्षा है कि ब्रह्मज्ञान लाभ करना और मनको साम्यभावमें प्रतिष्ठित करके ब्रह्मभूत बन जाना ही परम गति है । यह अवस्था शरीर धारण करते हुए भी प्राप्त हो सकती है । इस रूपमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके कर्म करते हुए भी संसारके समस्त दुःख-द्वन्द्वोंको जीता जा सकता है । कर्म-बन्धनके भयसे संसार-त्यागकी आवश्यकता नहीं होती । कर्मयोगी संसारमें रहकर समस्त विहित कर्मोंका सम्पादन करते हुए सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्वरूप प्राप्त करता है । यहाँ ज्ञानी एवं भक्तमें कोई भेद नहीं रह जाता । ज्ञानीको भगवद्भक्त होना ही पड़ता है; क्योंकि वह सर्वत्र भगवान्को प्रत्यक्ष करता है । भगवान्का अनुरागी हुए बिना वह रह नहीं सकता । इस प्रकार चैतन्यमय, आनन्दमय अवस्थामें रहकर जो कर्मयोगी कर्म करते हैं, वे ही महात्मा हैं ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।

धन्यो गृहस्थाश्रमः

लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य, काव्यतीर्थ)

संसारमें भारतवर्ष ही एक ऐसा पुण्य देश है जहाँ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चारों आश्रम स्थापित हैं । इन चारों आश्रमोंमें भी गृहस्थाश्रम (गृहस्थों)-की संख्या सबसे अधिक पायी जाती है । आज हमें गृहस्थाश्रमपर ही प्रकाश डालना है ।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम कहे गये हैं । इन आश्रमोंमें 'गृहस्थाश्रम' को सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है । इसका कारण यही है कि अन्य तीन आश्रमवाले इसीका आश्रय पाकर अपनी-अपनी जीवनयात्रा पूरी करते हैं, अतएव गृहस्थाश्रम सभी आश्रमोंका मूल स्रोत कहा जाता है । इसलिये इस स्रोतको सर्वदा सजीव और सुदृढ़ रखना चाहिये । यदि यह सजीव और सुदृढ़ नहीं रहेगा तो अन्य सभी आश्रम अस्त-व्यस्त और नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे ।

वस्तुतः गृहस्थाश्रम ही एक ऐसा महत्त्वपूर्ण आश्रम है, जिसमें मनुष्यके चरित्रका निर्माण होता है । इसी आश्रममें संयम, नियम और सदाचारकी क्रियात्मक शिक्षा मिलती है । इसी आश्रममें मनुष्यको प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप धर्मकी शिक्षा मिलती है । इसी आश्रममें सत्संस्कारोंका उद्भव और विकास होता है । किंतु इसके साथ इस आश्रममें दुर्गुण और कुसंस्कार बढ़नेकी भी बड़ी आशङ्का रहती है । कारण सदैव बन्धनकर विषयोंके सम्पर्कमें रहना पड़ता है । अतः गृहस्थाश्रमीको सर्वतोभावेन सुदृढ़, सुव्यवस्थित और संयमशील होना चाहिये । यदि गृहस्थाश्रमी संयमशील नहीं होगा तो निश्चित ही उसका गृहस्थाश्रम नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा ।

गृहस्थपर बहुत जिम्मेदारी होती है । वह जिस प्रकार अपने परिवारके पालन-पोषणार्थ हित-चिन्तनमें सर्वदा तत्पर रहता है, उसी प्रकार वह ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों और संन्यासियोंके योगक्षेमार्थ सर्वदा प्रस्तुत रहता है । इतना ही नहीं, वह देश और समाजकी भी सहायतार्थ यथाशक्ति प्रयत्नशील रहता है, अतः सभी दृष्टियोंसे गृहस्थाश्रमकी महत्ता सुस्पष्ट है । जो गृहस्थ गृहस्थाश्रमके महत्त्वको नहीं समझते अथवा उसके नियमोंका ठीक-ठीक पालन नहीं करते, वे अपना, देशका और समाजका बहुत ही अहित करते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् मनुने तो यहाँतक कहा है कि गृहस्थाश्रमसे ही ब्रह्मचारियोंकी, वानप्रस्थियोंकी और संन्यासियोंकी उत्पत्ति होती है। यथा—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥
(मनुस्मृति ६ । ८७)

वे आगे लिखते हैं—

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥
(मनुस्मृति ६ । ८९)

'ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमोंमें वेद और स्मृतिकी विधिसे चलनेवाले गृहस्थाश्रमको श्रेष्ठ कहा है; क्योंकि वह तीनों आश्रमोंका पालन-पोषण करता है।'

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥
(मनुस्मृति ६ । ९०)

'जिस प्रकार समस्त नदी और नद समुद्रमें जाकर स्थित हो जाते हैं, उसी प्रकार अन्य सभी आश्रमवाले गृहस्थाश्रमके आश्रयसे जीवित रहते हैं।'

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्येन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥
(मनुस्मृति ३ । ७७-७८)

'जिस प्रकार वायुके आश्रयसे सभी प्राणी जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमद्वारा अन्य आश्रमवाले लोग जीवित रहते हैं; क्योंकि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी—इन तीनों आश्रमोंका गृहस्थद्वारा पालन-पोषण होता है, इसीलिये गृहस्थाश्रम समस्त आश्रमोंसे श्रेष्ठ है।'

इसी प्रकार अन्यत्र भी गृहस्थाश्रमकी श्रेष्ठताके सम्बन्धमें कहा है—

गार्हस्थ्यं च समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
तादृशं नैव लोकेऽस्मिन्नन्यमाश्रममुत्तमम् ॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड, ५९ । १९)

'गृहस्थका सहारा लेकर समस्त प्राणी जीवन धारण करते हैं। गृहस्थ आश्रमके सदृश इस लोकमें और कोई उत्तम आश्रम नहीं है।'

कलौ संन्यासमार्गो हि दम्भपाखण्डखण्डितः ।
वानप्रस्थः कलौ नास्ति ब्रह्मचर्यं क्वचित् क्वचित् ॥
गार्हस्थ्यं कर्म सर्वेषां कर्मणां श्रेष्ठमुच्यते ॥
(भविष्यपुराण)

'कलियुगमें संन्यासमार्ग तो दम्भ और पाखण्डसे नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। वानप्रस्थ कलियुगमें होना ही कठिन है और ब्रह्मचर्य आश्रमका पालन कोई-कोई करेगा। अतः गृहस्थ-धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।'

गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥
(व्याससंहिता ४ । २)

'गृहस्थाश्रमसे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है, यह बारंबार स्पष्ट ही है। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रमका यथार्थरूपसे पालन करता है, वह समस्त तीर्थोंकी यात्राका फल प्राप्त करता है।'

गृहस्थस्त्वेष धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते ।
(महाभारत, शान्तिपर्व २३३ । ६)

'यह गृहस्थाश्रम समस्त धर्मोंका मूल कहा जाता है।'

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ।
(वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड)

'चारों आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ और उत्तम है।'

कलौ तु केवलं वच्मि गार्हस्थ्यं ह्युत्तमोत्तमम् ।
(मार्कण्डेयस्मृति)

'कलियुगमें केवल गृहस्थाश्रम ही सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है।'

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मः । (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'गृहस्थाश्रमसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है।'

भगवान्ने गृहस्थाश्रमके निमित्त ही मनुष्यमें 'नर' और 'नारी'का भेद प्रदर्शित किया है, जिससे वे एक दूसरेके पूरकरूपसे गृहस्थाश्रममें रहते हुए संतति उत्पन्न कर अपनी वंशपरम्पराकी वृद्धि करें और भोग एवं मोक्षके द्वारा अपना जीवन सफल करें। गृहस्थाश्रमका आदर्श बहुत ही श्रेष्ठ और त्यागमय है। गृहस्थाश्रमी केवल अपने परिवारका ही कल्याण नहीं करता, किंतु वह प्राणिमात्रके कल्याणार्थ जीवनपर्यन्त प्रयत्न करता है। बलिवैश्वदेव आदिके द्वारा वह केवल अपने पितरोंको ही तृप्त नहीं करता, किंतु पशु-पक्षियोंतकको भी तृप्त करता है। इस प्रकार गृहस्थ विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें अपनी धन-सम्पत्तिद्वारा देश और समाजका भरण-पोषण करता है। जो गृहस्थ अपने धर्मपर आरूढ़ होकर तदनुसार कर्तव्यका पालन करता है, वही सच्चा गृहस्थ है और वही निष्काम कर्म करके जनक और याज्ञवल्क्य आदि उत्कृष्ट कोटिके गृहस्थाश्रमियोंकी तरह निश्चित जीवन्मुक्त हो सकता है।

गृहस्थाश्रममें सर्वप्रथम विवाह करना पड़ता है। विवाहके बिना मनुष्य 'गृहस्थ' नहीं बन सकता। अतः गृहस्थाश्रममें पत्नीका होना परमावश्यक है। गृहस्थाश्रममें पत्नीको बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गृहस्थमें पत्नीके बिना घरकी मान-मर्यादाकी रक्षा और वंशवृद्धि नहीं हो सकती। अतः गृहस्थका विवाहित होना अनिवार्य है। गृहस्थमें रहते हुए यदि कोई मनुष्य अपना विवाह नहीं करता है तो उसमें विविध दोषोंके उत्पन्न होनेकी आशङ्का बनी रहती है। अतः गृहस्थाश्रमको निष्कलङ्क बनानेके लिये भी विवाह-संस्कार आवश्यक है। गृहस्थाश्रमका प्रथम संस्कार विवाह-संस्कार ही है। विवाह-संस्कारके द्वारा पति और पत्नी दोनों जीवनपर्यन्तके लिये एक सूत्रमें ग्रथित हो जाते हैं और वे पुत्रोत्पादन कर पितृ-ऋणसे उऋण हो जाते हैं। विवाह-संस्कारके बाद गृहस्थमें एक नूतन परिवर्त्तन यह होता है कि उसके पूर्व उसमें जो स्वार्थकी भावना थी, विवाहके बाद उसकी वह भावना परार्थकी ओर प्रवृत्त हो जाती है। अतः विवाह-संस्कारके द्वारा मनुष्य परार्थभावकी शिक्षा ग्रहण करता है, जिससे उसकी आध्यात्मिक उन्नति होती है। गृहस्थकी यह परार्थभावना शनैः-शनैः वृद्धिंगत होते हुए केवल अपने परिवारवालोंतक ही सीमित नहीं रह जाती, किंतु वह क्रमशः देश, समाज और समस्त संसारके साथ व्याप्त हो जाती है, पश्चात् वह **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का आदर्श ग्रहण कर लेती है। ऐसा गृहस्थ जीवन्मुक्तिके मार्गपर अग्रसर हो जाता है। जीवन्मुक्तिकी ओर अग्रसर होते ही वह मनुष्य आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ भगवत्कृपासे भगवद्भक्तिका अभ्यासी बन जाता है। भगवद्भक्तिका अभ्यासी बननेपर मनुष्य सहजमें ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिसे मुड़कर भगवान्‌को ही अपना सर्वस्व समझकर सर्वदा उनकी भक्ति और उनकी प्राप्तिमें ही अपने चित्तको संलग्न रखता है।

गृहस्थाश्रममें पति-पत्नीका जीवन सर्वदा कर्ममय होना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌ने संसाररूपी विशाल कर्मक्षेत्रमें कर्म करनेके लिये ही मनुष्य-जन्म दिया है। कर्ममय जीवनसे मनुष्यका जीवन सर्वदा उन्नतिशील होता है। कर्मशील मनुष्य सर्वदा सर्वत्र विजयी होता है। अतः कर्मशील मनुष्यको चाहिये कि वह अपने अमूल्य जीवनको आलस्यादि प्रमादोंमें न फँसाकर उसे ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिमें लगा दे, जिससे उसका कल्याण होता रहे।

जब मनुष्य वृद्धावस्थाके कारण शारीरिक परिश्रमके योग्य न रहे, तब उसे चाहिये वह अपने गृहस्थके समस्त कार्योंका भार अपनी संतानोंको सौंपकर भगवद्भजन और भगवद्भक्तिकी ओर लग जाय। मनुष्यके लिये कहा गया है कि वह जीवनपर्यन्त इस कर्मक्षेत्रमें कुछ-न-कुछ कर्म करता रहे, कभी भी अकर्मण्य होकर न रहे। अकर्मण्य बनना मनुष्यके लिये बहुत बड़ा पाप है। अकर्मण्य मनुष्य संसारमें कुछ नहीं कर सकता, इसीलिये अकर्मण्य मनुष्यको संसार-का भार कहा गया है। अकर्मण्य मनुष्यका जीवन भारस्वरूप होनेके कारण ही वह सर्वदा सभी प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित रहता है और उसे जीवनमें कभी भी सुख-शान्ति नहीं मिलती। अतः मनुष्यको सर्वात्मना अकर्मण्यताका त्यागकर कर्मण्यताको अपनाना चाहिये; क्योंकि कर्मण्यता ही गृहस्थका सर्वश्रेष्ठ साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य सर्वदा समस्त क्षेत्रोंमें सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः जो मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहता हुआ गृहस्थके नियमोंका ठीक-ठीक पालन करता है, वह सर्वदा सब प्रकारके सुखोंसे परिपूर्ण रहता है और उसके पुत्र, पत्नी, मित्र आदि सभी अनुकूल तथा आज्ञाकारी होते हैं। ऐसे ही गृहस्थाश्रमीको चाणक्यने 'धन्य' पदसे व्यवहृत किया है—

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता प्रियालापिनी
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

'जिसका घर आनन्दसे परिपूर्ण है, जिसके पुत्र विद्वान् हैं, जिसकी पत्नी प्रिय (मधुर) बोलनेवाली है, जिसके मित्र सन्मित्र हैं, जिसके यहाँ श्रेष्ठ धन है, जिसका अपनी धर्मपत्नीमें प्रेम है, जिसके सेवक आज्ञाकारी हैं, जिसके यहाँ अतिथि-सत्कार होता है, जिसके यहाँ भगवत्पूजन होता है, जिसके यहाँ प्रतिदिन मिष्टान्न-भक्षण होता है और जिसके यहाँ प्रतिदिन घरमें सज्जन पुरुषोंकी संगति होती है, ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य कहा जाता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको तीन प्रकारके कलुषित विचार दुखी बनाते हैं !

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

कलुषित विचार ही दुःख और निराशाका प्रधान कारण है। यदि किसी प्रकारका दुष्ट विचार मनमें जम जाता है तो वह अपने आसपास दूषित वातावरण ही बनाता है और मनके स्वास्थ्यको नष्ट करता है।

जब आपके शरीरमें एक छोटी-सी फुंसी उभड़ती है, तब शरीरका वह अङ्ग अकड़ा-सा रहता है, छूनेसे दुखता है, चारों ओरकी त्वचा लाल हो जाती है, दो-चार दिन बाद उसमें पीब भर जाती है और वह एक बड़े फोड़ेका रूप धारण कर लेती है। उसके चारों ओरका भाग सूज उठता है। डाक्टर जब उस फोड़ेमें चीरा लगाता है, तब गहराईतकसे दबा-दबाकर पीब और दूषित रक्त निकाल देता है। इसी प्रकार किसी भी प्रकारका दूषित विचार अपने आसपास कष्ट, पीड़ा और वेदनाका वातावरण बनाया करता है। यों तो ये कलुषित विचार अनेक प्रकारके हो सकते हैं, किंतु भगवान् बुद्धने इन्हें तीन बड़े भागोंमें विभाजित किया है—

१—काम-वितर्क
२—अमैत्री-वितर्क
३—व्यापाद-वितर्क

काम-वितर्क—इस वर्गमें भगवान् बुद्धने मनुष्यके विषय-वासनासम्बन्धी सब प्रकारके कष्टोंका समावेश किया है। कामवासनाके नाना रूप, नाना भाव-विभाव, लक्षण और दुःखद वितर्क हैं। किसी भी रूपमें काम-चिन्तन आकर मनकी शान्ति और संतुलनको विचलित कर देता है। सम्भव है हम शरीरसे काम-तृप्ति न करें, पर मन और वचनसे काम-वितर्कके शिकार हो सकते हैं। मनमें काम-वासनासम्बन्धी बात सोचनेसे, स्त्रियोंके हावभाव, नखशिख या तत्सम्बन्धी अन्य काम-सम्बन्धी कुकल्पनाएँ लानेसे मानसिक पाप हो जाता है। कुछ व्यक्ति मुँहसे वासना-मिश्रित कामोत्तेजक गालियाँ उच्चारण किया करते हैं। वे समझते हैं कि कायिक पाप ही असली पाप है। मनमें सोचने या मुँहसे गंदी बातें या अपशब्द कहनेसे कोई पाप नहीं होता। यह नितान्त भ्रान्तिमूलक धारणा है। शरीर चाहे बाह्यशरीरसे काम-तृप्ति न करे, पर उच्चारणकी जड गुप्त मनमें जमी रहती है। वह चुपचाप वहीं विकसित होती रहती है। मन सदा अभद्र कामवासनाओंसे परिपूर्ण रहता है।

कामवितर्कमें विषय-वासनासम्बन्धी कुकल्पनाओंके अतिरिक्त अनेक और इच्छाएँ आती हैं। ये अपनी परिस्थिति, पेशा, आय, समाज, परिवार, स्वार्थसम्बन्धी हो सकती हैं। प्रत्येक कामना पूर्ण नहीं हो सकती; क्योंकि आपके साधन सीमित हैं। कुछ इच्छाएँ और अभाव सदा ही अपूर्ण रहनेवाले हैं। इन अपूर्ण इच्छाओं और अभावोंकी अतृप्तिसे दुःख उत्पन्न होता है। मन नाना द्वन्द्वोंसे भरा रहता है। प्रत्येक द्वन्द्व दुखी बनानेवाला है।

अतः कम-से-कम कामनाएँ रखिये।

योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।

(बृह० उप० ४।४।६)

अर्थात् जो व्यक्ति कामनाओं (विशेषतः कामवासना-सम्बन्धी पापमूलक विचारों) से रहित है, जो इन दुष्ट कामनाओंसे बाहर निकल गया है, या जिसकी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, या जिसको केवल आत्माकी ही कामना है, उसके प्राण नहीं निकलते हैं। वह ब्रह्म ही हुआ ब्रह्मको पहुँचता है।

काम-वितर्कोंका स्वभाव यह है कि वे कामोपभोगसे शान्त नहीं होते। जितना मनुष्य विषयवासनाकी पूर्तिमें लगता है, उतना ही वह अशान्त और दुखी रहता है। काम-तृप्ति पूरी तरह वृद्ध हो जानेतक पर भी नहीं होती। यह तो ऐसी अग्नि है जो सदा धधकती ही रहती है। कामका स्वभाव है कि चिन्तनमात्रसे ही इसका अधिकाधिक विकास होता जाता है। कहा गया है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

अर्थात् यह कामवासना उपभोगसे कदापि शान्त नहीं होती। कामवासनाकी पूर्ति करके यह सोचना कि 'अब आगे और कामोपभोगकी इच्छा उत्पन्न नहीं होगी'—ऐसा ही है जैसे कोई अग्निमें घी छोड़ता जाय और यह सोचता रहे कि इस प्रकार यह आग बुझ जायगी।

कामका भी सदुपयोग हो सकता है। जिस प्रकार चतुर वैद्य विषको दवाईके काममें लेकर रोगीको स्वस्थ करता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी प्रकार काम-वासनाको भी शक्तिमें बदला जा सकता है। सो कैसे ?

भगवान् श्रीकृष्णने इसका राजमार्ग बताया है। वे कहते हैं—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

(गीता)

अर्थात् हे अर्जुन ! मैं प्राणियोंके काममें हूँ, पर मेरा काम धर्मसे विरुद्ध नहीं चलता। संसारी पुरुषोंका काम धर्म-विरोधी होता है। धर्मसे हट जानेके कारण वह दुःखका कारण बन जाता है। दूसरे शब्दोंमें इच्छाओंकी धर्मानुकूल पूर्ति हो, तो काम-वासना भी उपयोगी हो सकती है। कामका प्रवाह उपयोगी और कल्याणकारी मार्गोंकी ओर खोल देना चाहिये। तुलसीदासने काम-वासनाका प्रवाह भक्तिसम्बन्धी उत्कृष्ट कवितामें खोल दिया; इसी प्रकार सूरदासने काम-वासनाको भगवान्के अर्पणकर वात्सल्य-रससम्बन्धी मधुर कृष्ण-काव्य लिखा। मीराँबाई भी अपनी इच्छाओंको भक्ति-संगीतमें प्रवाहितकर सदा-सर्वदाके लिये अमर बन गयी। आप चाहें तो कामके उदात्तीकरणके लिये समाजसेवाका कोई कार्य हाथमें ले सकते हैं, या अपने परिवारके सदस्योंको ही समुन्नत कर सकते हैं। पिछड़ी जातियोंको उठानेका कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं। बालप्रेम, लोकप्रेम, कलाप्रेम, संगीतप्रेम तथा अनेक लोकसेवाके कार्योंमें पूर्ण तन्मयतापूर्वक संलग्न हो जानेसे मनुष्यकी कामवासना निम्नस्तरोंसे हटकर ऊँची रीतियोंसे प्रवाहित होने लगती है। ईश्वरका प्रेम तथा उच्चतम साहित्यकी सृष्टि कामके उदात्तीकरणके उपाय हैं। एक-एक सीढ़ीपर चढ़ते-चढ़ते अन्तमें मनुष्य कामवासनाके नीचे रूपोंसे बचकर उच्चतम अवस्थामें पहुँच जाता है।

जिस प्रकार पक जानेपर फल स्वयं वृक्षकी डालीसे अलग हो जाता है, इसी प्रकार पकी हुई मानसिक अवस्था आ जानेपर मनुष्यके कामवासनासम्बन्धी सभी वितर्क दूर होने लगते हैं। प्रश्न मानसिक और नैतिक विकासका है। जो व्यक्ति अपनी विवेकबुद्धिको जितना अधिक विकसित कर लेता है, वह कामवासनासम्बन्धी कलुषित विचारोंसे उतना ही सुरक्षित रहता है। वासनाको धर्मबुद्धिसे ऊँचा उठाना चाहिये। अपना दिन धार्मिक भावनासे प्रारम्भ करना चाहिये तथा निद्रासे पूर्व ईश्वरीय शक्तियों तथा अपने धार्मिक स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये।

अमैत्री-वितर्कः—अमुक व्यक्ति हमारा शत्रु है; वह हमारा अहित करनेपर तुला हुआ है। उससे हमारा निरन्तर अनिष्ट ही हो रहा है। हमें भी उसका विनाश करना चाहिये। यह अमैत्री या शत्रुभाव देखते रहनेसे मनुष्य अपने काल्पनिक जगत्में तनावका शत्रुभाव उत्पन्न करता है। वह अपने आस-पासके व्यक्तियोंमें सर्वत्र शत्रुओंका ही दर्शन करता है। इससे मनुष्यके आन्तरिक जगत्में भयंकर संघर्ष सदा चलता रहता है। हमारे हिंसा, द्वेष, वैमनस्य और प्रतीकारके भाव दूसरे लोगोंपर आरोपित होकर उन्हें शत्रुरूपमें हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। हम इस अमैत्री भावसे प्रभावित होकर आस-पासके व्यक्तियोंके दुर्गुण और निर्बलताओंका ही दर्शन करते हैं। उनके प्रति मनमें घृणा रखते हैं। हमारे मनका द्वन्द्व निरन्तर बढ़ता ही जाता है। हम इस घृणाभावके कारण दूसरोंको हानि पहुँचानेकी सोचते रहते हैं।

श्रीजोशुआ लोथ लीब मेनके शब्दोंमें, 'मनुष्य अपनी त्रुटियों और भावात्मक द्वन्द्वोंको संसारपर आरोपित करता है और उनसे बदला लेनेकी चेष्टा करता है।'

अमैत्रीके कारण यह मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति चलती रहती है। ऐसा व्यक्ति मनमें बड़ी बेचैनीका अनुभव करता है।

इससे मुक्त होनेका क्या उपाय है ?

मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे अमैत्रीका भाव मित्रता और प्रेमके अभ्यास और प्रयोगसे दूर हो सकता है। हम अपना दृष्टिकोण बदलें। घृणा-द्वेषके स्थानपर प्रेम और विश्वास आरोपित करें, सबको अपना दोस्त और हितैषी समझें, मित्रवत् व्यवहार करें, तो अमैत्रीकी ग्रन्थि दूर हो सकती है।

'हमारा कोई शत्रु नहीं है। सभी हमारे प्रेमी हैं। सभी अपने हितैषी हैं। सभी हमारे सहायक हैं। सभी हमारी सहायता कर रहे हैं। अपना प्रेम और विश्वास दे रहे हैं। सभीमें हमारा तत्त्व बिखरा पड़ा है। यह मित्रता, प्रेम, सौहार्दका मंजुल और उदार वातावरण ही हमारे चारों ओर है।'—इन विचारोंमें रहनेका अभ्यास करना चाहिये। मन और शरीरको पूर्ण शिथिल कर लीजिये और सुखासनसे बैठकर पूर्ण विश्वाससे ऊपर लिखे भावोंको दुहराइये। पुनः-पुनः दोहरानेसे ये विचार गुप्त मनमें जम जायँगे और चरित्र-निर्माणमें सहायक होंगे। भव्य विचारोंके संकेत स्वयं भी बनाये जा सकते हैं।

मानसिक रोगियोंको भव्य विचारोंको गुप्त मनमें जमानेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास करना चाहिये। जो दुष्टभाव सताये, उसको विरोधी सात्त्विक विचार मनमें दृढ़तासे स्थापित करना चाहिये। मनमें प्रचुरतासे सात्त्विक विचारोंका प्रवाह बनाये रखनेसे गुप्त मनका नव निर्माण होता है। शक्ति, साहस और शान्ति-प्राप्तिके लिये अभ्यासके साथ किसी महापुरुषकी मूर्तिको जोड़ लीजिये। उदाहरणके लिये घबराहटको दूर करनेके लिये मनमें भगवान् बुद्धकी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। कमजोरी दूर करनेके लिये शक्तिशाली विचारोंके साथ हनूमान् या दुर्गाकी मूर्ति मनमें धारण करनी चाहिये। आपका जो प्रिय देवी या देवता हो, उसका स्वरूप मनमें बैठाना चाहिये। सोनेसे पूर्व मैत्रीभावका अभ्यास गुणकारी है; क्योंकि निद्रामें अव्यक्त (Unconscious mind) का नवनिर्माण हुआ करता है। थोड़े कालके अभ्याससे ही मानसिक तनाव दूर हो जाता है।

३—व्यापाद-वितर्क—इस श्रेणीमें हम इन वितर्कों और कलुषित भावनाओंको रख सकते हैं, जो उपयोगी न होकर भी बार-बार मनमें आते हैं और मनकी शान्तिको भङ्ग करते हैं। एक व्यक्ति लिखते हैं कि अँधेरेमें उनके मनमें भूतबाधाका भय आता है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भूत उनके जीवनका अन्त कर देंगे। एक व्यक्ति आत्महत्याकी कुकल्पनाएँ किया करते हैं। एक सज्जन छींकसे परेशान हो उसे अपशकुनका सूचक मानते हैं। हमने एक ऐसी महिला देखी है, जो चोरीके भयसे उद्विग्न रहती और रातमें सोनेसे पूर्व सब किवाड़ोंको ताला लगातीं। कुछ व्यक्ति रेलमें सफर करते हुए सदा यह डरते हैं कि टिकट न खो जाये; युवतियोंको भय रहता है कि कहीं कोई अङ्ग खुला न रह जाय। कुछ लोग शौचके पश्चात् हाथको बार-बार मिट्टीसे मलते हैं, फिर भी उन्हें गंदगीके विचार सताते रहते हैं। कुछ अपनेको रोगी ही मानते रहते हैं और सदा दवाइयाँ ही लिया करते हैं। इसी प्रकार लोगोंकी धारणाएँ और वहम अनेक प्रकारके होते हैं। नमक बिखर जाना, पलंगपर झाड़ू रखना, झाड़ू सीधी करके रखना, कातते-कातते तागा टूट जाना, खाटपर बैठकर टाँग हिलाना, कंधे मटकाना, बगल बजाना, सूर्य डूबे चूड़ी पहनना, मकान बदलना, चूड़ी तोड़ना आदि वहम कलुषित और अभद्र विचारोंसे संयुक्त हैं। इनके साथ अनिष्ट जुड़ा हुआ है।

वास्तवमें इन मनकी शङ्काओंमें कुछ भी वास्तविक तथ्य नहीं है। ये कलुषित विचार मनकी शान्तिको भङ्ग करते रहते हैं। इनका आधार कुकल्पनाएँ ही हैं, जिनका आधार कुछ नहीं है। ये मनकी अस्वस्थ दिशाकी सूचक हैं। मनकी शान्त और स्थिर अवस्थामें व्यर्थके विचार नहीं सताते।

शान्त और संतुलित रहिये और व्यर्थकी कुकल्पनाओंसे अपने मनकी रक्षा कीजिये। सद्भावनाका अभ्यास प्रारम्भ कीजिये। मनको पवित्र बनाइये। जब मन पवित्र रहता है, तब दुर्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

भगवान् बुद्धने मनके आरोग्यके लिये आनापानसतिके अभ्यासको आवश्यक बताया है। इसमें मानसिक और शारीरिक शैथिलीकरण करना चाहिये। शान्त अवस्थामें भव्य विचारोंको जमानेसे कुतर्क दूर हो जाते हैं।

'प्रधानमध्यात्मसुखसुखेभ्यः'' (अश्वघोष)

सब सुखोंमें अध्यात्मविचार ही सुखके साधन हैं।

वनवैभव

(रचयिता—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न)

मैया ! बन सुख बिसरत नाहीं।
कोल-भील गन सखा सँघाती, तिन बियोग नित करकत छाती।
वह सुख अब पावहुँ केहि भाँती, जो सुख गिरि तरु छाँहीं॥
जातहिं गीध गोद करि लीन्हो, पितु दसरथ सों बढ़ि सुख दीन्हो।
तासु सेव मैं कछू न कीन्हो, यह कसकत मन माहीं॥
पम्पातट इक भिलिनी माई, तेहि सब कहि शबरी गोहराई।
शिष्या मुनि मतंग कै गाई, सब गुण जेहि उर माहीं॥
सो शुचि कन्द मूल फल लाई, सरस आम कटहर सुखदाई।
निज कर मम मुख डारि खवाई, तुव पयते तेहि जल रुचिराहीं॥
रहत सदा कपिराज सहाये, मित्र विभीषण परम सुहाये।
पवन 'कुमार' सुसेवक पाये, अंगद सम जन जग कहुँ नाहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्नशुद्धि

(लेखक—श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम्० ए०, काव्यतीर्थ)

प्राचीन भारतमें आर्य-सभ्यतामें शुद्धाशुद्ध अन्नके विषयमें बड़ा सूक्ष्म विचार किया गया था । स्पृश्यापृश्यका विचार पीछे चला । धर्मशास्त्रोंके निर्माणकालतक स्पर्श-दोषका उतना सूक्ष्म विचार नहीं था । निबन्धोंकी रचनाकालसे स्पर्शदोषपर जोर दिया जाने लगा । जब इस देशमें भिन्न आचार-विचार और आहार-विहारके विधर्मी लोग आने लगे । मुसलमानोंके भारतमें पदार्पणके समयसे स्पर्शास्पर्शका विचार आरम्भ हुआ । प्रायः निबन्धोंकी रचनाका काल भी उसी समयसे है । मेरा सूक्ष्म-विवेचन-के द्वारा निर्णीत सिद्धान्त है कि वर्तमानकालमें भारत-वासियोंमें, विशेषतः हिंदुओंमें, जो अनैतिकताका नंगा दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा है, उसका मुख्य कारण यही है कि अन्न-शुद्धिकी ओरसे लोगोंका ध्यान सर्वथा हट गया है जिससे पारलौकिक श्रेयका स्थान ऐहलौकिक प्रेयसे नीचे गिर गया है । सुप्राप्त किंवा दुष्प्राप्त धनसे शारीरिक सुख-साधनके आयोजनमें आजकल अधिकांश तथाकथित पुरुषार्थी भारतीयोंका ध्यान लगा हुआ है । यह राष्ट्रके लिये—प्राचीन भारतीय आर्य सभ्यता एवं संस्कृतिके लिये महान् भयंकर व्यापक रोग है । इसके प्रतीकारके लिये विचारवान् देशवासियोंका ध्यान अविलम्ब जाना चाहिये ।

हमारे यहाँ कहावत है कि जैसा अन्न, वैसा मन । 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः ।' शुद्ध भोजनसे पवित्र बुद्धि होती है । अन्नकी केवल बाह्य शुद्धिसे अभिप्राय नहीं है, कीड़े-मकोड़े, धूल आदिसे परिष्कृत तो होना ही चाहिये, परंतु धर्मसंगत, न्यायसंगत, शुद्ध जीविकाके द्वारा उपार्जित अन्न ही धार्मिक भोजनमें परिगणित है । चोरी, घूसखोरी, ठगी, लूट, चोरबाजारी, कामचोरी, धोखेबाजी आदि घृणित उपायोंसे अर्जित पैसेसे आयोजित उत्तमोत्तम स्वादिष्ट भोजन भी धर्मभीरु आर्योंके लिये इस देशमें कभी ग्राह्य नहीं था और न आज होना चाहिये । पश्चिमीय सभ्यतामें इस विषयका माप-दण्ड दूसरा हो सकता है । इसी दृष्टिसे यहाँ ग्राह्य-अग्राह्य अन्नका विवेचन किया गया था—

राजान्नं गणिकान्नं च भिषगन्नं तथैव च ।
दुष्कर्मणां च सर्वेषामन्नं त्याज्यं सयत्नतः ॥

'राजाका, वेश्याका, वैद्यका तथा कुत्सित कर्मवाले सभीका अन्न यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये ।' यहाँ राजाका अन्न त्याज्य इसलिये कहा गया है कि राजकोषमें बहुत प्रकारसे द्रव्य संचित होता है, जिसमें जाने-अनजाने अन्यायके पैसे भी प्रायः मिले रहते हैं । वेश्याका अन्न तो त्याज्य है ही । वैद्य-डाक्टर लोग भी मरणासन्न रोगियोंकी गलत स्थिति बताकर अथवा उपयुक्त औषध नहीं देकर पैसे ऐंठ लिया करते थे और आज भी कुछ लोग वैसा कर रहे हैं । अतः उनका अन्न अशुद्ध माना गया है ।

इस सम्बन्धमें महाभारतका एक प्रसङ्ग उद्धरणीय है । आजतक संसारके सबसे बड़े शान्तिवार्तावाहक दूत भगवान् श्रीकृष्ण हुए हैं, जो महाभारतकी लड़ाईको रोकनेके लिये युधिष्ठिरादि पाण्डवोंकी ओरसे दुर्योधनके दरबारमें हस्तिनापुर गये हुए थे । उस समय भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंके राजमहलमें नहीं ठहरकर दासीपुत्र विदुरका आतिथ्य ग्रहण किया था । विदुर नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी गुणोंके आगार थे । तत्कालीन भारतीय समाजके गौरव थे । किंवदन्ती है—'दुर्योधन घर मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाये ।'

मध्यकालीन इतिहासमें गुरु नानकके विषयमें लोकोक्ति है कि एक बार धर्मप्रचारार्थ गुरु नानक दूर गाँवमें गये हुए थे । एक गरीब किसानने उन्हें आतिथ्य ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेका निमन्त्रण दिया। साथ ही एक दूसरे धनी व्यक्ति ! भी गुरुजीको निमन्त्रण दिया। दोनोंके यहाँसे भोजनका न्यौता कर आया। आतिथ्य करनेवाले दोनों महानुभाव भी गुरुजीके पास पधारे। किसानका दिया हुआ भोजन साधारण सूखा-रूखा था और धनी व्यक्तिका भोजन उसके विभवानुकूल बहुमूल्य तथा स्वादिष्ठ था। परंतु गुरु नानक प्रथम किसानका दिया हुआ भोजन ही बड़े चावसे खाने लगे। वे खाते ही जा रहे थे कि धनी व्यक्ति अधीर होकर बोल उठा—'महाराज ! हमारे बहुमूल्य भोजनको छोड़कर आप सूखी रोटी क्यों चबा रहे हैं ?' गुरु नानक बोले—'महानुभाव ! जिसको आप रूखा भोजन समझ रहे हैं, वह देखनेमें भले ही रूखा हो, पर बहुत ही स्वादिष्ठ है।' धनी व्यक्ति अचम्भेके साथ बोल उठा—'महाराज ! ऐसी बात असम्भव है, बिना खाये ही आप मेरे भोजनको निकृष्ट कैसे समझ रहे हैं ?' तत्पश्चात् गुरुने धनी व्यक्तिके पात्रमेंसे एक ग्रास अन्नको मुँहमें डाला और चबाकर उगल दिया तो वह अर्ध-चर्वित अन्न रक्त-रञ्जित भासित हुआ और गुरुजीका मुँह कुस्वाद तथा फीका पड़ गया। उपस्थित दर्शक आश्चर्यचकित हो गये। धनी व्यक्ति भौंचक हो गया। वह समझ नहीं सका कि क्या बात है। कुछ क्षणोंके पश्चात् गुरुजीने कहा कि 'आपलोगोंने वस्तु-स्थितिको समझा नहीं है। बात यों है कि किसानकी यह सूखी रोटी उसके सच्चे परिश्रमसे उत्पादित अन्नकी बनी है और अपने वास्तविक रूप-गुणसे विशिष्ट है। परंतु इस धनी व्यक्तिके अनेक भले-बुरे उपायोंसे संचित द्रव्यसे आयोजित यह भोज्य पदार्थ वस्तुतः शुद्ध और सात्त्विक नहीं है। अतः बाहरसे निर्दोष एवं भव्य दीखनेपर भी यह विकृत है।' अन्न-गुणकी इस विचित्रतापर दर्शक लोग आश्चर्यमें पड़ गये।

आज जो शहरोंमें धनी-मानी व्यक्ति बड़ी-बड़ी पार्टियाँ (प्रीतिभोज) दे रहे हैं और उनमें सम्भ्रान्त व्यक्ति आमन्त्रित होकर कचराकूट करते हैं, उसपर दृष्टि डाली जाय तो पता लगेगा कि खाने और खिलानेवाले दोनों ही बड़े अपराधके अपराधी हैं जो स्वयं अपनेको तथा समाजको नीचे गिरा रहे हैं। ये पार्टियाँ सार्वजनिक जीवनके क्षेत्रमें भ्रष्टाचारके प्रचारका मुख्य द्वार हो रही हैं। अंग्रेजोंके शासनकालमें भी कुछ चतुर देशवासी अंग्रेज हाकिमोंको डाली पहुँचाकर अपना स्वार्थसाधन करते थे, पर वह परिपाटी सीमित थी। अंग्रेज हाकिमोंकी संख्या भी न्यून थी, वे केवल बड़े पदोंपर ही आसीन थे। सब अंग्रेज डालियाँ लेते भी नहीं थे। आजकी दशा यह है कि बिरले ही कोई भारतीय सरकारी पदाधिकारी, मन्त्री एवं उपमन्त्री हैं जो ठीकेदारों तथा पदेच्छु-प्रार्थियोंसे अनुचित लाभ नहीं उठा रहे हों। ठीकेदारोंमें अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो कुछ वर्ष पहले दो चार हजारकी पूँजीसे काम आरम्भ करके आज लाखपति हैं और आश्चर्य नहीं कि यदि शासनका वर्तमान क्रम दस वर्षोंतक बना रह गया तो वे करोड़पति भी हो जायँगे। एस्टिमेटको बढ़ा-चढ़ाकर बनवाना, काममें कम पैसा लगाकर कमजोर बनाना और विभागीय लोगोंको घूस देकर कच्चे आमोंका भी पक्के आमोंकी भाँति पूरा बिल पास करा लेना ठीकेदारोंके द्रव्योपार्जनका मार्ग है। ऐसी लापरवाही वे ही ठीकेदार बरतते हैं जो किन्हीं अधिकारियों अथवा मन्त्रियोंके कृपापात्र हैं या निकट किंवा दूरके सम्बन्धी हैं। ऐसे ठीकेदार लोग ही अधिकतर पार्टियाँ देते हैं अथवा अधिकारियों और मन्त्रियोंको अनुचित पैसा देकर पार्टियोंका आयोजन करवाते हैं और जनतामें लोकप्रियता प्राप्त करते हैं। ठीकेदारोंके अतिरिक्त परमिट, लाइसेंस तथा बड़े-बड़े उद्योगोंके निर्माताओंका भी यही हाल है। ऐसी पार्टियोंमें भोजन करनेवाले व्यक्तियोंके मस्तिष्कपर कैसा प्रभाव पड़ेगा, बुद्धि कितनी तामसी होगी—यह अनुमानसे ही जाना जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनेहरूजी हमारे देशके प्रधान पहरू हैं, उनकी दृष्टि बहुत पैनी है, वर्तमान शासनपद्धति एवं सार्वजनिक जीवनकी एक-एक बुराई उनकी दृष्टिके सामने प्रत्यक्ष है, वे बार-बार शासन-खर्चको घटानेकी ओर आवाज उठा रहे हैं। वे चाहेंगे तो अधिकारियों एवं मन्त्रियों, उपमन्त्रियों, विधानसभा तथा लोकसभाके सदस्योंको जिस किसीके द्वारा आयोजित प्रीतिभोजोंमें सम्मिलित होनेसे रोकका अध्यादेश निकाल सकते हैं। तथा ऐसे ही अन्य बुराईके साधनोंको भी रोक सकते हैं। इससे अन्यायसे धनोपार्जनकी ओर लोगोंकी प्रवृत्तिमें कमी होगी, प्रीतिभोजकी मेजोंपर बेशर्मीके साथ किये जानेवाले मद्यपानमें भी कमी होगी और सार्वजनिक जीवनके शुद्धीकरणमें यह एक ठोस कदम होगा। सार्वजनिक जीवनमें जितने रूपमें भ्रष्टाचारका प्रचार हुआ है, उसका बहुत कुछ श्रेय प्रकारान्तरसे अधिकारियों तथा मन्त्रिमण्डलोंके सदस्योंपर है। इनको प्रसन्न रखकर चोरीसे पैसा उगाहनेवालोंकी संख्या दिनानुदिन बढ़ रही है। ये लोग सफेदपोश बनकर हाकिमों तथा मन्त्रियोंके यहाँ आदरके साथ कुर्सियोंपर बैठाये जाते हैं। जनता इन लोगोंकी पोल जानते हुए भी चुप साधे रहती है। इतना ही नहीं, इन कुमार्गगामी लोगोंके बेटे-बेटीके विवाहके अवसरपर ये महानुभाव लोग उनके घरपर पधारकर उनकी सम्मान्यताकी मुहर समाजपर लगा आया करते हैं। इससे समाजमें भले-बुरेका माप-दण्ड बिगड़ता जा रहा है। समाजमें चोरको चोर कहनेका सत्साहस नहीं रह गया है। जिस देश तथा जिस समाजके लोग दुराचारी लोगोंके चोरीके पैसोंका तथा कदन्नको ग्रहण करके उनके दुराचारकी प्रवृत्तिको बढ़ाते रहेंगे, उस देश तथा समाजका भविष्य अन्धकारमय है, भगवान् ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। भगवान् मनुने कहा है—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥

ब्राह्मण वेदका अभ्यास नहीं करनेसे, आचारका त्याग करनेसे, आलस्यसे और अन्नदोषसे मृत्यु (अकालमृत्यु) का शिकार बनता है। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्यमात्रके लिये कदन्न सर्वथा अग्राह्य है।

मैं भगवान्‌के रंगमें रँगा सदा निश्चिन्त, नम्र, निर्भ्रम और निर्भय रहता हूँ

मेरे चारों ओर विराजित भीतर बाहर हैं भगवान।
अतः नहीं रह सकते मुझमें भय-भ्रम-चिन्ता-मद-अभिमान॥
कहीं भी रहूँ, चाहूँ, सोचूँ, करूँ सदा मैं कुछ भी काम।
संरक्षण करते मेरा प्रभु शक्ति-प्रेममय आठों याम॥
सदा साथ हैं, सदा एक हैं, स्वयं कराते अनुभव नाथ।
स्नेहभरे अन्तस्‌से मेरे सिरपर रक्खे रहते हाथ॥
प्रतिपल मैं प्रत्येक श्वासमें उनका पावन पाता संग।
रहता मैं निश्चिन्त, नम्र, निर्भ्रम, निर्भय नित प्रभुके रंग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संत-महात्माओंकी दृष्टिमें जीवित प्राणी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ पञ्चतन्त्रमें आता है कि दरिद्र, चिर-रोगी, मूर्ख, नित्यप्रवासी तथा नित्यसेवक (गुलाम)—ये पाँच व्यक्ति जीवित होते हुए भी मृतक-तुल्य हैं। ऐसा महाभारतका कथन है—

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च श्रूयन्ते किल भारते।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः॥

(पञ्चतन्त्र १। २८९)

महाभारत कर्णपर्वके ६९ वें अध्यायमें भले आदमीके लिये अपमानको साक्षात् मृत्यु बतलाया है—

यदावमानं लभते महान्तं
तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः।

(कर्ण ६९। ८१)

गीता भी यही कहती है—

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

(२। ३४)

मानसका भी यही कथन है—

संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

कर्णपर्वमें 'आत्मप्रशंसा' को भी मृत्यु बतलाया है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मन-
स्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ।

(७०। २९)

अर्थात् (तुम युधिष्ठिरके अपमानसे व्यथित होकर आत्महत्या क्यों करते हो ?) अपने मुँहसे अपने गुणोंका कथन करो और इस प्रकार जीते ही मर जाओ।

ब्रह्मपुराणमें भी आत्मप्रशंसाको आत्महत्या कहा गया है—

आत्मनोऽत्र प्रशंसायामात्महत्या प्रकीर्तिता।

यह तो हुई सच्ची प्रशंसाकी बात, झूठी प्रशंसामें तो असत्यभाषणका दोष पृथक्से लगता है। महाभारत आदिपर्वमें अन्यथा रहते हुए अपनेको अन्यथा रूपमें प्रकाशित करनेकी इस कुचेष्टाको सबसे बड़ा भारी पाप बतलाया है—

योऽन्यथासंतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥

(शाकुन्तलोपाख्यानमें शकुन्तलाकी उक्ति महा० १। ७४। २७)

'काव्यमीमांसा' तथा भामहकृत 'काव्यालङ्कार' में कुकवित्वको भी साक्षात् मृत्यु बतलाया है—

वरमकविर्न पुनः कुकविः स्यात्।
कुकविता हि सोच्छ्वासं मरणम्॥

(काव्यमीमांसा—अध्याय ५, चौखं० सं० पृ० ७१)

अर्थात् अकवि रहना तो ठीक, किंतु कुकवि न बने; क्योंकि कुकवि होना श्वास लेते हुए भी मरना है।

कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुः मनीषिणः।

(भामहालंकार १। १२)

वनपर्वके अन्तमें युधिष्ठिरने यक्षके एक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा था कि जो देवता, अतिथि, भृत्य, पितर तथा आत्मा इन पाँचोंका पोषण नहीं करता, वह श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है—

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन् न स जीवति।

(महा० वनपर्व ३१३। ५८)

शुक्राचार्य अपने नीतिसारमें कहते हैं कि जो कुटुम्बका भी भरण-पोषण न कर सके, वह चाहे गुणवान् भी हो तो भी जीते हुए ही मरा है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें (अंगद हनुमान्‌जीसे कहते हैं—) कुलाचारी (वाममार्गी), कामी, कृपण, मूर्ख, अत्यन्त दरिद्र, अयशी, अतिवृद्ध, रोगी, सदा क्रोधी, विष्णुद्रोही, श्रुतिसंतद्रोही, शरीरमात्र पोषण करनेवाला, सर्वनिन्दक तथा महापातकी—ये चौदह प्राणी जीवित रहते हुए साँस लेते हुए भी मृत हैं—

कौल कामबस कृपन बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अति मूढा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नुबिमुख स्रुति संतबिरोधी॥
तनुपोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं
न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः
श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥

(२। ३। २३)

जिस मनुष्यको भगवच्चरणारविन्दोंकी रजकणिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं विष्णुपदी गङ्गाकी उपलब्धि न हुई और जिसे तुलसीके गन्धका ज्ञान न हुआ, वह जीते हुए भी शव ही है।

यों साँस लेनेको लुहारकी धौंकनी भी साँस लेती है, जड वृक्ष भी जीते ही हैं, शूकर, कूकर आदि ग्रामपशु भी खाते और शौच जाते हैं। इसी तरह उसका जीना भी इनके ही समान रहा जिसके कानोंमें भगवान् श्रीकृष्णका नाम न पहुँचा—

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे॥
श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥
(श्रीमद्भा० २।३।१८-१९)

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें ही देवहूति कर्दम प्रजापतिसे निवेदन कर रही हैं कि जिसने अपने मनुष्यजीवनसे धर्म, वैराग्य या भगवदाराधना—इनमेंसे किसी एककी सिद्धि न की, वह जीते हुए भी मृत है—

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥
(३।२३।५६)

भगवान्, संत-महात्माओं तथा तत्त्वज्ञोंकी दृष्टिमें यह सब जीवन जीवन नहीं है। कई स्थानोंपर तो पापमय जीवनकी अपेक्षा मर जानेको ही श्रेयस्कर माना है—

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः।
तद्वधः तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान्॥
(श्रीमद्भा० १।७।३७)

क्योंकि दुष्टस्वभावका प्राणी किसी-किसी क्षण ऐसा पाप भी कर डालता है, जिससे उसे लाखों दुर्योनियाँ ग्रहण करनी पड़ती हैं, लाखों वर्ष नरक भोगना पड़ता है। इसलिये साधकको बड़े प्रयत्नसे आत्मप्रदर्शन, आत्मश्लाघा, परापमान, परपीडन, पारिवारिक उपेक्षा, मूर्खता, आसक्ति, पापमय जीवन, प्रमादमय जीवन, निन्दा, क्रोध आदि मारके दुर्गुणोंसे बचना चाहिये। सबसे बड़ी हानि है संतद्रोहमें तथा भगवत्प्रेमाभावमें। अतः प्रयत्नपूर्वक संत-भगवन्तमें श्रद्धा-प्रेम करना चाहिये।

जीना वही जीना है, कर्म तथा आयु वही सफल है, मन-वचन वे ही मन-वचन हैं, जिनसे विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिकी सेवा होती है। जो मन, वचन, क्रिया और आयु भगवत्सेवामें नहीं लगतीं वे सब व्यर्थ हैं—

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः॥
(श्रीमद्भा० ४।३१।९)

वह शौक्र, सावित्र, याज्ञिक जीवन, देवताओंकी आयु, श्रुत, तप, बुद्धि, प्रतिभा, मेधा, बल, योग, सांख्य, संन्यास, स्वाध्याय, धर्म-कर्म सब व्यर्थ हैं, जहाँ भगवद्भाव न हो—

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः।
बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा॥
किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः॥
(श्रीमद्भा० ४।३१।११-१२)

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोग कुजोगु ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

गोस्वामी तुलसीदासजी तो बार-बार कहते हैं—

राम हैं मातु-पिता गुरु-बंधु औ
संगी सखा सुतु स्वामी सनेही,
राम की सौंह, भरोसो है राम को,
राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही।
जीअत राम, मुएँ पुनि राम
सदा रघुनाथहि की गति जेही,
सोई जिऐ जग में तुलसी नतु
डोलत और मुए धरि देही॥
(कवितावली, उत्तर० ३६)

अतः सर्वात्मना अपकर्मोंसे बचकर भगवत्स्मृतिका ही प्रयत्न करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर

प्रेम ही मधुर है और वह मधुर प्रेम अत्यन्त दिव्य, परम त्यागमय तथा भोगासक्ति, भोगकामना और भोग-वासनासे सर्वथा रहित केवल प्रेमास्पद-सुख-रूप होता है। यही प्रेम श्रीश्रीव्रजाङ्गनाओंको प्राप्त है। इसका प्रधान हेतु है उनका सर्वस्वत्याग—इसीसे वे सर्वात्मा भगवान्‌को सर्वात्मभावसे नित्य प्राप्त हैं। उनके भावकी पवित्र मूर्तिका चित्रण शब्दोंके द्वारा संसारमें आजतक न कोई कर सका है, न कर सकेगा। वह अनिर्वचनीय और अचिन्त्य है। प्रतिक्षण-वर्धमान स्वभाव होनेसे वर्णन करनेकी चेष्टा करते-करते ही उसका स्वरूपविकास होता चला जाता है। मनमें आये हुए चित्रकी आभासे विलक्षण दूसरी विशेष आभाका उदय हो जाता है। एक मनोभावनाके चित्रमें वियोगपीड़िता श्रीगोपाङ्गनाओंके बीचमें सहसा प्रकट होकर प्रियतम परम प्रेमास्पद श्रीश्यामसुन्दर उनसे कहते हैं—

प्रेमकी देवियो! तुमलोगोंसे मेरा (तुम्हारे प्रेमास्पद भगवान्‌का) वियोग न कभी हुआ है, न होगा। दिव्य नित्यलीलामें मेरा-तुम्हारा सदा ही कभी न टूटनेवाला संयोग बना रहता है।

तुम लोगोंसे हुआ न होगा
कभी प्रेमदेवियो! वियोग।
दिव्य नित्यलीलामें रहता
है अविच्छिन्न नित्य संयोग॥

पर वियोगकी स्थितिमें जब तुम्हारी क्रन्दन-ध्वनि उठती है, तब मैं वैसे ही छिपा हुआ सदा तुम्हारे पास रहता हूँ, जैसे कुहरेमें सूर्य (प्रकाशित रहनेपर) छिपकर रहता है, प्रकट नहीं होता।

जैसे रहता छिपा सूर्य
कुहरेमें होता नहीं प्रकाश।
वैसे ही वियोग-क्रन्दनमें
रहता छिपा नित्य मैं पास॥

उसे वियोगदशामें मैं तुम्हारे अनन्य प्रेमके भावोंको देख-देख मुग्ध होता रहता हूँ और एक ही साथ दिव्य अत्यन्त भीषण विरह-दुःख तथा अत्यन्त स्मृति-सुखको देखकर मैं 'धन्य-धन्य!' पुकारने लगता हूँ।

होता मैं उस काल देखकर
मुग्ध तुम्हारे भाव अनन्य।
विरह-दुःख अति स्मृति-सुख युगपत्
दिव्य देख कह उठता धन्य॥

जब तुम जगत्‌को, जगत्‌के सुखोंको, इन्द्रियोंके सभी अर्थोंको और इन्द्रियोंको भी त्यागकर, मन, बुद्धि, इहलोक-परलोक सबको भूलकर, मनमें मेरा शुद्ध प्रेम भरकर विरह-कातर हो जाती हो और फिर तुरंत ही उस अमिलनमें मेरे मुखचन्द्रको देखकर सुन्दर चकोर बन जाती हो, मनकी आँखोंसे निर्निमेष होकर दृष्टि जमा देती हो, तब मेरा मानस-मयूर प्रमुदित, उन्मादित होकर नृत्य करने लगता है।

जगत, जगतके सुख, इन्द्रिय,
इन्द्रियके सभी अर्थका त्याग।
मन मति इह पर भूल विरह
कातर होती मन भर अनुराग॥
अमिलनमें तुम देख वदन विधु
यों बन जाती चारु चकोर।
हो प्रमुदित उन्मत्त नृत्य
करने लगता तब मानस मोर॥

उस समय मैं स्वयं ही सचमुच तुम्हारे मन-बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके सब विषय बन जाता हूँ और मैं ही उन सबका एकमात्र आश्रय बनकर नित्य सबसे मिलाप करता रहता हूँ—तुम्हारे उसी प्रियतम नित्य नवकिशोर, नटवर-वपु, मुरलीधर, मस्तकपर मोरपिच्छ धारण किये हुए मोहनरूपमें, जो सदा तुम्हारा नित्य नवीन प्रेम तथा नित्य नवीन आनन्द बढ़ानेवाला परम अनुपम प्रियतम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर मैं मन-बुद्धि-प्राण,
इन्द्रिय, सब अर्थ तुम्हारे आप।
बनता फिर उनका अनन्य आश्रय
मैं करता नित्य मिलाप॥
नव किशोर नटवर मुरलीधर
मोर-पिच्छ-सिर मोहन रूप।
प्रियतम सदा तुम्हारा नित नव
वर्धन प्रेमानन्द अनूप॥

गोपाङ्गनाओ ! तुम्हारे अतुलनीय त्यागसे उत्पन्न तुम्हारे सहज प्रेमके कारण मैं षडैश्वर्यसम्पूर्ण स्वयं भगवान् तुम्हारे बाहर-भीतर—(संयोग-वियोगकी दशामें) सदा ही तुममें समान भावसे—अत्यन्त एकरस प्रेम-भावसे मिला रहता हूँ। भोग-जगत्से ऊपर—परम निष्काम अत्यन्त विशुद्ध प्रेमजगत्में—उठकर तुमने मुझे खरीद लिया है, इसीसे मेरा मन नित्य-निरन्तर तुम्हारे प्रेमामृतके लिये ललचाता हुआ चञ्चल बना रहता है।

अतुल त्यागसे उदित तुम्हारे
सहज प्रेमसे मैं भगवान।
रहता मिला सदा ही तुममें
बाहर-भीतर सदा समान॥
भोग-जगतसे ऊपर उठकर
तुमने मुझे ले लिया मोल।
प्रेम-सुधा-हित सदा तुम्हारे,
ललचाता मन रहता लोल॥

अतएव तुमलोगोंने जिस रूपमें मुझको अनन्तरूपमें प्राप्त कर लिया है, उस रूपमें इन्द्रिय-भोग-कामी और स्वर्गसुखकी कामनावाले तो मुझे पा ही नहीं सकते। बुद्धिमान् मोक्षाकाङ्क्षी भी वैसे नहीं पा सकते।

इन्द्रिय-भोग-स्वर्ग-सुख कामी,
मोक्षाकांक्षी भी धीमान।
मुझे नहीं पा सकते वैसे,
जैसे तुम पा चुकी अमान॥

मेरी श्रद्धा, मेरी सेवा, मेरी महिमाके गुप्त विशुद्ध रहस्यको भोगवासनासे सर्वथा शून्य विशुद्ध जीवनवाली तुम्हीं लोग यथार्थरूपसे जानती हो। मेरे मनके सभी मनोरथोंका यथार्थरूपमें तुम्हारे ही चित्तोंमें उदय होता है, इसीसे तुमलोग मुझे वैसे ही अत्यन्त प्रिय हो जैसे निर्धनको धन अत्यन्त प्रिय होता है।

मेरी श्रद्धा, सेवा, महिमा-
का रहस्य जो गोपन शुद्ध।
उसे यथार्थ जानती हो तुम
जगत-वासना शून्य विशुद्ध॥
मेरे सभी मनोरथ होते
उदित यथार्थ तुम्हारे चित्त।
प्रिय अति मुझे इसीसे तुम त्यों,
ज्यों प्रिय अति निर्धनके वित्त॥

जिसने कभी सच्चिदानन्दरूप भगवान्को अपने मधुर भावसे इस प्रकार आनन्दविभोर कर दिया हो, ऐसा जगत्में तुम्हारे-सरीखा आजतक कोई भी नहीं हुआ। बस, तुम्हारे-सदृश तो तुम ही हो।

कभी किया हो जिसने आनँद-
मयको यों आनन्दविभोर।
सदृश तुम्हारे तुम्हीं, जगत्में
हुआ न कोई तुम-सा और॥

त्यागकी पराकाष्ठासे ही प्रेमका प्रादुर्भाव होता है और इस वास्तविक प्रेमसे ही प्रेमास्पदरूपसे भगवान् वियोग-संयोग दोनोंमें ही नित्य वर्तमान रहते हैं। कितना मधुर है !

यदि तुम सबका शुभ चाहोगे

यदि तुम सबका शुभ चाहोगे, कभी न अशुभ तुम्हारा होगा।
वरद हस्त प्रभुका पाओगे, यदि तुम सबका शुभ चाहोगे॥

—बालकृष्ण बलदुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य-महोत्सव

(गत जन्माष्टमीपर हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन)

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥
मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्ची
श्रीहारकेसरिनखप्रतियन्त्रसङ्गम् ।
दृष्ट्यार्तिहारिमसिविन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम् ॥

आज महामहिमामयी श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका महामहोत्सव है। वैवस्वतमन्वन्तरीय अष्टाविंश-चतुर्युगके द्वापरके अन्तमें भाद्रमासकी कृष्णाष्टमीके दिन पृथ्वीको यह महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अखिल विश्वब्रह्माण्डके लिये आजका दिन महान् महिमामय, महान् मङ्गलमय, महान् मधुमय और महान् ममतामय तथा परम धन्य है। आजके ही दिन असुरोंके अत्याचारोंसे उत्पीड़ित; कामना, वासना, दुःख, दैन्य और दारिद्र्य आदिके तीव्र ताड़नसे संत्रस्त तथा क्षतविक्षत; बहिर्मुखता एवं जडवादसे जर्जरित और प्रेमरस-सुधाधारासे रहित सर्वथा शुष्क जगत्में अखिलरसामृतसिन्धु, षडैश्वर्य-सम्पूर्ण सर्वलोकमहेश्वर स्वयं भगवान्का आविर्भाव हुआ था। भगवान्के अवतारमें क्या हेतु होता है, इसे तो भगवान् ही जानते हैं; पर जान पड़ता है कि इसमें प्रधान हेतु है भगवान्की अपने घनीभूत परमानन्दरस-लीला-विग्रहको प्रकट करनेकी मङ्गलमयी इच्छा। वैसे, साधुजनोंका परित्राण, दुष्टोंके विनाशके द्वारा भूमिका भार-हरण और धर्मसंरक्षण या धर्मसंस्थापनके मङ्गलमय कार्य भी श्रीभगवान्के अवतीर्ण होनेमें कारण बतलाये गये हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने ही गीता चतुर्थ अध्यायके ८वें श्लोकमें कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

साधु पुरुषोंके परित्राण, दुष्टोंके विनाश और धर्मसंस्थापनके लिये मैं युग-युगमें उत्तमरीतिसे प्रकट होता हूँ (सम्भवामि)। पर केवल यही कारण नहीं है—भगवान्ने ही इससे पहले छठे और सातवें श्लोकमें अन्य कारणोंका भी स्पष्ट संकेत किया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

मैं अजन्मा, अव्ययात्मा और समस्त भूतोंका ईश्वर रहते हुए ही अपनी प्रकृतिको स्वीकार करके अपनी मायासे (योगमायाको साथ लेकर) उत्तम रीतिसे प्रकट होता हूँ। जब-जब धर्मकी ग्लानि तथा अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अपनेको प्रकट करता हूँ। इनमें छठे श्लोकमें अजन्मा, अविनाशी तथा सर्वभूतमहेश्वर होकर भी जन्म लेने, अन्तर्धान होने तथा छोटेसे पराधीन बालक बननेका संकेत करके 'विरुद्ध-धर्माश्रयी' स्वयं भगवान्के पूर्ण आविर्भावकी बात कही गयी है; और सातवें श्लोकमें सदुपदेशके द्वारा धर्मग्लानिरूप अधर्मके अभ्युत्थानका नाश करनेवाले अथवा कामकलुषित विषयसेवनरूप अधर्मके अभ्युत्थानको ध्वंसकर परम त्यागमय मधुरतम विशुद्ध (गोपी-) प्रेमधर्मके संस्थापनकी ओर संकेत किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, अतएव उनके द्वारा सभी लीलाओंका सुसम्पन्न होना इष्ट है, इसके अनुसार उनके प्राकट्यमें भी विभिन्न कारण हो सकते हैं और वे सभी सत्य हैं।

भगवान् श्रीकृष्णके प्राकट्यका काल था भाद्रपदकी अँधियारी अष्टमीकी अर्धरात्रि और स्थान था अत्याचारी कंसका कारागार। पर स्वयं भगवान्के प्राकट्यसे काल, देश आदि सभी परम धन्य हो गये। पाँच हजारसे अधिक वर्ष बीत चुके हैं परंतु प्रतिवर्ष वही पवित्र भाद्रमास, वही पावन कृष्णपक्षकी अष्टमी आती है और पृथ्वीके परम सौभाग्यकी नवीन स्मृति जाग्रत् करके चली जाती है। आज भी, इस दिन हम बहिर्मुखी जीवोंको न दीखनेपर भी, पृथ्वीके वक्षःस्थलपर एक विलक्षण आनन्दका महानृत्य होता है और आज भी सौभाग्यवान् भक्तजन इस नित्यस्मरणीय महान् मङ्गलमयी तिथिकी पूजा, जन्ममहोत्सवका आयोजन तथा जन्माष्टमी-व्रतका सेवन करके धन्य होते हैं; और आज भी प्रेमी भक्त अपने प्राण-प्रियतमके आविर्भावका शुभ-दर्शन प्राप्त करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके इस आविर्भावके समयका बड़ा ही सुन्दर वर्णन दिव्य-रस-सागर-हृदय श्रीशुकदेवजीने किया है। आज इस आविर्भावके कालमें हम उसीका कुछ रसा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वादन करें तथा मन-ही-मन वैसा ही चिन्तन-ध्यान करें। बड़ा ही दिव्य आयोजन है। वे कहते हैं—

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।

'काल समस्त शुभ गुणोंसे युक्त और परम शोभन हो गया।' काल नित्य ही जगत्के सृजन-संहारमें लगा रहता है—बनाता है, फिर बिगाड़ देता है, इससे जगत्में कोई भी उससे प्यार नहीं करता, परंतु कालके आधार भगवान् उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते। वे कालके नियन्ता होकर भी कालमें ही प्रकट होते हैं और कालमें ही अन्तर्धान भी होते हैं। कालको भगवान् यदि यह सौभाग्य न प्रदान करते तो शायद उस बेचारेके दुःखका कहीं पार नहीं रहता। आज जब कालको यह पता लगा कि परिपूर्णतम स्वयं भगवान् मेरे ही अंदर प्रकट हो रहे हैं, तब उसके आनन्दकी सीमा नहीं रही और अपने समस्त गुणोंको प्रकट करके वह परम शोभन बन गया। उसने प्रत्येक ऋतु तथा प्रत्येक समय-विशेषसे चुन-चुनकर सभी सद्गुणोंको अपनेमें धारण कर लिया और वह विलक्षणरूपसे सुसज्जित हो गया। वसन्त ऋतुका मलय समीर, कोकिलका कूजन, भ्रमरका गुंजार, आम्रमें नवीन मौरका उदय, अशोक और चम्पाका मुक्त-हास्य; वर्षाका कदम्बानिल, शरद्की स्वच्छता और प्रसन्नता, हेमन्तकी मालती, शिशिरके कुन्द-कुसुम, दिवसकी कमलिनी, रात्रिकी कुमुदिनी, प्रातःकालकी देवपूजा और कर्म-प्रवृत्ति, मध्याह्नकी भोजनप्रवृत्ति तथा पवित्र प्रभुसेवारूप आजीविका-का कार्य, सायाह्नका देवपूजन तथा सात्त्विक आनन्दोत्सव, निशाका शान्तभाव, रात्रिशेषका उत्साहपूर्ण जागरण, सत्ययुगकी तपस्या, त्रेताका यज्ञ, द्वापरकी परिचर्या और कलियुगका श्रीहरिनाम-संकीर्तन—इत्यादि कालके भण्डारमें जहाँ, जो सद्गुण थे, सभीको अपनेमें धारण करके वह सर्वाङ्ग-सुन्दर हो गया!

यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्।

'रोहिणी नक्षत्र था और आकाशमें सभी नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त और सौम्य हो रहे थे।'

सूर्यादि नवग्रह, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, जन्मसम्पत् आदि तारागण उग्र, शान्त, वक्र, उच्च, नीच आदि विभिन्न भावोंसे कालके सृजन-संहार-कार्यमें सहायता किया करते हैं। कर्मफलानुसार काल जब, जिसको, जैसा कुछ दुःख-सुख भुगताना चाहता है, वे भी तब उसके लिये वैसे ही उग्र, शान्त, वक्र आदि होकर कालका साथ दिया करते हैं। आज परिपूर्णतम भगवान् श्यामसुन्दरके शुभागमनके समय वे सभी अपनी उग्रता, वक्रताका परित्याग करके शान्त हो रहे हैं और कोई वक्र गतिसे, कोई अतिचार गतिसे, तो कोई महातिचार गतिसे अपने-अपने उच्च स्थानोंमें स्थित होकर श्रीभगवान्का अभिनन्दन करनेमें सानन्द संलग्न हैं। उस समय रोहिणी नक्षत्र था। भगवान्ने उसको अपने जन्म-नक्षत्रके रूपमें स्वीकार करके महान् धन्य कर दिया। पर श्रीशुकदेवजीने रोहिणी नक्षत्रका स्पष्ट नाम न लेकर 'अजनजन्मर्क्षं'—इस गुप्तार्थ-पदके द्वारा रोहिणीका नामसंकेत किया। जिनका साधारण जीवोंकी भाँति कर्मफलजनित जन्म नहीं होता, उनको 'अजन' कहते हैं—उन भगवान्के नाभिकमलसे जिनका जन्म होता है वे ब्रह्मा 'अजनजन्मा' कहलाते हैं। वे ब्रह्मा जिस नक्षत्रके अधिष्ठाता हैं, उसका नाम होता है 'अजनजन्मर्क्षं' अर्थात् रोहिणी नक्षत्र; क्योंकि रोहिणीके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है कि अपने या अपने स्वजनोंका जन्म-नक्षत्र प्रकट नहीं करना चाहिये। अतएव श्रीशुकदेवजी भी अपने परम प्रिय श्यामसुन्दर-के जन्म-नक्षत्रको गोपन रखनेके लिये स्पष्ट 'रोहिणी' न कहकर 'अजनजन्मर्क्षं' कहते हैं।

जहाँ भगवान् श्रीकृष्णका नाम-गुण-कीर्तन होता है, वहाँसे सभी पाप-ताप, विघ्न-बाधाएँ तत्काल दूर भाग जाते हैं; वे वहाँके समीप भी नहीं रह सकते; वरं विविध प्रकारसे शुभलक्षण ही वहाँ आकर एकत्र हो जाते हैं। तब स्वयं भगवान् जहाँ पृथ्वीकी पीड़ा मिटानेके लिये अवतीर्ण होते हों, वहाँ वार, तिथि, नक्षत्र, योग आदिके अनन्त शुभ-सूचक होनेमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है?

जगत्का प्रत्येक कार्य काल, दिशा और देशके अधीन है, इसीसे जगत्में काल, दिशा और देशका विचार करके ही कार्य किया जाता है। यद्यपि श्रीभगवान्की दिव्यलीलामें काल, दिशा और देशकी कोई बाध्य-बाधकता नहीं है। वे स्वयं ही काल, दिशा और देशके नियन्ता हैं। तथापि वे जब धराधाममें अवतीर्ण होते हैं, तब काल, दिशा और देशपर कृपा करके उनके साथ अपना पवित्र सम्बन्ध जोड़कर उन्हें धन्य और कृतार्थ कर देते हैं। इसीलिये आज 'काल'की ही भाँति 'दिशा' और 'देश' भी समस्त सद्गुणोंसे सुशोभित हो रहे हैं।

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दसों दिशाएं प्रसन्न हो गयीं, आकाशमें तारे जगमगाने लगे। किसी भी दिशामें कहीं तनिक भी मलिनता नहीं रह गयी। सर्वत्र परमानन्दपूर्ण स्वच्छता छा गयी। सभी दिक्पति परम प्रफुल्लित आनन्दपूर्ण हृदयसे अपने स्वामीके शुभागमनका अभिनन्दन करनेके लिये समस्त दिशाओंको सुसज्जित करके दिग्वधुओंके साथ हाथोंमें अर्घ्यपात्र लेकर उनकी प्रतीक्षा करने लगें। गगनमें तारे जगमगा उठे। मानो अपने-अपने अनन्त अङ्गपात्रोंमें स्तर-स्तरपर हीरोंके पुष्प सजाकर विष्णुपदमें अञ्जलि अर्पण करनेकी इच्छासे वे खड़े हों। काल और दिशाकी भाँति देश भी मङ्गल-शृङ्गारसे सुसज्जित हो गया। भूः भुवः स्वः--सभी देशोंमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। मङ्गलमयके मङ्गल आगमनसे सभी देश आनन्द-मङ्गलपरिपूर्ण हो गये।

मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा।

पृथ्वीके सभी बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और रत्नोंकी खानें आनन्द-मङ्गलकी क्रीड़ाभूमि बन गयीं। विविध हेतुओंकी अवतारणा करके नगरोंके मार्ग परिष्कृत तथा सुगन्धित हो गये। धनियोंके प्रासादोंमें विलक्षण दीपमालिकाएँ आलोकित हो गयीं, सर्वत्र शङ्खध्वनि होने लगी, विविध वाद्य बजने लगे, जगह-जगह पूजा तथा स्तुतियाँ होने लगीं। मन्त्रोच्चारणकी ध्वनि उठने लगी। खानें रत्नोंको स्वयमेव बाहर फेंकने लगीं। नाना प्रकारसे नाना कारणोंसे सर्वत्र आनन्दमयके शुभागमनकी आनन्दधारा बह चली। पृथ्वीके समस्त स्थानोंको आनन्दप्लावित करके आनन्दमयका शुभागमनानन्द मूर्तिमान् होकर नद, नदी, सरोवर, अरण्य, पर्वत आदिमें सभी जगह व्याप्त हो गया।

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः।

नदियोंका जल निर्मल हो गया। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल उठे। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, गोमती, कावेरी, शोण, सिन्धु आदि सभी नद-नदियोंका मटमैलापन सहसा दूर हो गया। उनको मानो अपने जन्म-स्थान—पर्वतके गुप्तगह्वरसे ऐसा कोई समाचार मिल गया है कि वे अपने कलकलनादसे उसे तटभूमियोंके कानोंमें सुनाने लगीं और उत्ताल तरङ्गोंके रूपमें मानो भुजाओं-को उठाकर नाचती हुई वे बड़े वेगसे समुद्रको यह संवाद सुनानेके लिये दौड़ पड़ीं।

सरोवरोंमें असंख्य कमलोंकी पंक्तियाँ विकसित हो उठीं। मायाबद्ध जीव जैसे स्त्री, पुत्र, परिवार, घर, शरीरको छोड़कर अन्य किसीसे सम्बन्ध नहीं रखता, उसी प्रकार बेचारे सीमाबद्ध सरोवर भी अपनी सीमामें ही बँधे रहते हैं। मायाबद्ध जीवपर जब श्रीकृष्णकी कृपा होती है, तब वह मायाबद्ध रहता हुआ ही जैसे श्रीकृष्ण-भक्तोंकी बातें सुनता है और उन भक्तोंके द्वारा होनेवाली भगवत्सेवाके आनन्दोच्छ्वासको देखता है, वैसे ही सीमाबद्ध सरोवरोंको भी आज श्रीकृष्ण-कृपा प्राप्त हुई है, इसीसे वे कमलोंके खिलनेके बहाने असंख्य कानोंसे नद-नदियोंकी आनन्दपूर्ण कलकलध्वनि सुन रहे हैं और खुली आँखोंसे उनके आनन्दोच्छ्वासको देख रहे हैं।

नदियोंको जो सौभाग्य किसी अवतारमें नहीं मिला, वह श्रीकृष्णावतारमें मिला। इसी अवतारमें श्रीकालिन्दीजी भगवान् श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटरानी बनेंगी और अवतार लेते ही श्यामसुन्दर ग्वालबालों तथा गोपाङ्गनाओंको साथ लेकर कालिन्दीजीमें क्रीड़ा करेंगे। इन बातोंको सोचकर नदियाँ सुप्रसन्न हो गयीं। और इस अवतारमें भगवान् कालिय-दमन करके कालीदह सरोवरको विषहीन बना देंगे, इस बातको सोचकर सरोवरोंने कमलोंके बहाने अपने हृदयोंको ही श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पण कर दिया। मानो वे कह रहे हैं कि हमारे जीवनका सारा विष दूर करके आप हमें कृतार्थ करेंगे।

द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः।

वनोंमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ विविध वर्णके सुगन्धित पुष्पोंसे लद गयीं और शुक-पिकादि पक्षी मधुर ध्वनि करते हुए चहक उठे तथा मधुपान-मत्त भ्रमरोंकी गुंजारसे सारी वनभूमि मुखरित हो उठी!

निर्जन अरण्यकी शोभा उस समय भला कौन देखता, परंतु उसे आज अपनी शोभा दूसरोंको थोड़े ही दिखानी है, उसे तो पूर्णरूपसे सज-धजकर 'स्वान्तःसुखाय' अपना आनन्द प्रकट करना है। इसीसे उन सबने भी अपनी सजावटमें कोई कमी नहीं रक्खी। शाल, तमाल, ताल, आम, अशोक, चम्पा, मौलसिरी, वट, अश्वत्थ आदि सभीने अपने पुराने पत्ते तुरंत फेंक दिये और नये-नये कोमल अरुण पल्लवोंको धारण कर लिया। सबमें नये मौर फूट निकले। मौरोंके बीच-बीचमें पुष्प विकसित हो गये और उन पुष्पोंके गुच्छे-के-गुच्छे मृदु-मन्द पवनके मधुर हिलोरोंके साथ नूतन नृत्य करने लगे। मालती आदिकी लताएँ वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखाओंमें लिपटकर वहाँ मधुर कुसुम-हास्यका विस्तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगीं। जुही, चमेली आदि सब पत्र-शून्य होकर केवल विकसित कुसुमोंसे ढक गयीं। रात्रिके समय सोये हुए भ्रमर मानो स्वप्नमें किसी गुप्त परमानन्द-संवादको पाकर सहसा जाग उठे और मधुर गुंजार करते हुए पुष्पोंके पास जा-जाकर आनन्द-समारोहका कारण पूछने लगे। शाखाओंपर घोंसलोंमें सोये हुए पक्षीगण भ्रमरोंकी झंकारसे जाग्रत् होकर अपनी कमनीय काकलीसे वनप्रान्तको निनादित करते हुए अकस्मात् उदय हुए आनन्दका कारण जाननेके लिये इधर-उधर वृक्षोंपर उड़ने लगे। आम्रवृक्षमें असमय मौर देखकर कोयलोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। वे बड़े वेगसे उड़कर शाखाओंपर पहुँच गयीं और पञ्चम स्वरमें तान छेड़कर आनन्दमग्न हो गयीं। इस प्रकार सर्वत्र महान् आनन्दके पूर्ण विकाससे समस्त अरण्य सर्वथा 'आनन्दभवन' बन गया।

भगवान् श्रीकृष्णका शुभागमनानन्द आकाश, पृथ्वी और जलको आनन्दमत्त बनाकर अब वायुके निकट पहुँचा।

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः।

परम पवित्र शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे सबको सुखदान करती हुई बहने लगी।

वर्षाऋतुके घोर जलवर्षणसे वायुमें आर्द्रता तथा बीच-बीचमें होनेवाली कड़ी धूपसे उसमें कुछ उष्णता आ गयी थी। पर अब श्रीभगवान्‌के शुभागमनोत्सवके कारण वसंतके अन्तमें जो मलयपवन निर्वासित कर दिया गया था, वह अपने निर्वासन-दण्डसे मुक्त होकर लौट आया एवं वर्षाकालीन उस नातिशीतोष्ण वायुके साथ मिल गया। अब दोनोंने मिलकर खोज-खोजकर जहाँ-जहाँ उन्हें उत्तम सद्‌गन्ध प्राप्त हुई, लेकर अपने सारे अङ्गोंपर लगा ली और आनन्दमत्त होकर वे वृक्षोंके मस्तकों, रमणियोंके अञ्चलों तथा प्रासादशिखरोंकी पताकाओंके साथ क्रीड़ा करने लगे। श्रीभगवान् आ रहे हैं, इसलिये उस समय वायुने 'रज' (धूल) को लेकर खेलना छोड़ दिया और सात्त्विक आनन्दके साथ वह खेलने लगी। इसी कारण वह अपने स्पर्शसे सबको सुख देनेवाली बन गयी।

यों जब श्रीगोविन्दके शुभागमनानन्दसे पृथ्वी मङ्गलमयी, जल कमलाच्छादित, वायु सुगन्धसम्पन्न तथा सुखसेव्य हो गयी और निर्मल आकाश तारामालाओंसे जगमगा उठा, तब अग्नि भी निश्चेष्ट नहीं रह सकी। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चभूत मिलकर ही जगत्‌का सारा काम करते हैं। आज जब श्रीकृष्णके शुभागमन-महोत्सवके समय इनमेंसे चार आनन्दोन्मत्त हो रहे हैं, तब अकेली अग्नि कैसे इस परम सौभाग्यसे वञ्चित रहेगी? अतएव—

अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत।

द्विजोंके होमकुण्डोंकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ, जो कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, जल उठीं। उन्हें जलाना नहीं पड़ा। लकड़ीके अंदरसे अपने-आप ही प्रज्वलित होकर वे दक्षिणावर्त हुई अपनी शिखाओंको हिला-हिलाकर नाचने लगीं। श्रीगोविन्दके शुभागमनके महानन्दमें उनके लिये घृतकी आहुति, मन्त्रपाठ अथवा ईंधनकी आवश्यकता नहीं हुई। वे अपने-आप ही प्रकट होकर होममण्डपोंको आलोकित करने लगीं।

श्रीकृष्णका शुभागमन-महानन्द बाह्यजगत्‌को प्रमुदित और पुलकित करके अन्तर्जगत्‌में जा पहुँचा।

मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्।

असुरद्रोही साधुओंका चित्त सहसा प्रसन्नतासे भर गया। भगवद्भक्तोंके हृदय सहसा अजानित, असम्भावित और अप्रत्याशित आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। कहाँसे, किसलिये, कैसे, इस परमानन्दने आकर उनके हृदयोंमें प्रवेश किया, इसका तो उन्हें पता ही नहीं लगा। वे आनन्दमें भरकर पुलकित हो गये। उनके नेत्रोंसे प्रेमानन्दके सुधाविन्दु झरने लगे और वे सब इस आनन्दके नित्य स्थित रहनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे। असुरनिकन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनकी सूचना पाकर असुरोंके अत्याचारसे उत्पीड़ित देवताओंके हृदयोंमें शक्ति और आशाका संचार हो गया। असुर-समुदाय अपनी भयानक मूर्ति और सहज हिंसाप्रवृत्तिके कारण सभीके 'अप्रिय' होते हैं। इसलिये असुरके अतिरिक्त जीवमात्र ही 'असुरद्रोही' हैं। इस सिद्धान्तसे साधु-प्रकृतिके सभी 'असुरद्रोही' जीव प्रसन्न हो गये। पर भगवान्‌के भक्तोंका सुख तो सदा अवर्णनीय है। बादलसे गिरी हुई जलकी बूँद मेघप्रिय चातकको जैसी सुखदायिनी होती है, वैसी अन्य किसीको भी नहीं होती। यह बात सत्य है कि दूसरोंको भी उससे प्यास बुझती है पर वे केवल मेघके जलकी ही बाट नहीं देखते। उनको नद, नदी, सरोवर, झरने बहुत जगह जल दिखायी देता है, कहींसे भी लेकर वे अपनी पिपासा शान्त कर सकते हैं, पर श्रीभगवच्चरणाश्रित एकनिष्ठ अनन्य भक्तोंके आनन्दका स्रोत तो केवल श्रीभगवान्‌का चरण-प्रान्त ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जो लोग भोगाश्रित हैं, भगवच्चरणाश्रित नहीं हैं—उनके सुखके लिये स्त्री, पति, पुत्र-परिवार, धन, जमीन, विषय-वैभव, मान-सम्मान, प्रशंसा-यश, पद-अधिकार आदि अनेक वस्तुएँ हैं। इसीलिये वे श्रीभगवच्चरणारविन्द-प्रीतिरसके दिव्य आनन्दका पूर्णास्वादन नहीं कर पाते। फिर, जैसे बादलोंका निर्मल जल भी यदि गन्दे कूड़े-भरे स्थानोंमें गिरता है तो वह निर्मल नहीं रहता। इसी प्रकार श्रीभगवान्‌का परमानन्द नित्य परम निर्मल होनेपर भी, जिन लोगोंका जीवन कामना, वासना, भोगासक्ति-भोगसुखास्थारूपी गन्दे कूड़ेसे भरा है, उनके लिये वह विषयानन्दके रूपमें ही प्रकट होता है। जैसे अत्यन्त उत्तप्त स्थानपर गिरी हुई जलकी बूँदें पड़ते ही सूख जाती हैं तथा ताप और भी बढ़ जाता है, वैसे ही अविश्वास, भोगासक्ति तथा बहिर्मुखतासे उत्तप्त जीवोंके समीप पहुँचा हुआ भगवत्-सम्बन्धजनित आनन्दबिन्दु भी उनकी भगवद्विमुखताके कारण तुरंत (उनके लिये) लुप्त हो जाता है और उन बहिर्मुख तथा अविश्वासी जीवोंका ताप बढ़ जाता है। आज श्रीभगवान्‌के शुभागमनका पूर्ण प्रकाश होनेसे श्रीभगवच्चरणाश्रित अनन्य भक्तोंके हृदयमें आनन्दका जो महान् प्रवाह बहने लगा, वह आनन्द भोगकामना-वासना-भरे हृदयके लोगोंको नहीं मिला। वे उस समय प्राकृतिक शोभा-सम्पत्तिकी विपुलताको देखकर विषयानन्दका ही अनुभव करने लगे और कंसादि असुरोंकी बहिर्मुखता, भोगासक्ति और अविश्वाससे भरे उत्तप्त हृदयोंमें यह विषयानन्द भी ठहर नहीं सका वरं उनका ताप और भी बढ़ गया। अस्तु,

श्रीगोविन्दका यह शुभागमन-महानन्द पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, नद, नदी, पर्वत आदि सभीको आनन्द-प्लावित कर, भक्तोंके हृदयोंमें श्रीभगवच्चरणोंके प्रत्यक्ष प्राप्त होनेकी महान् सुखाशाका मधुर संगीत गाकर, विषयी जीवोंके हृदयोंको विषयानन्दसे भरकर और बहिर्मुख जीवोंके मनोंको भीषण भयसे प्रकम्पित कर, अब स्वर्गमें जा पहुँचा।

जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि।

अजन्मा भगवान्‌के जन्म—आविर्भावके समय स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। भगवान्‌का शुभागमन-महानन्द जब भुवर्लोकसे ऊपर उठकर स्वर्लोकमें पहुँचा, तब एक ही साथ असंख्य देवदुन्दुभियोंने बजकर अपने मधुर नादसे समस्त स्वर्गलोकको छा लिया। स्वर्गमें प्रतिदिन नियत समयपर देववादकोंके द्वारा ब्रह्मताल, रुद्रताल आदि तालोंसे देवदुन्दुभियाँ बजायी जाती हैं, परंतु आज इस महानन्दमें सर्वथा स्वतन्त्र होकर वे सब अपने-आप ही बजने लगीं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्रणुदस्तदा।'

गम्भीर मध्य निशाकी स्तब्धताको भङ्ग करके समस्त स्वर्गको निनादित और आनन्दमुखरित करती हुई वे दुन्दुभियाँ बिना ही बजाये बज उठीं। देवसभाके संगीतरस-विशारद हाहा, हूहू, तुम्बुरु आदि गन्धर्व और किम्पुरुषगण दुन्दुभियोंके इस मधुर नादसे सहसा जाग्रत् हो गये और परमानन्दपूर्ण हृदयसे श्रीभगवान्‌का पवित्र गुणगान करने लगे। उन्हींके साथ-साथ आनन्दमत्त सिद्ध-चारणगण भी स्तवन करने लगे।—

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः।

गन्धर्व तथा किन्नरगण देवराज इन्द्र तथा देवताओंका आनन्द बढ़ानेके लिये ही देवसभामें मधुर तान छेड़ा करते हैं। सिद्ध और चारणोंका जीवन भी देवताओंके स्तुतिगानमें ही बीतता है। पर आज देवेन्द्रवाञ्छित-चरणारविन्द भूमिपर प्रकट होने जा रहे हैं, अतः वे भी उसके अनिर्वचनीय महानन्दसे मत्त होकर अपने स्वभावसिद्ध शान्त स्निग्ध मधुर कण्ठसे भी कहीं विलक्षण मधुरता तथा सुरीलेपनको प्राप्त करके श्रीभगवान्‌का मङ्गलमय गुणगान करने लगे। इस प्रकार गन्धर्व-किन्नर और सिद्ध-चारणोंके मधुर सात्त्विक गीतोंको सुनकर देवसभाके नृत्य-श्रमसे परिश्रान्त तथा अमृतपानसे प्रमत्त विद्याधरियाँ तथा अप्सराएँ भी नवीन उत्साहसे आनन्द-जाग्रत् होकर सर्वथा नवीन रूपसे नृत्य करने लगीं।

विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा॥

उर्वशी, मेनका, रम्भा आदि स्वर्गकी अप्सराओं तथा विद्याधरियोंकी दिनभरकी सारी नाच-गानकी थकावट दूर हो गयी और वे अप्राकृत परमानन्दसे परिपूर्ण होकर स्वर्गके विलास-नृत्यकी सारी बातोंको भूलकर श्रीगोविन्द-गुणगानमें मत्त गन्धर्व-किन्नरोंके गोविन्द-गुणगानकी शुद्ध सत्त्वमयी तालोंमें ताल मिलाकर मधुर नृत्य करने लगीं। इस प्रकार सारा स्वग गान तथा नृत्यकी मधुरतम ध्वनिसे भर गया। देवताओंके समस्त शयन-प्रासाद मुखरित हो उठे। सभी देवता सहसा जगकर आश्चर्यचकित नेत्रोंसे देखने लगे और आनन्दमग्न होकर मन्त्रमुग्धकी भाँति परमानन्दकी प्रेरणासे अपने-अपने स्थानोंको छोड़कर तुरंत नन्दनवनमें जा पहुँचे तथा स्वर्गके पारिजात-सुमनोंको चुन-चुनकर पृथ्वीपर बरसाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।

बड़े-बड़े देवता तथा मुनिगण आनन्दमें भरकर पृथ्वीके सौभाग्यकी सराहना करने लगे । श्रीभगवान्‌के शुभागमनसे आज पृथ्वी महान् आनन्द-शृङ्गारसे सुसज्जित है; उसी आनन्दकी एक लहर स्वर्गमें आयी है, अतएव 'पृथ्वी स्वर्गादपि गरीयसी ।' पृथ्वी स्वर्गसे भी बढ़कर सौभाग्यमयी है, तभी तो श्रीभगवान् उसपर अवतीर्ण हो रहे हैं । इसी परम सफलजीवन पृथ्वीके सौभाग्यका अभिनन्दन करनेके लिये देवताओंने पृथ्वीपर नन्दनकाननके देवसुमनोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । सफलतामें सभी पूजा करने लगते हैं—यह स्वभाव-सिद्ध बात है ।

अवश्य ही इस अप्राकृत महानन्दका यथार्थ स्वरूप कोई नहीं जानता, पर चुपकेसे आकर इस महानन्दने सबको आनन्दमत्त कर दिया है । आज चौदहों भुवन आनन्दसे नाच उठे हैं । इस आनन्दके उच्छ्वाससे सप्तसिन्धुओंमें भी आनन्द-क्षोभ हो गया । वे भी मृदु-मन्द गर्जना करते हुए उत्ताल तरंगोंकी भंगिमा दिखा-दिखाकर नृत्य करने लगे ।

मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ।

समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजी नारायणकी पत्नी हैं, मानो इसी सम्बन्धसूत्रसे गौरवमण्डित होकर सिंधु गर्जनाके रूपमें यह घोषणा कर रहा है कि 'आज जिनके शुभागमनमें समस्त विश्वब्रह्माण्ड परम आनन्दमें बह रहा है, वे हमारे अपने ही हैं—हमारे जामाता ही हैं ।' इस प्रकार समुद्रका गर्जन सुनकर दिक्प्रान्तवर्ती मेघसमुदाय भी मुखर हो उठे । उन्होंने भी मृदु-मृदु गर्जना करके कहा—'अरे ! हमारा और उनका तो वर्ण ही एक है । हम भी नीलश्याम और वे भी नीलश्याम ! अतएव ये हमारे सखा ही हैं ।' श्रीभगवान्‌के सम्बन्ध-गौरव तथा वर्णसाम्य-गौरवसे प्रमत्त जलनिधि तथा जलदनिकर अपने-अपने सौभाग्यकी गाथा गाने लगे । इसी समय—

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥

भाद्रपदकी अँधियारी रात्रिमें सबके हृदयोंमें रहनेवाले भगवान् जनार्दन, वैसे ही 'देवरूपिणी' देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण चन्द्रका उदय हुआ हो ।

इसमें देवकीजीको 'देवरूपिणी' कहा गया । इसका भाव यह है कि उनका दिव्य शरीर था । भगवान् नित्य स्वप्रकाश हैं । उन स्वप्रकाश विचित्र विविध लीलामय श्रीभगवान्‌का नाम 'देव' है । उनका रूप-श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है—

'ईश्वरः परमकृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।'

उन 'देव' भगवान्‌की भाँति ही जिनका रूप है उसे 'देवरूप' कहते हैं—अतः ऐसा जिनका रूप है वे श्रीदेवकीजी 'देवरूपिणी' हैं । उनका देह हमारी तरह प्राकृत नहीं है, शुद्ध सच्चिदानन्दमय है । तभी उनके सामने उनके पुत्ररूपमें स्वप्रकाश भगवान्‌का आविर्भाव हुआ है । चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, विद्युत् आदि ज्योतियाँ, जो जगत्‌को प्रकाशित करती हैं, कोई भी स्वप्रकाश नहीं हैं ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(गीता १५ । १२)

'चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदिकी जिस ज्योतिसे सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है, वह मेरी ही (अङ्ग)-ज्योति है । यहाँतक कि भगवान्‌का सच्चिदानन्दमय परम धाम भी स्वप्रकाश है । इन सूर्य-चन्द्रादिकी ज्योतियाँ वहाँ नहीं हैं—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

(गीता १५ । ६)

वह स्वप्रकाश परमधाम, जिसको प्राप्त होकर पुनः संसार-में लौटना नहीं पड़ता, यहाँके इन सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी ज्योतिसे प्रकाशित नहीं है । श्रुति कहती है—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।

'स्वप्रकाश श्रीभगवान्‌की (अङ्ग-) ज्योतिसे ही सूर्य-चन्द्रादि सब ज्योतिर्मय हैं और उनकी ज्योति (अङ्ग-छटा) से ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित है ।' इस प्रकार श्रीभगवान ही सबके प्रकाशक हैं, भगवान्‌का कोई प्रकाशक नहीं है ।

पिता-माता अपने पुत्रका जगत्‌में प्रकाश करते हैं, इसीसे वे पुत्रके प्रकाशक कहे जाते हैं । श्रीभगवान्‌के पिता-माता जो श्रीभगवान्‌को जगत्‌में प्रकट करते हैं, अतः वे भी भगवान्‌के प्रकाशक हैं । श्रीभगवान् स्वप्रकाश हैं, अतएव वे अपनी 'स्वप्रकाशिका शक्ति' के अतिरिक्त अन्य किसीसे प्रकाशित हो नहीं सकते । अतएव वसुदेव-देवकीरूप भगवान्‌के पिता-माता भी भगवान्‌की सच्चिदानन्दमयी स्वप्रकाशिका शक्ति ही हैं । वे उन्हींके 'शुद्ध सत्त्व'की घनीभूत मूर्ति हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु वस्तुतः प्राकृत जीवोंकी भाँति न तो भगवान् माताके गर्भमें आते हैं, न कर्मपरवश उनका जन्म होता है और न उनका विग्रह ही उनसे भिन्न पाञ्चभौतिक होता है। वे भगवान् स्वेच्छामय दिव्य वपुमें प्रकट होते हैं। वे ही जगत्-पिता हैं, सबके जन्मदाता हैं, उन्हींसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका उदय होता है। पर जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे स्नेह करते हैं, उन वात्सल्य-प्रेमयुक्त भक्तोंको श्रीभगवान् माता-पिताके रूपमें स्वीकार करके उन्हें धन्य करते हैं। भगवती देवकी अनन्य वात्सल्य-प्रेमसे श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त करना चाहती थीं, इसीलिये उनमें वात्सल्य-प्रेमको और अपने प्रति पुत्र-भावको सुदृढ़ करनेके लिये अपने आविर्भावसे पहले भगवान्‌ने अपनी अचिन्त्य-शक्ति—स्वजन-मनमोहिनी मायासे देवकीमें गर्भलक्षण उत्पन्न कर दिये थे। वे असलमें गर्भमें नहीं आये थे। उनका चतुर्भुज दिव्य रूपसे प्रकट होना यही प्रत्यक्ष सिद्ध करता है। तथापि देवकीजीने समझा कि मेरे गर्भसे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है। इसीसे वे पूर्ण वात्सल्यसे पुत्ररूपी भगवान्‌का लालन-पालन करती हैं। इस अगाध वात्सल्य-प्रेमसागरमें भगवान्‌की सारी भगवत्ता डूब जाती है। पर जहाँ ऐश्वर्यज्ञानमिश्रित वात्सल्य-प्रेम होता है, वहाँ बीच-बीचमें भगवत्ताकी स्फुरणा भी होती है। पर वह स्थायी नहीं होती। श्रीदेवकीजी और श्रीवसुदेवजीका वात्सल्यप्रेम ऐश्वर्य-ज्ञानमिश्रित था, इससे समय-समयपर उन्हें अपने पुत्र श्रीकृष्णमें भगवान्‌का बोध भी हुआ करता था। इसीसे वे लालन-पालनके साथ ही स्तुति-प्रार्थना भी करते थे। ऐश्वर्य-ज्ञानविहीन सर्वथा विशुद्ध प्रेम तो वृन्दावनमें था और उसकी बड़ी ही मधुर अभिव्यक्ति वृन्दावन-लीलामें देखी जाती है।

भगवान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त विष्णु हैं और वे ही भक्तके प्रेमानुरूप क्षुद्र बालकरूपधारी हैं। वे सदा ही बृहद् और सदा ही क्षुद्र हैं—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्।'

वे ही सबके हृदयोंमें व्याप्त अन्तर्यामी हैं, वे ही सर्वातीत हैं और वे ही सर्वगुणमय, लीलामय, अखिलरसामृतमूर्ति श्रीभगवान् हैं। पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार, प्राभवावतार, वैभवावतार और परावस्थावतार सभी उन्हींसे होते हैं। वे ही सब अवतारोंके अवतारी साक्षात् स्वयं भगवान् हैं। समस्त अवतार उन्हींके अन्तर्गत हैं। उन्हींमें सब सम्मिलित हैं; क्योंकि सब कुछ वे ही हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके अष्टाविंश चतुर्युगके द्वापरमें प्रकट होनेवाले ये भगवान् ही सबकी प्रतिष्ठा, सबके अवतारी, सर्वमय, सर्वातीत, सर्वरूप, नित्य सगुण, नित्य निर्गुण, अचिन्त्यानन्तगुणसमुद्र, अखिलप्रेमरसामृत-सिन्धु, षोडशकलापूर्ण, षडैश्वर्यसम्पन्न, हानोपादानरहित, दिव्यसच्चिदानन्दमय-विग्रह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। साथ ही, वे पूर्ण आदर्श मानव, सकल-कला-पूर्ण, परम योगीश्वर, लोकनेता, परम-राजनीतिक, राज्यनिर्माता, राज्यत्यागी, धर्मोपदेष्टा आचार्य, सौन्दर्यमाधुर्य-निधि, सर्व-चित्ताकर्षक, मुनिमनमोहन, आत्मारामगणाकर्षी, मधुर प्रेमी, प्रेम-परवश और जन-वत्सल स्वजन हैं। जिस किसी भी दृष्टिसे इनको देखा जाय, सभीमें इनके परिपूर्णतम दर्शन होते हैं।

विषयासक्ति और भोगवासनामें फँसे हुए मायामोहके पदाघातसे जर्जरित और स्पन्दनहीन जगत्‌के प्राणी कभी भी तनिक चेतना प्राप्त करके, विश्वासके नेत्रोंको खोलकर एक बार देखें तो उन्हें पता लगेगा कि भाद्रमासकी इस कृष्णाष्टमी-को पाकर पृथ्वी स्वर्गकी अपेक्षा भी परम श्रेष्ठ हो गयी। हम पृथ्वीके जीव समझें या न समझें, इस सर्वपूज्य तिथि तथा इस मध्य निशाको पाकर पृथ्वी धन्य है, पृथ्वीके जीव धन्य हैं, पृथ्वीके आकाश, वायु, अग्नि धन्य हैं। पृथ्वीके नद-नदी-सरोवर धन्य हैं, पृथ्वीके पर्वत-पहाड़ धन्य हैं, पृथ्वीके सूर्य-चन्द्र धन्य हैं, पृथ्वीके प्रत्येक पदार्थ धन्य हैं और जिस ब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी है, वह ब्रह्माण्ड धन्य है। एवं इस तिथिको माननेवाले भी सब धन्य हैं तथा सभीके प्रति साष्टाङ्ग प्रणाम करके मैं भी धन्य होता हूँ। भगवान्‌का आविर्भाव होनेहीवाला है। उपर्युक्त वर्णनके अनुसार हम सभी आनन्द-शृंगारसे अपने-अपने मनोंको सजाकर उनके स्वागतकी तैयारी करें।

अन्तमें मैं इस पुरानी प्रार्थनाको बार-बार दुहराकर भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंको प्रणाम करता हूँ। आप भी, चाहें तो, मेरे साथ ही मन-ही-मन यह प्रार्थना कर सकते हैं—

जाहि देखि, चाहत नहीं कछु देखन मन मोर।
बसै सदा मोरे दृगनि सोई नंदकिसोर॥
तन-मन सब लिपटे रहें नित प्रियतमके अंग।
भुक्ति मुक्तिकी कल्पना करै न यह सुख भंग॥
भूलि जाय सुधि जगतकी भूलै घरकी बात।
हिय सों हिय लागौ रहै बिनु बाधा दिनरात॥
इंद्रिय-मन-बुधि-आतमा बनै स्यामके धाम।
सब मैं सदा बसौ रहै प्रियतम मधुर ललाम॥

बोलो आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतसे आत्मविशुद्धि

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डाक्टर मङ्गलदेवशास्त्रीजी)

जीवनके उत्थान और विकासके लिये आत्मविश्वास और आत्मिक शक्तिकी आवश्यकता है। आत्मिक शक्ति और आत्मविश्वास अनुशासन, व्रताचरण और नियम-पालनसे ही प्राप्त हो सकते हैं। जीवनमें व्रतोंके ग्रहण और पालनका यही रहस्य है। इसी सिद्धान्तका विशदीकरण किसी व्रतीके मुखसे नीचेके पद्योंमें कराया गया है।

उत्तरोत्तरमुत्कर्षं जीवने लब्धुमुत्सुकः।
प्रतिजाने चरिष्यामि व्रतमात्मविशुद्धये॥ १॥

अपने जीवनमें उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करनेके लिये मैं उत्सुक हूँ। आत्मविशुद्धि या पवित्राचरणसे ही वह हो सकता है। उस आत्मविशुद्धिके लिये व्रताचरणकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

व्रतानां पालनेनैव तद्गूढमात्मदर्शनम्।
जायते यमिनां नूनमात्मविश्वासकारणम्॥ २॥

व्रतोंके पालनसे ही संयमी मनुष्योंको निश्चय ही अपने उस गूढ-स्वरूपका दर्शन होता है जो कि आत्म-विश्वासका कारण होता है।

अभिप्राय यह है कि व्रतोंके आचरणसे ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप और शक्तिको पहचानता है और इसी प्रकार उसमें आत्मविश्वासकी भावनाका उदय होता है।

ऋषिभिर्मुनिभिश्चैव लोकानां मार्गदर्शकैः।
सेवितो विततः पन्था एष नैवात्र संशयः॥ ३॥

संसारको सन्मार्ग दिखानेवाले ऋषियों और मुनियोंने वास्तवमें इसी प्रशस्त मार्गका सेवन किया था।

अभिप्राय यह है कि व्रताचरणद्वारा ही मनुष्य ऋषि और मुनिकी पदवीको भी प्राप्त कर सकता है।

विश्वस्य विविधं कार्यं कुर्वन्तोऽत्र निरन्तरम्।
व्रतानां पालनेनैव देवा अमृतभोजिनः॥ ४॥

विश्वके विभिन्न कार्योंको निरन्तर नियमपूर्वक करनेवाले अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवताओंको व्रतोंके पालनके कारण ही अमृतभोजी (=अमृत अथवा अमृतत्वका सेवन करनेवाले) कहा गया है। दूसरे शब्दोंमें अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवता विश्वके संचालनार्थ अपने-अपने महान् व्रत अथवा कर्तव्यका अविचल भावसे पालन करते हैं। इसी आधारपर उनको 'अमृतभोजी' कहा गया है।

अभिप्राय यह है कि व्रताचरणद्वारा ही मनुष्यको अपने अमृतत्व या शाश्वत जीवनका बोध हो सकता है।

व्रतेन प्राप्यते दीक्षा दक्षिणा दीक्षयाप्यते।
तया च प्राप्यते श्रद्धा श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ ५॥

आचरणसे ही मनुष्यको दीक्षा अथवा उन्नतजीवनकी योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षासे दक्षिणा अथवा प्रयत्नकी सफलता प्राप्त होती है। दक्षिणासे अपने जीवनके लक्ष्य अथवा आदर्शोंमें श्रद्धा और श्रद्धासे सत्य अथवा वास्तविक लक्ष्यकी प्राप्ति होती है।

अभिप्राय यह है कि व्रतोंके पालनसे ही मनुष्य अपने जीवनके परम लक्ष्यतक पहुँच सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सयम

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'आपको क्या हो गया है ?' मुझे बहुत संकोच हो रहा था। जो पूरे दो वर्ष पड़ोसमें रहे, उन्हें मैं पहचान नहीं सका था और जब उन्होंने अपना नाम भूमिपर मिट्टीमें लिखा, तब मैं जैसे चौंक पड़ा।

मेरे प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने ललाटपर इस ढंगसे हाथ पटका जैसे कहते हों—'भाग्य फूट गया !'

वे मौन थे। मैं उन्हें कमरेमें ले गया और एक कुर्सी खींची बैठनेको; किंतु उन्होंने संकेत किया कि वे कुर्सीपर नहीं बैठेंगे। भूमिपर ही चटाई डालनी पड़ी।

कुछ मिनटोंमें पता लग गया कि उन्होंने चीनी, नमक और गोरसमात्र (घी, दूध, दही, मक्खन—सब) छोड़ रक्खा है। तेल, मिर्च, खटाई भी वर्जित है। रूखी रोटी और बिना नमककी दाल तथा उबाला हुआ शाक उनके लिये बनानेकी व्यवस्था मुझे पहले करनी पड़ी।

आप उनका परिचय जानना चाहेंगे। वे मेरे पड़ोसी थे, यह बता चुका हूँ। पहलवान थे, मुहल्लेके युवकोंको व्यायाम करवाते थे। मुहल्लेमें उनका आदर भी था, आतंक भी।

दूध, रबड़ी, मलाई—पहलवानोंके समान उनके भी ये प्रिय आहार थे और नंगे शरीर अथवा मलमलका पतला कुर्ता ही उन्हें भी प्रिय था। धूलि-धूसर देह पहलवानकी शोभा है और जब स्नान किये हों, अलकोंसे तेल-जैसे टपका पड़ता हो।

पता नहीं क्या बात हुई कि मुहल्लेके ये 'उस्तादजी' सहसा बिना किसीको कुछ बताये कहीं चले गये और आज पूरे दो वर्षके बाद लौटे हैं तो मैं इन्हें पहचान ही नहीं सका।

दुबला-सूखा शरीर, बड़ी-बड़ी जटाएँ, बिवाइयोंसे भरे पैर, कमरमें लिपटा मैला-सा कपड़ा, कंधेपर झोली, हाथमें बड़ा भारी लोटा और एक लकड़ी, मेरे सामने जो रामानन्दी तिलक लगाये वैष्णव साधु चटाईपर बैठे हैं, वे इस मुहल्लेके सम्मान्य 'उस्तादजी' हैं, यह उनके व्यायाम सिखाये युवक भी आज नहीं कह सकेंगे, इसका मुझे भरोसा है।

घरमें कोई था नहीं। वृद्धा माताकी गङ्गायात्रा हो चुकी थी साधु होनेके एक वर्ष पूर्व। 'उस्तादजी' यहाँसे कहीं चले गये तो कोई विशेष बेचैन होनेवाला नहीं था। भला आदमी अपने मकानका किवाड़तक बंद नहीं कर गया था। कई दिन उसमें कुत्ते और पशु रात्रि व्यतीत करते रहे। जो जिसके हाथ लगा, दूसरोंकी दृष्टि बचाकर उठा ले गया और लगभग सप्ताह भर पीछे उस्तादजीके ही एक शिष्यने उनके मकानपर अधिकार कर लिया। उसे रोकनेवाला कोई नहीं था। उससे झगड़नेका साहस भी किसीमें नहीं था।

अब समझमें आया कि 'उस्तादजी'को सचमुच वैराग्य हुआ था। साधु होना तो फिर घर और सामग्रीकी क्या सम्हाल। संसारकी वस्तु संसारके पास छोड़कर चले गये !

× × ×

'गये थे चौबेजी छब्बे होने दूबे रह गये।' चटाईपर जब मैं भी बैठ गया और मैंने स्लेट-पेन्सिल उन्हें दे दी, तब लिखकर उन्होंने अपना पिछला हाल बताना प्रारम्भ किया।

'बड़ा वैराग्य था मनमें और बड़ी श्रद्धा थी साधुओंके प्रति।' वे लिखते-मिटाते जा रहे थे—'दीक्षा लेनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिने-चुने दिन बीतते-न-बीतते जमातके साथ रमताराम हो गया और फिर जैसा संग, वैसा रंग !'

'आपपर साधुताका रंग तो गहरा चढ़ा है।' मैंने कहा।

'यह तो उसका प्रायश्चित्त है।' उन्होंने लिखा 'दिनभर गाँजे-चरसकी चिलम चढ़ी रहती थी। प्रातः प्रतिदिन माल घुटते थे। वैसी गंदी गालियाँ मेरे मुखसे यहाँ भी कभी नहीं निकलीं, जैसी वहाँ धड़ल्लेसे बकी जाती थीं। भजनकी चर्चा कोई करे तो उसकी खिल्ली उड़ती थी। किसीपर चिमटा फटकार देना या लोटा पटक देना कोई अनोखी घटना नहीं थी।

'जो लोग ऐसा नहीं करते थे वे, बगुला जैसे मछली-की ताकमें ध्यानस्थ रहता है और अवसर पाते ही शिकार कर लेता है, दम्भसे साधुके वेशमें रहते हुए ही नित्य निरन्तर विषय-सेवनका अवसर ढूँढ़ा करते और मौका पाते ही उसमें डूब जाते थे।

'आप सह लेते थे यह सब ?' यहाँ रहते भी उस्ताद-जी अपने युवकोंका तनिक भी अटपटा व्यवहार नहीं सह पाते थे। अपनी शिष्टता और नम्रताके लिये वे प्रसिद्ध थे।

'कर लेता था कहो !' उनके मुखपर खेदके भाव स्पष्ट आ गये—'वहाँ भी डटकर दंड-बैठक करता था और यह सब ऊधम भी। दूसरा काम भी क्या था। फिर वहाँ सब तो एक-जैसे थे। दूसरोंकी निन्दा और अनर्गल बातचीतके अतिरिक्त हम करते भी क्या। अवश्य ही कोई मुझसे उलझनेका साहस नहीं करता था। मुझे किसीका चिमटा नहीं सहना पड़ा।'

'किंतु अब तो आप एक आदर्श साधु तो हैं।' मैं यह जाननेको उत्सुक था कि यह परिवर्तन कैसे हुआ।

'यदि वेशधारियोंमें कुछ सच्चे संत न होते, तो यह सब कबका मिट चुका होता।' वे लिखते गये—'कुछ बहुत उच्चकोटिके संत और कुछ अच्छे भजनानन्दी साधक भी प्रायः सभी स्थानोंमें होते हैं। उन्हींके भजनका प्रताप है कि दूसरे वेशधारी भी पूजे जाते हैं और उनका यह सब चलता रहता है। गिने-चुने रत्नोंके लिये पूरी खदानकी मिट्टी-कंकड़को सुरक्षित रखना ही पड़ता है।'

मैं चुप रहा, क्योंकि यह स्पष्ट हो गया था कि इनको भी कोई रत्न मिल गया। सुना है कि स्पर्शमणि (पारस) सोना बना देता है लोहेको स्पर्शमात्रसे। भगवान् जानें यह बात सच है या झूठ; किंतु महापुरुष तो वे पारस हैं जो अपने स्पर्शसे दूसरेको पारस ही बना देते हैं।

'हमारी जमातमें एक वृद्ध महात्मा थे। हम सब उनका सम्मान करते थे; किंतु रहते उनसे दूर-दूर ही थे।' उन्होंने लिखा—'एक दिन उन्होंने मुझे बुलाया और बड़े प्रेमसे तुलसीदल दिया।'

'तुम यही सब करने साधु हुए हो ? यह सब तो इससे बहुत अधिक घरपर कर सकते थे!' स्नेहपूर्वक ही उन्होंने कहा—'यह देह कीड़े-कछुए या पक्षी खा जायँगे एक दिन। साधु हुए हो तो रघुनाथजीका भजन करो।'

× × ×

उन वृद्ध साधुको अपने जप-पाठसे अवकाश नहीं था। इतने थोड़े-से क्षण भी उन्होंने अनुग्रहपूर्वक दिये थे। उन्होंने कुछ नहीं बताया था कि क्या करो, क्या मत करो, किंतु महापुरुषका वह क्षणभरका सङ्ग, उनका उपदेश लग गया था। उस्तादजी वेश धारण करके भले न बदले हों, उस दिन बदल गये। उसी दिन वे सचमुच साधु हो गये।

'जमात मैंने उसी दिन छोड़ दी।' उन्होंने लिखकर बताया—'मुझे किसीने कुछ बताया तो था नहीं, जो-जो मनमें आया, वह नियम बना लिया और जितना बनता है 'राम-राम' करता हूँ।'

'यह संयम तो नहीं है। असंयमकी प्रतिक्रिया है यह।' इतनी देरमें मैं उनसे संकोचरहित हो गया था। इसलिये यह बात मेरे मुखसे निकल ही गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संयम क्या है भैया ?' उनके अक्षर स्लेटपर लिखे थे और नेत्रोंमें आग्रह उमड़ आया था। 'अब तुम्हीं यह बता दो। तुमने शास्त्र-पुराण पढ़े हैं और मुझे कुछ आता-जाता नहीं है, यह तुम जानते ही हो।'

'बहुत वाणीका असंयम हुआ तो उसकी प्रतिक्रिया सर्वथा मौन। बहुत जिह्वाका असंयम हुआ तो यह अलोना भोजन।' मैंने कहा—'किंतु भगवान् बुद्धने कहा है कि दोनों अतियोंसे बचकर चलना ही उत्तम मार्ग है। गीतामें भी 'युक्ताहारविहारस्य' की बात आयी है।'

'वाणीका संयम सत्य और अत्यावश्यक मितभाषण!' वे क्योंकि उत्सुकतापूर्वक सुन रहे थे, मैं कह गया—'जिह्वाका संयम सात्त्विक, हल्का एवं आवश्यकमात्र भोजन। आप साधु हैं, अतः दूसरे संयमोंकी चर्चा ही व्यर्थ है। वे तो आपके स्वभावसिद्ध हैं।'

'दूसरे संयम क्या ?' उन्होंने पूछा।

'नेत्र किसीको रोषसे, घृणासे, बुरी कामभरी दृष्टिसे न देखें और बंद भी न रक्खे जायँ। वे संतोंके, भगवन्मूर्तियोंके दर्शन करें और दूसरोंको भी स्नेह एवं पवित्र भावसे देखें। कान परनिन्दा न सुनें। वे भगवच्चर्चा सुनें। इसी प्रकार शरीरकी सभी इन्द्रियाँ न निष्क्रिय हों, न पापकर्ममें लगें। वे भगवत्सेवा, भगवच्चिन्तन-सम्बन्धी कार्य करें और मन भी संसारकी बात न सोचकर भगवान्‌की बात सोचे।'

'रघुनाथजी! अब आपके यहाँसे ही मेरा यह दम्भ समाप्त हो!' इस बार वे बोल उठे थे।

'आप दम्भ कहकर मुझे लज्जित क्यों करते हैं ?' मैंने कहा—'मेरा सौभाग्य कि मुझे आपके तपके उद्यापनका सुअवसर मिला। अब आज्ञा दें तो जो नैवेद्य प्रस्तुत हो रहा है, उसमें किञ्चित् रामरसका योग कर दिया जाय और गोघृत तो उसे शुद्ध ही करेगा।'

'मुझे रघुनाथजीने ही तुम्हारे पास भेजा है।' वे बोले—'अब तुम जो उचित समझो करो; किंतु साधुको जिह्वा-लोलुप बनानेका पाप मत करना।'

सचमुच मुझे लगा कि यह पाप अनेक बार श्रद्धातिरेकके कारण अनजानमें हमसे होता है। उस दिन ऐसी कोई बात नहीं हुई और उन रमतेरामको दूसरे दिन भला रोक पानेमें कैसे समर्थ होता। वे तो सबेरे कब चले गये आसन समेटकर, यह भी मुझे पता नहीं लगा।

जीवन-संगीत

(लेखक—श्रीशारदाशंकरजी कोचक)

जीवनका सबसे मधुर संगीत है बच्चोंकी हँसी। ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जो बच्चोंको हँसता देखकर एक क्षणके लिये रुक न जाय और उस महान् आनन्द-रसका पान न करे, जिससे बढ़कर इस संसारमें कोई और सुख नहीं। इसी प्रकार किसी कलाका भी सत्य रूप वही है जो प्रत्येक मनुष्यको आकर्षित कर ले। कलाकार तो एक प्रकारका भ्रमर होता है। इस संसारमें अनेकों भ्रमर आये, उन्होंने पुष्पोंका रस-पान किया, कुछ गुनगुनाया और चले गये। जीवनका सत्य भी यही है। यहाँ आकर कुछ पीना और कुछ पिलाना और फिर कहीं चले जाना। कलाकार भ्रमरकी भाँति स्वयं रस-पान करता है और उसी रसमें डूब जाता है और जितना डूबता है उतना ही उस रसमें वह गहराई पाता है। जब बहुत डूब जाता है तो एक पागल-सा हो जाता है और यों रसमें विलीन हो जाना ही उसके पूजनकी पूर्ति है। उसी समय वह अपनाया हुआ अनमोल रस अनजाने बिखराने लगता है और वही है 'सत्य कला।' यदि संसारमें सारे प्राणी इसी प्रकार अपनी-अपनी कलामें सत्यको खोज लें तो सारे जगत्‌का कल्याण हो और ईश्वरकी इच्छा पूर्ण हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राहीकी मंजिल

(लेखक—श्रीशंकरदयालसिंहजी एम०ए०, साहित्यरत्न)

(क)

राही बढ़ा जा रहा था। राह कम रही है या बढ़ रही है बिना इसकी परवा किये। रास्तेमें बाधाएँ आयीं, गयीं। काँटोंपर फूलसे चरण धरने पड़े और पग-पगपर नयी यातनाएँ सामने रहीं।

राहमें और भी कितने राही मिले, परंतु सबकी आँखोंमें निराशाकी तसवीर दिखलायी दी। राहीने सबोंसे पूछा—कहाँ जाओगे ?

उत्तर मिला—जहाँ जाना है।

और जब इससे पूछा गया—तुम कहाँ जाओगे ?

—जहाँ मंजिल है, जहाँ लक्ष्य है, जहाँ किनारा है।

और वह बढ़ता ही गया। शूल और फूल दोनोंको रौंदता हुआ। गुलाब और काँटा दोनोंको पददलित करता हुआ। पत्थर और पानी दोनोंको लाँघता हुआ।

और एक स्थान ऐसा आया जहाँ सिवा उसके न तो कोई पशु और न कोई पंछी। न कहीं नीर और न वायुकी सनसनाहट। न कोई जीव, न जन्तु। और राही निराश हो बैठना ही चाहता था कि कर्ण-पुटोंको फाड़ती हुई आवाज आयी—कौन हो ?

—राही।

—कहाँ जाओगे ?

—मंजिलतक।

—तो बैठने क्यों लगे ? छिः। मंजिलतक पहुँचनेवाले राही क्या इतनी जल्दी अपनी हिम्मत खो बैठते हैं।

राहीने आगे-पीछे, ऊपर-नीचे चारों ओर देखा। सिवा शून्यके कहीं कुछ नहीं दिखायी दिया। उसने गरजकर पूछा—तुम कौन हो ?

—मैं, मैं अन्धोंको प्रकाश देनेवाला, राहपर निराश होकर बैठनेवालोंका सहारा

—तो क्यों नहीं मुझे भी देते सहारा ? – ठिठके हुए राहीने निवेदन किया।

—हः हः हः हः—जंगलको गुंजारित करता हुआ अट्टहास गूँज पड़ा—अरे, मैं उसीको सहारा देता हूँ जो स्वयं अपना सहारा है।

—तो……?

—तो क्या ? बढ़ो आगे। मार्ग तुम्हारा है। मंजिल तुम्हारी है। राही बढ़ता गया। राह कमती गयी। सूर्य ढलता गया !

कहाँ है उसकी मंजिल ?—वह नहीं जानता।

कहाँ है उसका लक्ष्य ?—उसे मालूम नहीं।

कहाँ है उसका किनारा ?—वह सर्वथा अपरिचित।

परंतु उसमें लगन है। वह अपने लक्ष्यको खोजेगा। अपने किनारेका पता लगायेगा। अपनी मंजिल बिना पाये वह रुकनेका नहीं। भला, असली साधक तो वही है जो बाधक तत्त्वोंको भी अनुकूल बना ले।

सामने ही दिखायी दिया उसे विस्तृत मैदान। उसके पार वह पहुँचा। निराला भू-खण्ड था वह। मालूम देता था स्वर्गका एक टुकड़ा भूलसे पृथ्वीकी गोदमें चू पड़ा हो। कहींसे उसके कानोंमें आवाज आयी—कौन हो तुम ?

—मंजिलतक पहुँचनेको व्यग्र राही।

—ओह, तो तुम्हीं हो वह। आ जाओ और आगे।

राही आगे बढ़ा। सामने विशाल जटा-जूटवाला एक साधु बैठा था। वह बोला—ॐ।

चारों दिशाओंमें यही स्वर मुखरित हो उठा। फूलोंने और पत्तियोंने इसी शब्दको दुहराया। राही बैठ गया। अपने-आप उसके मुखसे भी यही शब्द उच्चरित हुआ—ॐ।

—यही थी उसकी मंजिल। यही था उसका किनारा। यही था उसका लक्ष्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य बढ़ा जा रहा था। घुटनेसे ऊपर धोती पहने, एक छोटी-सी चादर शरीरपर लपेटे।

पाँवोंमें छाले पड़ गये थे। होठोंपर पपड़े। शरीर दुबला हो गया था, परंतु आँखोंकी ज्योति और पाँवोंकी गतिमें कोई अन्तर नहीं आ पाया था। रास्तेमें फूलों-फलोंसे लदी एक बगिया मिली। मनुष्य वहाँ थोड़ी देर रुक गया। मालीने अपरिचितको देखा तो पूछ बैठा—कहाँ जाते हो भाई ?

—दवाकी खोजमें।

—किस रोगकी दवा ?

—दवा, जिससे पका फल सड़ न सके और खिला फूल मुरझा न सके।—और राही आगे बढ़ गया।

मनुष्य बढ़ता गया। रास्तेमें उसे एक उजड़ा और कटा खेत दिखायी दिया। खेतकी मेंड़पर एक किसान बैठा था। मनुष्य वहाँ थोड़ी देरके लिये रुक गया। किसानने अनजाने आदमीको अपने बीरान खेतकी ओर घूरते देखा तो वह चुप न रह सका—क्या देखते हो भाई ? कहाँ जाओगे ?

—जहाँ दवा मिल जाय।

—कैसी दवा ?

—दवा·····, वह, जिससे बसा घर उजड़ न सके और लहलहाता खेत बीरान न हो सके।—मनुष्य बोला और वह बिना किसानकी ओर देखे ही आगे बढ़ गया।

मनुष्य बढ़ता गया और अब वह बहुत दूर निकल गया था। पाँवोंके छालोंसे रुधिर-धार बह रही थी और होठोंके पपड़ोंपर कालिमाका आवरण चढ़ गया था। परंतु उसके मुखपर प्रसन्नताकी रेखा स्पष्ट दिखायी दे रही थी। अब वह अपने लक्ष्यके करीब ही था। सामने वह गगनचुम्बी महल और उसके पार····· !

महलके पास पहुँचकर वह रुका। सामने ही एक वयःसंधि बाला, रूपकी दामनको अपने अङ्कोंमें समेटे सामने खड़ी थी—'कहाँ जाते हो ?'—बालाने मधुर मुस्कानके साथ पूछा।

—अपने लक्ष्यकी ओर। दवाके लिये अपने प्रभुसे कहने।

—मत जाओ तुम आगे। मैं तुम्हारी दवा यहीं दे दूँगी।

—बाले! तुम दवा नहीं दे सकती और वह सिर्फ मेरी नहीं, मनुष्यमात्रकी दवा है।

—कैसी दवा ?—बालाने प्रश्न किया।

—दवा, वह जिससे बाँकी चितवन आदमीको भस्म नहीं कर सके और अङ्कोंके कुमकुम उसे पथ-च्युत न बना दे।

बाला चकित हो गयी—मेरे भोले पथिक ! यहीं रुको। तुम्हारे ये रूखे-सूखे अधर, रुधिरसे सने पैर।

बाला आगे बढ़कर उसे पकड़ना ही चाहती थी कि वह व्यक्ति पीछे हट गया—'बाले ! छोड़ दो मेरा पथ। प्रवाहमें रुकावट न डालो। मार्गमें काँटा न बनो। यह तुम्हारी अलकापुरी रोगकी दवा नहीं, विषकी प्याली है।'

—तुम अब किसी प्रकार आगे नहीं जा सकते पथिक ! चलो, अंदर चलो। स्वर्ण-सिंहासन तुम्हारी राह देख रहा है, दासियाँ पाटलके इत्रसे सुगन्धित चँवर लिये तुम्हारी बाट जोह रही हैं।

मनुष्य यह सुनते ही आगेकी ओर दौड़ा। बालाने उसका पीछा किया। आगे एक जीर्ण-शीर्ण कुटिया थी। मनुष्य उसीमें घुसा। बालाने झाँककर देखा—वहाँ एक गंदा, घिनौना बूढ़ा बैठा था और उससे दुर्गन्ध निकल रही थी।—क्या यही है पथिकका आराध्यदेव।—बाला निराश, हताश लौट पड़ी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ११२६ से आगे]

ऋषिकेशमें हरद्वारकी तरह अनेक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक संस्थाएँ, बृहत् धर्मशालाएँ तथा अनेक प्राचीन और अर्वाचीन मन्दिर हैं। यहाँके दर्शनीय स्थलोंमें राम, भरत तथा हनुमान्‌के मन्दिर प्रमुख हैं। कहते हैं लंकाधिपति रावणके वधोपरान्त रामने प्रायश्चित्तरूप यहींपर तपस्या की थी। धर्मग्रन्थोंमें ऋषिकेशके इतिहासके सम्बन्धमें भी वर्णन आये हैं। एक जगह उल्लेख आया है, रैभ्य ऋषिने जब कठोर तप किया, तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और कहा 'मैं स्वयं ऋषिकेशके नामसे यहाँ प्रकट होऊँगा और तब इस स्थानका नाम ऋषिकेशाश्रम होगा। त्रेतायुगमें दशरथकुमार भरत अपने बड़े भाईसहित हमारे चतुर्थ अंशसे प्रकट होंगे और हम कलियुगमें भरतके नामसे पुकारे जायँगे।'

ऋषिकेशकी सार्वजनिक संस्थाओंमें प्रमुख रूपसे जिसके सम्पर्कमें सर्वप्रथम यात्री आता है वह है—'कालीकमलीवाला-पंचायत-क्षेत्र', इस क्षेत्रके संस्थापक स्वामी विशुद्धानन्दजी एक अच्छे साधु हो गये हैं; वे प्रायः कालीकमली ओढ़ते थे, इसलिये उनका 'कालीकमलीवाला' नाम पड़ा। स्वामीजीने संवत् १९४१में उत्तराखण्डकी यात्रा की। उस समय यमुनोत्तरी, गङ्गोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथके मार्ग तो अत्यन्त बीहड़ थे ही, इसके साथ-साथ ही यहाँ यात्री-निवासकी कोई सुविधा नहीं थी और सम्पन्न यात्रियोंको भी भोजनादिके लिये अन्न तथा अन्य वस्तुएँ नहीं मिलती थीं। अतः अपनी यात्राकी अनुभवजन्य कठिनाइयोंसे अनुप्रेरित होकर स्वामीजीने उत्तराखण्डकी यात्रामें सर्वसाधारणको अधिक-से-अधिक सुविधाएँ दी जा सकें, इस उद्देश्यकी पूर्तिवाले एक ऐसे पंचायती-क्षेत्रकी यहाँ आवश्यकताका अनुभव किया, जो यात्रियोंकी न केवल यात्रा-व्यवस्था करे, वरं उनको उत्तराखण्डके चारों धामोंके विभिन्न मार्गोंकी सुविधाओं-असुविधाओंकी पूरी-पूरी जानकारी दे, उनके लिये आवास-गृहों (चट्टियों) का निर्माण करे, असमर्थ यात्रियों और यात्रियोंके सामान आदिके लिये भारवाहकोंका प्रबन्ध करे तथा साधु-संन्यासियों और आस्तिक अभावग्रस्तोंके लिये (सदावर्त) भोजन आदिकी व्यवस्था करे, आदि-आदि। इन सब कामोंके लिये एक बड़ी धनराशिकी आवश्यकता थी, अतः स्वामीजीकी प्रेरणासे कलकत्ता तथा बम्बईके धर्मप्रिय व्यापारियोंने विपुल परिमाणमें दान देकर इस पंचायत-क्षेत्रको मूर्त्त रूप दिया, जिसके अन्तर्गत आज ऋषिकेशका बृहत् कार्यालय समूचे उत्तराखण्डकी यात्रा-व्यवस्थाके लिये सारे भारतभरमें प्रसिद्ध है। इस क्षेत्रकी ऋषिकेशमें अच्छी धर्मशालाएँ हैं, जिसमें नित्य ही सहस्रों यात्री निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्डके चारों धामोंके मार्गोंमें चट्टियोंकी धर्मशालाएँ हैं, मार्गमें कुछ बड़े-बड़े स्थानोंपर इस क्षेत्रके उपकार्यालय भी हैं, जिनके द्वारा यात्रियोंको वही सहायताएँ और सेवाएँ उपलब्ध होती हैं जो ऋषिकेशके विशाल कार्यालयद्वारा ! धामोंमें भी धर्मशालाओंके अतिरिक्त, इनके उप-कार्यालय हैं, जहाँ यात्रियोंको निवासकी सुविधाके साथ ही दण्डी, कण्डी और कुली आदिका प्रबन्ध तथा यात्रा-सम्बन्धी अन्य आवश्यक सूचनाएँ देनेकी व्यवस्था रहती है। यात्री यात्राकालमें जब कि एक स्थानपर केवल कुछ ही क्षण रुक पाते हैं, ऐसी स्थितिमें अपने घरोंसे समाचार यदि मँगायें तो किस पतेपर। अतः कुछ बड़े स्थानोंपर जहाँ डाकघर हैं, कालीकमलीवाला पंचायत-क्षेत्रके मार्फत यात्री अपनी चिट्ठियाँ मँगा लेते हैं। घरके समाचारोंके मिलते रहनेसे यात्रियोंकी मानसिक स्थिति ठीक रहती है और यात्राका आनन्द अधिक बढ़ जाता है।

यात्रा-व्यवस्थाके लिये ऋषिकेशमें एक और क्षेत्र है जिसका नाम 'पंजाब-सिंध क्षेत्र' है, किंतु क्षेत्रविस्तार, कार्यपटुता और सुव्यवस्थाकी दृष्टिसे 'कालीकमलीवाला पंचायत क्षेत्र' ही अधिक प्रसिद्ध है। इस क्षेत्रके संस्थापक स्वामी विशुद्धानन्दजीके दो शिष्य थे। एकका नाम रामनाथजी था, दूसरेका नाम आत्मप्रकाशजी। विशुद्धानन्दजीका माघ शुक्ल १५ संवत् १९५३ में शरीरान्त हो जानेके पश्चात् दोनोंने अपने अलग-अलग क्षेत्र चलाये। श्रीरामनाथजीका इस पार, आत्मप्रकाशजीका गङ्गाके उस पार। आत्मप्रकाशजीकी भी मृत्यु हो गयी। अब उनके शिष्य श्रीसुन्दरदासजी हैं। इनके क्षेत्रका नाम 'स्वर्गाश्रम' है, इसका सञ्चालन भी आजकल एक ट्रस्टके द्वारा होता है, जिसके अध्यक्ष श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला हैं। स्वर्गाश्रममें प्रधानतया साधुओंको भोजन दिया जाता है और सत्सङ्ग होता है। बाबा रामनाथजीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कार्यकुशलतासे अपने क्षेत्रके कार्य और कोषको विशाल रूपसे बढ़ाते हुए क्षेत्रको एक स्थायी लोकप्रिय संस्थाके रूपमें परिणत कर दिया। वि० सं० १९८२में बाबा रामनाथजी-का भी देहान्त हो गया। इनके उपरान्त बाबा मनीरामजीने इस क्षेत्रके कार्यको सँभाला और बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक क्षेत्रका कार्य-संचालन किया। बाबा मनीरामजीने क्षेत्रके सुचारु रूपसे संचालनके लिये पचास प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको सम्मिलित कर एक ट्रस्ट रजिस्टर्ड करा दिया। आज इसी ट्रस्टके द्वारा यह क्षेत्र संचालित है। ट्रस्टका प्रधान कार्यालय कलकत्ता-में है।

इस क्षेत्रकी ओरसे इस समय ५७ स्थानोंमें सदावर्त जारी है, आठ औषधालय, ८५ धर्मशालाएँ, ४२ प्याऊ, दो गोशालाएँ, संस्कृत-पाठशाला, आयुर्वेद-विद्यालय, अनाथालय, औषधनिर्माणशाला, पुस्तकालय तथा वाचनालय आदि संस्थाएँ चालू हैं। इसके अतिरिक्त ऋषिकेशसे दो मील हरिद्वार-ऋषिकेश मोटर-मार्गपर बाबा कालीकमलीवालेके रामनगर बगीचामें गङ्गाजीके किनारे उच्चकोटिके साधुओंके लिये कुछ कुटियाएँ बनायी गयी हैं। दूसरी ओर संसार-विरक्त वानप्रस्थी जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियोंके लिये भी स्थान बनवाये गये हैं तथा सत्सङ्गके लिये भी कुछ स्थान बनवाये गये हैं। योगाभ्यासियोंके लिये गङ्गा-किनारे गुफाओंके ढंगके स्थान बनाये गये हैं। एक बहुत बड़ा 'सत्सङ्ग-भवन', जिसमें ३-४ हजारके लगभग आदमी बैठ करके सत्संग-कथा-कीर्तन-उपदेश सुन सकेंगे, बनाया गया है। क्षेत्र अनेक अभावोंसे ग्रस्त होनेपर भी तथा अपनी अत्यन्त त्रुटियोंके रहते हुए काफी लोकप्रिय है और दिनोंदिन प्रगतिके पथपर अग्रसर है। यात्रा-कालमें जन-साधारणका क्षेत्रसे सत्-सम्पर्क क्षेत्रकी ही व्यवस्था और इसकी लोकप्रियताके प्रमाण हैं तथा क्षेत्रके अधिकारियोंकी मृदुता, सौजन्यता और कार्यपटुता, इसके उज्ज्वल भविष्यके सुरक्षित चिह्न हैं। यात्रा-व्यवस्थाके साथ ही यात्रियोंमें आध्यात्मिक चेतनाका एक बहुत बड़ा कार्य 'बाबा कालीकमलीवाला पंचायत क्षेत्र' कर रहा है। आरम्भसे ही देशके धनी-मानी विशेषकर मारवाड़ी-समाजके उदार पुरुषोंका क्षेत्रको बड़ा सहयोग मिल रहा है। इसके ट्रस्टमें भी अधिकांश कलकत्तेके मारवाड़ी-समाजके प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। क्षेत्रके संचालनकी सुव्यवस्था और उसके प्रति जनसाधारणके आकर्षणको देखते हुए ऐसी आशा बँधती है कि क्षेत्रस्वामी विशुद्धानन्दजी महाराजकी कल्पनाके अनुरूप कार्य कर उत्तराखण्डमें उनका एक, उनकी भावनाओंके अनुरूप स्मारक होगा। इस सम्बन्धमें हमारा उन दान-दाताओंसे, जिनकी सदाशयता और उदारतासे यह क्षेत्र चल रहा है तथा इसके प्रबन्धकोंसे भी कुछ निवेदन है। दानदाताओंको सतर्कतापूर्वक यह भी देखना चाहिये कि उनके द्वारा दिये हुए दानका किस ढंगसे और किस दिशामें उपयोग हो रहा है। दानका उपयोग 'बहुजनहिताय' ही हो, इसको प्रधानता देनी चाहिये। साथ ही ट्रस्टके प्रबन्धकों, अधिकारियोंको इस सार्वजनिक सेवावाले ट्रस्टके संचालन, सुव्यवस्था और इसकी सार्वजनिक सम्पत्तिकी सुरक्षाके लिये पूरी-पूरी निगरानी रखनी चाहिये और ऐसे ही अधिकारियोंको ट्रस्टके दायित्वपूर्ण कार्य सौंपने चाहिये, जो पूरी-पूरी ईमानदारी और निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्योंका पालन करें, इन सब बातोंकी कसौटियाँ रहें और सख्तीके साथ नियमोंका पालन हो, तभी सुव्यवस्था रह सकती है।

ऋषिकेशकी अन्य संस्थाओंमें गङ्गाके उस पार कलकत्तेके 'गोविन्दभवन-ट्रस्ट' का गीताभवन, स्वामी सुखदेवानन्दजीका 'परमार्थ निकेतन' और इस पार स्वामी शिवानन्दका 'शिवानन्द-आश्रम' विशेष उल्लेखनीय हैं।

'गोविन्दभवन ट्रस्ट'के द्वारा सन् १९४४ में 'गीताभवन' की स्थापना हुई। इसकी विशाल इमारतें दर्शनीय हैं। इमारतोंके तीन हिस्से हैं—गीताभवन नम्बर एक, दो और तीन। गीताभवन नम्बर एकमें भगवद्गीता और तुलसीकृत रामायण कलकत्तेके एक कुशलकलाकार गोविन्द सरकारद्वारा चित्रित की गयी हैं। चित्र-कारी सुन्दर बन पड़ी है। इसी नम्बर एककी इमारतके निकट श्रीलक्ष्मीनारायणजीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी दीवारोंपर भी चित्रकारी है। परंतु, यह चित्रकारी उतनी अच्छी नहीं जैसी भवनकी चित्रकारी। भवनकी चित्रकारीमें गीताके चित्रोंके ऊपर गीताके समस्त श्लोक लिखे गये हैं और रामायणकी चित्रावलीके ऊपर रामायणके दोहे और चौपाइयाँ लिखित हैं। इसके सिवा अनेक संत-वाक्य खुदे हैं। इसी नम्बर एकके दूसरे तल्लेपर एक विशाल हाल है, जिसकी दीवालोंपर संगमर्मरके पत्थरोंकी श्रेणीके अन्तर्गत सम्पूर्ण गीता लिखी गयी है। इसी हालके उस फाटकपर जो बाहरसे भी इस भवनका प्रवेशद्वार है, सीमेंटकी विष्णुकी चतुर्भुजी मूर्ति है। इस मूर्तिकी विशेषता यह है कि हालके भीतरसे और भवनके बाहरसे दोनों ही ओरसे मूर्तिका सामना दिखायी देता है। अर्थात् मूर्ति उभयपक्षी है, दोनों ओर मूर्तिका सामना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ति सुन्दर बनी है । गीता-भवनमें यात्रियोंके निवास और सत्सङ्गकी व्यवस्था है। गर्मियोंमें यहाँ दो हजारके आस-पास यात्री प्रतिवर्ष आते हैं और सप्ताहों ही नहीं, महीनों यहाँ निवास कर सत्सङ्गका आनन्द उठाते हैं। इन यात्रियोंसे कोई किराया आदि नहीं लिया जाता । अर्थात् निवासकी निःशुल्क व्यवस्था है । यहीं स्वर्गाश्रमके बीचमें शिवजीका एक प्राचीन मन्दिर है। भवनद्वारा एक अच्छा आयुर्वेद-औषधालय चलाया जाता है। यहाँ शुद्ध घीकी पूरी, मिठाई तथा कच्चा भोजन मिलता है और वह भी अत्यन्त सस्ता आठ आनेमें दाल-भात, रोटी और दो तरकारियाँ मिल जाती हैं। पूरी, मिठाई पौने दो रुपये सेर, जिसमें प्रायः हर प्रकारकी अन्नकी मिठाई सम्मिलित रहती है, मिलती है। गीता-भवनकी एक मोटर बोट चलती है जो निःशुल्क गङ्गाके इस पारसे उस पार गीता-भवनमें जानेवाले तथा यहाँ ठहरनेवाले यात्रियोंको पार उतारती है ।

जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, यह 'गीताभवन' कलकत्तेके गोविन्दभवन ट्रस्टद्वारा निर्मित हुआ है । यह ट्रस्ट सैंतीस वर्ष पूर्व सन् १९२२ में बना था। अपने सैंतीस वर्षके बाल्य जीवनमें इस संस्थाने धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। इसी ट्रस्टद्वारा गोरखपुरमें छत्तीस वर्ष पूर्व 'गीताप्रेस' की स्थापना हुई, जिससे 'कल्याण' मासिकपत्र निकलता है, जिसके लगभग सवा लाख ग्राहक हैं। जितने शायद भारतमें ही नहीं, एशिया महाद्वीपमें किसी पत्रके नहीं हैं। इसमें लगभग ४०,५०० ग्राहक अहिंदी भाषा-भाषी प्रदेशोंमें हैं। इस दृष्टिसे अपनी सुपाठ्य और सुरुचिपूर्ण सामग्रीद्वारा वह राष्ट्रभाषा हिंदीके उन्नयनकी दिशामें भी वर्षोंसे कार्य कर रहा है। 'गीताप्रेस'से 'कल्याण'के सिवा अनेक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है, जिनमें भाषाटीकासहित दसों उपनिषद्, भाषाटीकासहित सम्पूर्ण महाभारत, भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, अनेक पुराण, तुलसीकृत रामायण आदि प्रमुख हैं। 'कल्याण'के अनेकों सुरुचिपूर्ण सचित्र विशेषाङ्क निकले हैं, जिनमें धर्मके किसी-न-किसी पहलूपर शोधपूर्ण सामग्री उपलब्ध रहती है। इसीके साथ आधुनिक विद्वानोंके धर्म-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ निकले हैं और सदा ही इस तरहके कोई-न-कोई धार्मिक, आध्यात्मिक प्रकाशन होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त गीताप्रेसके प्रकाशनोंका क्षेत्र केवल मातृभाषा ही नहीं रहा है, अन्ताराष्ट्रिय क्षेत्रमें भी अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे गीताप्रेसने अपने प्रकाशनोंद्वारा भारतीय धर्म और संस्कृतिसे विश्व-साहित्यको प्रभावित करनेमें महत्त्वपूर्ण योग दिया है । अबतक अंग्रेजीमें 'कल्याण-कल्पतरु'के १९ विशेषाङ्क निकल चुके हैं जिनकी संख्या १, ०४, ५०० है तथा साधारण अङ्कोंकी संख्या १०, २५, ००० है। कल्पतरु में 'रामचरितमानसका' पूरा अनुवाद निकल चुका है। 'श्रीमद्भागवत'का भी पूरा अंग्रेजी-अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। अगले वर्षसे वाल्मीकीय रामायणका अंग्रेजी-अनुवाद प्रकाशित होनेवाला बताया गया है। गीताप्रेसद्वारा कुछ ऐसी संस्थाएँ भी संचालित हैं, जो देशवासियोंके जीवन-स्तरको ऊँचा उठाने तथा उन्हें धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति-प्रधान बनानेमें उपयोगी कार्य कर रही हैं; जैसे—गीता-रामायण-प्रचार-संघ, साधक-संघ और गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, राजस्थानके चूरू नामक स्थानमें 'ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम।' इस ब्रह्मचर्याश्रममें प्राचीन पद्धतिके अनुसार ब्रह्मचारियोंके निवास और शिक्षाकी व्यवस्था है । इसमें सौसे ऊपर ब्रह्मचारी रहते हैं और प्रतिवर्ष स्नातक होकर जितने निकलते हैं, प्रायः उतने ही नये आ जाते हैं। इस आश्रमपर लगभग पचास हजार रुपया वार्षिक व्यय होता है।

'गीताप्रेस'के द्वारा गत १९५५ में गोरखपुरके डाक-विभाग-को १,३६,०८०.०० रु० दिये गये थे तथा बाहरसे आनेवाले मनीआर्डरद्वारा लगभग ३०,०००.०० रु० मिले थे। इस तरह कुल मिलाकर १,६६,०८०.०० रु० डाकविभागको गीताप्रेसके द्वारा प्राप्त हुए । डाकघरको मिली रकमके इस आर्थिक आँकड़ेसे ही गीताप्रेसके कार्योंका सहज अंदाज हम लगा सकते हैं। फिर भी पाठकोंकी इस संख्याके कार्यक्षेत्र और उसकी जानकारीके लिये सन् १९५६ के इसके विविध प्रकाशनोंकी वह तालिका यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे इस संस्थाके द्वारा प्रकाशित साहित्यका कितना प्रचार है, इस बातका अनुमान हो जाता है—

श्रीमद्भगवद्गीता	६७,४२,२५०
श्रीरामचरितमानस	२२,५०,७५०
दर्शन-उपनिषद्	६,२८,५००
श्रीमद्भागवत	१,८९,२५०
श्रीतुलसीदासजीके अन्यान्य ग्रन्थ	८,५१,०००
संत-भक्तोंके चरित्र	१४,७३,६००
संतोंके भजनोंके संग्रह	२९,४४,२५०
स्त्री-उपयोगी	११,७३,२५०
बालकोपयोगी तथा अन्यान्य ग्रन्थ	१,४३,३८,२००
कुल संख्या	३,०५,९१,०५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जमानेमें गीताप्रेसने अध्यात्ममार्गद्वारा भगवत्प्राप्तिके लिये अपने इस प्रकारके प्रकाशनसे धर्म-प्राण भारतीय संस्कृतिकी जो सेवा की है वह अद्वितीय है। और यह सारा साहित्य इस गरीब देशकी जनताको सस्ते-से-सस्ते दामोंमें उपलब्ध हो जाय, इसकी ओर पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है। आधुनिक कालमें धार्मिक विचारोंके प्रसारका जितना बड़ा कार्य 'गोविन्दभवन' ट्रस्टने किया है, उतना कदाचित् किसी संस्थाने नहीं। 'गोविन्दभवन' ट्रस्टके ट्रस्टियोंमें दो प्रधान ट्रस्टी हैं—श्रीजयदयालजी गोयन्दका और श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। इस महान् संस्थाके संचालनका प्रधानतया सारा उत्तरदायित्व इन्हीं व्यक्तियोंपर है। इन संस्थाओंके सुचारुरूपसे संचालन और उनके सारगर्भित क्रियाकलापोंके लिये उक्त दोनों महानुभाव हमारी हार्दिक श्रद्धाके पात्र हैं।

अन्य संस्थाओंमें 'परमार्थ-निकेतन' की, जो गीता-भवनके नम्बर दो और नम्बर तीन हिस्सोंके बीचमें स्थित हैं, भव्य इमारत है। इस इमारतके बीचमें एक छोटा-सा घण्टाघर है। 'परमार्थ-निकेतन' में भी प्रधानतया सत्सङ्ग होता है। शिवानन्द-आश्रम गङ्गाके इस पार है, यहाँ योगसम्बन्धी एक विद्यालय भी चलता है।

ऋषिकेशकी उपर्युक्त संस्थाओंका मुख्य कार्य सत्सङ्ग है। भारतीय संस्कृतिमें सत्सङ्गको अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। हमारे संतोंने धर्मग्रन्थोंमें सत्सङ्गकी अनन्त महिमाका बखान किया है।

ऋषिकेशकी इन संस्थाओंमें जिस सत्सङ्गको प्रधानता दी जाती है, जिसके लिये लाखोंकी लागतसे निर्मित भव्य भवन बनाये गये हैं और जिस जिज्ञासा, लालसा और भावनाके वशीभूत सहस्रों मानव यहाँ नित्य निवास करते हैं, ऐसे सत्सङ्गके माहात्म्यकी यहाँ कुछ व्याख्या और उसका उल्लेख अप्रासङ्गिक न होगा।

हमारे शास्त्र-पुराणों और धर्मग्रन्थोंमें सङ्ग-कुसङ्गका जो वर्णन आया है, उसमें जड-पदार्थोंके साथ भले ही उसके योग-वियोगका महत्त्व है, किंतु मुख्यतया देहधारियोंके लिये और इन देहधारियोंमें भी मानवके लिये तो शरीरप्रधान न होकर वह बुद्धिप्रधान ही है। मानवोंमें स्थित एक सत्य पदार्थ, सत्-चेतन-आनन्द, उसके अन्वेषणकी इच्छाका प्रकटीकरण, उसकी उपलब्धिका भाव जो बुद्धि और विवेकके* माध्यमसे होता है, का नाम ही सद्भाव है। इस सद्भावमूलक अपने ही अंदर जाग्रत् या उद्भूत अनुभूति अथवा प्रवृत्तिकी प्रक्रियाका नाम साधु है तथा इस साधुरूपी सद्भाव और प्रवृत्तिकी प्रक्रियासे जीवके सतत-संसर्गका नाम ही 'सत्सङ्ग' है। सत्सङ्गके सम्बन्ध-विच्छेदका यह चक्कर चलता रहता है। मानवके अंदर सदैव दो प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। पहली सृजनकारी, दूसरी संहारक। जब हमारा विवेक जाग्रत् रहता है, तब हमारी सृजनात्मक प्रवृत्ति प्रधान रहती है और हमें उक्त सत्-चेतन-आनन्दकी अनुभूति होती है और हम एक नैसर्गिक सत्सङ्गका अनुभव करते हैं; किंतु विवेकके सुप्त होते ही हमारी संहारक प्रवृत्ति जाग्रत् हो जाती है और सत्संगकी वियुक्ति होकर उसके स्थानपर जिस वस्तुकी सृष्टि होती है उसे हम दुर्भाव, कुविचार और कुसंग कहते हैं। हमारी रायमें यह सत्सङ्ग और कुसङ्ग दो प्रकारका होता है। एक ग्रन्थ-अध्ययनके द्वारा, दूसरा किसीके संगके द्वारा। हमारी मानसिक अवस्थामें यह सङ्ग और कुसङ्ग भावनाकी आसक्ति और अनासक्तिकी यह असम्बद्धता सतत चलती रहती है। अपने विवेकद्वारा सावधानी-पूर्वक जो अपने इस सद्भावका संरक्षण करते रहते हैं। कुप्रवृत्तियों, वासनाओंकी उत्पत्ति तथा उनके उत्पादनोंका अनुच्छेद कर पुनः उसी सद्भावकी सृष्टि करनेमें समर्थ रहते हैं, ऐसे ही मनुष्य सत्-पुरुष, महत्-जन और महात्मा या साधु-संन्यासी कहलाते हैं। और ऐसे लोग स्वाध्यायी माने जाते हैं। दूसरे ऐसे ही पुरुषोंका सांनिध्य, सम्पर्क, उनके साथ सम्भाषण और वार्तालाप तथा उनका संरक्षण स्वीकार करनेका नाम ही 'सत्सङ्ग' है। यह सत्संग, यह परस्परका सम्मिलन, व्यक्ति-व्यक्तिका यह मिलन हमारे नेत्रोंद्वारा, हमारी वाणीद्वारा और हमारे कानोंद्वारा होता है तथा इससे हमारी वासनाएँ तिरोहित होती हैं, इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं और यह हमारे अंदरका सद्भाव, एक सात्त्विक समभाव यथास्थिति बनाये रखनेमें समर्थ होता है। इसीलिये इसका महत्त्व है। हमारे मानसिक सद्भावकी इस अवस्थामें जब विकार उत्पन्न होता है, इस सद्भावकी जब विकृति हो जाती है, तब हमें उसे पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिये उक्त 'सत्संग'का ही आश्रय लेना पड़ता है और तब यह हमारी इन्हीं तीनों इन्द्रियों-द्वारा आमतौरपर होता है—सद्ग्रन्थोंके पठन, शुभचरितों या सदुपदेशोंके श्रवण तथा शुभ आयोजनों, श्रेष्ठ पुरुषों, भक्त-जनों और दिव्य देवमन्दिरोंके दर्शनोंसे।

गोस्वामी तुलसीदासजीने सत्सङ्ग-वर्णनमें साधु-सत्सङ्गकी

* वस्तु-स्थितिके अज्ञानका नाम ही अबुद्धि और अविवेक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थराज प्रयागसे तुलना की है। तीर्थराज प्रयाग तो केवल भक्ति-मुक्तिका दाता है; किंतु साधु-सत्सङ्ग चारों पदार्थों—अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका देनेवाला है। यह तत्क्षण फलदायी, सर्वसेवी, सर्वकाल और सर्वदेशी हैं। ऐसे साधु-चरितकी महिमा जिसकी तुलना विशुद्ध सेवी, अटूट अपरिग्रही और कठिन कसौटीसे गुजरनेवाले निष्कलंक कपाससे करते हुए वे कहते हैं—

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥

अपने उक्त कथनको प्रमाणित करते हुए वे कहते हैं—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहि पिक बकहु मराला॥
बाल्मीकि नारद घट जोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥

हमारे धार्मिक ग्रन्थ इस 'सत्सङ्ग-महिमा'से भरे पड़े हैं। हमारे लेखकोंने सत्सङ्ग-महिमामें ग्रन्थ रचे हैं और ऋषियोंने गीत गाये हैं। सत्सङ्ग-प्रभावका भावपूर्ण वर्णन करते हुए कवि बिहारी लिखते हैं—

अजौं तरौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यो लहि मुक्तन को संग॥

(तरौनाने केवल (श्रुति) का सेवन किया, इसलिये वह अभीतक नहीं तरा और बेसरने नाक (स्वर्ग) प्राप्त कर लिया, क्योंकि उसे मुक्ताओं (मुक्त पुरुषों) का सत्सङ्ग मिल गया।)

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवसे सत्सङ्ग-महिमाके सम्बन्धमें कहा है—

'हे उद्धव! योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदि धर्म, विद्याका अध्ययन, तप, त्याग, अग्निहोत्रादि, वापी, कूप, तड़ाग, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम-नियम—ये सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते, जैसे श्रेष्ठ विष्णु-भक्तकी सत्सङ्ग करता है; क्योंकि सत्सङ्ग सब कुसङ्गोंका छुड़ाने वाला है।'

अच्छे लोग और अच्छी वस्तुएँ कुसङ्गतिमें पड़कर नीचे गिर जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं, इसका भी सुन्दर वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजीके इन कथनोंमें मिल जाता है—

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेद बिदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

इस दृष्टिसे ऋषिकेशकी उक्त संस्थाएँ सत्सङ्ग-महिमाके सिन्धुमें बिन्दुके समान हैं, जो सिन्धुके संसर्गके कारण धन्य हैं और जो इन बिन्दुओंका अवगाहन कर मोती निकालते हैं, वे बड़भागी हैं; उनके प्रयत्न स्तुत्य हैं; जीवन सार्थक है।

हमारे ऋषिकेशमें ठहरनेकी व्यवस्था काली-कमलीवाला पंचायत क्षेत्रकी एक अच्छी धर्मशालामें की गयी थी। ऋषिकेश पहुँचते ही हमने 'काली-कमलीवाला पंचायत क्षेत्र'से सम्पर्क किया और उत्तराखण्डकी अपनी यात्राका सम्पूर्ण कार्यक्रम बनवाया। यात्रा-सम्बन्धी आवश्यक जानकारी ली और सामान ढोनेवाले मजदूरों तथा कण्डी, डण्डीका भी इन्हींके द्वारा प्रबन्ध किया। चार आदमियोंद्वारा उठायी जानेवाली डण्डी (चौकड़ा), जिसे कुछ लोग झपान भी कहते हैं, के चारों धामोंके लिये प्रति डण्डी छः सौ छः रुपये देने पड़ते हैं। कण्डी, जिसमें यात्रीको बैठाकर मजदूर पीठपर उठाता है, के चारों धामोंके लिये डण्डीकी मजदूरीके आधे ३०३) रुपये देने पड़ते हैं। इसमें यात्रीको कुछ कष्ट रहता है और दुर्गम चढ़ाई अथवा बीहड़ मार्गोंवाले स्थलोंपर कुछ खतरेकी आशङ्का भी रहती है। यदि भारवाहक थकानके कारण, या असावधानीवश पैर आदि फिसल जानेपर कहीं गिर जाय तो भारवाहकके साथ ही यात्रीकी भी दुर्दशा निश्चित रहती है। सामान ढोनेवाले मजदूर चारों धामोंके लिये एक सौ बयासी रुपया प्रति मनपर मिलते हैं। हमलोगोंने छः सामान उठानेवाले मजदूर तथा दो डंडी (चौकड़ा) चारों धामोंके लिये तय किये। ऋषिकेशमें ही हमने अपने-अपने जूते, लाठी, छाता, बरसाती और मार्गके लिये उबला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ पानी रखनेके पात्र तथा कुछ दवाइयाँ आदि खरीदकर यात्राकी शेष तैयारी भी पूर्ण कर ली। रुपये-पैसेकी जोखिम अपने साथ न रखनेकी दृष्टिसे 'काली-कमलीवालों'के यहाँ जरूरतका कुछ पैसा पास बचाकर सारी रकम जमाकर उत्तर-काशी, गङ्गोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथकी हुंडियाँ ले लीं, और २४ तारीखके लिये अपने डंडीवाले एवं सामान ढोनेवाले कुल २७ व्यक्तियोंके पूरे दलके लिये एक मोटरबस रिजर्व करा ली। यहींसे यमुनोत्तरीके लिये एक पंडाजी भी हमारे साथ हो गये।

ऋषिकेशके अपने तीन रात्रिके प्रवासमें हमने यहाँकी सार्वजनिक संस्थाओंका निरीक्षण किया, 'काली-कमलीवाला पंचायत क्षेत्र' को देखा, स्वर्गाश्रम, परमार्थ-निकेतन, शिवानन्द-आश्रम और गीताभवनके निरीक्षणके साथ यहाँके सत्सङ्गमें भी सम्मिलित हुए। अन्तिम दिन हम वह लक्ष्मण-झूला देखने भी गये, जिसका उत्तराखण्डकी यात्रासे अमिट सम्बन्ध हो गया है। यह ऋषिकेशसे तीन मीलपर है। पुलसे कुछ फासलेपर लक्ष्मण-मन्दिर तथा अन्य कुछ और मन्दिर हैं। लक्ष्मण-झूला यथार्थमें गङ्गाका वह पुल है, जहाँसे पहले गङ्गा पारकर उत्तराखण्डकी यात्रा आरम्भ होती थी। सन् १८८९ ईस्वीके पूर्व यहाँ रस्सोंका पुल था। उन रस्सोंमें रस्सीके बने हुए छींके रहते थे, जिसमें यात्री बैठता था और इस पारसे उस पार ये छींके खींचे जाते थे। कभी-कभी छींके टूट भी पड़ते थे और यात्रीका सदाके लिये गङ्गामें विसर्जन हो जाता था। कैसा समय रहा होगा वह? भारतमें धर्मके प्रति कितनी श्रद्धा थी। चाहे उसे अन्धश्रद्धा ही क्यों न कहा जाय और उस श्रद्धाके चित्रका दूसरा एक पहलू भी हो। परंतु श्रद्धा एक महान् वस्तु है, इसे कौन अस्वीकार करेगा? फिर तर्ककी तो सीमा है, श्रद्धा असीम है। सन् १८८९ ईस्वीमें इस पुलके बनानेमें कितना खर्च हुआ था, इसका तो हमें पता न लग सका; परंतु गङ्गाकी बाढ़में बहे जानेके कारण सन् १९२४ में जब यह फिर बना, उस समय इसपर दो लाख बीस हजार रुपया खर्च आया था, जिसमेंसे एक लाख बीस हजार 'सूरजमल ट्रस्ट' ने दिया और एक लाख भारत-सरकारने। पुल सुन्दर बना है, नीचे कोई खम्भा नहीं है, पुल लोहेके मोटे तारोंपर टिका है, बड़ा मजबूत काम किया गया है, पुलपर साफ सुन्दर सड़क है जिसपर लोग निरापद घूमते हैं। हाँ, बीचमें खड़े होकर उसे दमचकर हिलानेसे हिलता है और उसके हिलते ही जब हमारी दृष्टि नीचे गङ्गाके प्रवाहकी ओर जाती है, तब हमारे मनमें एक प्रकारके भयका संचार होता है और हमें बराबर रस्सोंवाले उस पुलकी और उसे पार करनेवाले उन यात्रियोंकी याद हो उठती है, जो अपनी आस्थाके मजबूत पुलपर चलकर उस कालमें ऐसे कितने अनिष्टकी आशङ्काओंपर बने संसारी पुल पार करते थे। कैसा था उनका साहस और कैसा महान् था उनका जीवन तथा कितनी महान् थी उनकी धार्मिक आस्तिकता। इन भावनाओंके प्रकट होते ही हमें श्रीसेठ सूरजमलजी झुंझुनूवालाकी उस दानशीलताका स्मरण हो आया जिसका प्रतीकरूप यह लक्ष्मण-झूलाका पुल आज इस भव्य-रूपमें गङ्गापर खड़ा है। हरिद्वार और ऋषिकेशके बीचमें जो सोंग नदीका सँकड़ा पुल पड़ता है, वह भी सेठ सूरजमल ट्रस्टने बनवाया था। इसके सिवा विक्रमीय संवत् १९४९ में हरिद्वारकी वह सूरजमल झुंझुनूवाला धर्मशाला भी, जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं, इसी ट्रस्टद्वारा बनायी गयी तथा ऋषिकेशमें काली-कमलीवाला पंचायत क्षेत्रके अधीनस्थ जो धर्मशालाएँ हैं, उनमें तथा उत्तराखण्डके चारों धामोंके मार्गोंपर जो चट्टियोंकी धर्मशालाएँ हैं, उनमें भी अधिकांश इसी ट्रस्टकी देन हैं। एक जमाना था, जब सेठ सूरजमलजी झुंझुनूवाला उत्तराखण्डमें एक बड़े दानीके रूपमें विख्यात थे। ऐसे दानी उस समय दानवीर कहलाते थे और इन दानियोंमें मारवाड़ियोंका प्रधान स्थान था। दान हमारी संस्कृतिका एक विशिष्ट अङ्ग है। समय बदला और इस जमानेके कतिपय पढ़े-लिखे कहे जानेवाले लोगोंमें दान सत्कर्म न माना जाकर एक दुष्कर्म माना जाने लगा। ऐसे लोगोंका मत है, शोषित धनका एक छोटा-सा भाग दानमें दे शोषणकी प्रक्रिया जारी रखनेको जिस वर्गका शोषण किया जाता है, उसकी आँखोंमें धूल झोंकना दानका मुख्य उद्देश्य है और उनकी यही प्रवृत्ति उनकी इस दान-वृत्तिकी परिचायक है। किंतु जो दान देते थे, उनमेंसे शायद कोई भी इस भावनासे प्रेरित नहीं रहते थे। जबतक समाजमें धनके कारण ऊँची-नीची श्रेणियाँ मौजूद हैं और ऐसे साम्यवादी समाजकी रचना नहीं हो जाती, जैसे साम्यवादी समाजकी श्रीकार्ल मार्क्सने कल्पना की थी और ऐसे साम्यवादी समाजकी रचना अब-तक संसारमें कहीं भी नहीं हो सकी, रूसी क्रान्तिको हुए युगों बीत जानेपर रूसमें भी नहीं; तबतक कम-से-कम हम दानको कुकृत्य न मानकर सुकृत्य ही मानेंगे और जिस मारवाड़ी समाजमें और समाजोंकी भाँति ही आज अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रष्टाचारी, चोर-बाजारी, दुष्कर्मी होगये हैं, उनकी अधिक-से-अधिक निन्दा करते हुए भी जिन्होंने श्रीसूरजमलजीके सदृश दान किये थे, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करेंगे। लक्ष्मण-झूलाके दर्शन तथा यहाँके मन्दिरोंके दर्शनकर श्रीसूरजमलकी पुण्यात्माको अगणित प्रणामकर हम ऋषिकेश लौटे।

ऋषिकेशकी ऊँचाई समुद्रतलसे केवल १,११६ फुट है। अतः यहाँ ग्रीष्मकी प्रखरता थी। गरमीके इस मौसमके कारण हमें यहाँ अपने दो दिनोंके प्रवासमें गङ्गा-स्नानका बड़ा सुख मिला। शीतल जलमें दोनों वक्त खूब स्नान करते हम प्रकृति-प्रदत्त भागीरथीकी तटवर्ती सुषमाको निहारते न अघाते।

२४ तारीखके प्रातःकाल पहले गेटसे मोटरद्वारा उत्तराखण्डके हमारे प्रथम धाम यमुनोत्तरीकी यात्रा आरम्भ हो रही थी। २३ तारीखको हम काफी रात गये सो पाये। यात्राकी तैयारी करते रहे, भारवाहकोंको सामान तुलवाया और प्रत्येक व्यक्तिके जिम्मे कौन-कौन-सा और कितना सामान रहेगा, यह निश्चित किया। २४ के प्रातःकाल ही बड़े तड़के उठकर नित्यकर्म आदिसे निवृत्त हो, स्नान-पूजनकर हमलोग काली-कमलीवालोंके कार्यालय गये। इधर हमारी मोटर हमारे मुकामके सम्मुख आ चुकी थी और सामान लद रहा था। काली-कमलीवालोंके कार्यालयमें हमने अपनी भेंट चढ़ायी और इस विशाल क्षेत्रके संस्थापक स्वामी विशुद्धानन्दजीको अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। तदनन्तर मोटरपर सवार होनेके पूर्व हमने अपनी स्थिति और उत्तराखण्डकी इस यात्राकी गुरुता तथा उसकी दुर्गमताको आँकते हुए ईश-चरणोंमें निम्न निवेदन किया—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

ठीक सात बजे ऋषिकेशकी पवित्र भूमिसे हमने पवित्रतम धाम यमुनोत्तरीके लिये विदा ली। हमारी मोटर ७ बजेके पहले फाटकसे निकलकर हिमालयके पथपर चल पड़ी। (क्रमशः)

भगवान्‌का दिव्य अंश होनेसे मेरा मृत्यु-रुग्णता-दोषरहित दिव्य रूप विलास कर रहा है

जड शरीर मैं नहीं, दिव्य हूँ ईश्वरांश सत्-चित्-आनन्द।
कुछ भी मेरा पृथक् न उनसे कभी, सर्वगत वे स्वच्छन्द॥
मन-मतिमें प्रकाश उनका, अन्तस्‌में है उनका शुचि प्रेम।
जीवनमें सर्वत्र सर्वथा छाया उनका योग-क्षेम॥
मेरी प्रति इच्छामें रहती केवल उनके मनकी बात।
उनका शुभ संकल्प व्याप्त नस-नसमें मेरे है दिन-रात॥
मेरी सभी क्रियाओंमें नित होता उनका भाव प्रकाश।
उनके ही सौन्दर्य-शीलका रहता मुझमें नित्य विकास॥
अमर, निरामय, स्व-स्थ नित्य वे मुझमें करते सहज निवास।
मृत्यु-रुग्णता-दोषरहित यह दिव्य रूप कर रहा विलास॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनिमाई-संन्यास

[नाटक]

(लेखक—स्व० महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोष)

(अनुवादक—श्रीव्रजगोपालदासजी अग्रवाल एम्० ए०)

[गताङ्क पृष्ठ ११३८ से आगे]

चतुर्थ अङ्क

(१)

(कटवानगर; सुरधुनी-तीर; वटवृक्षके नीचे केशव भारती ध्यानमग्न हैं; निमाईका प्रवेश ।)

निमाई—स्वामिन् ! मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिये ।

(साष्टाङ्ग प्रणाम)

भारती—(ध्यान टूटनेपर) तुम कौन हो ? (एकटक निरीक्षण) तुम कौन हो ? तुम मनुष्य हो या देवता ! तुम मुझे प्रणाम करते हो, किंतु तुम्हारा तेज देखकर मुझे लगता है कि तुम मनुष्य नहीं हो । मुझे ही तुम्हारे प्रति प्रणाम करना चाहिये । (सम्भ्रम उठना)

निमाई—(हाथ जोड़कर) स्वामिन् ! मैं संसार-बद्ध सामान्य जीव हूँ, भवसागरमें चक्कर काट रहा हूँ । आप मेरा उद्धार कीजिये ।

भारती—मैं जो देख रहा हूँ, उससे तो ऐसा लगता है कि तुम मनुष्य नहीं हो, देवता हो; तुम ही मेरा उद्धार कर सकते हो ।

निमाई—प्रभो ! ऐसा न कहिये । लोग मुझे निमाई कहकर पुकारते हैं; मेरा घर नवद्वीपमें है । प्रभो ! आप वचन दे चुके हैं कि मुझे संन्यास देंगे ।

भारती—ठीक, स्मरण आ गया । तुम निमाई पण्डित हो नवद्वीपके अवतार ! गोलोक त्यागकर जीवोद्धारके लिये नवद्वीपमें उदय हुए हो ? मैं तुम्हारे घर भिक्षार्थ गया था और तुम्हें संन्यास दूँगा—यह कहा था, यह मैं मानता हूँ, पर संन्यास तुम चाहते क्यों हो ? तुम्हें तो उसकी आवश्यकता नहीं है । तुम्हें देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम संन्यासियोंसे भी अधिक श्रेष्ठ हो ।

निमाई—स्वामिन् ! मैं श्रीकृष्णको खो चुका हूँ, उनके अन्वेषणार्थ श्रीवृन्दावन जाऊँगा । (ऊपर देखकर) कृष्ण ! कृपामय ! दर्शन दीजिये । मेरे प्राण व्याकुल हैं, आपके बिना यह संसार अन्धकारमय है ।

भारती—तुम श्रीकृष्णका अन्वेषण करने जाओगे ? सुनकर हँसी आती है, तुम्हीं तो श्रीकृष्ण हो !

निमाई—(संकुचित होकर) प्रभो ! क्या कहते हैं आप ! ऐसी बात न कहिये ।

भारती—तुम्हीं तो हो श्रीकृष्ण ! जिस दिन तुम्हें नवद्वीपमें देखा था, उसी दिन मैंने यह जान लिया था । अब भी वही विश्वास है । फिर यह तुम्हारी क्या लीला है ? तुम संन्यास क्यों ले रहे हो ? क्या श्रीमती पुनः मानकर बैठी हैं ? क्या कलियुगमें पुनः श्रीकृष्णलीला आरम्भ हो गयी है ?

निमाई—ओह ! ओह ! एक तो मैं श्रीकृष्णके लिये मर रहा हूँ, उसपर आप ऐसे वाक्योंसे मेरे मर्मस्थानपर चोट पहुँचा रहे हैं । प्रभो ! मेरे साथ और अधिक छल न कीजिये ! मुझे संन्यास दीजिये, जिससे मैं श्रीवृन्दावन चला जाऊँ । कृष्ण हे ! मैं अभी आया, मैं अभी आया । मैं यहाँसे छूटते ही एक ही दौड़में आपके श्रीचरणोंमें आ पहुँचूँगा ।

भारती—हम सभीको तुम्हें प्रणाम करना उचित है, पर संन्यास लेनेपर तुम मुझे गुरु मानकर प्रणाम करोगे और इस प्रकार अपनी चरण-धूलिसे—जिसके लेनेसे मुझे अपार सुख होता है—वञ्चित करोगे । इतना ही नहीं, तुम सभीके प्रणम्य हो, तुमने मुझे प्रणाम कर मेरा सर्वनाश कर दिया । जाओ, मुझसे तुम्हारा संन्यास नहीं होगा ।

निमाई—आप वचनबद्ध हैं कि संन्यास दूँगा ।

भारती—यह ठीक है, पर अभी संन्यासका समय नहीं है, अभी तुम्हारी अवस्था छोटी है । पहले पचास वर्ष पूरे करो, तब आना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमाई—प्रभो ! मेरे प्राण निकल रहे हैं, कृपा करके मुझे छुटकारा दीजिये । आपने विश्वास दिलाया था । उसी विश्वासके कारण मैंने आपका आश्रय लिया है ।

भारती—मैं जानता हूँ, तुम्हारे घर वृद्धा माँ हैं, तरुणी भार्या है । उन सबका प्राण-वधकर तुम संन्यास लोगे, अतः इस कार्यमें मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता ।

(क्रमशः ग्रामीण लोगोंका आगमन)

निमाई—प्रभो ! क्या मैं पुनः स्मरण करा दूँ कि आप प्रतिश्रुत हैं ।

भारती—(रुखाईसे) बार-बार यही कहते हो, मैंने क्या इसी माघमासमें तुम्हें दीक्षा देनेको कहा था ?

(क्रमशः जनता-वृद्धि)

निमाई—(रोते-रोते) मेरा जाना नहीं हो सका । हे कृष्ण कृपामय ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? मैं कहाँ जानेपर आपको प्राप्त करूँगा ? मैं श्रीवृन्दावन जानेपर ही आपको पा सकता था ।

(क्रमशः और भी लोगोंका एकत्र होना)

भारती—निमाई ! तुम नहीं जानते कि संन्यासमें क्या-क्या कष्ट हैं । मेरे प्राण तो कठोर होनेके कारण बचे हुए हैं, पर तुम्हारा शरीर नवनीतके सदृश सुकोमल है; तुम कठोर पृथ्वीपर कैसे शयन करोगे ? तुम थोड़े ही दिनोंमें मारे जाओगे । निमाई ! तुम्हें देखनेमात्रसे मेरे हृदयमें पुत्र-वात्सल्य उत्पन्न होता है । मैं संन्यासी हूँ, समस्त मानसिक कोमल भावोंको ध्वंस करनेकी चेष्टा करता हूँ, किंतु तुम संन्यास लोगे, यह सुनकर मेरा भी हृदय विदीर्ण हुआ जाता है । इधर देखो, कौन आये हुए हैं, ये क्या कहेंगे ? यह देखो निमाई ! स्त्रियाँ अपने जल-पात्रोंको लेकर खड़ी हैं; तुम्हें एकटक देख रही हैं । कुलवधू अपने घूँघटोंमेंसे तुम्हारी ओर निहार रही हैं । ग्रामवासी सभी अपना दैनिक नित्यकर्म भूलकर एक-एक आकर तुम्हारे चारों ओर खड़े हैं ।

एक वृद्धा—बच्चा ! तुम कौन हो ? क्या तुम्हारी माँ है ? तुम उसे प्राणहीन करनेके लिये संन्यास लेने आये हो ? बेटा ! घर लौट जाओ; कहना मानो, घर लौट जाओ । मातृवध मत करो ।

कोई रमणी—सुना है, तुम्हारी बहू भी है । तुम संन्यासी बनोगे, उसका क्या करके आये हो ? ऐसी निष्ठुरता न करो ।

(गदाधर, निताई, मुकुन्द एवं चन्द्रशेखरका प्रवेश)

निताई (जोरसे चिल्लाकर) ये हैं प्रभु ! ये हैं प्रभु !

(दौड़कर प्रभुके आगे पृथ्वीपर गिर पड़ना)

निमाई—आ गये, अच्छा हुआ; मैं इसी समय मुक्त होऊँगा । मुकुन्द, एक बार कृष्णमङ्गल गान करो, मेरे कर्ण उपवासी हैं । मैंने बहुत समयसे कृष्णनाम नहीं सुना ।

मुकुन्द—जो आज्ञा, मैं आरम्भ करता हूँ ।

(कुछ नागरिकोंका मृदङ्ग-करताल आदि लेकर प्रवेश)

खेल देखो, प्रभुने जैसे ही कीर्तन सुननेकी इच्छा प्रकट की है, वैसे ही मृदङ्ग-करताल आ पहुँचे !

कीर्तन

हरि हरये नमः, कृष्ण यादवाय नमः ।
यादवाय, केशवाय, गोविन्दाय नमो नमः ॥
बोलो गोपाल गोविन्दराम श्रीमधुसूदन ॥

(सभीका गान और प्रभुका भुजा उठाकर बड़ी भङ्गिमासे नृत्य)

भारती—(उठकर निमाईको पकड़) निमाई ! शान्त हो, मेरी एक बात सुनो । तुम यह नृत्य-गान क्यों करते हो ?

मुकुन्द—हमारा भजन नाच-गाकर होता रहा है । श्रीकृष्ण हमारे प्राणनाथ हैं, हम उनका नाम लेकर गुणगान करते हैं और नाचते हैं ।

भारती—अच्छा, निमाई ! मनुष्य पृथ्वीपर जिन-जिन वस्तुओंकी अभिलाषा करते हैं, रूप-विद्या-भार्या-पद ये सभी तो तुम्हारे पास हैं । इन सबको त्यागकर तुम राहके भिखारी हो रहे हो, इसलिये तुम्हारा रोना तो ठीक है, पर नाचते क्यों हो ?

मुकुन्द—नाचें क्यों न ! वे तो आनन्दमय हैं ।

भारती—तो ठीक; सर्वस्व त्यागकर, वृद्धा माता एवं युवती पत्नीको छोड़कर संन्यास लेनेके समय नृत्य-गान करना ! यह जगत्में पहली बार हुआ है । गाओ, गाओ, मेरा शरीर भी झूम रहा है ।

(सभी गाते हैं)

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।
यादवाय माधवाय केशवाय नमो नमः ॥
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥

(श्रीनिमाईका नृत्य)

भारती—यह क्या, मैं भी न रह सका । मेरे भी पैर नाच उठे । (नृत्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निमाई एवं भारतीका परस्पर गलेमें हाथ डालकर नृत्य)

निताई–(दोनोंको पकड़कर) आप विश्राम कीजिये ।

भारती–(चकित होकर) यह क्या हुआ ! मैंने नृत्य किया ! वे लोग क्या कहेंगे ! यहाँ तो बहुत लोग उपस्थित हैं । हुआ करें; अच्छा निमाई ! तुम संन्यास क्यों चाहते हो ? मैंने तो भव-सागर पार करनेके लिये संन्यास लिया है, पर तुम तो स्वयं पार करते हो, तुम्हें संन्यासकी क्या आवश्यकता !

निमाई–(पैरोंमें पड़कर रोते हुए) एक तो मैं स्वयं मरा हुआ हूँ, उसपर और अधिक अवैध स्तुतिकर मेरा वध मत कीजिये ।

भारती–मैं संन्यास देकर तुम्हारा वध नहीं कर सकता, फिर भी, तुम्हारी अकिञ्चनतासे मैंने हार मानी; पर अपनी माता और पत्नीकी अनुमति ले आओ । स्मरण रहे, अनुमति सच्चे मनसे मिलनी चाहिये । तुम्हारा जो तेज है, उससे कोई भी तुम्हारा अवाध्य नहीं हो सकता । मैं तुम्हारी माता और पत्नीकी स्वेच्छासे अनुमति चाहता हूँ ।

निमाई–स्वामिन् ! वे अनुमति दे चुकी हैं ।

भारती–यह हो सकता है, क्योंकि पृथ्वीपर तुम्हारा विरोध करनेवाला कोई नहीं है । तुम लौट जाओ और एक बार फिर अनुमति लेकर आओ ।

निमाई–यह बड़ी कठिन आज्ञा है, फिर भी मैं इसका पालन करूँगा । मैं सम्मति लेने चला । (गमन)

भक्तगण–प्रभु ठहरिये, हम भी आ रहे हैं ।

(निमाईका रुकना)

भारती–(स्वगत) जैसे ही तुम जाओगे, मैं यह स्थान छोड़कर चला जाऊँगा । (क्षणिक सोचकर) हाय, मैं क्या कर रहा हूँ ! सरल बच्चेको ठग रहा हूँ, मैं संन्यासी ! छिः ! (प्रकाश्यमें) निमाई ! तुम लौट आओ, मैं तुम्हें संन्यास दूँगा ।

निमाई–स्वामिन् ! मैं जानता हूँ, आप दयामय हैं; बोल हरि बोल ! (नृत्य)

एक नागरिक–(निमाईके प्रति) भाई, घर जाओ, तुम्हें देखकर प्राण रोते हैं ।

द्वि० ना०–एक बार अपनी माँ और स्त्रीके विषयमें तो सोचो । हाय, उनकी क्या दशा होगी ?

निमाई–भाई ! तुम सभी आशीर्वाद करो, जिससे मैं प्राणनाथ श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकूँ ।

एक चतुर स्त्री–(चिल्लाकर रोती हुई) हाय ! यह क्या हुआ ! बेटा ! घर जा, शायद तेरी माँ अबतक मर चुकी हैं ।

द्वि० स्त्री–(अवगुण्ठनमेंसे) ओ माँ, प्राण जा रहे हैं । प्राण जा रहे हैं ! अरे, तुमलोग उनसे अच्छी तरह निषेध क्यों नहीं करते !

भारती–क्या आश्चर्य ! यह सब स्त्रियाँ कहाँसे आ रही हैं ! मानो पृथ्वी चीरकर मनुष्य निकल रहे हैं । इतने लोग क्या कटवानगरमें थे । मेरी तो चिरकालकी साधना नष्ट हो गयी । मुझे नाचना नहीं चाहिये, किंतु मैं नाचा । इतने दिनकी साधनाद्वारा माया-मोह त्याग हृदय दृढ़ किया था, किंतु आज मैं स्त्रियोंकी भाँति फूट-फूटकर रो रहा हूँ । मैं ही तो नहीं, सभी रो रहे हैं । यह क्या ! करुणरसका सागर सहसा उमड़ पड़ा । (भक्तोंके प्रति) आपलोग जानते हैं, संन्यासके लिये दधि, दुग्ध, घृत, मिष्टान्न, वस्त्र, पुष्प, पुष्पमाल, कौपीन, बहिर्वास आदि वस्तुओंकी तथा एक नाईकी आवश्यकता होती है ।

निताई–यह देखो, द्रव्यसम्भार स्वयं ही आ रहा है ।

(दही, मिठाई, वस्त्र आदि लेकर क्रमशः कुछ व्यक्तियोंका प्रवेश)

भारती–इन लोगोंने कैसे जान लिया कि इन सभी द्रव्योंकी इस समय आवश्यकता होगी ?

निताई–हमारे प्रभुका यही तो रंग है । वे संन्यास ले रहे हैं, तभी सारा विश्व रो रहा है । फिर संन्यासग्रहणका उपकरण स्वयं आ जुटे, इसमें क्या आश्चर्य ।

(एक नाईका प्रवेश)

भारती–क्योंरे हरि प्रामाणिक ! तुम भी आये हो ? अच्छा, तुम्हें क्षौर कार्य करना होगा ।

नापित–मुझसे यह काम न होगा ।

भारती–क्यों !

नापित–इन केशोंमें कौन हाथ लगायेगा । देखो, कैसे सुन्दर केश हैं ! मैंने कभी ऐसे केश नहीं देखे । इन केशोंको मैं नहीं काट सकता ।

निमाई–हरिदास[1] ! मुझे मुक्त करो, मैं वृन्दावन जाऊँगा ।

१. नाईका नाम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिदास–श्रीकृष्ण तुम्हारा मङ्गल करेंगे।

हरिदास–वे किया करें, मैं वह मङ्गल नहीं चाहता। कटवामें बहुत नाई हैं, बुला लीजिये। मैं इन केशोंमें हाथ नहीं लगा सकता।

निमाई–क्यों, तुम्हें क्या आपत्ति है? प्रामाणिक! मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, मुझे शीघ्र मुक्त करो।

हरिदास–मेरा भी हृदय फटा जा रहा है। मैं काटूँ यह केश! तुम्हें संसारसे मुक्त करूँ। यह मुझसे नहीं हो सकता। चाहे मैं मरूँ, मेरा पुत्र मरे, मैं नरकमें जाऊँ, किंतु यह कार्य मैं नहीं करूँगा*। मेरे प्राण आरम्भसे ही कठोर हैं, किंतु वह आज फटे जा रहे हैं। (क्रन्दन)

निमाई–(नाईके गलेमें हाथ डालकर) शान्त हो, कृपा कर मुझे स्वतन्त्र कर दो।

हरिदास–देखता हूँ, तुम साधारण मनुष्य नहीं हो, मैं जिस ठाकुरकी पूजा करता हूँ, तुम वही हो; मेरा वध करने धरा-पर आये हो। अच्छा ठाकुर! मैं नाई हूँ; बहुत लोगोंके केश काटता हूँ, पैरोंके नख काटता हूँ। यदि अब तुम्हारे बाल काटूँ तो इन हाथोंको फिर अन्य सबके पैरोंसे कैसे लगाऊँगा। जिसके पैरोंमें हाथ लगाऊँगा, उसका सर्वनाश हो जायगा, मेरा भी सर्वनाश हो जायगा।

निमाई–इसके लिये क्या चिन्ता है। मेरे वरदानसे तुम्हें अब नाईका काम नहीं करना पड़ेगा। तुम मधुमोदक होओगे और इहकाल-परकालमें सब प्रकारसे तुम्हारा मङ्गल होगा।

हरिदास–ठाकुर! मैं मङ्गल-अमङ्गल नहीं जानता, फिर भी तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो सभीसे बड़े ठाकुर हैं, वही हो न तुम? मैं मूर्ख हूँ, तभी इतनी देरसे व्यर्थ बक रहा हूँ। (सभीके प्रति) महाशयगण! आप रोते हैं, मैं भी रोता हूँ। आप मेरे क्षौर करनेपर क्रोधित होंगे, पर मैं प्रभुकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। आओ, प्रभु बैठो, क्षौर करता हूँ।

एक युवक–ठहरो, प्रामाणिक! इतनी शीघ्रता मत करो। क्यों भारती गुसाँई! तुम सोनेकी पुतली-जैसे इस नवयुवकसे गृह-त्याग करा रहे हो? ऐसा करते तुम्हें लज्जा नहीं आती, दुःख नहीं होता? नहीं, तुम समझते हो, एक शिकार मिला है। यही बात है न?

भारती–नहीं भाई! मेरी इच्छा नहीं; पर ये हम-तुम-जैसे सामान्य मनुष्य नहीं हैं। मैं इनकी आज्ञाकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

द्वि० युवक–नहीं, मीठी बातोंसे काम नहीं चलेगा। आओ, सब मिलकर इस संन्यासीको समाप्त कर दें, जिससे यह विपत्ति दूर हो जाय।

भारती–(हाथ जोड़कर) ठीक है, मेरा वध करो, जिससे मैं भी इस अपराधसे बच सकूँ।

द्वि० युवक–क्यों, तुम इनसे क्यों नहीं कहते कि मैं संन्यास नहीं दूँगा, घर जाओ।

भारती–कहा है, किंतु वे नहीं मानते। मैं उनकी बात टाल नहीं सकता। तुम क्यों नहीं कहते?

एक वृद्ध–अच्छा, मैं वृद्ध हूँ, मेरी बात मानेंगे, मैं कहता हूँ। (निमाईके प्रति) भाई नवीन अध्यापक! घर लौट जाओ। क्या पता तुम्हारी माँ और पत्नी अबतक जीवित हों या न हों।

निमाई–(हाथ जोड़कर) बाबा! मैं श्रीकृष्णको खोजने जा रहा हूँ, इसमें बाधा न दो। श्रीकृष्ण-प्राप्ति जीवका प्रधान कर्तव्य है।

वृद्ध–प्रधान कार्य है, तुम ठीक कहते हो। हम सभीको तुम्हारा साथी होना चाहिये, किंतु हम माया-मुग्ध जीव हैं, ऐसा नहीं कर सकते। तुम स्वच्छन्द संन्यास ग्रहण करो और जीवोंका भला करो।

वृद्धा–तुम हटो, तुम तो और उत्साह देते हो। मैं कहती हूँ—'अरे बेटा! तुम्हारी माँ तुम्हारे वियोगमें इतनी देरसे मर रही हैं। मातृवध करना क्या धर्म है? बेटा! घर जाओ; तुम नातेमें हमारे कुछ नहीं हो, फिर भी हम सभी धीरज छोड़कर रो रहे हैं। एक बार सोचो तो, तुम्हारी माँकी क्या दशा होगी।

निमाई–माँ! मैं श्रीकृष्ण-भजन करूँगा। मेरा यह कार्य अच्छा है अथवा संसारमें रहकर विषयोंमें मत्त रहना? यदि इस कार्यसे मेरा भला होता है तो मेरी माँका भी भला होता है। यदि मेरी माँ मेरी शत्रु हैं तो वह इस कार्यमें बाधा देंगी और यदि हितैषी हैं तो सहायता ही करेंगी।

वृद्धा–तो ठीक है; मैं रोती हूँ, किंतु तुम्हें देख, तुम्हारे कार्योंको देख मेरा मन शान्त होता है। तुम ठीक कर रहे हो। तुम स्वतन्त्रतासे संन्यास लो। संसार तो झूठा है; आँखें बंद हुईं कि फिर संसार कहाँ?

निमाई–तब प्रामाणिक, मुझे मुक्त करो, मैं श्रीवृन्दावन जाऊँगा। (नाईका निमाईके सामने बैठना)।

* 'श्रीचैतन्यमङ्गल'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाई—आह ! उह ! और नहीं कर सकता ।

(पृथ्वीपर गिरकर लोट-पोट होना, सभीका रुदन)

निमाई—(नाईके गलेमें हाथ डालकर) उठो, हरिदास ! शान्त हो ।

नापित—(उठकर अट्टहास कर) आज मुझे कैसा आनन्द ! आज मैं प्रभुका नाई बना !

(भङ्गी करते हुए नृत्य करना, नृत्य करते हुए पीछे हटकर पुनः निमाईके सम्मुख आना)

निमाई—प्रामाणिक ! शान्त होकर बैठो । मुझे मुक्त करो ।

(नाईका बैठकर क्षौरकर्मके लिये उद्योग करना)

हरिदास—ठहरो ! पहले मैं एक बार नृत्य कर लूँ ।

(उठकर निमाईका नृत्य)

भारती—सर्वस्व-त्याग संन्यास लेनेके समय आनन्दपूर्वक नृत्य ! यह केवल श्रीकृष्ण ही स्वयं कर सकते हैं ?

नाई—ठाकुर ! ठीक कहते हो । मेरा मन भी इस समय स्थिर नहीं है । क्षौर करके सिरमें रक्तपात करूँ ? नृत्य करके कुछ शान्त हो लूँ, क्योंकि मेरे हाथ काँपते हैं ।

(नापितका नृत्य)

निमाई—हरिदास ! इधर आओ ।

(दोनोंका हाथ पकड़कर नृत्य)

भारती—निमाई शान्त हो, मुहूर्त टला जा रहा है ।

(निमाईका बैठना, नाईका क्षौर करनेको प्रस्तुत होना, नाईका हाथ काँपना, पश्चात् कुछ ठहरकर क्षौर करना, सभीका उच्चस्वरसे रोना)

भारती—निमाई ! गङ्गास्नान करके आओ ।

(निमाईका प्रस्थान, भारतीके अतिरिक्त अन्य सभीका उनके पीछे गमन, नाईका कटे हुए केशोंको लेकर नृत्य करते हुए जाना*)

नाई—(छूरे आदि गङ्गामें फेंककर) आज मेरे क्षौर-कर्मका अन्त हो गया । अब यह कार्य और नहीं करना होगा ।

निमाई—(स्नानसे लौटकर भारतीके प्रति) कौपीन देनेकी आज्ञा कीजिये ।

(भारतीका निमाईको कौपीन-बहिर्वास देना)

निमाई—(कौपीन मस्तकपर रखकर जनताके प्रति) हे मेरे सुहृद्गण ! हे माता ! हे पिता ! आप सब मुझे आज्ञा दीजिये मैं कौपीन पहनकर श्रीकृष्णका दास हो सकूँ । हे बन्धुगण ! (सभीका क्रन्दन और हरिध्वनि) हे पिता ! हे माता ! आप सब आशीर्वाद दीजिये, जिससे मैं व्रजमें श्रीकृष्णको पा सकूँ । (रोदन और हरिध्वनि)

भारती—निमाई ! मेरी बाँयीं ओर इस आसनपर बैठो ।

निमाई—(बैठकर) स्वामिन् ! मैंने स्वप्नमें संन्यासका एक मन्त्र प्राप्त किया है । सुनिये, कैसा है वह !

(भारतीके कानमें मन्त्रोच्चारण)

भारती—(साश्चर्य) तुमने यह मन्त्र कहाँ पाया ? मेरा मन्त्र तो प्रकट नहीं हो सकता । अरे समझा, तुम तो अन्तर्यामी हो, सभीके हृदयमें वास करते हो । तुमसे क्या छिपा है ?

निमाई—प्रभु ! पुनः ऐसा कहकर मुझे अपराधी क्यों करते हो ?

भारती—समझा, तुम किसीसे मन्त्र क्यों लोगे ! तभी पहले मन्त्र देकर मुझे शिष्य बना लिया । आहा ! कितने दयामय हो ! तुम्हीं तो जीवमात्रके गुरु हो !*

निमाई—अब मन्त्र देनेकी कृपा कीजिये ।

---

* तखन नापित आसि, प्रभूर सम्मुखे बसि,
क्षुर दिल से चाँचर केशे ।
करि अति उच्च रव, कान्दे जत लोक सब,
नयनेर जले देह भासे ।
हरि हरि की ना हइल कांचन नगरे ।
जतेक नगरबासी, दिवसे देखये निसि,
प्रवेशिल शोकेर सागरे ।
मुण्डन करिते केश, हैया अति प्रेमावेश,
नापित काँदये उच्चस्वरे ।

* मुड़ाइया चाँचर चूले, स्नान करि गङ्गाजले,
बले दाओ अरुण बसन ।
गौराङ्गेर बचन, शुनिया भक्तगान,
उच्चै स्वरे करये रोदन ।
अरुण दुःखानि कानि, भारती दिलेन आनि,
आर दिल एकटी कौपीन ।
मस्तके परस करि, परिलेन गौरहरि,
आपनाके माने अति दीन ।
तोमरा बान्धव मोर एइ आशीर्वाद कर,
निज कर दिये मोर माथे ।
करिलाम संन्यास, नहे जेन उपहास,
व्रजे जेन पाइ व्रजनाथे ।
एत बलि गौरराय, ऊर्द्धमुख करि धाय,
दिक्विदिक् नाहि माने ।
भक्तगण सबे पाछे, लोटाय लोटाय काँदे,
वासुदेव हाँकान्द कान्दने ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(भारतीका निमाईके कानमें मन्त्रदान)

भारती—अब तुम्हारा नामकरण करना होगा। सोचता हूँ, तुम्हारा उपयुक्त नाम क्या होना चाहिये। (निमाईके वक्षःस्थल-पर हाथ रखकर) तुमने सब जीवोंको श्रीकृष्णनामके प्रति चैतन्य किया है, अतः तुम्हारा नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' हुआ।

कुछ व्यक्ति—क्या नाम ? क्या नाम ?

भारती—श्रीकृष्णचैतन्य !

सभी—जय हो, श्रीकृष्णचैतन्यकी जय हो !

(हरिध्वनि)

भारती—निमाई ! दण्ड और कमण्डलु धारण करो।

(निमाईका दण्ड-कमण्डलु धारण करना)

सभी—जय श्रीकृष्णचैतन्य ! जय पतित-पावन ! जय काङ्गाल-नाथ !

निमाई—(सभीके प्रति) हे बन्धुगण ! हे माता ! हे पितृगण ! आशीर्वाद दीजिये कि मैं व्रजमें पहुँचकर श्रीकृष्णको प्राप्त करूँ। (सभीकी हरिध्वनि) मैं इस समय संन्यासी भिक्षुक हूँ, आपसे यही मेरी भिक्षा है। मैं कंगाल हूँ, क्या मुझे भिक्षा नहीं दोगे ?

सभी—देंगे, देंगे।

निमाई—मेरी यही भिक्षा है—(हाथ जोड़कर) तुम सभी उन मङ्गलमय श्रीकृष्णको भजो। मेरी हाथ जोड़कर यही प्रार्थना है। तो मैं श्रीवृन्दावन चला ! हे कृष्ण ! मैं आया !

(दण्डादि फेंककर गमनोद्यत)

भारती—कृष्णचैतन्य ! ठहरो, ठहरो। अपना दण्ड-कमण्डलु ले जाओ और मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा !

चन्द्रशेखर (दोनों भुजाओंसे पथ रोककर) एक बार हमारी ओर देखो !

निमाई—(चन्द्रशेखरको देखकर) कौन भाई ! बैठो। (स्वयं बैठना) भाई ! मैं श्रीवृन्दावन जा रहा हूँ। श्रीकृष्ण मुझे बुला रहे हैं। इधर मेरी माँ रहीं। हे बन्धुगण ! मेरी माँसे कहना वे मुझे भूल जायँ। उन्होंने मेरी जो सेवा की, उस ऋणसे मैं कोटि युगोंमें भी उऋण नहीं हो सकता। माँ मेरा अपराध न लें। मैं उनकी संतान हूँ और वे मेरी माँ। उनसे कहना कि गृहस्थोंके बहुत-सी विधवा कन्याएँ होती हैं, मैं भी उन्हीं विधवाओंके समान हूँ। मनुष्योंकी अंधी-पङ्गु संतान भी होती है। मैं उनकी ऐसी ही वृथा संतान हूँ। मैं उनकी सेवा नहीं कर सका। माँसे मेरा प्रणाम कहना। मैं चला, हे कृष्ण ! यह मैं आया, आया ! (कहते हुए दौड़ना)

निताई—ठहरो, ठहरो। मैं आता हूँ।

मुकुन्द—ठहरो, मैं आ रहा हूँ।

कोई व्यक्ति—ठहरो, ठहरो नवीन संन्यासी।

द्वि० व्य०—तुम संसारमें और नहीं आओगे। ठहरो, ठहरो !

(चीत्कार करते हुए 'ठहरो', 'ठहरो' पुकारते सभीका पीछे दौड़ना) (क्रमशः)

संगका रंग

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

साधारणतः जहाँ और लोग हँसीके फुहारे छोड़ रहे होते हैं, वहाँ हमें भी हँसी आ जाती है; जहाँ अश्रुपात हो रहा होता है, वहाँ हमें भी बरबस रुलाई आने लगती है।

यही संगका रंग है। सबपर थोड़ा-बहुत चढ़कर ही रहता है। हाँ, उसपर नहीं चढ़ता जो सदा केवल अपने ही रंगमें रँगा होता है—पक्का रँगा हुआ होता है।

'सूरदासकी कारी कामर चढ़ै न दूजौ रंग।'

अपने रंगमें रँगा हुआ तो किसीके रंगमें आनेकी जगह सबपर अपना रंग छोड़ता है, उन्हें अपने रंगमें लाता है—वह भी सहज ही।

पर अपने रंगमें रँगे हुए होते कितने हैं ? आम तौरसे तो लोग यों ही बेपेंदीके बँधने होते हैं। चाहे जिधर बह निकलते हैं। चाहे जिसके रंगपर चढ़ जाते हैं। अतः सदैव संगका महत्त्व रहा है और रहेगा।

चाहिये यह कि हम कुसंगसे बचकर सुसंगद्वारा अपना रंग पहचानें, उसमें अपनेको रँगें, पक्का करें और फिर जन-जनपर उसे छोड़कर (जो तत्त्वतः उनका भी अपना ही रंग है) उन्हें उसमें लाकर अपने जीवनको कृतार्थ और जगत्को उस कृतार्थ-जीवनसे गौरवान्वित करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-विज्ञानका रहस्य-रस—प्रेम

(लेखक—पं० सूरजचंदजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी))

सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा एकत्व—समत्वका परम विवेक ही ज्ञान है और एकत्र, अनेकत्व, विविधत्वका विशिष्ट परिचय ही विज्ञान है। योगसे ज्ञान प्रकट होता है और प्रयोगसे विज्ञान। ज्ञानसे प्रकाश होता है और विज्ञानसे विकास। ज्ञानसे निर्वाण होता है और विज्ञानसे निर्माण। ज्ञान संतोंका धर्म है और विज्ञान ब्राह्मणोंका। ज्ञान शंकरके हृदयका मर्म है और विज्ञान गणपतिके ऋद्धिसिद्धिमय सामर्थ्यका कर्म। विज्ञानका सम्बन्ध अर्थ-कामसे है और ज्ञानका सम्बन्ध धर्म-मोक्षसे। ज्ञान-शून्य विज्ञान दुष्टताका जनक है और विज्ञान-शून्य ज्ञान कनिष्ठताका। श्रेष्ठताका चिह्न है ज्ञान-विज्ञानका समन्वय। ज्ञान-विज्ञानके यथार्थ उपयोगको 'सम्यक् ज्ञान' और अयथार्थ उपयोगको 'अज्ञान' कहते हैं। ज्ञानके बिना विज्ञान शैतान है। विज्ञानके बिना ज्ञान हैवान है। ज्ञान और विज्ञान दोनों मिलकर इन्सान हैं, ज्ञान-विज्ञानका स्वामी स्वयं भगवान् है और ज्ञान, विज्ञान, सम्यग्ज्ञान और अज्ञानसे ऊपर उठकर परमात्मप्रेममें प्रवेश ही भक्ति-रस है।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।

तत्त्वतः ज्ञान, विज्ञान, सम्यग्ज्ञान और अज्ञानका स्वरूप समझनेके अनन्तर ही परमात्मस्वरूपमें प्रवेश होता है और प्रभु-प्रेमके लिये सब प्रकारकी समझका त्याग करना अनिवार्य है।

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

सब प्रकारकी चतुराई छोड़कर भगवद्भजन हो, तब प्रभु कृपा करें और प्रभु कृपा करें तभी प्रभुका प्रेम हो—अन्यथा कभी नहीं, कभी नहीं।

प्रभुका प्रेम प्राप्त होते ही ज्ञान, विज्ञान, सम्यग्ज्ञान और अज्ञान सभी जीवन्मुक्ति—विदेहमुक्तिसे भी विलक्षण लोकोत्तर सुखके रूपमें परिणत हो जाते हैं—दुनिया जिसे दुःख कहती है वह भी परम सुख हो जाता है और सिद्धपुरुष जिस जन्म-मरणको परम दुःख बतलाते हैं वह भी निरन्तर सुखका भण्डार बन जाता है।

इसीलिये परम-आचार्य भगवान् अनन्त प्रभु, निषाद-राजको कहते हैं—

सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पग नेहू॥

परमार्थ है—जन्म-मरणसे मुक्ति परंतु परम परमार्थ है—भगवत्प्रेम जहाँ जन्म-मरण भी मुक्तिकी अपेक्षा विलक्षण सुख-प्रद हो जाते हैं। संत तुकाराम कहते हैं—

'मुक्तिके सुखको मैं लात मारता हूँ। हे प्रभु! मुझे बारंबार गर्भमें डालो, जिससे मैं आपके पवित्र प्रेमका नित्य नया आनन्द ले सकूँ, सत्संगका विलक्षण सुख भोग सकूँ, आपकी पवित्र मङ्गलमयी भक्तिका सतत विस्तार कर सकूँ।' नरसिंह मेहता भी यही कहते हैं कि 'हरिका भक्त मुक्ति नहीं माँगता। वह तो माँगता है प्रभुकी सेवाके लिये जन्म-जन्म नित्य नूतन अवतार—अरे, भक्तिका सुख भोगनेके लिये प्रभु भी अवतार धारण करते हैं।' गोस्वामीजी कहते हैं—

सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत॥

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु स्वयं साक्षात् सच्चिदानन्दघन परब्रह्म होते हुए भी भक्तिरसको भोग करनेके लिये और सम्पूर्ण विश्वको प्रेमसुधाका पान करानेके लिये नामोच्चारणका घोष करते हैं—कराते हैं। जगज्जननी लोकाह्लादकारिणी परमाम्बा परमाशक्ति राधा स्वयं सर्वेश्वरी होनेपर भी मीराँका रूप धारण करके घर-घर घूँघरू बाँधकर नाचती फिरती हैं और अन्तमें व्रजरजकी शरण लेती है।

मुक्ति कहे गोविंद सों, मेरी मुक्ति कराय।
व्रज-रज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय॥
जिन मंदिरमें बसत है छवि-मंदिर घनस्याम।
उसकी सोभा क्या कहूँ धाम-धाममें धाम॥
कबिरा कबिरा क्या करे, जा जमुनाके तीर।
इक गोपीके प्रेममें बह गये कोटि कबीर॥

सम्पूर्ण मुक्त पुरुषोंमें किसी-किसी मुक्त पुरुषको ही भगवत्कृपासे उस प्रेम-राज्यमें प्रवेश करनेका अधिकार मिलता है। साक्षात् नारायण भगवान् व्यासकी कृपासे परमहंस शुकदेवको वह अधिकार प्राप्त हुआ। परम भक्त देवर्षि नारदकी दयासे भगवान् व्यासको यह प्रेम-रस मिला। आदिकवि वाल्मीकिको भी देवर्षिकी दया प्राप्त हुई, तभी उनके हृदयमें राम-प्रेम फूटा। गोस्वामीजी महाराजपर तो प्रेमके परम अवतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात् मारुतिरायका प्रसाद ही उतर पड़ा था। नारदजीके सद्गुरु सनत्कुमार तो भगवत्प्रेमके प्रतापसे ही निरन्तर बालरूप-में लोकोत्तर देह धारण किये हुए हैं और घूम-घूमकर हंस भगवान्के द्वारा प्राप्त प्रेमका प्रचार करते रहते हैं। परमहंस नवयोगीश्वरने भगवान् ऋषभदेवकी कृपासे इसी प्रेमरस-रूप भागवतधर्मका अनेक ऋषि-महर्षियोंके गुरु राजर्षि जनकके पूर्वजको उपदेश किया था, जिसे इन्हीं देवर्षिद्वारा सुनकर श्यामसुन्दर प्रभुके पिता वसुदेवकी चिन्ता सदाके लिये दूर हो गयी। किन-किनका इतिहास कहा जाय। शबरीके बेर और विदुरपत्नीके छिलकोंमें परब्रह्म परमात्माको अपनी माता और सासके द्वारा दिये गये लोकोत्तर ब्रह्म-रससे भी विलक्षण माधुर्य प्रतीत हुआ। इसे कौन रसिक नहीं जानता? श्रीसुनयना और कौसल्या माँ साक्षात् ब्रह्मविद्या अथवा ज्ञानशक्ति थीं—माँ देवकीजी साक्षात् दैवी सम्पत्ति थीं; परंतु क्या आप समझते हैं इनकी छत्रछाया भगवान्को राधिकाजी और कैकेयीजीसे अधिक महत्त्वपूर्ण लगती थी? कभी नहीं। आप कैकेयीजीका नाम सुनकर चौंकें नहीं। भगवान् श्रीरामके अन्तःकरणमें क्या इच्छा थी इसे वह माता ही जानती थी। भगवान् कौसल्याको जननी ही मानते थे पर माता तो कैकेयीजी-को ही समझते थे, जिन्होंने स्वयं घोर बदनामी सहकर भी भगवान्की लीलामें निमित्तरूपसे सहायता की। भगवान् रामसे उन्हें ईर्ष्या-द्वेष होता तो १४ वर्षका ही वनवास क्यों माँगतीं? उम्र भरका क्यों नहीं माँगा?— चौदह वर्षका कार्य-क्रम था—ऋक्षों, वानरों, भिल्लों, निषादों और राक्षसों आदिपर शासन जमानेमें कितना समय लगेगा यह उन्हें ज्ञान था, इसीलिये माता कैकेयीजीने अपने प्राणप्रिय पतिदेवके प्राणोंकी रक्षा करके दोनों वरदान थाती रख लिये थे और पुनः उनके प्राण लेनेमें निमित्त बनकर भी, स्वतः विधवापनका दुःख सहन करके भी, और सबकी निन्दाको सिरपर लेकर भी प्रभुके लीला-कार्यमें सहयोग दिया—इसे प्रेमकी पराकाष्ठा ही समझना चाहिये—'तत्सुखे सुखित्वम्'। प्रभुके सुखमें अपना सुख माना यही कारण है कि प्रभु अपना लीलाकार्य करके पुनः लौटते ही—

प्रथम तासु गृह गए भवानी।

पहले उस परमाम्बा कैकेयीके घरमें पधारे।

चित्रकूटमें भी—

प्रथम रानु भेंटा कैकेयी।

पहले भगवान् माता कैकेयीसे मिले। तात्पर्य यह है कि प्रेमका अनिर्वचनीय स्वरूप है। क्या आप मारीचके प्रेम-सौभाग्यको शबरीके प्रेम-सौभाग्यसे कम महत्त्वपूर्ण समझते हैं जिसके पीछे भगवान् स्वयं दौड़ रहे हैं और वह छिप रहा है और जिस स्वरूपका ध्यान स्वयं जानकीजी निरन्तर कर रही हैं। प्रेमकी लीला इतनी अगाध है कि सम्पूर्ण प्रेमकी प्रतिमा श्रीमती राधाजी भी समझनेमें चकरा जाती हैं। भगवान्से कहती हैं 'आप हमसे भी अधिक इस वंशीसे प्रेम करते हैं, इसे अपने होठोंपर सुलाकर हमेशा चरणचंपी किया करते हैं।' प्रभु कहते हैं—प्रियतमे! मैं तो सबका सुहृद् हूँ—

'सुहृदं सर्वभूतानाम्', 'समोऽहं सर्वभूतेषु'।

मैं तो सभी प्राणियोंसे समान प्रेम करता हूँ पर जो जितना ग्रहण करता है उसे उतना ही विशेष आनन्द मिलता है—राधिके! प्राणाधिके सर्वात्मिके! देखो इस वंशीको किसी भी प्रकारका लौकिक लोकोत्तर भी अहंकार नहीं—यह भीतरसे सर्वथा पोली है, इसीलिये इसका इतना सम्मान है। इसकी आवाज स्वतन्त्र नहीं, मेरी आवाज ही इसकी आवाज है!' भगवती राधिकाजी समझ गयीं यह तो साक्षात् महादेव प्रभु ही वंशी बनकर भगवान्के अधरामृतका पान कर रहे हैं—बारंबार नमस्कार करने लगीं—धन्य है प्रेमियोंका परस्पर परमाकर्षण। किसको श्रेष्ठ और किसको कनिष्ठ कहें? समुद्रकी लहरोंमें कौन-सी छोटी और कौन-सी बड़ी। और लहरें छोटी-बड़ी भी हों पर उनमें पड़े हुए चन्द्रमाके प्रतिबिम्बमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। एक बार इस राज्यमें प्रवेश हुआ कि समस्त ज्ञान-विज्ञानका रहस्य-रस सहज प्राप्त हो जाता है।

'सबकर फल रघुपति पद प्रेमा' अरे—गोस्वामीजीसे क्षमा माँगकर सबकर रस रघुपति-पद-प्रेमा—कहूँ तो भी हरकत नहीं—फलमें बीज होनेसे अनन्त कालतक नित्य नया रस मिलता रहेगा। इसी कारणसे अगर गोस्वामीजी महाराजने फल शब्द कहा हो तो मैं अपना संशोधन वापस लेता हूँ। रस तो ब्रह्मरस है और फलमें प्रेम-बीज है जो अनन्त वृक्षोंका जनक। वाह! वाह! बन्धनको दूर करनेके लिये अनन्त संतोंने दो मार्गोंको सनातन कालसे पवित्र अमोघ साधन माना है—एक तो भक्तिका, दूसरा ज्ञानका। जैसे कोई मनुष्य रस्सेसे बँधा हुआ हो तो दो तरहसे छूट सकता है। या तो इतना जोर लगावे कि रस्सा टूट जाय या इतना छोटा बन जाय कि रस्सा छूट जाय। छोटा बनना भक्तिमार्ग है, जिसका उपयोग अन्तमें सुरसाके साथ युद्ध करते समय भक्तराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनूमान्‌ने किया था और रस्सा तोड़नेका पराक्रम भगवान् ऋषभदेव, परमर्षि भरत, महाभाग वामदेव और भगवान् शंकराचार्यने किया था। जिसकी जैसी सामर्थ्य। भक्ति-मार्ग सबके लिये सुलभ है। अविश्वासी और अविनयीके लिये सर्वथा दुर्लभ है। भगवान् चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

हरि-कीर्तन-भक्ति करनेवालोंको सबसे छोटा बनना पड़ता है।

ज्ञानविज्ञानका रहस्य

रस प्रभुके प्रति प्रेम ही है। प्रभु मिल जाय और प्रभुप्रेम नहीं हो, तो आनन्द नहीं। प्रभु-प्रेम मिले, पर प्रभु नहीं मिले तो भी आनन्द आ जाता है। शिशुपालको प्रभु मिले—छाती-से-छाती मिलाकर लड़े पर आनन्द कहाँ? और मीराँबाई कलियुगमें हुई तो भी प्रभु-प्रेमसे आनन्दमयी बन गयी। धन्य धन्य धन्य प्रभु-प्रेम। चकोरको चन्द्रमा कभी मिलता नहीं—फिर भी दर्शनकी लालसाका पवित्र सुख मिलता ही है। उसी प्रकार भगवान् भक्तको नहीं मिले तो भी दर्शन-लालसा-का लौकिक लोकोत्तरसे भी अद्भुत परम आनन्द मिलता ही है।

पर इस परम-आनन्दको प्राप्त करनेके लिये जन्म-जन्मकी आराधना-साधना करनेके बाद भगवत्कृपा प्राप्त करनी पड़ती है। वैसे भगवत्कृपा तो अहैतुकी ही होती है—वह किसपर क्यों होती है इसका मर्म समझना अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी जिसपर भगवत्कृपा होती है वह इस मर्मको समझ जाता है। 'सो जानइ जेहि देहु जनाई।' **'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'** 'इदमित्थं कहि जाइ न कोई।' यह ऐसा ही है कौन कह सकता है। भगवत्कृपासे इस मर्मको समझ जाना ही ज्ञान है—समझनेकी कोशिश करना ही विज्ञान है और समझनेकी कोशिश ही नहीं करके सब प्रयत्न छोड़कर श्रद्धापूर्वक सेवा करते जाना 'भक्ति' है।

भक्तिमें बुद्धिका क्या काम? बुद्धिका घर छूटनेके बाद ही भक्तिका दालान खुलता है। ज्ञान-विज्ञान छूटनेके बाद ही पवित्र ध्यानका प्रारम्भ होता है।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात् कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

इसका अर्थ तनिक भौतिक पद्धतिसे करके देखें। ज्ञान निश्चयपूर्वक तभी श्रेयस्कर होता है जब उसके अनुसार अभ्यास, प्रयोग या विज्ञान हो। ध्यान तभी विशिष्ट होता है जब जिसका ध्यान करते हैं उसका ज्ञान हो। कर्मफलत्याग तभी श्रेयस्कर होता है जब उस प्रभुका ध्यान हो, जिसके लिये कर्म-फल-त्याग किया जाता है और त्यागके आधारपर ही शान्ति स्थायी हितकरी हो सकती है।

अज्ञानपूर्वक सुषुप्ति अवस्थामें अहंकारका अल्पकालके लिये त्याग होनेपर भी इतनी शान्ति मिलती है कि दिनभर कर्तव्यमें उत्साह बना रहता है। अब सोचिये सहज-समाधि अवस्थामें ज्ञानपूर्वक अहंकारके त्यागसे संतोंको कितनी शान्ति मिलती होगी—इसका कुछ हिसाब है? कौन हिसाब लगा सकता है? उस समय आत्मामें जितना प्रेमका प्रकाश होता है उसका अनन्तांश भी बुद्धि और मनमें नहीं आता। जितना बुद्धि और मनमें प्रेमांश पहुँचता है, उसका अनन्तांश भी वाणीमें नहीं आता और जितना वाणीमें आता है, उसका अनन्तांश भी हमसे अमल नहीं हो सकता। अब कहिये ज्ञान-विज्ञानका रहस्य-रस कौन जाने? कैसे अमलमें आवे? मानकर भजन करते चलें यही एकमात्र पंथ है फिर 'हरी करे सो खरी।'

मेरा जीवन प्रभुका मङ्गलमय धाम बन गया है

मेरे जीवन-हृदयके कपाट भोग-कामना, विषय-वासना, जागतिक ममता-आसक्तिके मजबूत तालोंसे बंद थे, बहुत समयसे बंद थे। पर अब भगवत्कृपासे वे सारे ताले टूट गये हैं। अब कहीं भी जगत्‌की कामना, वासना, ममता, आसक्ति नहीं रह गयी है। इसलिये अब मेरे जीवन-हृदयमें भगवान् और उनके साथ ही भगवान्‌के दिव्य गुण, भगवान्‌के दिव्य शील-स्वभाव आकर बस गये हैं और उनके साथी-संगी भी सब खिंचे चले आ रहे हैं। अतः मेरा जीवन अब प्रभुका मङ्गलमय धाम बन गया है। उसमें केवल प्रभु-ही-प्रभु अपनी विभूतिसहित भर गये हैं। अब उसमें केवल उन्हींके भगवत्स्वरूपका लीलाविलास चल रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानधर्मकी आवश्यकता और उसका महत्त्व

(लेखक—श्रीअगरचंदजी नाहटा)

विश्वके समस्त प्राणियोंका जीवन पराश्रित है। दूसरोंकी सहानुभूति और सहयोगसे ही वह आगे बढ़ता है। सबसे पहले तो जब वह गर्भमें आता है, माता उसे प्रेम और जतनसे पोषण करती है और जन्म होनेके बाद भी कुछ समयतक उसका जीवन माताके ही आश्रित रहता है; फिर उसे अन्य लोगोंका सहयोग मिलता और इस तरह बहुत-से व्यक्तियोंसे वह बहुत कुछ सीखता है और सहयोग प्राप्त करता है। यह एक तरहसे दूसरोंका दान ही हुआ। स्वाभाविक रूपसे यह क्रिया चलती है, इसलिये चाहे इसे दान न कहें, पर सहयोग देना भी दान ही है। चाहे वह किसी तरहका हो। जब इतने अधिक व्यक्तियोंके सहयोगसे हम अपने जीवनको आगे बढ़ाते हैं, तब हमारा भी कर्तव्य हो जाता है कि हम भी दूसरोंके काममें आकर उनको आगे बढ़नेमें सहयोग दें। यह तो हुई सामान्य दान-धर्मकी बात।

सभी मनुष्य एक-जैसी योग्यता, शक्ति और साधन-सम्पन्न नहीं होते, इसलिये जिनके पास जिस विषयकी अधिक योग्यता, शक्ति एवं साधनोंकी प्रचुरता है, वे जिनके पास जिनकी कमी है उनको देते रहें तो दूसरोंका जीवन भी सुखी बन जाय। करुणा और उदारताका भाव दान-धर्मका मूलस्रोत है। दुखी या दरिद्र तथा भूख-प्याससे पीड़ित और वस्त्र एवं निवासरहित व्यक्तिको देखकर हमारे मनमें करुणाका संचार होता है और अपने हृदयकी पुकारसे अपनेसे जो कुछ भी बनता है, उसे देकर हम आत्मसंतोष पाते हैं। इसी तरह हमारे पास जो चीजें हैं, उन्हें हम जिनको उनकी आवश्यकता है, उन्हें देकर उदारता दिखावें तो दूसरोंको जीवनयापन या अपनी प्रगतिमें काफी मदद मिलेगी।

सम्पत्तिकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—भोग, दान और विनाश। भोगकी एक सीमा होती है, उसका उल्लङ्घन अधिक होनेपर हानि ही होती है। पर दान अपनी सामर्थ्यके अनुसार देनेसे अपने चित्तकी प्रसन्नता और दूसरोंको आराम मिलता है, जब कि भोगमें केवल अपना सुख-भोग ही मुख्य होता है। यदि भोग और दान दोनों रूपोंमें उस सम्पत्तिका उपयोग नहीं किया गया तो तीसरी नाशकी अवस्था तो स्वयं प्राप्त हो जायगी। इसलिये भी जहाँ जितने दानकी आवश्यकता है, पात्र और आवश्यकताके विवेकपूर्वक दान देते रहना ही मानव-कर्तव्य है।

उपनिषद्में एक कथा आती है, जिसमें राक्षसोंके लिये दया, देवोंके लिये दमन और मनुष्योंके लिये दान-धर्मका विशेषरूपसे उपदेश दिया गया है; क्योंकि राक्षस क्रूर स्वभावके होनेके कारण हिंसा अधिक करते हैं, अतः उनके लिये दया-धर्मकी विशेष आवश्यकता है। देवगण साधन-सुविधाओंकी अधिकताके कारण भोगोंमें बहुत लिप्त रहते हैं, इसलिये उन्हें इन्द्रिय-दमनका उपदेश दिया गया है। मनुष्य कर्माधिकारके प्राप्त कर्मद्वारा कमाई करनेवाला है और मनुष्योंमें दीन-हीन अवस्थावाले व्यक्ति अधिक हैं; अतः दान-धर्मकी विशेष आवश्यकता है। जिससे कि सब लोगोंका जीवन-यापन सुख-शान्तिपूर्वक हो सके।

प्रकृति भी हमें दान-धर्मका महान् संदेश दे रही है। उसने प्राणियोंके आरामके लिये अनेक साधन जुटा रक्खे हैं। वृक्ष हमें फल देते हैं, छाया देते हैं। नदियाँ एवं बादल जल देते हैं। वनस्पतियाँ प्राणियोंके खानेके काम आती हैं और रोग-निवारणार्थ ओषधियोंके काममें भी आती हैं। सूर्य हमें प्रकाश देता है और गर्मी भी। वायु जीवनके लिये आवश्यक तत्त्व है ही; उसे लेकर ही श्वास चलता है। पृथ्वी हमारा अनन्त उपकार कर ही रही है। हम उसीके ऊपर रहते हैं, खेती करके उसीमेंसे अनाज उत्पन्न करते हैं। इसी तरह अनेक रूपोंमें प्रकृतिसे हम अनेक सुविधाएँ स्वाभाविक रूपमें प्राप्त कर रहे हैं। इसे प्रकृतिकी देन या दान ही कहा जा सकता है। यदि प्रकृति हमें ये सुविधाएँ न दे तो हम क्षणभर भी नहीं जी सकते। अतः प्रकृतिकी तरह हमें भी बिना किसी प्रकारके प्रतिफलकी कामनाके दान देना सीखना चाहिये। प्रकृति और अनेक व्यक्तियोंसे हम अनेक बातें तथा वस्तुएँ प्राप्त करके अपने जीवनको सुखी बना रहे हैं, यह उनका केवल ऋण बढ़ाना ही हुआ। जैसे हम दूसरोंसे लेते हैं वैसे दूसरोंको दें भी। तभी हम उस ऋणसे उऋण हो सकते हैं।

बहुतसे व्यक्ति यह सोचते-समझते और कहते हैं कि हमारे पास ऐसी कोई चीज है ही नहीं कि हम उसे दूसरोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दें। जब कि हमारी आवश्यकताएँ भी हम पूरी नहीं कर पाते और उसके लिये दूसरोंपर आश्रित हैं तो हम दूसरोंको क्या दें ? पर वास्तवमें वे व्यक्ति जरा गहराईसे सोचें तो मालूम होगा कि चाहे बाहरी पदार्थ उनके पास कम होनेसे वे दूसरोंको न दे सकते हों, पर दूसरोंके काममें आनेवाली अनेक आवश्यक चीजें उनके पास हैं ही। वास्तविक दान-धर्म तो यह है कि हम अपने-अपने पास जो थोड़ी-सी वस्तुएँ प्राप्त हों, उनमेंसे भी, संयम और त्यागपूर्वक दूसरोंको जितना भी दे सकते हों, कुछ-न-कुछ दें ही। जैसे हमारे पास खानेके लिये चार रोटियाँ हैं तो हम तीनसे अपना काम निकालकर एक-आधी या पाव रोटी तो दूसरोंको दे ही सकते हैं। भारतीय संस्कृतिमें तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि स्वयं भूखे रहकर भी दूसरेकी क्षुधा निवृत्त की गयी है। अतिथिके लिये बड़े-से-बड़ा त्याग करनेके उदाहरण हमारे पुराणों और चरित्र-ग्रन्थोंमें मिलते हैं। पर मान लीजिये हमारे मनकी तैयारी उतनी नहीं है, तो भी हम सेवा और सहानुभूति, वात्सल्य, प्रेम, आश्वासन देकर भी दूसरोंके दुःखको कम कर सकते हैं, उन्हें सुख-शान्ति पहुँचा सकते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसके पास देनेकी कुछ भी चीज न हो। जो पढ़ा-लिखा है वह दूसरोंको ज्ञान-दान तो कर ही सकता है। जो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं, उसके पास जीवनके अनुभव हैं ही, यदि वह उन अनुभवोंसे दूसरोंका मार्ग-दर्शन करे, उन्हें सुशिक्षा दे, अपनी बुद्धिसे उनकी कठिनाइयोंको हल करनेका प्रयत्न करे तो इसमें उसे कुछ श्रम या त्याग नहीं करना पड़ता और दूसरोंको बहुत कुछ लाभ मिल जाता है। प्रत्येक व्यक्तिको अनेक तरहकी आवश्यकताएँ हैं और उन सबकी किसी-न-किसी रूपमें पूर्ति हर एक व्यक्ति किसी भी प्रकारसे, किसी अंशमें अवश्य ही कर सकता है। केवल वस्तुओंका दान ही दान नहीं है। सत्-शिक्षाका दान उससे बहुत बड़ा दान है। इसीलिये हमारे संत-महात्मा यद्यपि रोटी-पानी हमसे लेते हैं और अपरिग्रही होनेके कारण हमें कोई वस्तु दे नहीं सकते, पर सत्-धर्मका संदेश देकर वे हमारा महान् उपकार करते हैं। जीवन-निर्वाहके लिये थोड़ी-सी भिक्षा लेकर हमें कितना बड़ा ज्ञान-दान देते हैं।

सेवा भी एक विशिष्ट दान है और वह अनेक प्रकारसे की जा सकती है। छोटेसे लेकर बड़ेतक सभीको किसी-न-किसी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता होती है। हम जिस व्यक्तिको जिस समय जिस प्रकारकी सेवा आवश्यक है, यदि विचार और विवेकपूर्वक उसे जानकर उसी प्रकारकी सेवासे उसे थोड़ी भी शान्ति या सुख पहुँचा सकें तो वह बहुत बड़ा दान होगा। बाहरी वस्तुओंके दानकी अपेक्षा उसका मूल्य, महत्त्व और फल अधिक भी है।

त्याग भी दानका ही एक प्रकार है। जितने-जितने अंशमें हम अपरिग्रही और त्यागी बनेंगे, उतने अंशमें भोगके साधन दूसरोंके लिये सुलभ हो जायँगे। संन्यास ग्रहण करते समय व्यक्ति जो कुछ अपना होता है, दूसरोंको दे डालता है। इसलिये उन वस्तुओंका दान तो हुआ ही, पर भविष्यमें जिन वस्तुओंका, जितने परिमाणमें वह उपभोग करनेवाला था, त्याग स्वीकार करनेपर वह उनका भोग नहीं करता, तब वे चीजें दूसरोंको अधिक परिमाणमें सहज प्राप्त हो जायँगी। हमने जो अबतक आवश्यकताओंसे अधिक संग्रह कर रक्खा है और ममत्व-बुद्धिके कारण दूसरोंको आवश्यक होते हुए भी हम उन्हें वे वस्तुएँ दे नहीं रहे हैं, यह एक बड़ा पाप है और इस पापका प्रायश्चित्त दानके द्वारा ही हो सकता है। आखिर हमने जो कुछ भी संग्रह किया है, उसे उस परिमाणमें प्राप्त करनेमें हमने दूसरोंका सहयोग प्राप्त किया है, उनका शोषण किया है, दूसरोंके जीवनयापनमें कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं, अपने सुखके लिये दूसरोंको दुःख दिया है। अतः हमारा परमावश्यक कर्तव्य हो जाता है कि अधिकाधिक दान-धर्मको अपनावें।

मनुष्य कोमल और कठोर वृत्तियोंका सम्मिश्रित पुञ्ज है। कोमल वृत्तियोंसे संसारका व्यवहार अधिक सुखद बनता है और कोमल वृत्तियोंमें करुणा और प्रेम विशेष महत्त्व रखते हैं; पर आज प्रेम विकृत हो चला है और करुणाभाव बहुत कुछ लुप्त होता जा रहा है। थोड़े वर्षों पहले हमारे देखते-देखते किसी भी दीन-दुखीको देखकर हमारे हृदयमें करुणाका उद्रेक होता था, वैसा आज नहीं होता! कोई भिखारी हमसे रोटी या पैसा माँगता है तो हम उसे दुत्कार देते हैं, बहुत बार तो धक्का देकर भी निकाल देते हैं। कुछ व्यक्तियोंने भिखारीके वेशमें ठगाई की, इससे सब भिखारियोंके प्रति अरुचि होती जा रही है। इसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष है कि हमारे अंदर करुणाका स्रोत सूखता जा रहा है और वास्तविक अभावग्रस्तको भी हम समर्थ होते हुए भी कुछ सहायता नहीं कर पाते। पशुओंकी हत्या और पिटाई इतनी निर्ममतासे होने लगी है कि करुणाका तो मानो हमारे हृदयमें कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दया भी वास्तवमें देखा जाय तो दानका ही एक प्रकार है; क्योंकि जीवन-दान सबसे बड़ा दान है और उसके लिये करुणा और दया-भावकी आवश्यकता है। जैन-ग्रन्थोंमें अभय-दानको बड़ा महत्त्व दिया गया है और अमारि[1]-उद्घोषणाको धर्मका एक अङ्ग माना है। हमसे किसी भी प्राणीको मरने या कष्टका भय उत्पन्न न हो और वह सुख-शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करे—यही है अभयदान। हमने उसको निर्भय या अभयका दान दिया है। किसी भी प्राणीको मारा न जाय, यह हुई उस प्राणीकी जीवन-रक्षा। इसीका नाम है जीवन-दान और वैसी उद्घोषणा करना ही 'अमारि उद्घोषणा' करना है। जैनाचार्योंने समय-समयपर राजाओं और सम्राटोंको प्रतिबोध देकर अमारि-उद्घोषणाएँ करवायी थीं, इससे उनके राज्यमें होनेवाले हजारों, लाखों प्राणियोंके प्राण बच गये। हम भी अपनी ओरसे पूरे सजग रहकर अनेकों प्राणियोंकी रक्षा सहजहीमें कर सकते हैं। उनके लिये वह जीवन-दान है और हमारे लिये धर्म।

यदि हमारा किसीने अपराध किया है तो हम उस अपराधके प्रतिशोधकी भावनाको भुलाकर यदि उसे क्षमा कर देते हैं तो वह हुआ क्षमा-दान। इससे वैर-विरोधका शमन होता है और दूसरेके चित्तको शान्ति मिलती है। अपना चित्त भी प्रसन्न होता है। एक तरहसे इसे शान्ति-दान भी कह सकते हैं।

जिस समय जिस प्रकारके दानकी जिसको आवश्यकता हो, वैसा देना ही अधिक लाभप्रद है। हमारे मनीषियोंने कहा है कि अभी हमें जो सम्पत्ति और सुखके साधन मिले हैं, वे प्रायः दानधर्मके कारण ही। जो देता है, वह पाता है। जो बीज बोता है, उसे ही उसका फल मिलता है। दानसे पुण्य होता है, पुण्यसे वैभव और साधन-सुविधाएँ मिलती हैं। पद्मपुराणमें कहा गया है—

सुदानात् प्राप्यते भोगाः
सुदानात् प्राप्यते यशः।
सुदानाज्जायते कीर्तिः
सुदानात् प्राप्यते सुखम्॥

अच्छे दान देनेसे भोग प्राप्त होते हैं, यश-कीर्ति और सुख मिलता है। गरुडपुराणमें भी कहा गया है—

सुपात्रदानाच्च भवेद् धनाढ्यो
धनप्रभावेण करोति पुण्यम्।
पुण्यप्रभावात् सुरलोकवासी
पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी॥

सुपात्र-दानसे मनुष्य धनाढ्य होता है। उस धनका सदुपयोग करके पुण्य उपार्जन करता है। पुण्यसे देवगति मिलती है, वहाँसे वह मनुष्य-जन्म पाकर समृद्धि प्राप्त करता है और उसे भोगता है।

मनुस्मृतिमें भी निरन्तर दान देनेकी प्रेरणा देते हुए लिखा है—

दानेन भोगाः सुलभा भवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
दानेन भूतानि वशीभवन्ति
तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम्॥

दानसे भोग-सामग्री सुलभ रूपसे प्राप्त होती है, वैरका नाश होता है, सभी प्राणी वशमें होते हैं। इसलिये निरन्तर दान देते रहो।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी सात्त्विक दानके सम्बन्धमें कहा है—

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

'देना चाहिये' इस विचारसे देश-काल और पात्रका ध्यान रखते हुए प्रतिफलकी कामनासे रहित होकर जो कुछ दिया जाता है, उसे पण्डितलोग सात्त्विक दान कहते हैं।

एक नीतिकारने तो बहुत ही सुन्दर प्रबोध दिया है—

भिक्षुका नैव याचन्ते न दत्तं धनमर्थिनाम्।
तद्धनं नैव जानामि प्रातः कस्य भविष्यति॥

भिक्षुकलोग जो घर-घर घूमकर याचना कर रहे हैं, वे वास्तवमें मनुष्योंको प्रतिदिन यह बोध दे रहे हैं कि यदि आपको समृद्धिकी कामना है तो दान दीजिये, दान दीजिये। दान नहीं देनेवालेकी क्या स्थिति होती है—इसके उदाहरणरूपमें हम आपके सामने उपस्थित हैं। जो दान नहीं देते हैं, उन्हें हमारे-जैसा फल मिलनेवाला है अर्थात् भीख माँगनी पड़ेगी।

समुद्र जलका केवल संग्रह-ही-संग्रह करता है, इसीलिये

१. किसीको नहीं मारनेकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह रसातलको प्राप्त हुआ है और बादल सबको पानी देते हैं इसलिये आकाशपर चढ़कर गर्जना कर रहे हैं। इस भावको व्यक्त करनेवाला एक पद 'प्रबन्ध-चिन्तामणि'में मिलता है। यथा—

संग्रहैकपरः प्राप्तः समुद्रोऽपि रसातलम्।
दाता तु जलदः पश्य भुवनोपरि गर्जति॥

याचना करनेवाले अर्थात् लेनेवाले वास्तवमें तिरस्कार या दुत्कारने योग्य नहीं, करुणाके पात्र हैं। एक तरहसे वे दाताके लिये उपकारी हैं जो उसे पुण्यका लाभ करवाते हैं। इसलिये एक विद्वान्‌ने कहा है कि याचकके याचना करनेपर दाता हर्षित होता है और दान देकर मनमें प्रसन्न होता है। ऐसे दाताको देखने और सुननेवाले अर्थात् उस दानका अनुमोदन करनेवाले भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं तो दाताको स्वर्ग मिले इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है। वास्तवमें दानका अनुमोदन करनेवालेको भी दाताके समान ही फल मिलता है।

याचितो यः प्रहृष्येत दत्त्वा च प्रीतिमान् भवेत्।
तं दृष्ट्वाप्यथवा श्रुत्वा नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥
फलं यच्छति दातृभ्यो दानं नात्रास्ति संशयः।
फलं तुल्यं ददात्येतदाश्चर्यं त्वनुमोदकम्॥

'अत्रि-संहिता'में लिखा गया है कि दानके समान इस लोक-परलोकमें कोई भी मित्र यानी हितकारक नहीं है—

नास्ति दानात् परं मित्रमिह लोके परत्र च।

'धर्म-कल्पद्रुम'में दानका महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है कि दान दुर्गतिको निवारण करता है, गुणके समूहका विस्तार करता है, कष्टका निवारण करता है, तेजकी संततिको धारण करता है, पापके समूहको नाश करता है, संसार-समुद्रसे पार उतारता है। धर्मकी उन्नतिका कारण है और मोक्षके सुखका भी कारणभूत है, इसलिये दान जगत्‌में सदा विजयी रहे।

दानके पाँच भूषण उपदेश प्रासाद-ग्रन्थमें बतलाये हैं कि १—सत्-पात्रको दान देते समय आनन्दके आँसू बहावे, २—शरीरमें रोमाञ्च हो जाय, ३—मनमें बहुमानकी भावना हो, ४—प्रिय वचन बोले और ५—दानकी अनुमोदना करे। ये दानके पाँच भूषण हैं। इसी तरह दानके पाँच दूषण भी बतलाये हैं—१—अनादरसे दान दिया जाय, २—समयसे न देकर विलम्बसे दिया जाय, ३—मुँह फेर या मचकोड़कर दिया जाय, ४—कटुवचन बोले और ५—दानके बाद पश्चात्ताप करे। ये दानके पाँच दूषण हैं।

दान देकर अभिमान करना, यश और कीर्तिकी कामना करना और प्रतिफलकी आशासे देना, किसीके दबाव या लिहाजसे देना, अपात्रको देना, दान देकर पछताना—ये दानके फलको कम या नाश करनेवाले हैं।

दान-धर्मके माहात्म्यके सम्बन्धमें अनेकों दृष्टान्त और कथाएँ विविध ग्रन्थोंमें पायी जाती हैं। इस तरह दानधर्मका माहात्म्य भारतीय धर्मोंमें बहुत अधिक बतलाया गया है। इससे देनेवालेके परिग्रहका त्याग होता है, चित्त प्रसन्न होता है और लेनेवालेकी भी आवश्यकताएँ पूरी होनेसे उसका जीवन सुखी बनता है।

इस प्रभुकी वस्तुके द्वारा प्रभुका ही कार्य होता रहता है

मेरे देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि सबपर एकमात्र प्रभुका ही पूर्णाधिकार हो गया है। अतएव अब न तो मेरा अपना कोई काम ही रहा है, न कोई कामना ही। ये सभी केवल प्रभुके ही यन्त्र बने सदा-सर्वदा उन्हींके इच्छानुसार काममें लगे रहते हैं। इसलिये अब मेरे द्वारा ऐसा कोई कर्म कभी बनता ही नहीं, जो किसी भी प्राणीके लिये अहितकर हो, जो मेरे लिये किसी भी अच्छे-बुरे फलका उत्पादक हो या जिसके कारण मुझे कहीं जाना-आना पड़े। अब इस प्रभुकी वस्तुके द्वारा प्रभुका ही संकल्प पूरा होता है और प्रभुका ही कार्य होता है। प्रभु ही इसके चलानेवाले हैं और वे ही चलनेवाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महामानव श्रीकृष्ण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लेखक—श्रीमंगलदेवजी शास्त्री आर्योपदेशक)

श्रीकृष्णचन्द्रमें जो विशेष महान् गुण थे, वे किसी महामानवमें ही हो सकते हैं। उनमेंसे कुछ उदात्त गुणोंका हम यहाँ उल्लेख करते हैं—

१— श्रीकृष्णमें कामदेव-जैसी आश्चर्यमयी सुन्दरता और कोमलता, आचार्य बृहस्पति-जैसी प्रतिभा, जनक-जैसा ज्ञान, बुद्ध-जैसी दया और अहिंसा, श्रीराम-जैसा आर्य-संस्कृतिसे प्रेम और सिंह-जैसा महान् पराक्रम था। संक्षेपमें विश्वव्यापी सभी सद्गुण उनमें विद्यमान थे।

२—श्रीकृष्णके प्रत्येक कृत्यमें सर्वाङ्गीण पूर्णता और प्रतिभा थी। मधुरता और वीरता, प्रेम और अनासक्ति, सेवा और श्रेष्ठता, सत्य और सहिष्णुता, निर्भीकता और निर्लोभताकी वे साक्षात् मूर्ति थे।

वीरता—महाभारतमें श्रीकृष्णकी वीरता और शक्तिका अनेक स्थलोंपर वर्णन मिलता है। भीष्मपितामह और अर्जुनके युद्धके समय जब श्रीकृष्णने देखा कि महाप्रतापी भीष्म अपनी बाण-वर्षाकी बाढ़में अर्जुनको बहाये लिये जा रहे हैं, तब अतुल पराक्रमी श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंको उठाते हुए अपना सुदर्शन चक्र ले सिंहके सदृश भीष्मपर टूट पड़े।

शील—श्रीकृष्णके शीलका पता इस बातसे लगता है कि जब वे व्यास, धृतराष्ट्र, कुन्ती और युधिष्ठिर आदि बड़ोंसे मिलते थे, तब सदा उनके चरण छूते थे। देखिये—

कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥

मैं कृष्ण हूँ ऐसा कहकर उन्होंने युधिष्ठिरके चरण-स्पर्श किये। (महा० आदि० पर्व १९०। २०)

संध्या-उपासना—संध्या और हवन श्रीकृष्णके जीवनके महत्त्वपूर्ण नित्यकर्म थे। दूतकर्मपर जाते हुए मार्गमें संध्या-समय होनेपर उन्होंने रथ रुकवाकर संध्या की। हस्तिनापुरमें कौरव-सभामें जानेसे पहले संध्या और अग्निहोत्र किया। युद्धके दिनोंमें भी वे संध्या अवश्य करते थे।

सहिष्णुता—सहिष्णुताके तो श्रीकृष्ण समुद्र ही थे। कंसके अत्याचार सहे, जरासंधके प्रहार झेले और शिशुपालके दुर्वचनोंकी बौछारें तो उनपर अनेकों बार हुईं।

निर्भीकता—श्रीकृष्णके प्रत्येक कार्यमें निर्भीकता और आत्मसम्मान सदा-सर्वदा जाग्रत् रहता था। कौरवोंकी सभामें चारों ओरसे शत्रुओंसे घिर जानेपर भी वे किञ्चित् भी भयभीत नहीं हुए और अपने आत्मसम्मानकी रक्षा बड़ी दृढ़तासे की। और किसी भी प्रकारसे जब दुर्योधन समझानेसे न समझा तो उन्होंने धृतराष्ट्रको सलाह दी—

राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥

'राजन्! आप दुर्योधनको बाँधकर पाण्डवोंसे संधि कर लें। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! ऐसा न हो कि आपके कारण क्षत्रियोंका विनाश हो जाय।' (महा० उद्योग० १२८। ५०)

निर्लोभता—श्रीकृष्णने राज्यक्रान्तियाँ करायीं, परंतु किसी लोभ-लालचसे नहीं। श्रीकृष्णने जो भी देश जीता, उसे अपने अधीन करनेकी चेष्टा कभी नहीं की और न उन्होंने किसी देशको जीतकर अपने भाई-बन्धु-मित्रादिको वहाँका राजा बनाया। कंसका वध करके श्रीकृष्णने उसके पिता उग्रसेनको राज्य दे दिया। इसी भाँति जरासंधका वध करके उसके पुत्र सहदेवको राजा बनाया और भौमासुरको मारकर उसके पुत्र भगदत्तको राज्याधिकार दिया।

नैतिकता—श्रीकृष्णका सम्पूर्ण जीवन नैतिकताके आधारपर प्राणिमात्रका सुख-चिन्तन करते हुए व्यतीत हुआ। अन्तिम बार श्रीकृष्णके सामने एक विकट समस्या आ गयी। उनके ही बन्धु-बान्धव और परिवारके सदस्य और सजातीय लोग इतने उद्दण्ड हो गये कि विश्वमें वे घोर अशान्तिका कारण बने। श्रीकृष्णने जीवनभर विश्व-कल्याणकी कामना की थी, वे अपने ही बान्धवोंके अन्यायको देख न सके। उन्होंने अपने ही हाथों यादवकुलका भी अन्त करा दिया।

नम्रता—राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंकी पूजा और उनके चरण धोनेका कार्य अपने ऊपर लिया। अर्जुनके रथ हाँकनेका कार्य स्वीकार किया। यह उनकी नम्रताके उज्ज्वल उदाहरण हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णके जीवनमें निजी और सार्वजनिक जीवनके आदर्श और उत्कर्षोंका समन्वय हम पाते हैं।

महर्षि दयानन्द और श्रीकृष्ण—श्रीकृष्णजीको अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि—'देखो, श्रीकृष्णचन्द्रका इतिहास महाभारतमें अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषोंके सदृश है, जिसमें कोई अधर्मका आचरण श्रीकृष्णजीने जन्मसे मरण-पर्यन्त कुछ भी बुरा काम किया हो ऐसा नहीं लिखा।' (सत्यार्थप्रकाश ११ वाँ समुल्लास)

उपर्युक्त वाक्यके साथ हम आर्यगण श्रीकृष्ण-चन्द्रजीके परम पावन जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमें अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं और महामहिम महापुरुषको महामानव श्रीकृष्ण कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आदर्श सास

आशारामजी बहुत पैसेवाले आदमी थे। बड़ी इज्जत थी। उनकी साध्वी पत्नीका नाम था गंगाबाई। उनके दो पुत्र थे—मंगलचंद और शिवदयाल। मंगलचंदका विवाह हो गया था। बहू सीता घरमें आ गयी थी। उसका स्वभाव कुछ रूखा था। वह बात-बातपर खीझ जाती, पर भली सास कुछ नहीं बोलती, हँस देती। शिवदयालका विवाह भी हो गया। उसकी पत्नी रामा भी घरमें आ गयी। रामाके पिता पहले बहुत पैसे-वाले थे पर दैवयोगसे उनका काम कच्चा रह गया। अतएव रामा सदा उदास रहती। सोचती, घरमें मेरा अनादर होगा। गरीबकी लड़कीका पैसेवाले ससुरालमें क्यों आदर होगा? परंतु साध्वी गंगाने तथा आशारामजीने अब उसके साथ विशेष स्नेहका बर्ताव आरम्भ कर दिया। मंगलचंदका व्यवहार भी बहुत ही सुन्दर था। पति शिवदयाल अभी पढ़ते थे, पर उनका बर्ताव स्नेहभरा था। परंतु अपने स्वभाववश सीता जेठानी बीच-बीचमें कुछ ताना मारा करती थी। बात यह थी कि रामाके विवाहमें मुँहदिखाई आदिके नौ हजार रुपये आये थे। वे रुपये उसके पिताके पास थे। पिता व्यापारमें नुकसान हो जानेसे उन्हें दे नहीं सके। अतः सीता समय-समयपर रामाके माता-पिताके लिये कुछ-न-कुछ कह दिया करती। सास रोकती, पति भी समझाते, पर उसका स्वभाव ही ऐसा था। रामा चुपचाप रोया करती। एक दिन भली सासने अकेलेमें आकर रामाके हाथमें नोटोंका बंडल दिया और कहा कि 'बेटी! ये रुपये ले जा, लगभग साढ़े दस हजार रुपये हैं। तू इन्हें ले जाकर अपने पिताको दे दे और कह दे कि ब्याजसमेत हमारे रुपये लौटा देवें। तेरे पिता यह न समझें कि उन्हें दान या सहायता दी जा रही है। उनको अब जैसे अभी हमारे घरके रुपये देने हैं, इसके बाद मेरे देने रहेंगे। जब वे देंगे, तभी मैं ले लूँगी। और बेटी! मैं भी लेकर तुम लोगोंको ही तो दूँगी। रथीपर बाँधकर साथ थोड़े ही ले जाऊँगी अतः अगर मैं मर जाऊँ और तेरे पिताजीकी स्थिति उसके बाद रुपये देनेकी हो तो वे तुझे दे दें। मैं इसमें यह बात लिखकर लायी हूँ, तू जाकर अपने पिताजीको दे दे और समझा दे कि वे एक-दो दिनमें ही इनके रुपये लौटा दें।

रामा सासके बर्तावको देखकर दंग रह गयी। उसके आँसू बह चले और उसने सासके चरण पकड़ लिये। वह पिताके पास गयी, रुपये तथा सासका लिखा पत्र दे दिया। उन्होंने बड़े ही संकोचसे रुपये लिये। दूसरे दिन रामाके रुपयोंका हिसाब करके उसके ससुरजीको रुपये भेज दिये। गंगाने यह बात अपने पतिके सिवा बेटोंसे भी नहीं कही। पतिकी तो आज्ञा थी ही। अब सीताका मुँह बंद हो गया। रामा सुखी रहने लगी।

पाँच-छः वर्षों बाद एक व्यापारमें रामाके पिताने रुपये कमा लिये और रामाकी सासके रुपये ब्याजसमेत लौटा दिये गये।

बात-बातमें बहूपर अकारण ही खीझनेवाली, ताना मारने-वाली तथा उसके माता-पिताको खोटी जबान कहनेवाली आजकी सासुएँ इसपर ध्यान देकर अपने जीवनमें परिवर्तन करें।

—हरनारायण

(२)

मुल्लाजीकी मानवता

मेरे स्वर्गवासी पिताजीका देहावसान हुए लगभग बीस वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो चुका है। उस समय मेरी आयु पाँच वर्षसे भी कम थी। उन दिनों हमारे परिवारमें लगभग ३०–३२ प्राणी थे। कृषि एवं शासकीय सेवाके फलस्वरूप अच्छी आय हो जाती थी।

कालान्तरमें हमारी गृहदशामें परिवर्तन होने लगा। ऋणमें वृद्धि तथा आयका अभाव हो गया।

एक दिन हमलोगोंने मिलकर यह निश्चय किया कि अब अलग-अलग होकर भविष्यमें ऋण न बढ़े एवं भूमि भी ज्यों-की-त्यों बनी रहे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। प्रत्येक वस्तुके तीन भाग हुए और ६०००) रु०से अधिक जो ऋण हो चुका था, वह भी २०००) के लगभग प्रत्येकको बाँट दिया गया

मैंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि यह सब होनेवाला है। अतः मैं व्याकुल होकर किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। अन्तमें मैंने आत्मघात-जैसा जघन्य अपराध करनेका विचार किया। मेरी पू० माताजीको यह सब ज्ञात हो गया और उन्होंने कई उदाहरण देकर मुझे इस पापसे बचाया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ खेत (जो मेरे भागमें आये थे) रेहन रखकर मैं ऋण-मुक्त होनेकी योजना कार्यान्वित करने लगा । मेरे हिस्सेमें जो ऋण आया था, उसमें ४००) स्थानीय ग्रामके एक मुल्लाजीके भी थे । किसी समय उनकी दूकान सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी; किंतु इन दिनों उनकी भी वह दूकान नष्टप्राय-सी हो गयी । कठिनाईसे तीस-चालीस रुपये मासिक आय हो जाती होगी ।

जब मैं ४००) उनके सामने रखकर बोला—'मुल्लाजी साहेब! लीजिये यह रुपये हमारे (सम्मिलित समयके) खातेमें जमा कर लीजिये!' वे अपनी बही उठाकर पन्ने उलटने लगे । अचानक उनके हाथ स्तब्ध-से रह गये और न जाने क्यों उनकी आँखोंसे अश्रु-बिन्दु निकलकर श्वेत-श्याम दाढ़ीमें विलीन होने लगे । मैं समझ नहीं सका कि यह सब क्यों हो रहा है ।

जैसे-तैसे उन्होंने वे ४००) रु० मेरे हाथमें रखते हुए भर्रायी हुई आवाजसे कहा—'भाई मनोहरलाल! तुम्हारे पिताजी-का और मेरा बड़ा दोस्ताना था। उन्होंने एक बार ३००) मुझे रखनेके लिये दिये थे, जिनका कोई लिखतन आदि नहीं है । तबसे आजतकके सूदको तो मैं नहीं दे सकता, परंतु अब ये ४००) मैं तुमसे नहीं लूँगा ।' यों कहकर वे गम्भीर हो गये । मैं भी अपने-आपको सँभाल नहीं सका और भीगी आँखोंसे घर लौट आया ।

जब कभी भी वे मुल्लाजी मुझे मिल जाते हैं श्रद्धासे मेरा मस्तक अपने आप झुक जाता है । इसलिये नहीं कि उन्होंने मेरे रुपये लौटा दिये—परंतु इसलिये कि आजके युगमें भी ऐसी मानवता वर्तमान है ।

—मनोहर शर्मा 'विशारद' पोलायकलाँ

(३)

प्रभुकी कृपा

जीवनमें ऐसे भी क्षण आते हैं जब हम चारों ओरसे निराश होकर परमपिता परमात्माको आर्त होकर पुकार उठते हैं और प्रभु तत्क्षण हमें अपनी मङ्गलमयी कृपाके द्वारा विपत्तियोंसे उबार लेते हैं ।

ऐसी ही एक सत्य घटना है, जो अभी-अभी कुछ समय पूर्व मेरे जीवनमें घटित हुई—

मेरे पति रेलवेमें एक उच्चपदस्थ कर्मचारी हैं । जब उन्हें इस जगहका नियुक्ति-पत्र मिला, तब उसकी एक धाराके अनुसार एक बड़ी लंबी धनराशि जमा करनी थी । नियुक्तिकी समस्त धाराएँ स्वीकार करनेपर ही उस पद-पर नियुक्ति हुई । अनेक परिश्रम और प्रयत्न करनेके पश्चात् बड़ी कठिनतासे उस धनराशिका केवल आधा भाग ही जमा करवाया जा सका; शेष आधेके लिये उच्चाधिकारीने एक मासका समय दिया और यह सूचना दी कि 'शेष धनका प्रबन्ध यदि न हुआ तो आप उस पदसे हटा दिये जायँगे।' पर लाख प्रयत्न करनेपर भी उस धनराशिका प्रबन्ध न हो सका । हमारा दोनोंका बुरा हाल था । कहींसे भी आशाकी एक भी किरण न दिखायी दी । दिवालीका दिन था और हमारा मन बड़ा खिन्न था । हम निराश होकर रो-रोकर अपने प्रभुको पुकार रहे थे । जीवनमें इतनी निराशा और फीकी दिवाली कभी नहीं आयी थी । वापस जाना अच्छा नहीं लग रहा था और यदि दो दिनमें रुपयोंका प्रबन्ध न हो सका तो पदच्युत होना निश्चित ही था ।

मन अत्यन्त उदास था, पर भगवान्‌के ऊपर हमारा दृढ़ विश्वास था कि कोई-न-कोई दैवी शक्ति हमें इस संकटसे उबार लेगी । ठीक इसी समय, जब हम दोनोंकी मनोदशा दयनीय थी, तभी एक सज्जन हमारे घरपर आये और उन्होंने हमारे विश्वासको बल दिया और यह आश्वासन दिया कि 'चिन्ता त्यागकर ईश्वरसे प्रार्थना करो—प्रभु जो करेंगे वह मङ्गलमय ही होगा ।' हम आर्त होकर प्रभुसे प्रार्थना करते रहे और उन्होंने हमारी पुकार सुनी ही नहीं, हमें आश्चर्यमें डालकर सभी कष्टोंको मिटाकर परम आनन्द प्रदान किया । ठीक दिवालीके दो ही दिन बाद एक सूचनाद्वारा यह समाचार मिला कि 'जिस धनराशिका जमा कराना नियुक्ति-पत्रकी धाराके अनुसार आवश्यक था, वह धनराशि आधी कर दी गयी ।' इस समाचारसे हमारे आनन्दकी सीमा न रही ।

उस परम प्रभुकी कृपाके साक्षात् दर्शनकर हम धन्य हो गये । मेरा यह अटल विश्वास है कि प्रभुसे यदि सच्चे मनसे प्रार्थना की जाय और आर्त होकर प्रभुको पुकारा जाय तो वे अवश्य ही प्रार्थना सुनेंगे । चाहिये प्रार्थनामें सच्ची आर्तता और प्रभुमें अटल विश्वास ।

—श्रीमती प्रेमलता चतुर्वेदी प्रभाकर

(४)

गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी) की दवा

घरमें गॉलब्लैडर (पित्त-पथरी) की बीमारी हो गयी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत ता० १३ । ५ । ५९ को एक्सरे लिया तो नौ पत्थर थे। कलकत्ते-बंबईमें बड़े-बड़े डाक्टरोंको दिखलाया गया। सबने यही कहा कि 'ऑपरेशनके बिना रोग अच्छा नहीं होगा। कोई भी दवा काम नहीं करेगी।' तदनन्तर लगभग सालभर पहले श्रावणमें श्रीवैद्यनाथजी वैद्यसे बात हुई। उन्होंने कहा—'नारियलके फूल २१, काली मिर्च ७ के साथ पानीमें पीसकर उसे पिलाओ।' दस महीने लगातार यह दवा दोनों समय दी गयी। फिर, बद्रीनारायण-यात्रामें चले जानेसे दवा बंद रही। यात्रासे लौटनेपर बम्बईमें एक्सरे कराया गया तब पता लगा कि 'तीन पत्थर तो बिल्कुल ही नहीं हैं। दूसरे पत्थर भी घिस गये हैं।' नौ पत्थर चनेके दानेसे भी बड़े-बड़े थे। सारे शरीरमें खास करके छातीमें बड़े जोरका दर्द रहता था। बीच-बीचमें हिचकियाँ आती थीं। यह सब उपद्रव शान्त हो गये। एक्सरेका परिणाम देखकर डाक्टरने कहा कि हमारे यहाँ ऐसी कोई दवा नहीं है जो इतने बड़े पत्थरोंको गला दे। वे आश्चर्य कर रहे थे।

जहाँ नारियल होते हैं, वहाँ नारियलके बीज आसानीसे मिल जाते हैं, एक बड़ा सिट्टा-सा होता है, जो ऊपरसे बंद रहता है। तोड़कर रख देनेसे वह पाँच-सात दिनोंमें अपने आप फट जाता है। ऐसे एक सिट्टेमें लगभग एक सेरसे अधिक फूल निकलते हैं, जो दवाके काममें लिये जाते हैं।

मैंने यह अपने अनुभवकी बात लिखी है। लोग प्रयोग करके देखें।

—ओंकारमल पोद्दार

(५)

आर्त पुकारसे प्राणरक्षा

सन् १९४६ ईस्वीका समय था। उस समय बंगालमें सुहरावर्दीके मुख्य मन्त्रित्वका बोलबाला था। उनके मन्त्रित्वका मुख्य उद्देश्य था हिंदुओंके ऊपर मनमाना अत्याचार करना, जिससे हिंदुओंकी जड़ बंगालसे एकदम उखड़ जाय। १६ अगस्त १९४६ ई०की उनकी काली करतूत किसी अत्याचारी शासकके अत्याचारको भी मात करती है। उनका अत्याचार नोआखालीतक बढ़ता गया। इसका नतीजा यह हुआ कि बगलके प्रदेश बिहार और संयुक्तप्रान्तमें भी साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गये।

उस समय मैं मैजिस्ट्रेट था और मेरी बहाली एक वर्ष पहले हुई थी। हमारे शहरमें भी दंगा हुआ और हमें सशस्त्र पुलिसके साथ एक मुहल्लेमें जाना पड़ा तथा वहाँ हमें एक महीनेतक रहना पड़ा। वहाँ मैंने हिंदू और मुसल्मान दोनोंकी जानें बचायीं। इसलिये मुहल्लेके लोगोंने कलक्टर साहबसे कहकर उस मुहल्लेसे मेरा जाना कुछ दिनोंके लिये रोकवा दिया।

उस मुहल्लेमें एक दिन मुझे एक सुनसान कोठरीमें जानेका अवसर मिला, जिसमें कुछ पुराने बोरे भरे थे। मैं दीवालकी जड़में दरवाजेके मुँहपर थोड़ी देर खड़ा रहा। इतनेहीमें देखता हूँ कि एक गेहुँवन साँप करीब तीन-साढ़े तीन हाथका बोरोंसे निकला। उसे देखते ही मेरे होश उड़ गये। काटो तो बदनमें खून नहीं। मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। किसी तरह वहाँसे भागनेकी भी सुविधा नहीं थी। उसे मारना भी सम्भव नहीं था। कोठरीसे भाग निकलनेमें खतरा था कि साँप यह समझकर कहीं डस ले कि यह मनुष्य मुझे मारने आ रहा है। करीब एक मिनटतक इस हालतमें रहा। तब मैंने अपने मनमें यह सोचा कि अब भगवान्‌को छोड़कर मुझे कोई नहीं बचा सकता है और मैंने निम्नलिखित श्लोकको मन-ही-मन पढ़ना शुरू किया—

ॐ या त्वरा द्रौपदीत्राणे या त्वरा गजरक्षणे।
मय्यार्ते करुणामूर्ते! स त्वरा क्व गता हरे॥

एक मिनिट बाद ही साँप वहाँसे बिलमें चला गया, इसके बाद मैं वहाँसे भागा।

× × ×

—श्रीबनारसीप्रसाद सिंह डि० मैजिस्ट्रेट एवं डि० कलक्टर

मेरेद्वारा भगवान् ही बोल रहे हैं

मेरे द्वारा बोल रहे हैं केवल मेरे वे भगवान।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मुरलीकी तान॥
मेरे जीवनमें है अब तो एकमात्र उनका ही स्थान।
अतः उन्हींकी होती मुझमें क्रिया नित्य सब क्षुद्र महान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रकाशित हो गया !! प्रकाशित हो गया !!
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधवासी महात्मा श्रीअंजनीनन्दनशरणजीद्वारा सम्पादित

मानस-पीयूष खण्ड ४ का तीसरा संस्करण

(सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड)

आकार डबल क्राउन आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ११९६, पूरे कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ग्यारह रुपया मात्र। डाकखर्च अलग। एकसे अधिक प्रतियाँ मँगानेवालोंको अपने निकटस्थ रेलवे स्टेशनका नाम लिखना चाहिये अथवा स्थानीय पुस्तक-विक्रेताके द्वारा प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

अयोध्यानिवासी महात्मा श्रीअंजनीनन्दनशरणजीने मानस-पीयूषके अधिकाधिक प्रचारकी दृष्टिसे अपने पास बचा-खुचा जो स्टाक इसके पुनर्मुद्रणके सर्वाधिकार (कापी राइट) सहित गीताप्रेसको दिया था, उसमें अयोध्याकाण्ड प्रायः कुछ नहीं था। अनेक प्रेमी सज्जन इसके शीघ्र प्रकाशनके लिये बार-बार तकाजा करते थे, परंतु विशेष चेष्टा करनेपर भी अनेक कारणोंसे यह बृहद् ग्रन्थ इससे पहले तैयार न हो पाया।

इस अयोध्याकाण्डके दो संस्करण पहले श्रीअयोध्याजीसे निकल चुके हैं, जिनका मूल्य अयोध्याकाण्ड पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धके नामसे क्रमशः बारह और आठ रुपये अजिल्द प्रतियोंके थे। गीताप्रेसके द्वारा इस तीसरे संस्करणमें सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड एक जिल्दमें छापकर सजिल्द प्रतिका मूल्य केवल ग्यारह रुपया रक्खा गया है। बाद कमीशन .६९ बाकी १०.३१ डाकखर्च २.९४

आशा है कि मानस-प्रेमी पाठक इससे विशेष लाभ उठा सकेंगे।

मानस-पीयूष बालकाण्ड (प्रथम खण्ड)

जो प्रारम्भसे दोहा ४३ तक गीताप्रेससे प्रकाशित हो चुका है। पृष्ठ-संख्या ६८८, सजिल्द, मूल्य रु० ७.५० (साढ़े सात रुपया) है। डाकखर्च १.९०।

अन्य सब खण्ड इस समय समाप्तप्राय हैं। केवल लङ्काकाण्ड मिल सकता है, जिसका मूल्य रु० ६.५० (साढ़े छः रुपया) है। डाकखर्च २.१०।

संस्कृति-मालाके दो भाग

सम्मान्य क० पं० श्रीशुकदेवजी पाण्डे (मन्त्री, बिड़ला-शिक्षा-ट्रस्ट, पिलानी) ने कक्षा ३ से ८ तकके विद्यार्थियोंके लिये 'संस्कृति-माला'के छः भाग कृपापूर्वक अपने यहाँके आदरणीय विद्वान् लेखक-लेखिकाओंसे लिखवाकर भेजे थे। उनमेंसे दो भाग कक्षा ३ और ४ के लिये उपयोगी भाग १ और २ छप गये हैं। इनकी लेखिका हैं—श्रीमती प्रेमा सरीन एम्० ए०।

भाग १—कक्षा ३ के लिये

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ ४८, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मूल्य .२० नये पैसे। डाक-खर्च अलग।

इसमें रामायण, महाभारत, श्रवणकुमार, प्रह्लाद, ध्रुव, सती सावित्री तथा पालनीय नियमके सात पाठ हैं।

भाग २—कक्षा ४ के लिये

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ ५६, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मूल्य .२५ नये पैसे। डाक-खर्च अलग।

इसमें सत्यकाम जाबाल, महाशाल शौनक और अंगिरा, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी, नचिकेता, इन्द्र-विरोचन, श्रीकृष्ण, भक्त हनुमान, भीष्मपितामह, युधिष्ठिर, एकलव्य और पालनीय नियम—ये ग्यारह पाठ हैं। आशा है कि इन सस्ती तथा उपयोगी पुस्तकोंसे शिक्षा-जगत्में लाभ उठाया जायगा।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

किन्हीं सज्जनके पास विक्रम संवत् १७०० से पूर्वकी अथवा १७०० के कुछ वर्षों बादकी गो० श्रीतुलसीदासजी रचित श्रीरामचरितमानसकी पूरी (सातों काण्ड) या अधूरी (कुछ काण्ड) प्रति हो, तो वे हमें कृपया प्रदान करें। डाकखर्च यहाँसे दिया जायगा और हम बड़े कृतज्ञ होंगे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार गीताप्रेस, गोरखपुर

पंजाब सरकारकी सेंट्रल लाइब्रेरी कमीटीद्वारा 'कल्याण'को मान्यता-प्रदान

अध्यक्ष, सेंट्रल लाइब्रेरी कमीटी, पंजाबने अपने आदेश संख्या—1120—11470—PRD—LIB—50—60। 9662—9664 चंडीगढ़, दिनाङ्क २-८-१९६० द्वारा पंजाब राज्यके पंचायत-विभाग, शिक्षा-विभाग, विकास-विभाग, स्वायत्त-शासन-विभाग तथा जन-सम्पर्क-विभागके अधिकारियोंको सूचित किया है कि हिंदी मासिकपत्र 'कल्याण' पंजाब प्रदेशके सरकारी पुस्तकालयोंके लिये स्वीकृत किया गया है। उसका वार्षिक मूल्य ७.५० (साढ़े सात रुपया) है।

आशा है कि सम्बन्धित अधिकारीगण अपने-अपने पुस्तकालयोंमें मासिक 'कल्याण'का अधिकाधिक उपयोग करनेकी कृपा करेंगे।

चालू वर्षके नये बननेवाले ग्राहकोंकी सेवामें निवेदन

संक्षिप्त देवी-भागवताङ्कके दूसरे संस्करणका भी अधिकांश बिक गया है। साथ ही साधारण अङ्क सं० २ से ८ तक भी समाप्तप्राय हैं।

नये बननेवाले ग्राहकोंको 'संक्षिप्त देवी-भागवताङ्क'के साथ सं० २ से ८ तकके साधारण अङ्क पिछले वर्षोंके तथा सं० ९ से चालू वर्षके अङ्क मिल सकते हैं। नये बननेवाले ग्राहकोंको यह बात समझकर ही आर्डर देना चाहिये।

केवल संक्षिप्त देवी-भागवताङ्कका मूल्य भी ७.५० (साढ़े सात रुपया) ही है। सजिल्दका ८.७५

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (हिंदी-टीकासहित)

'मासिक महा भारत'के पाँचवें वर्षमें जनवरी १९६० से प्रतिमास श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके लगभग २००० श्लोक हिंदी-टीकासहित निकलते हैं। प्रत्येक अङ्कमें १ बहुरंगा तथा ४ इकरंगे चित्र भी दिये जाते हैं। यदि किसी अङ्कमें एक सादा कम जा पाता है तो अगले अङ्कमें अधिक देकर उसकी पूर्ति कर दी जाती है। अगस्त १९६० तक आठ अङ्क निकल चुके हैं। इस प्रकार दिसम्बरतक पूरा ग्रन्थ जो लगभग २४००० श्लोकोंका है, निकल जानेकी आशा है।

पूरे वर्षका मूल्य [illegible] डाकखर्च सहित। रामायणप्रेमी सज्जन इस योजनासे लाभ उठानेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक—'मासिक महा भारत' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष २०१७, दिसम्बर १९६०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–हनूमान्‌को भगवान् श्रीरामका आलिङ्गन-दान [कविता] ···	१३४५
२–कल्याण ('शिव') ···	१३४६
३–एक महात्माका प्रसाद (पूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके जयपुरमें हुए एक प्रवचनका सार, प्रेषक—श्री-कुञ्जबिहारी अग्रवाल) ···	१३४७
४–जीवोंके जीवनमें ज्योति [कविता] (श्री-कृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ··· ···	१३४९
५–संयमसे आत्मोद्धार (श्रद्धेय श्री-जयदयालजी गोयन्दका) ···	१३५०
६–सच्चा समर्पण कैसा हो ? (श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम, पांडिचेरी) ···	१३५४
७–अनोखा प्यार ! [कविता] ···	१३५५
८–भौतिक विज्ञान कैसे आसुरी होता जा रहा है ? (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) ··· ···	१३५६
९–तेरी इच्छामें ही मेरी इच्छा [कविता] (श्रीमधुसूदनजी :वाजपेयी) ···	१३६१
१०–सद्विचारोंका विकास (विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवशास्त्रीजी) ···	१३६२
११–श्रीजीका पुरुषकारत्व (श्रीश्रीकान्तशरण-जी महाराज, समस्त तुलसीसाहित्यके विशद व्याख्याकार) ···	१३६३
१२–सृष्टिका सौन्दर्य (श्रीशारदाशंकरजी कोचक)	१३६७
१३–मधुर ··· ···	१३६८
१४–मधुर प्रेम [कविता] ···	१३६८
१५–श्रीविष्णु-माया (पं० श्रीकोशलेशजी भारद्वाज, एम्० ए०) ···	१३६९
१६–प्रेम-धर्म [कविता] ···	१३७५
१७–धन और सांसारिक वस्तुओंकी चिन्तासे पागलपन और मृत्यु (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	१३७६
१८–अचौर्य [कहानी] (श्री'चक्र') ···	१३७९
१९–मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् ही मेरे हैं ···	१३८१
२०–उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्द-दासजी, श्रीमती श्रीरत्नकुमारी देवी, श्री-गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव) ···	१३८२
२१–सदा सर्वत्र एक ईश्वर ही सत्य है ···	१३८७
२२–भविष्यपुराणकी रमणीयता (पं० श्री-जानकीनाथजी शर्मा) ···	१३८८
२३–पातिव्रत धर्मकी सार्वभौमिकता (श्री-राजेन्द्रप्रसादजी जैन एम्०ए०,एल्०टी०)	१३९३
२४–क्या करूँ ? (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त'हरि')	१४००
२५–परमार्थ-पत्रावली (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) ··· ···	१४०१
२६–जिज्ञासा [कविता] (पाण्डेय पं० श्री-रामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ···	१४०३
२७–सांस्कृतिक कार्यक्रमके नामपर पतन (पं० श्रीभवानीलालजी भारतीय एम्० ए० वाचस्पतिके लेखसे) ···	१४०४
२८–पढ़ो, समझो और करो ···	१४०६
२९–कण्टक न सींचा कर [कविता] (महात्मा श्री-'निरञ्जन'जी प्रे०–श्रीजगदीशनारायण शर्मा)	१४०८

चित्र-सूची

१–मुरलीधर श्रीकृष्ण	(रेखाचित्र) ···	मुखपृष्ठ
२–हनूमान्‌को भगवान् श्रीरामका आलिङ्गनदान	(तिरंगा) ···	१३४५

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५१
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

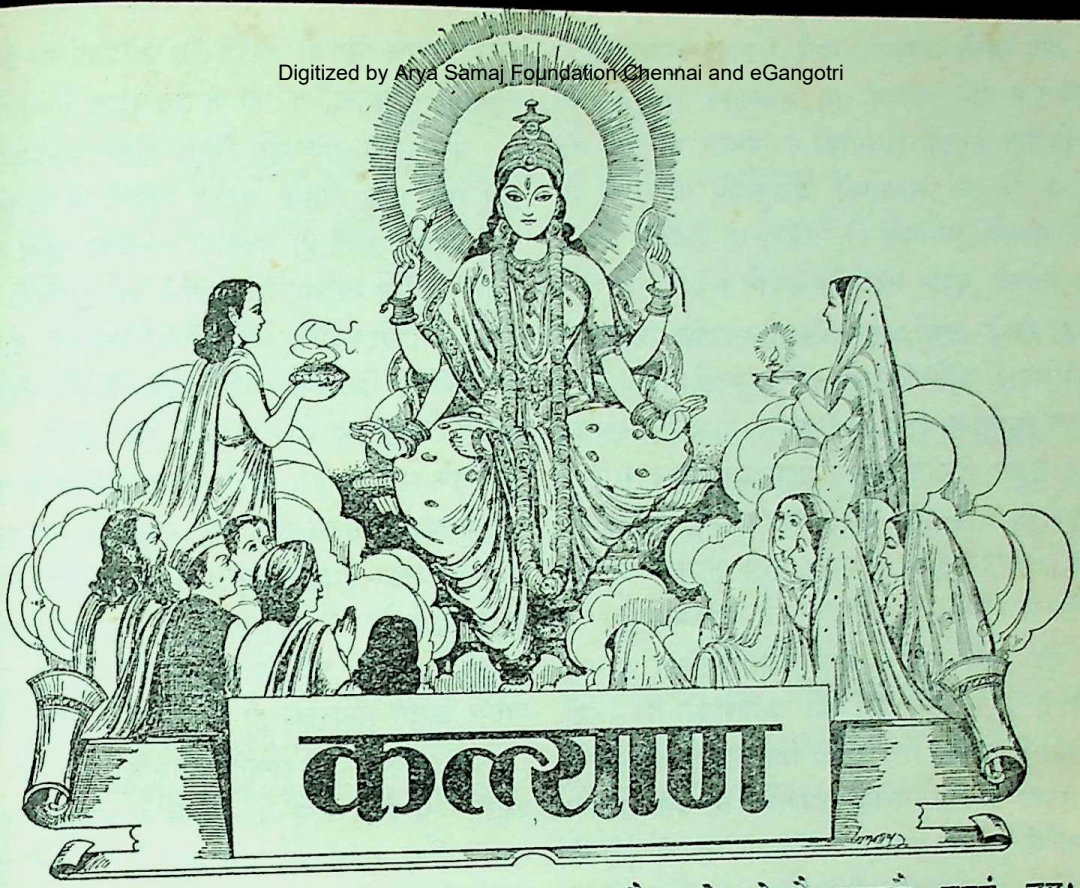

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः । भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥
कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः । सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥

वर्ष ३४ } गोरखपुर, सौर पौष २०१७, दिसम्बर १९६० { संख्या १२ पूर्ण संख्या ४०९

हनूमान्‌को भगवान् श्रीरामका आलिङ्गन-दान

'पता लगाकर सीताका खुद मिलकर हैं आये हनुमान ।
मेरे, लक्ष्मणके, रघुकुलके रक्षक परम महाबलवान ॥
वस्तु न मेरे पास योग्य, दूँ जिसको इन्हें आज उपहार ।
ऋणसे मुक्त हो नहीं सकता मैं कदापि, कर चुका विचार ॥
आज इस समय मैं देता हूँ इनको बस, आलिङ्गन-दान ।
मेरा यह सर्वस्व, महात्मा इससे हों प्रसन्न हनुमान' ॥
(यों कह–) पुलकित हुए अंग सब, उमड़ा राघवके मन प्रेमानन्य ।
किया कृतात्मा सेवकको दे गाढ़ालिङ्गन प्रभुने धन्य ॥

(वाल्मीकि० युद्ध० सर्ग १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—जबतक तुम्हारे जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान् न होंगे, जबतक तुम भगवान्के सम्मुख होकर उनको प्राप्त करनेके साधनोंको न स्वीकार कर लोगे और जबतक तुम उन साधनोंको क्रियारूपमें परिणत न कर दोगे, तबतक तुम कभी भी, किसी भी स्थितिमें शान्ति-सुख-संतोषके दर्शन नहीं कर सकोगे।

याद रक्खो—अपूर्ण, अनित्य और परिवर्तनशील जगत्प्रपञ्चके प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें कभी शान्ति-सुख हैं ही नहीं; उनमें निरन्तर अपूर्णताका दुःख, नष्ट हो जानेका दुःख और बदल जानेका दुःख लगा ही रहता है। सच्चा सुख एकमात्र नित्य निरतिशय परिपूर्णतम, अविनाशी, सदा अखण्ड एकरस श्रीभगवान्में ही है। अतएव उन्हींको जीवनका लक्ष्य बनाकर, उन्हींकी प्राप्तिके साधनोंको स्वीकारकर तदनुसार जीवन बनाओ।

याद रक्खो—कोई भी मनुष्य किसी स्थानपर पहुँचना चाहे तो उसके लिये तीन बातें परमावश्यक हैं—जहाँ पहुँचना है, उसको याद रक्खे; जिस रास्तेसे वहाँ पहुँचा जा सकता है उसी रास्तेको अपनावे और उसी रास्तेपर चलता रहे। लक्ष्य-स्थान याद न रहा, तब तो कुछ भी नहीं होगा। वह जायगा ही कहाँ। लक्ष्य याद भी रहा, पर यदि विपरीत—उल्टे मार्गको स्वीकार कर लिया, तब भी वहाँ नहीं पहुँच सकता, एवं यदि ठीक रास्तेपर होनेपर भी चले नहीं—रुका ही रहे, तब भी पहुँचना सम्भव नहीं। अतएव लक्ष्यको भूलो मत, निरन्तर याद रक्खो; लक्ष्यसिद्धिके साधनको स्वीकार करो और उस साधनको अपनी शक्तिके अनुसार सावधानीसे करते रहो।

याद रक्खो—भगवान्की ओर मुख करके उनके मार्गपर चलना आरम्भ कर दोगे तो जितना ही आगे बढ़ोगे उतनी ही चलनेकी शक्ति बढ़ेगी, उतने ही अच्छे-अच्छे सदा सहायता तथा सेवा करनेवाले प्रिय साथी मिलेंगे, उत्तरोत्तर उत्तम सुखमय मार्ग मिलेगा, प्रकाश मिलेगा, स्वस्थता मिलेगी, दैवी-सम्पत्तिपर अधिकार होता जायगा और सहज ही सच्चे शान्ति-सुख बढ़ते रहेंगे; क्योंकि वह मार्ग ही ऐसा है, जिसपर दैवी सम्पदासम्पन्न पुरुष ही जाते हैं और वहाँ उत्तरोत्तर अधिकसे-अधिक दैवीसम्पत्तिका ही आदान-प्रदान चलता है।

याद रक्खो—भगवान्से विमुख होकर भोग-जगत्की ओर मुख करके उसके मार्गपर चलोगे तो जितना ही आगे बढ़ोगे, उतनी ही सात्त्विकी शक्तिका ह्रास होगा, उतने ही नीच नराधम, सदा सताने तथा लूटनेवाले चोर, ठग, लुटेरे, बदमाशोंका संग मिलेगा, उत्तरोत्तर दुःखमय मार्ग मिलेगा, कंकड़-पत्थर-काँटे-गड़हे मिलेंगे, अन्धकार मिलेगा, मानसिक और शारीरिक रोग मिलेंगे, आसुरी सम्पत्तिके सारे दुर्गुण, दुर्विचार, दुष्कर्म आकर तुमपर अपना एकाधिकार कर लेंगे और सहज ही तुम असीम अशान्ति, अपार दुःखोंके स्वरूप ही बन जाओगे; क्योंकि वह रास्ता ही ऐसा है जहाँ आसुरी सम्पत्तिका ही उत्तरोत्तर अधिक विस्तार है, वहाँ वैसे ही लोग रहते हैं और उनमें परस्पर आसुरी सम्पदाका ही आदान-प्रदान चलता है।

याद रक्खो—दैवी-सम्पत्ति मोक्षके लिये है और आसुरी बन्धनके लिये। दैवी-सम्पदावालोंके साथ सदा शान्ति, सत्कर्म तथा सुख रहते हैं। वे यहाँ सुख-शान्तिपूर्वक पुण्य कर्म करते हुए भगवान्को प्राप्त होते हैं और आसुरी सम्पदावालोंके साथ सदा अशान्ति, पाप और दुःख रहते हैं। वे जीवनभर चिन्ताग्रस्त अशान्त जीवन बिताते हुए कुकर्ममें निरत रहते हैं और अन्तमें नरकोंको प्राप्त होते हैं। दैवी-सम्पदा भगवत्प्राप्तिका मार्ग है और आसुरी सम्पदा नरकप्राप्तिका।

याद रक्खो—असुरोंको अपार वैभव, जागतिक प्रचुर सम्पत्ति, विस्तृत अधिकार, परम उच्चपद और लौकिक यश-कीर्त्ति आदि पदार्थ मिल सकते हैं, पर इनसे उन्हें सच्ची शान्ति, सच्चा सुख कदापि नहीं मिल सकता; वे जीवनभर जलते ही रहते हैं और दुष्कर्मपरायण रहकर अन्तमें भीषण यन्त्रणा—ज्वालामय नरकोंमें पड़ते हैं। अतएव सच्चे सुखस्वरूप भगवान्को ही जीवनका एकमात्र साध्य बनाओ और उन्हींकी प्राप्तिके लिये सावधानी तथा एकनिष्ठाके साथ तदनुकूल साधनोंमें सदा तत्पर रहो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

(पूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजके जयपुरमें हुए एक प्रवचनका सार)

मैं आज आपको एक बड़ी सुन्दर बात बता रहा हूँ। 'सुख जानेसे अमङ्गल नहीं होता और दुःखके आनेसे किसीका अहित नहीं होता' ऐसा विचार करनेपर बहुत बड़ी सामर्थ्य आती है। सुख-दुःख जीवन नहीं हैं; क्योंकि सदैव नहीं रहते। अतः सुख-दुःखके परेके जीवनकी जिज्ञासा करो।

लोग केवल मुँहसे कहते हैं कि 'ईश्वर है' लेकिन उस ईश्वरमें विश्वास कहाँ है? विश्वास है परिवार-जनोंमें, जेबके नोटोंमें, क्षणभङ्गुर शरीरमें। यदि वास्तवमें तुम ईश्वरको मानते हो तो उसपर विश्वास करो। यह अभ्यास-साध्य नहीं है। ईश्वर है, इसके लिये कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता। विश्वास करना पड़ता है, जो स्वयंके द्वारा ही हो सकता है।

संदेहकी पीड़ामें जिज्ञासाकी जागृति होती है। मोहमुक्त प्राणीकी सेवा मोहरहित होनेपर, कामयुक्त प्राणीकी सेवा कामरहित होनेपर ही की जा सकती है।

जब प्राणी दुखी होता है, तब साधुकी माँग होती है।

एक बार मैं रेलमें बैठकर कहीं जा रहा था। मेरे पास एक प्रतिष्ठित विद्वान् बैठे थे—बेचारे बड़े दुखी थे। उनके जीवनमें साधुकी माँग हो रही थी। मुझसे जब वार्तालाप करनेका अवसर मिला, तब उन्होंने बताया कि 'अमुक प्राणी चल बसा। वह बड़ा अच्छा सदाचारी, प्यार करनेवाला था।' मैंने तुरंत कहा—'वह सदाचारी था तो तुम भी सदाचारी क्यों न बन जाओ। वह प्यार करनेवाला था तो तुम भी प्यार करनेवाले क्यों नहीं बन जाते, जिससे सब लोग तुमको चाहने लगें।' वे विद्वान् तो थे ही—उन्होंने तुरंत मान लिया कि उदारता, निष्कामता प्यारसे अभिन्न हो सकती है। वे कहने लगे कि 'आपने बहुत अच्छा बतलाया। ऐसा विचार करनेसे तो मेरा दुःख कम होता है।' हाँ, तो दुखी प्राणीके हृदयमें ही साधुकी माँग होती है।

लोभसे पीड़ित प्राणी ही डाके डाल सकता है। जिस व्यथासे आप स्वयं पीडित हैं, क्या आप किसी दूसरेकी वैसी व्यथा मिटाकर उसे सुखी और स्वाधीन बना सकते हैं? जिस प्राप्त जानकारीसे आप अपनी व्यथा नहीं मिटा सकते, क्या उस जानकारीको संसारमें लाकर आप दूसरोंकी सेवा कर सकते हैं? कदापि नहीं।

समाज आपके सिद्धान्तोंको नहीं देखता। समाज तो आपकी सुन्दरताको देखना चाहता है। आजकी दशा यह हो गयी है कि क्रोधपीड़ित प्राणी क्रोधरहित प्राणीके जीवनका दर्शन करना चाहता है; किंतु व्याख्यान किसीको सुन्दर नहीं बना सकता। जो मिला है वह अपना नहीं है, वह प्रभुका दिया हुआ है—ऐसा विचार करनेसे हम सुन्दर हो सकते हैं।

यदि तुम सुखी होना चाहते हो तो दूसरेके सुखको बरदाश्त करो। दूसरेका सुख सहन नहीं कर सकते तो क्या दुखियोंको देखकर करुणार्द्र हो सकते हो?

साधकको सत्यकी खोज अपमान और दुःख होनेपर ही मिलती है। यदि स्वयं भूखे रहकर, दूसरेको भोजन करते देखकर प्रसन्न नहीं हो सकते तो क्या सत्यकी खोज कर सकते हो? सत्यकी खोजमें सुखियोंको देखकर प्रसन्न होना और दुखियोंको देखकर करुणार्द्र होना सबसे आवश्यक है।

समाजमें जब-जब क्रान्ति आयी है, तब-तब पद-लोलुपताका विरोध हुआ है। हम सेवा नहीं करते, भोग करनेका ढोंग करते हैं। आप मानव हैं। मानव होनेके नाते सेवा कर सकते हैं। समाजको आपकी सुन्दरताकी आवश्यकता है, सिद्धान्तोंकी नहीं। इसलिये अपनेको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर बनाओ। बादमें संसार सुन्दर नहीं बनता। संसार सुन्दर बनता है सुन्दर जीवनसे।

अपने दुःखको बरदाश्त करोगे तो क्या मोहसे पीड़ित हृदयमें मोहका नाश नहीं होगा? मोहके नाश न होनेका कारण यह है कि आपको मोह नाश करनेकी उतनी पीड़ा नहीं है, जितनी होनी चाहिये।

सेवाका असली अर्थ है—निर्धनताकी व्यथाको न देख सकना। मानव होकर क्या मानवकी सम्पत्ति नहीं देख सकते? निर्धनता मिली है धनकी वासना त्याग करनेके लिये। यदि आपको धनियोंको आकर्षित करना है तो धनकी वासना छोड़ दो। जिसको आकर्षित करना है उसकी वासना छोड़ दो। जो कुछ नहीं चाहता, उसको सब चाहते हैं। मनुष्य शान्त, स्वाधीनता, प्रेमका पुजारी है। जहाँपर वह इन चीजोंका दर्शन कर पायेगा वह उसीको अपना लेगा।

अपनेको सुन्दर बनानेमें यह सोचो कि आप किसीके क्या काम आ सकते हैं? जो दूसरोंके काम आ सकते हैं या आ जाते हैं, वे सुन्दर बन जाते हैं। इसलिये जिनको ईश्वरवादी होना है, वे यह सोचें कि हम ईश्वरके क्या काम आ सकते हैं? जिसके द्वारा जो चीज मिलती है तो चीज प्यारी होनी चाहिये या वह व्यक्ति, जिसके द्वारा वह मिली है। ईश्वरकी कृपासे बेटा मिल गया तो बेटा प्यारा होना चाहिये कि ईश्वर?

जिसको तुम चाहते हो उससे कुछ भी न चाहोगे, तभी न उसका प्यार मिलेगा। प्रभु, भूखा होनेपर क्या भूखा ही रहूँगा, प्यारा कमजोर तो है नहीं, जो दे नहीं सकता। लेकिन प्यारमें इतनी गुंजाइश नहीं है, वहाँ तो 'सब कुछ लो, प्यार दो।' प्रभु प्रेमके पुजारी हैं, प्रेमके रसिक हैं।

एक बार नारदजीने श्रीरुक्मिणीसे कहा कि 'देखो, प्यारे श्यामसुन्दर दिन-रात 'राधे-राधे' ही रटा करते हैं। वे तुमको कम प्यार करते हैं।' आप विचार करो। किसी स्त्रीके मनमें यह बात आ जाय कि मेरा पति मुझसे अधिक प्यार किसी औरसे करता है तो उसके मनमें कितना दुःख होगा। हाँ, तो श्यामसुन्दरने लीला रची। जिस क्षण श्रीनारदजीने आकर श्रीरुक्मिणीजीको कहा कि प्यारे दिन-रात 'राधे-राधे' रटा करते हैं, उसी क्षण श्यामसुन्दरके पेटमें पीड़ा प्रारम्भ हो गयी। पीड़ारूप बन गये वे आप ही लीलासे।

अब तो श्रीरुक्मिणीजी बड़ी घबरायीं। अपने प्राणनाथके उदरमें पीड़ा। वह पूछने लगीं—'प्राणनाथ! कोई ओषधि है जो आपकी उदर-पीड़ा दूर कर सके।' श्यामसुन्दर कहने लगे—'रुक्मिणीजी! द्वारकामें ओषधि नहीं है। कोई हमारा प्रेमी होता तो ओषधि मिलती।' रुक्मिणीजी बड़ी चक्करमें पड़ीं—'भला ऐसी कौन-सी ओषधि है प्यारे! बताओ न?' रुक्मिणीजीका अत्यन्त आग्रह देखकर श्यामसुन्दर कहने लगे—'हमारा कोई प्रेमी होता तो हमें वह अपनी चरणधूलिकी धूलि देता, जिससे हमारे पेटकी पीड़ा दूर होती।' अब तो रुक्मिणीजी विचार करने लगीं—'ये हैं मेरे पूजनीय पति। इनको मैं चरणधूलि कैसे दूँ। नरकमें जाना पड़ेगा।' अतएव हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने नारदजीको बुलाया। नारदजी भी बड़े भक्त हैं। अपने प्राणनाथके पेटकी पीड़ा सुनकर सहम गये। पूछने लगे—'प्रभु! कोई ओषधि है, जिससे आपकी पीड़ा दूर हो सके!' प्रभु कहने लगे—'नारद! है तो सही, पर इस द्वारकामें नहीं है, व्रजमें है। कोई मेरा प्रेमी होता तो वह अपनी चरणधूलि देता, जिससे यह पीड़ा दूर होती।' अब तो नारदजी बड़े चक्करमें पड़े। 'मैं प्रभुका दास अतः अपने स्वामीको चरणकी धूलि दूँगा तो नरकमें जाना पड़ेगा अतः उनकी भी हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने प्रभुसे ही पूछा—'तो क्या प्रभु! व्रज मैं जाऊँ?' प्रभुने कहा—'जाओ।'

श्रीनारदजी व्रजमें आये। दूरसे ही प्रेमास्पदका नाम पुकारना शुरू किया। ज्यों ही गोपियोंने अपने प्रेमास्पदका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम सुना, वे जहाँ थीं वहींसे दुरंत दौड़ आयीं। दो भक्तोंका मिलान होनेसे प्रभु उनका प्यार स्वीकार कर लेते हैं, उनका प्रेम स्वीकार कर लेते हैं, मैं तो यहाँतक कहूँगा कि दो भक्तोंका मिलान होनेसे स्वयं प्रभु आ जाते हैं।

दूरसे ही नारदजीको देखकर गोपियाँ पुकार उठीं—'बाबा ! बाबा ! कहो, हमारे प्यारे श्यामसुन्दर कुशलसे तो हैं न ?' नारदजी क्या जवाब दें ? गोपियाँ कहने लगीं 'बाबा ! बाबा !'

क्या बात है 'तू तो बोले भी नायँ, प्यारे कुशल तो हैं न ?' नारदजीने कहा—'क्या बताऊँ गोपियो ! प्यारे श्यामसुन्दरके पेटमें बड़ी पीड़ा है।' गोपियाँ सुनते ही घबरा गयीं, बोलीं—'तो क्या बाबा ! द्वारकामें कहीं ओषधि नहीं मिली। उनकी पीड़ाको दूर करनेकी क्या कोई ओषधि है ?' नारदजीने कहा—'कोई उनका प्रेमी उनको अपनी जरा-सी चरणधूलि दे दे।' गोपियाँ जल्दीसे कहने लगीं—'तो बाबा जरा-सी क्या, तुम अभी ले जाओ, जितनी चाहिये हमारी चरणधूलि। खूब ले जाओ, लो, लो, ले जाओ जितनी चाहिये खूब ले जाओ। लो, लो यह धूलि। जल्दी ठीक करो हमारे प्राणनाथको।' नारदजीने कहा—'गोपियो ! तुम बावरी तो नहीं हो गयी हो ? यह क्या कर रही हो। तुम्हें क्या अपने प्राणनाथको चरण-धूलि देकर नरकमें जानेका भय नहीं लगता ?' गोपियोंने कहा—'अरे बाबा ! तू जल्दी जा। प्यारेको ओषधि दे। हम भले ही अनन्त युगोंतक नरकमें निवास करें, लेकिन हमारे प्यारे ठीक रहने चाहिये। हम चाहे कितने भी कष्टमें रहें लेकिन प्यारे सदा प्रसन्न रहें।'

इस तरह जो प्रेमी नरक भोगकर भी प्रियको रस देता है, वही वैष्णवकी भाषामें सीता-तत्त्व या राधा-तत्त्व कहा जाता है। मानव-सेवा-संघकी भाषामें उसको 'साधन-तत्त्व' कहा है—'सब कुछ लो, प्रेम दो।'

अतः ईश्वरके साधकोंके लिये यह मूलमन्त्र है कि हम उनके काम आयें। वे इतने दयालु हैं कि वे सदा इस बातके लिये तरसते रहते हैं कि कोई उन्हें कहे कि 'तू मेरा है, सब कुछ तेरा है, मेरा कुछ भी नहीं है और मुझे कुछ भी नहीं चाहिये।'

'तन भी तेरा मन भी तेरा तेरा पिंड अरु प्रान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा यह दादूका ज्ञान॥

(प्रेषक—श्रीकुञ्जविहारी अग्रवाल)

जीवोंके जीवनमें ज्योति

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिर शीमहि॥
(अथर्ववेद ७. ३२. २६)

(हिंदी-रूपान्तर)

देवराज हे इन्द्र, हमारी सुनो प्रार्थना हितकारी।
जैसे सुनता जनक सुतोंकी वाणी रुचिर मनोहारी॥
हम जीवोंको ऐसी शिक्षा दो, प्रभुको मनमें लावें।
जीवनके इस पुण्य प्रहरमें परम ज्योतिको पा जावें॥

—कृष्णदत्त भारद्वाज (एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयमसे आत्मोद्धार

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय और शरीरके संयमसे मनुष्य इस लोक और परलोकपर विजय पा सकता है और अपना परम कल्याण कर सकता है। इसलिये हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख, यहूदी कोई भी क्यों न हो, संयम सबके लिये परम हितकर है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग या ध्यानयोग आदि सभी साधनोंमें मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके संयमसे ही सब प्रकारके योगोंकी सिद्धि होती है। स्वास्थ्यकी रक्षा भी संयमके बिना नहीं होती। इन सबको संयममें रखकर मनुष्य कर्म करता हुआ भी अपना परम कल्याण प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
(२।६१)

साधकको चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे; क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं उसीकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥
(२।६४-६५)

'अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, रागद्वेषसे रहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है, अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न-चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।'

किंतु वर्तमान समयमें लोगोंमें संयम न होनेके कारण परमात्माकी प्राप्ति तो दूर रही, लोगोंका जीवन ही खतरेमें है, वर्तमानके स्कूल-कालेजोंकी शिक्षा संयमपूर्वक न होनेके कारण लड़कोंमें उच्छृङ्खलता बढ़ती जा रही है, जिसका भावी परिणाम बड़ा भयावह है। संयमकी कमीके कारण प्रायः बालक-बालिकाओंमें उच्छृङ्खलता बढ़ रही है, इसका नतीजा प्रत्यक्षमें बुरा हो रहा है। ये संयमहीन बालक-बालिकाएँ अपने बड़ोंका और अध्यापकोंका तिरस्कार करते हैं, मजाक उड़ाते हैं। इसी प्रकार संयम और अनुशासनकी कमीके कारण स्त्रियोंमें निर्लज्जता और उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। वे स्वतन्त्रतापूर्वक जिस किसीके भी साथ खेल-तमाशा, नाटक-सिनेमा आदिमें जाने लगी हैं। सिनेमाके सिवा और भी जहाँ मन होता है वहाँ वे बेरोक-टोक चली जाती हैं। घरका स्वामी या दूसरा कोई हितैषी रोक-टोक करता है तो वे उसका तिरस्कार कर देती हैं। संयमकी कमीके कारण पुरुष राज्य, समाज, शास्त्र, धर्म तथा अच्छे लोगोंका शासन नहीं मानते, इससे उनमें भी उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। इन्द्रियलोलुप हो जानेके कारण लोग शुद्ध खान-पान और आचरणसे भ्रष्ट हो रहे हैं। जिन होटलोंमें अंडे, मांस, मदिरा आदि रहते हैं उनमें लोग स्वाद-भोग और आरामके वशमें होकर भोजन करने लगे हैं। ये सब पतनके लक्षण हैं। मदिरा-आसव आदि मादक वस्तुओंका सेवन और परस्त्रीगमनसे बढ़कर और पतन क्या हो सकता है?

इन सब बातोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करके लोगोंको अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको संयममें करना चाहिये। केवल इन्द्रियोंके संयमसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है। भगवान्‌ने इन्द्रिय-संयमको भी एक यज्ञ बतलाया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥
(गीता ४। २६)

'अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियोंको संयम-रूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं और दूसरे योगीलोग शब्दादि समस्त विषयोंको इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं।'

यहाँ भगवान्‌ने यह भी बतला दिया कि इन्द्रिय-संयम तो एक यज्ञ है ही, इन्द्रियाँ वशमें हो जानेपर उन आसक्तिरहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका सेवन भी एक यज्ञ है।

जिस प्रकार केवल इन्द्रियोंके संयमसे या केवल मनके संयमसे कल्याण होता है, उसी प्रकार केवल प्राणोंके संयमसे भी हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥
(गीता ४। २९-३०)

'दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपान-वायुको हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करनेवाले प्राणायामपरायण पुरुष प्राण और अपान-की गतिको रोककर प्राणोंको प्राणोंमें ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले और यज्ञोंको जाननेवाले हैं।'

फिर सब प्रकारके संयमसे कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥
(गीता ४। २७)

'दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको ज्ञानसे प्रकाशित आत्मसंयम-योगरूप अग्निमें हवन किया करते हैं।'

इसी तरह 'यज्ञ' के नामसे अनेक प्रकारके साधन गीता अध्याय ४ श्लोक २४ से ३० तक बतलाये गये हैं। उनमेंसे भी किसी भी एक साधनको कर लेनेपर मनुष्यका निश्चय ही कल्याण हो सकता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥
एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥
(गीता ४। ३१-३२)

'हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञसे बचे हुए अमृतका अनुभव करनेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं और यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये तो यह मनुष्य-लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुख-दायक हो सकता है। इसी प्रकार और भी बहुत तरहके यज्ञ वेदकी वाणीमें विस्तारसे कहे गये हैं। उन सबको तू मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाद्वारा सम्पन्न होनेवाले जान। इस प्रकार तत्त्वसे जानकर उनके अनुष्ठानद्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जायगा।'

जिस मनुष्यके मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर वशमें नहीं हैं वह पशुके समान है। मनुष्ययोनिके सिवा, चाहे देवयोनि ही क्यों न हो, अन्य किसी भी योनिमें इनका संयम सम्भव नहीं है। इसलिये मनुष्यको ही कल्याणका अधिकारी माना गया है, अन्य सब तो भोगयोनियाँ हैं। हमलोग मनुष्ययोनिमें ही हैं, इसलिये हमें मनुष्योचित कर्म करके अपना कल्याण करना चाहिये। पशुओंके समान अपना जीवन नहीं बिताना चाहिये। यदि आहार, निद्रा और मैथुनमें ही हम अपना समय बिता रहे हैं तो फिर पशुमें और मनुष्यमें अन्तर ही क्या रहा? नीतिमें बतलाया गया है—

आहारनिद्राभयमैथुनानि
समानि चैतानि नृणां पशूनाम्।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥
(चाणक्यनीति १७। १७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन—ये मनुष्यों और पशुओंमें एक समान ही हैं, मनुष्योंमें केवल विशेषता यही है कि उनमें अपने कर्तव्यका ज्ञान अधिक है, किंतु ज्ञानसे शून्य मनुष्य पशुओंके ही तुल्य हैं।'

यह मनुष्य-शरीर आत्माके उद्धारके लिये मिला है, न कि ऐश-आराम और भोगके लिये एवं न स्वर्गके लिये ही। इस बातको जो मनुष्य ध्यानमें नहीं रखता, वह मूर्ख है। श्रीरामचरितमानसमें अपने प्रजाजनोंको उपदेश देते हुए भगवान् श्रीराम कहते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

संसारके विषय-भोगोंमें सुख है ही नहीं। विषय-भोगोंकी प्राप्तिका साधन धन भी दुःखरूप ही है; क्योंकि धनके उपार्जन और संग्रह करनेमें प्रायः परिश्रम और पाप करना पड़ता है। उस पापका फल भी इस लोक और परलोकमें महान् दुःखदायी होता है। एवं राज्यसे, चोर-डाकुओंसे और याचकोंसे धनकी रक्षा करनेमें तथा दान देनेमें, खर्च करनेमें, त्याग करनेमें एवं विनाश और वियोगमें कष्ट-ही-कष्ट होता है। अतएव संसारके विषयभोग और धनादि पदार्थोंमें दुःख-ही-दुःख भरा हुआ है; किंतु अज्ञानसे मनुष्यको उसमें सुखबुद्धि हो रही है। महर्षि पतञ्जलिजीने कहा है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।
(योग० साधन० ५)

'अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मामें नित्य, पवित्र, सुख और आत्मभावकी प्रतीति ही अविद्या है।'

अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण दृश्य-पदार्थ अनित्य हैं, उनमें नित्यबुद्धि होना; यह देह मांस-मज्जादि अपवित्र वस्तुओंका संघात है, इसमें पवित्र-बुद्धि होना; संसारके समस्त विषयभोग दुःखरूप हैं, उनमें सुखबुद्धि होना और यह जड शरीर अनात्मा है, इसमें आत्मबुद्धि होना अविद्या है।

विषयभोगरूप इन्द्रियजन्य सुख आरम्भमें अमृतके समान प्रतीत होता है, किंतु परिणाममें वह विषके समान है। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥
(गीता १८। ३८)

'जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है वह पहले भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है, इसलिये वह सुख 'राजस' कहा गया है।'

अतएव कल्याणकामी पुरुषोंको विषयभोग-सुखसे दूर रहना चाहिये; क्योंकि सब अनर्थोंका मूल यही है। विषयभोगोंमें सुखबुद्धि होनेसे उनमें आसक्ति होती है और आसक्ति होनेसे ही विषय-भोगोंकी कामना होती है तथा कामनामें विघ्न डालनेवालेके प्रति द्वेष, वैर और क्रोध होता है। उस क्रोधसे मोह उत्पन्न होता है, जिससे बुद्धिका नाश होकर पतन हो जाता है (गीता २। ६२-६३)। अतः राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदिकी उत्पत्ति और वृद्धिका कारण विषयोंमें सुख-बुद्धि है और वह सुख-बुद्धि है अज्ञानसे। इसलिये विवेक-विचारपूर्वक ज्ञानके द्वारा अज्ञानको दूर करना चाहिये। वह ज्ञान अन्तःकरणकी शुद्धि होनेसे प्राप्त होता है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥
(४। ३८)

'इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानकी प्राप्तिके और भी बहुत-से उपाय हैं। महापुरुषोंके सत्सङ्गसे भी ज्ञानकी प्राप्ति होती है (गीता ४ । ३४-३५) । ईश्वर, धर्म, परलोक और शास्त्रमें श्रद्धा-विश्वाससे भी ज्ञानकी प्राप्ति होती है (गीता ४ । ३९) और भगवान्‌की भक्ति करनेसे तो भगवान् स्वयं उसे ज्ञान देते ही हैं (गीता १० । ९-१०) । इन सभी साधनोंमें मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका संयम ही प्रधान है । बिना संयमके आत्माका कल्याण सम्भव नहीं । भगवान् कहते हैं—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥
(गीता ६ । ३६)

'जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है और वशमें किये हुए मन-वाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधनसे उसका प्राप्त होना सहज है—यह मेरा मत है ।'

इसलिये मनका संयम करनेके लिये संसारके विषय-भोगोंको दुःखरूप और विनाशशील मानकर विवेक-वैराग्यद्वारा इनका त्याग करना चाहिये । भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
(गीता ५ । २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुख-रूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं । इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता ।'

वैराग्यके बिना मन-इन्द्रियोंका संयम सम्भव नहीं । सम्पूर्ण विषयभोग विनाशशील और दुःखरूप हैं । इस विवेकसे वैराग्य उत्पन्न होता है तथा भजन और ध्यानके साधनसे भी वैराग्य होता है, इसलिये मनको वश करनेके लिये भगवान्‌ने अभ्यास और वैराग्यकी ही प्रधानता बतलायी है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥
(गीता ६ । ३५)

'हे महाबाहो ! निःसंदेह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है, परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है ।'

अभ्यास और वैराग्यसे केवल मन वश ही होता हो, यही नहीं, मनका निरोध भी हो जाता है, महर्षि पतञ्जलिजीने कहा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।
(योग० १ । १२)

'अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है ।' इससे जब मनका निरोध ही हो जाता है, तब उनसे इन्द्रियोंका निरोध हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है । अतः इन्द्रियोंके निरोधका उपाय भी अभ्यास-वैराग्य ही है । इसमें बाधक हैं राग-द्वेष । राग-द्वेषको भगवान्‌ने साधकका शत्रु बतलाया है (गीता ३।३४) । ये राग-द्वेष ही काम-क्रोधके रूपमें आकर दुराचार कराते हैं (गीता ३ । ३७) । इन सबके नाशके लिये भगवान्‌ने गीतामें पहले इन्द्रियोंका संयम करने और फिर मनका संयम करके इन कामादि शत्रुओंको मार डालनेका आदेश दिया है—

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥
(गीता ३ । ४१—४३)

'इसलिये हे अर्जुन ! तू पहले इन्द्रियोंको वशमें करके इस ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले महान् पापी कामको अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल; क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे परे यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं, इन इन्द्रियोंसे परे मन है, मनसे भी परे बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है वह आत्मा है। इस प्रकार बुद्धिसे परे अर्थात् सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल।'

इस प्रकार मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका संयम करके उन सबको सच्चिदानन्द परमात्मामें लगानेपर मनुष्यका परम कल्याण हो जाता है। भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥
(५।१७)

'जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको अर्थात् पुनः न आनेवाली परमगतिको प्राप्त होते हैं।'

अतः मनुष्यको इसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

सच्चा समर्पण कैसा हो?

(श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम, पांडिचेरी)

'मैं ज्ञानी नहीं हूँ; क्योंकि मुझे कोई ज्ञान नहीं, सिवा इसके जो भगवान् मुझे अपने कार्यके लिये देते हैं। मैं कैसे समझ सकता हूँ कि जो कुछ मैं देखता हूँ वह विवेक है या मूर्खता; नहीं, यह दोनोंमेंसे एक भी नहीं है. क्योंकि देखी हुई वस्तु केवल सत्य होती है, न तो मूर्खता न विवेक।'

(श्रीअरविन्द, चिन्तनधारा और सूत्रावली)

मैं ज्ञानी नहीं हूँ····ज्ञानी वह है जो ज्ञानमार्गका अवलम्बन करता है, ज्ञानसे ही योगसिद्धिकी उपलब्धि करना चाहता है तथा विशुद्ध बुद्धि-मार्गका ही अनुसरण करता हुआ उसके परे जानेका एवं उस ज्ञानको जो बुद्धिज्ञान नहीं वरं आत्मज्ञान है, प्राप्त करनेका संकल्प करता है। और श्रीअरविन्द कहते हैं—'मैं ज्ञानी नहीं हूँ, मैं ज्ञान नहीं ढूँढ़ता, मैं भगवान्‌का कार्य करनेके लिये भगवान्‌को ही समर्पित हूँ और उस कार्यके सम्पादनके लिये जो कुछ मुझे जानना है, प्रतिक्षण भगवत्-कृपासे ही जान जाता हूँ।'

यह एक प्रशंसनीय अवस्था है, आत्माकी चरम शान्तिकी अवस्था है। इसमें उपार्जित किये हुए ज्ञान तथा पढ़ी हुई विद्याओंको, जिन्हें कि याद रखनेकी आवश्यकता मालूम पड़ती है, संचित रखनेकी कोई जरूरत नहीं है तथा मस्तिष्कमें हजारों प्रकारकी चीजोंको ठूँसकर रखनेकी भी जरूरत नहीं है। जब कभी किसी कार्यके सम्पादन-हेतु या किसीको आवश्यक शिक्षा देनेके निमित्त अथवा किसी समस्याको हल करनेके लिये ही प्रयोजन उपस्थित होगा, तब उसके साथ ही आवश्यक ज्ञान भी उपस्थित हो जायगा। मन नीरव रहेगा और मस्तिष्क क्रियाहीन। सब-का-सब स्थिर, शान्त और स्वच्छ रहेगा। तब ठीक उपयुक्त अवसरपर ही, भागवत-कृपासे प्रकाशकी एक बूँद चेतनामें चू पड़ती है और यथावश्यक जाननेकी बातें ज्ञात हो जाती हैं। अतः इन्हें स्मरण रखनेकी और इन्हें सँभालकर रखनेकी न चिन्ता रहती है न जरूरत। उस दिन या उस मुहूर्त्त, जब इसकी आवश्यकता उपस्थित होगी, तब ज्ञान आयेगा ही। प्रतिक्षण हम उजले कागज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह हैं जिसपर शान्ति, स्थिरता तथा पूर्ण ग्रहण शीलताकी निश्चल नीरवतामें सभी जाननेकी बातें अङ्कित होती रहती हैं।

जाननेकी बातें हम जान जाते हैं तथा देखनेकी चीजें देख लेते हैं और साथ ही ये सत्य होती हैं; क्योंकि ये सीधे परात्पर ब्रह्मसे ही आती हैं और इसलिये ये विवेक तथा मूर्खताकी धारणासे सर्वथा परे हैं। सत्य सत्य ही है, यह और कुछ नहीं हो सकता। और यह विचार करनेके लिये कि वह विवेक है अथवा मूर्खता, काफी नीचे अन्ध-अज्ञानमें उतरना पड़ेगा।

आत्माकी चरम शान्तिमें तो निश्चल नीरवता तथा नम्र, विनीत, सचेतन ग्रहणशीलताको भी प्राप्त करनेकी अपनी दिलचस्पी कोई चिन्ता नहीं रहती—बस, यह तो है केवल एक यन्त्र जो अपने-आप कुछ नहीं है, कुछ जानता नहीं है, पर जो सब कुछ ग्रहण करने तथा प्रसारण करनेके लिये प्रस्तुत है[1]।

पहली शर्त है—आत्मविस्मृति, पूर्ण आत्मदान, अहंका अभाव।

और उपर्युक्त सच्चे समर्पणके लिये शरीर भी परात्पर प्रभुसे प्रार्थना कर रहा है, 'तू जो कुछ चाहता है कि मैं होऊँ, मैं होऊँगा; तू जो कुछ चाहता है कि मैं जानूँ, मैं जानूँगा; तू जो कुछ चाहता है कि मैं करूँ, मैं करूँगा।'

अनोखा प्यार !

तुम्हारा नाथ ! अनोखा प्यार।
नहीं छोड़ते कभी, देखकर भी पापोंका भार॥
बँधा विषय-बन्धनमें मैं, नित फँसा मोहके जाल।
विमुख तुम्हारे पद-कमलोंसे व्यर्थ गवाँता काल॥
पर तुम मुझको नहीं भूलते, सदा भेजते दूत।
सम्पद्-विपद् रूपमें, करने मुझे निरामय पूत॥
मीठी-कड़वी औषध होती, जैसा जिसका रोग।
यथायोग्य वैसे ही करते कृपा-सुधा-संयोग॥
करुण अकारण, सुहृद् सहज शुचि तुम-सा कहीं न और।
देते बरबस खींच मुझे तुम मृदुल गोदमें ठौर॥

१. यह वाक्य पूर्णतया समर्पित भागवत-यन्त्रका स्वरूप बतलाता है। इस स्थितिको प्राप्त करके ही हम उस सत्य-ज्ञान (प्रज्ञा) के अधिकारी होते हैं जिसका निर्देश उपर्युक्त सूत्र करता है। अब सहसा यह प्रश्न उठता है, 'पर यह स्थिति प्राप्त कैसे हो ?' बादकी पंक्ति इस प्रश्नके उत्तरस्वरूप कही गयी है। अन्तिम वाक्य समर्पणके अन्तिम सोपानका चित्रित वर्णन है। जब स्वयं यह जड-सत्ता शरीर भी अपनेको भगवान्‌के हाथोंमें दे देता है।

हमारा ज्ञान तभी पूर्ण होता है जब हम शरीरसे ज्ञानकी अनुभूति करते हैं और इसके लिये यह आवश्यक है कि यह शरीर भी सर्वभावेन समर्पित हो।

माताजीके कथनका यह पिछला भाग जिसकी हमने अभी चर्चा की है, कुछ क्रमभंग रखता-सा प्रतीत होता हुआ भी वास्तवमें एक उच्चतर क्रममें गुँथा है। मनको नीरव कर हम इस उच्चतर क्रमबद्धतासे अवगत तथा शब्दोंकी अलौकिक शान्ति- शक्तिसे स्पन्दित हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक विज्ञान कैसे आसुरी होता जा रहा है ?

(लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

[गताङ्क पृष्ठ १२९८ से आगे]

जिसके पास धन इकट्ठा होता है, उसको यही चिन्ता रहती है कि वह धन और कैसे बढ़ेगा। इसलिये वह मोहक पदार्थ तैयार करके दूसरोंका धन कैसे अपहरण किया जाय, इसीका उपाय सोचा करता है। ऐसे ही लोगोंने वनस्पतिके तेलको जमाया, उसमें ऐसी दवाएँ मिलायीं जिनसे उसमें घीका रंग-रूप और सुगन्ध आया। यह बनावटी घी मनुष्यका कितना नुकसान करता है तथा इससे जनताकी आर्थिक स्थिति कितनी खराब हो रही है, इसकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता। यह देखकर हमारे देशमें भी बनावटी घीके कारखाने बड़ी संख्यामें खुल गये और परिणाम यह हो रहा है कि आज अच्छा घी दर्शन करने या प्रदर्शनमें रखनेके लिये भी नहीं मिलता। सारी जनता नाशको प्राप्त हो जाय, आर्थिक दृष्टिसे देश भले ही पायमाल हो जाय, परंतु धनिकोंको अपना धन बढ़ाना है। यह है परिणाम भोगप्रधान जीवनका। ऐसे विज्ञानको आसुरी न कहें तो क्या कहें ?

विज्ञानने दूधका चूर्ण (Powder) बनाया। हमारे यहाँ दूधकी तंगी मालूम होने लगी। इसके लिये जरूरत यह थी कि यह विचार किया जाय कि दूधका उत्पादन कैसे बढ़ सकता है और इसके लिये पशुपालनके धंधेको प्रोत्साहन देना भी जरूरी था। इसके लिये गो-वध बंद कराना तथा गोशालाओंके प्रबन्धमें सुधार करनेकी ओर ध्यान देना आवश्यक था। इनमेंसे किसीकी ओर ध्यान नहीं गया। परंतु विज्ञानके चश्मेसे देखनेमें दूधकी कमीका उपाय दूधका बनावटी चूर्ण दृष्टिमें आया। इस प्रकार दूधके पाउडरका बड़े अधिक परिमाणमें आयात होने लगा और उसका दूध स्कूलके विद्यार्थियोंको भी पिलाना प्रारम्भ कर दिया गया है। यह बनावटी दूध कभी ताजा दूधका गुण तो कर नहीं सकता, इस बातको उस दूधको पीनेवाले बालक विद्यार्थी भी समझते हैं। इससे हानि कितनी होती है, यह तो नारायण ही जाने। बल्कि व्यापारियोंने इस चूर्णका प्रयोग दूधसे बननेवाली मिठाइयोंमें भी करना शुरू कर दिया है और दूधके व्यापारी भी दूधमें पानी मिलाकर उसे गाढ़ा करनेके लिये इस पाउडरका उपयोग खुलकर कर रहे हैं। इस प्रकार जिस देशमें दूध-घीकी नदी बहती थी, उस देशमें शुद्ध दूध-घीका दर्शन दुर्लभ हो गया है।

दूधकी तंगी मिटानेका एक सीधा और सरल मार्ग चायकी दूकानोंको बंद करवाना है। जैसे शराबबंदीसे कोई मर नहीं गया, और लाभ ही हुआ, उसी प्रकार चायकी दूकानोंको बंद करनेसे कोई मर नहीं जायगा और फायदा बहुत होगा। चायके बढ़ते हुए व्यसनके पीछे गरीब आदमियोंका असीम धन खर्च हो रहा है, वह बच जायगा और इससे वे सुखी हो जायँगे। पीनेपर प्रतिबन्ध लगानेपर जनताका शारीरिक स्वास्थ्य अवश्य सुधरेगा। दूधकी तंगी दूर होगी और ऐसी अवस्थामें विदेशसे पाउडर नहीं मँगाना पड़ेगा। इतना रुपया परदेश न जानेसे भी तो लाभ ही होगा। चायसे समाजको कोई भी लाभ नहीं, यह तो एक व्यसन है पर विविध प्रकारके विज्ञापनोंसे मोह पैदा करके चायसे पैसा कमानेवाले लोग क्यों मानने लगे?

सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो शराबका प्रश्न अल्पसंख्यक मनुष्योंका प्रश्न है और दूध-घीका प्रश्न तो समस्त भारतमें व्याप्त हो रहा है। उसके अभावसे टी० बी० का रोग बढ़ता जा रहा है। परंतु उसके उपचारके लिये भी विदेशसे इंजेक्शन मँगानेके सिवा और कुछ नहीं सूझता। क्या किया जाय, और कौन करे ?

सिनेमाके चित्र प्रकाशित तो हो रहे हैं आम जनताके मनोरञ्जनके नामपर। परंतु एकमात्र मूल कारण है अपना धन बढ़ाना। इससे सिनेमा मनोरञ्जनके बदले विनाशका साधन बनता जा रहा है! यह हमको चरित्र और नीतिसे भ्रष्ट करता है और भोग-लालसा तथा विलासिताको बढ़ाता है। चोरी, खून, अत्याचार, अनाचार, छल-कपट तथा व्यभिचार आदि दोषोंको जनतामें फैलाता है और जनताके जीवनको कलुषित करता है। तथापि किसीकी भी आँखें नहीं खुल रही हैं। सभी आँखोंपर पट्टी बाँधे हुए हैं। कौन किसको समझावे ?

आज जो सिनेमाके चित्र करोड़ों रुपये खर्च करके तैयार होते हैं, इस प्रकारके, पर कुरुचि न पैदा करनेवाले, मनोरञ्जनके आविष्कार हमारे यहाँ बिना मूल्य होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। आजसे साठ वर्ष पहले इसका नाम 'इन्द्रजाल' रक्खा गया था। ऐन्द्रजालिक लोग केवल अपने मानसिक बलसे अनेक प्रकारके दृश्य उपस्थित कर सकते थे और उनसे लोगोंको मनोरञ्जनके साथ-साथ नैतिक शिक्षा भी मिलती थी। इस प्रकार इसी सिनेमाका साधन यदि निःस्वार्थ लोगोंके हाथमें हो तो उसका उपयोग अवश्य ही जनताको सन्मार्गमें ले जानेमें किया जाय।

× × × ×

कहते हैं कि विज्ञानने भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ बनाकर जनताका महान् उपकार किया है; परंतु यह भी उनका दम्भ-मात्र है। इसमें उनका हेतु यह होता है कि साधारण जनताका धन कैसे चूस लिया जाय और इसलिये उनके तैयार करनेमें चाहे जैसी अपवित्र चीजोंका वे प्रयोग करते हैं और बिल्कुल हानिकारक दवाओंको लाभदायक बताकर जनताका पैसा लूटते हैं। हम भी विज्ञानकी चकाचौंधमें इतने अन्धे बन गये हैं कि कोई दवा निकली नहीं कि आँखें मूँदकर उसका प्रयोग करने लगते हैं, भले ही पीछे वह हानिकारक सिद्ध हो।

हमारी हितचिन्तक सरकारने भी जहाँ-जहाँ आयुर्वेद-की शिक्षा दी जाती थी, वहाँ-वहाँ या तो एलोपैथीका प्रवेश करा दिया और जहाँ ऐसा न हो सका वहाँ आयुर्वेदके साथ-साथ एलोपैथीको भी स्थान दे डाला और ऐसी स्थिति ला दी कि एलोपैथीके चंगुलसे कभी छुटकारा ही न मिले।

× × × ×

विज्ञानने बहुत-से निरर्थक आविष्कार भी कर डाले हैं। उसका उद्देश्य है केवल अपनी चतुराई बताना। जीवित मनुष्यको तो जीविका मिलती नहीं और बेकारीमें पिसा जा रहा है, तथापि वह यान्त्रिक मनुष्य तैयार कर रहा है। जीवित हाथी तो मार डाले जाते हैं और यान्त्रिक हाथी तैयार किया जा रहा है। खेलते समय ताशके पत्ते भी यन्त्रसे बाँटे जायँ, इसकी भी खोज वे कर रहे हैं। भोजन करते समय जीवित मनुष्य परोसनेके लिये रखना पड़ता है, इसलिये बटन दबाते ही जरूरतकी चीज उपस्थित हो जाय, इसका भी प्रबन्ध वे कर रहे हैं। सारांश यह है कि हाथ-पैर हिलाना ही न पड़े और सब कुछ यन्त्रसे हो जाय, ऐसा करनेका ध्येय हो गया है। इस प्रकार ईश्वरकी दी हुई सामग्रीका दुरुपयोग विज्ञान कर रहा है और इसके कारण दूसरे लोग सुखी हो रहे हैं, इस ओर किसीकी दृष्टि नहीं जा रही है।

कहते हैं कि अमेरिकाके वैज्ञानिकोंने 'एलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप' बनाया है, जिसके द्वारा कोई भी वस्तु बीस लाख गुनी आकारमें दीखती है। उदाहरणार्थ, यदि एक सामान्य बिन्दुको देखें तो वह दो मीलके व्यासवाला विराट वर्तुलाकार दीख पड़े, अथवा एक जूँको देखो तो वह हाथीसे भी बड़ी दिखायी दे। पर इससे फल क्या निकला?

लिखने लगें तो बहुत कुछ लिखा जा सकता है। बहुतसे खोज निरर्थक हुए हैं, जो दूसरे लोगोंको विनाशकी ओर ले जाते हैं।

× × × ×

यहाँतक लिखकर हम उपसंहारकी बात सोच रहे थे कि इतनेमें एक ग्रेज्युएट सज्जन आ गये। आधुनिक शिक्षा उनको मिली है, परंतु उनमें कुसंस्कार, घरके अच्छे वातावरण-के कारण, प्रवेश नहीं कर पाये हैं। उनकी ईश्वरमें श्रद्धा है, शास्त्रोंमें विश्वास है तथा आध्यात्मिक अध्ययन भी उनका ठीक है। इससे वे कभी-कभी हमारे पास आ जाया करते हैं। यह लेख मैंने उनको दिया और कहा कि इसे जरा ध्यानसे देख जाओ। कहीं कुछ असम्बद्ध प्रलाप-सा तो नहीं लगता है। तुम जवान आदमी हो और सुशिक्षित भी हो, इसलिये यह काम तुमको सौंपता हूँ, इसे ध्यानसे बाँच जाओ।

दो दिनके बाद वह लेख लेकर लौटे और बोले कि "आपके विचार गाँधीजीके विचारसे मिलते-जुलते हैं। गाँधीजीके 'हिंद-स्वराज' से कुछ अवतरण दो तो आजके लोग मान जायँगे। नहीं तो, बूढ़े और त्यागी लोग ऐसा ही लिखा करते हैं, ऐसा कहकर उसपर विचार भी नहीं करेंगे। मैं 'हिंद-स्वराज' की प्रति ले आया हूँ और प्रसङ्गवश उचित वाक्योंके ऊपर मैंने निशान भी लगा दिये हैं, इन्हें पहले बाँच लीजिये और ठीक जँचे तो फिर उतार लीजिये।" ऐसा कहकर उन्होंने पुस्तक मेरे पास रख दी और लेख लौटा दिया।

मैंने वे प्रसङ्ग पढ़े और उन सज्जनकी बात मुझे ठीक जँच गयी, इसलिये थोड़े उद्धरण नीचे दे रहा हूँ।

"इन सुधारोंकी ठीक पहचान तो यह है कि मनुष्य बाहरी (भौतिक पदार्थोंके) खोजमें और शरीर-सुखमें सार्थकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पुरुषार्थ मानता है। सौ वर्ष पहले जो घरों यूरोपके लोग रहते थे, उसकी अपेक्षा आज बहुत सुन्दर घरोंमें रह रहे हैं। यह सुधारका चिह्न माना जाता है। इसमें शरीर-सुख-की ही बात निहित है। पहले यूरोपमें लोग साधारण हलसे अपनी जमीनको निजी परिश्रमसे जोतते थे। उसके बदले आज यन्त्रोंसे हल चलाकर एक आदमी बहुत-सी जमीन जोत सकता है और खूब पैसा इकट्ठा कर सकता है—यह सुधारका चिह्न माना जाता है। पहले मनुष्य कोई पुस्तक हाथसे लिखता था वह अमूल्य वस्तु समझी जाती थी। आज जिसको जैसा अच्छा लगता है, वैसा लिखता है और छपवाता है तथा लोगोंका मन भरमाता है—यह सुधारका चिह्न है। पहले लोग बैलगाड़ी-से दिनभरमें बारह कोसकी दूरी तय करते थे, आज यन्त्रवाहनोंसे सैकड़ों-हजारों कोसोंकी दूरी पूरी कर सकते हैं—यह तो सुधारका शिखर माना जाता है। अब जैसे सुधार बढ़ते जाते हैं, वैसे ही यह धारणा हो रही है कि मनुष्यको हाथ-पैर न चलाना पड़े तो ठीक हो। एक बटन दबावें और पहननेके लिये पोशाक आ जाय; दूसरा बटन दबावें तो अखबार आ जाय, तीसरा बटन दबाते ही गाड़ी तैयार हो जाय, नित्य नया भोजन मिले। हाथ-पैर चलाने न पड़ें, सारे काम यन्त्रसे हो जायँ। पहले लोग खुली हवामें, अपनेको जहाँतक ठीक लगता, स्वतन्त्रतापूर्वक काम करते थे। अब हजारों मजदूर अपनी गुजरके लिये एक साथ मिलकर काम करते हैं। उनकी हालत जानवरसे भी बदतर हो रही है। इसका भोग पैसेवालोंको मिलता है। पहले मनुष्योंको मारकर गुलाम बनाते थे, आज उनको पैसा और भोगका लालच देकर गुलाम बना रहे हैं। इसमें नीति या धर्मकी बात ही नहीं रही। सुधारके हिमायती लोग साफ-साफ कहते हैं कि उनका काम लोगोंको धर्म सिखाना नहीं है। धर्मको तो बहुतेरे लोग ढोंग मानते हैं। कुछ लोग धर्मका बाना धारण करते हैं, नीतिकी बात भी करते हैं, तथापि मैं अपने बीस वर्षोंका अनुभव कह रहा हूँ कि नीतिके नामपर वे अनीति ही सिखलाते हैं। नीति फालतू बातोंमें नहीं हो सकती, इसे एक बालक भी जानता है। शरीरका सुख कैसे मिले, सुधारक यही खोज करते हैं, यही प्रदान करनेके लिये वे मेहनत करते हैं तथापि वह सुख भी नहीं मिल सकता।"

"ये सुधार तो ऐसे हैं कि यदि हम धीरतापूर्वक बैठे हैं तो सुधारके चक्करमें आया मनुष्य अपनी सुलगायी हुई अग्निमें आप ही जल मरेगा। मेरा अभिप्राय यह है कि हिंदुस्थान सुधारोंके नीचे पीसा जा रहा है; यह उसके शिकंजेमें आ फँसा है। मुझको तो धर्म प्यारा है, इसलिये पहला दुःख तो यह है कि हिंदुस्थान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है, हम ईश्वरसे विमुख होते जा रहे हैं।"

"डाक्टरोंने हमको घबराहटमें डाल रक्खा है। डाक्टरों-की अपेक्षा अनाड़ी वैद्योंको भी अच्छा कहनेको जी चाहता है। अस्पताल पापकी जड़ है। उसके कारण मनुष्य अपने शरीरका यत्न कम करते हैं और अनीति अधिक करते हैं। यूरोपियन डाक्टर सबसे गये बीते हैं, वे केवल इस शरीरके रक्षणके लिये लाखों जीवोंको प्रतिवर्ष मार डालते हैं, जीवित प्राणीके ऊपर प्रयोग करते हैं। यह किसी भी धर्मको मान्य नहीं है। हिंदू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी सभी कहते हैं कि मनुष्यके शरीरके लिये इतने जीवोंकी जान लेनेकी जरूरत नहीं है। डाक्टर लोग हमको धर्मभ्रष्ट करते हैं। उनकी बहुत-सी दवाओंमें चरबी या शराब होता है। इन दोनोंमेंसे एक भी वस्तु हिंदू-मुसल्मानोंके छूने लायक नहीं है। हम सुधारका ढोंग रचते हैं, सबको वहमी समझते हैं और स्वच्छन्दतापूर्वक जैसा चाहते हैं, किया करते हैं—यह दूसरी बात है। इसका फल यह हो रहा है कि हम दुर्बल और नामर्द बनते जा रहे हैं। हम डाक्टर क्यों बनते हैं? इसका कारण यह होता है कि हम इज्जतदार बनना और पैसा कमानेका धंधा करना चाहते हैं; परोपकारकी तो बात ही नहीं है। डाक्टरलोग आडम्बर करके लोगोंसे बड़ी-बड़ी फीस लेते हैं और एक पैसेकी कीमतकी दवाका दाम एक रुपया वसूल करते हैं। इस प्रकार लोग आराम होनेके भरोसे ठगे जाते हैं।"

"सच्चा सुधार क्या है? यह बात हम तुमको समझाते हैं। मेरा मत है कि जो सुधार हिंदुस्थानने बतलाये थे, वहाँ-तक दुनियाँमें कोई नहीं पहुँचा। जो बीज हमारे पूर्वजोंने बोये हैं, उसकी बराबरी करनेवाला कोई देखनेमें नहीं आता। जिन रोम और यूनानका अन्त हो चुका है, उनकी पुस्तकोंसे यूरोपके लोगोंने शिक्षा ग्रहण की है। उनकी भूलें वे नहीं करते हैं—इसका उनको अभिमान है। ऐसी उनकी दरिद्र दशा है। फिर भी हिंदुस्थान दृढ़ है। इसीमें इसकी शोभा है। हिंदुस्थानपर यह आरोप लगाया जाता है कि वह इतना जंगली, इतना अज्ञानी है कि उसमें कोई फेरफार नहीं करा सकता। पर यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभवसे हमको जो ठीक लगता है उसको हम कैसे बदल सकते हैं? राह बतलानेवाले लोग भटका करते हैं, पर हिंदुस्थान तो अचल रहता है। यह इसकी विशेषता है, यह इसका लंगर है।''

''सुधार एक बर्ताव है, जिससे मनुष्य अपना कर्तव्य पालन करता है। कर्तव्यका पालन करना ही नीतिका पालन करना है। नीतिका पालन करनेका अर्थ है अपने मन तथा इन्द्रियोंको वशमें रखना। ऐसा करनेपर हम अपने-आपको पहचानते हैं। यही 'सु' अर्थात् अच्छी धारा है। इससे जो विरुद्ध है वह 'कुधारा' है।''

''परंतु अंग्रेजी लेखक लिख गये हैं कि उपर्युक्त व्याख्याके अनुसार हिंदुस्थानको कुछ भी सीखना बाकी नहीं है। यह बात ठीक है। हम देखते हैं कि मनुष्यकी वृत्तियाँ चञ्चल हैं। उसका मन दौड़ता-फिरता है। शरीरको जितना अधिक दो, उतना ही अधिक माँगता है। अधिक लेकर भी सुखी नहीं होता। भोगनेपर भोगकी इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिये पूर्वजोंने हद बाँध दी। खूब विचार करके उन्होंने देखा था कि सुख-दुःख तो मनके कारण होते हैं। धनी आदमी धनके कारण सुखी नहीं होता और न गरीब गरीबीके कारण दुखी होता है। धनी भी दुखी देखनेमें आते हैं और गरीब सुखी देखनेमें आते हैं। करोड़ों तो गरीब ही रहेंगे। यह देखकर उन्होंने भोगकी वासना छुड़ायी। उन्होंने सत्यानाशी स्पर्द्धाको नहीं अपनाया। सब अपना-अपना पेशा करते रहे। उसमें उनको दस्तूरके अनुसार पैसे मिले। हमको मशीन आदिकी खोज करना नहीं आता हो, ऐसी बात नहीं। परंतु हमारे पूर्वजोंने देखा कि मशीन आदिके जंजालमें फँसनेपर मनुष्य गुलाम बन जायगा और अपना धर्म छोड़ देगा। उन्होंने विचार करके बताया कि हमको हाथ-पैरोंको काममें लानेमें ही सच्चा सुख है, उसीमें तन्दुरुस्ती है।''

''उन्होंने विचारा कि बड़े-बड़े शहर बसाना व्यर्थका आडम्बर है। इससे लोग सुखी नहीं होते हैं। चमकीले बाजार और श्वेत अट्टालिकाएँ जगमगाती हैं, परंतु धनीलोग गरीबोंको लूटते हैं। इस कारण वे छोटे-छोटे गाँवोंसे ही संतोष करते थे। उन्होंने देखा कि राजाओं तथा उनकी तलवारोंकी अपेक्षा नीतिमें अधिक बल है। इसीलिये वे राजाओंको सदाचारी पुरुषों, ऋषियों और साधुओंकी अपेक्षा नीचे दर्जेका समझते थे। जिस जातिमें इस प्रकारकी व्यवस्था है, उसको दूसरे लोगोंसे कुछ सीखना नहीं है, वह दूसरोंको सिखा सकती है।''

''शिक्षाका क्या अर्थ है? यदि इसका अर्थ अक्षर-ज्ञान मात्र है, तब तो यह एक हथियार-जैसी हो गयी। जिसका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों हो सकते हैं। एक ही हथियारसे ऑपरेशन करके रोगीको आराम करनेका और उसकी जान लेनेका—दोनों काम हो सकते हैं। इसी प्रकारका अक्षरज्ञान है। अक्षर सीखकर बहुत लोग उसका दुरुपयोग करते हैं, उसका सदुपयोग अपेक्षाकृत कम ही लोग करते हैं। यह बात ठीक हो तो यह सिद्ध होता है कि अक्षरज्ञानसे दुनियाँको लाभके बदले हानि ही अधिक हुई है।

''शिक्षाका साधारण अर्थ अक्षरज्ञान ही लिया जाता है। लोगोंको लिखना, पढ़ना, हिसाब करना आ जाय, यह मूल अर्थात् प्राथमिक शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारीसे खेती करके अपनी रोटी कमाता है। उसको साधारण तौरपर सांसारिक (व्यावहारिक) ज्ञान होता है। मा-बापके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, अपनी स्त्रीके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, पुत्रके साथ कैसे रहना चाहिये, गाँवके लोगोंके साथ कैसे रीति-प्रीति निभानी चाहिये—वह इन सब नीति-नियमोंको अच्छी तरह समझता है और उसका ठीक-ठीक पालन करता है; परंतु उसको अपना हस्ताक्षर करना नहीं आता। उस मनुष्यको तुम अक्षरज्ञान क्यों प्रदान करना चाहते हो? तुम उसके सुखमें क्या वृद्धि करोगे? तुम उसको अपनी झोंपड़ीसे तथा अपनी स्थितिसे असंतोष उत्पन्न करना चाहते हो?''

''अब ऊँची शिक्षाको देखो। मैंने भूगोल सीखा, खगोल सीखा। मैं बीजगणित जानता हूँ। मैंने भूमितिका ज्ञान प्राप्त किया। भूगर्भ विद्याको घोख डाला—इससे क्या हुआ? इससे मेरा अपना और मेरे आस-पासके लोगोंका क्या लाभ हुआ? मैंने यह ज्ञान क्यों प्राप्त किया? इससे मुझे क्या मिला? अंग्रेजीके एक विद्वान् हक्सले इस प्रकारकी शिक्षाके विषयमें कहते हैं—

''उस मनुष्यको सच्ची शिक्षा मिली है जिसने अपने शरीरको ऐसा शिक्षित किया है कि वह उसके वशमें रहता है, वह शरीर सौंपे हुए कामको सुखसे और सरलतासे कर सकता है। उस मनुष्यको सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और न्यायदर्शी है। उस मनुष्यने सच्ची शिक्षा प्राप्त की है जिसका मन प्रकृतिके नियमोंसे भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें हैं। जिसकी अन्तःकरणकी वृत्ति विशुद्ध है और जो मनुष्य नीच कामोंसे घृणा करता है तथा अपने ही समान दूसरोंको भी समझता है। ऐसा ही मनुष्य सच्चा शिक्षित कहा जा सकता है; क्योंकि वह प्रकृतिके नियमोंके अनुसार चलता है। यदि यह अच्छी शिक्षा हो तो मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि ऊपर मैंने जिन शिक्षाओंको गिनाया है उनका उपयोग करनेसे अपने शरीर और इन्द्रियोंको वश करनेमें मुझको कुछ भी सहायता नहीं मिली। प्राथमिक शिक्षा लो या ऊँची शिक्षा लो, पर उससे हमारा असली काम नहीं निकलता। इससे हम मनुष्य नहीं बनते—उससे हमें अपने कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं होता।"

"करोड़ों आदमियोंको अंग्रेजी शिक्षा मिली है, पर वह उनको गुलामीमें फँसानेके समान है। मेकालेने जिस शिक्षाकी नींव डाली, वह वस्तुतः गुलामीकी नींव थी। उन्होंने जान-बूझकर ऐसा किया हो, ऐसा मैं नहीं कहता, परंतु उनके कामका परिणाम ऐसा ही हुआ है।"

"कल-कारखानोंके बढ़नेसे ही तो हिंदुस्थान चौपट हुआ है। मैन्चेस्टरसे हमको जो हानि पहुँची है उसकी सीमा नहीं है। हिंदुस्थानसे जो कारीगरी चली गयी, यह मैन्चेस्टरकी ही करतूत है। मशीन (कल-कारखानों) ने यूरोपको उजाड़ कर डाला है और उसकी हवा हिंदुस्थानको लगी है। कल-कारखाने आधुनिक सुधारके मुख्य चिह्न हैं; और ये महापाप हैं, यह मैं अच्छी तरह देख रहा हूँ।"

"बम्बईके मिलोंमें जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गये हैं। जो स्त्रियाँ वहाँ काम करती हैं, उनकी दशा देखकर प्रत्येक आदमीका कलेजा काँप उठेगा। मिलें न रहनेसे कोई भी औरत भूखों नहीं मरती थी। यह कल-कारखानोंकी आँधी तेज हो गयी (और हो रही है) तो सारा देश विपत्तिके समुद्रमें पड़ जायगा। मेरी बात बुरी लगती होगी, हमारे हिंदुस्थानमें मैन्चेस्टर बनानेसे हमारा पैसा हिंदुस्थानमें ही रहेगा। परंतु वह पैसा हमारी जान ले लेगा, क्योंकि उससे हमारे चरित्रका नाश हो जायगा। जो मिलोंमें काम करते हैं, उनके चरित्रका पता उन्हींसे पूछिये। उनमें जिन्होंने पैसे इकट्ठे किये हैं, उनका चरित्र दूसरे पैसे-वाले लोगोंसे अच्छा होनेकी सम्भावना नहीं है। अमेरिकाके राकफेलरसे हिंदुस्थानी राकफेलर अच्छा होगा, यह समझना भूल है। गरीब हिंदुस्थान स्वतन्त्र हो सकता है, पर चरित्र खोकर पैसेवाला हिंदुस्थान (सच्चे अर्थमें) स्वाधीन नहीं हो सकता।"

"पैसा मनुष्यको दरिद्र बनाता है। ऐसी दूसरी वस्तु तो संसारमें विषय हैं। ये दोनों ही विषय विषमय हैं। इनका विष सर्पके विषसे भी बदतर है। सर्प डँसता है तो वह शरीर लेकर ही छोड़ देता है। पर पैसे अथवा विषयके काटनेपर जब उसका विष चढ़ता है, तब तो देह, मन, जीव सब लेकर भी वह पिण्ड नहीं छोड़ता।"

किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।

यह शङ्कराचार्यकी उक्ति याद रखनी चाहिये।"

× × × ×

वाक्योंके नीचे जो रेखाएँ खींची गयी हैं, वह हमारी हैं। श्रीगान्धीजीके द्वारा प्रकट किये हुए उपर्युक्त विचारोंको बहुत दिन बीत गये हैं। पर उस समयसे आज हम कितना नीचे उतर आये हैं, यह देखना कठिन नहीं है। जमानेका चश्मा निकालकर केवल तटस्थ दृष्टिसे देखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। गान्धीजी अपनी प्रस्तावनामें लिखते हैं कि, 'जो विचार पाठकोंके सामने उपस्थित कर रहा हूँ, वे हिंदुस्थानमें, सुधारोंके चक्करमें न पड़े हुए, ऐसे बहुतसे लोगोंके हैं, यह सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

विज्ञ पाठक! हम अनिवार्यरूपसे इस प्रकारके लोगोंके सम्पर्कमें आ पड़े हैं। परंतु सावधान! हम उनका अन्ध-अनुकरण करके भोग भोगनेमें ही अपने जीवनको समाप्त न कर दें। वे तो आत्मतत्त्वको समझते नहीं और देहको ही सर्वस्व मानते हैं। इसलिये शरीरके भोगोंमें ही प्रसन्न रहना उनके लिये ठीक है। परंतु हम जानते हैं कि जीव ईश्वरका ही सनातन अंश होनेके कारण अजर, अमर और अविनाशी है। हमारा विश्वास है कि एक शरीरसे किये गये कर्मके फल दूसरे शरीर धारण करके भोगने ही पड़ते हैं। हम तो समझते हैं कि जैसे लोहारको काम करनेके लिये बँसुला, रन्दा, फरशी आदि साधनोंकी आवश्यकता पड़ती है, दर्जीको जैसे सूई, डोरा, गज, कैंची आदि साधन होते हैं, इसी प्रकार अपना यह शरीर भी ईश्वर-प्राप्तिके लिये एक साधनमात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक पहुँचनेका एक साधन है। लोहार और दर्जी जैसे अपने साधनोंको कार्यक्षम बनाये रखते हैं, उसी प्रकार हमको भी अपने शरीररूप साधनको अन्न-वस्त्र आदि आवश्यक सामग्री देकर कार्यक्षम बनाये रखना कर्त्तव्य है। पर उसके लाड़-प्यार करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

हमको यह भी समझ रखना चाहिये कि भोग-सामग्री तो प्राणीके जन्मके पहले ही निश्चय हो जाती है, अर्थात् प्रारब्धसे अधिक किसी भी प्रयत्नसे कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। इसलिये हमको यथाप्राप्तिमें संतुष्ट रहकर भवबन्धन तोड़नेके लिये ही प्रयत्न करना है।

हमको यह भी समझना है कि जैसे वैभव सदा नहीं रहता, उसी प्रकार दुःखके दिन भी किसीके स्थायी नहीं होते। इसलिये सुख-दुःखके प्रसङ्गको धैर्यपूर्वक सहन करना सीखना चाहिये। यह शरीर जब स्वयं क्षणभङ्गुर है, तब फिर इसको वैभवशाली बनानेसे भी क्या होगा? जब शरीरका ही भरोसा नहीं है तब फिर वैभवका भरोसा कैसे किया जा सकता है?

सुभाषित कहता है—

यास्यति जलधरसमयस्तव च समृद्धिर्लघीयसी भविता।
तटिनि तटद्रुमपातनपातकमेव चिरस्थायि॥

हे नदी! तू इतनी उछल-कूद मचा रही है, इसे तू चार दिनोंकी चाँदनी समझ। जब वर्षाकाल समाप्त हो जायगा, तब तेरा पाट पहलेके-जैसा सँकरा हो जायगा और तेरी सारी उछल-कूद अपने आप बंद हो जायगी। अपने जोरसे जो तू किनारेके पेड़ोंको गिराती जा रही है, उसका कलङ्क केवल तेरे सिर रह जायगा। अतएव वैभव पानेके लिये हाय-हाय न करो और प्रारब्धवश यदि कदाचित् वह मिल भी जाय तो उसका उपयोग सबकी भलाई करनेमें करो, किसीको रुलानेमें नहीं।

दूसरोंकी सेवा जितनी हो सके करो, परंतु कष्ट तो किसीको भी न पहुँचाओ—ऐसा समझाते हुए कहते हैं—

जलबुद्बुदवन्मूढ क्षणविध्वंसि जीवनम्।
किमर्थं शाश्वतधिया करोषि दुरितं सदा॥

जीवन तो पानीके बुलबुलेके समान क्षणमें नाश हो जानेवाला है। उसको अविचल मानकर, भाई! पापाचरण क्यों कर रहे हो? यहाँका सब कुछ यहीं पड़ा रहेगा, जिस शरीरको सुख देनेके लिये पाप करते हो, वह शरीर भी यहीं पड़ा रह जायगा, केवल—केवल किये हुए कर्मोंकी पोटली लेकर जीवको अकेले ही जाना है।

कर्मानुगो गच्छति जीव एकः।

परमात्मा सबको सद्बुद्धि दें।

तेरी इच्छामें ही मेरी इच्छा

तेरी ही इच्छा पूरी हो।
तेरी इच्छासे मेरी इच्छाकी कम-से-कम दूरी हो॥
तेरी इच्छामें ही सबका सुख-वैभव-कल्याण निहित है।
इच्छा नहीं किंतु हितको ही सबके तूने किया विहित है॥
अपरिहार्य जो होना ही है, उसका स्वेच्छा-वरण उचित है।
जिसकी कोई दवा नहीं है, उसके लिये शोक अनुचित है॥
मेरी नहीं किंतु तेरी ही, बस तेरी इच्छा पूरी हो।
तेरी इच्छामें मिलकर ही मेरी भी इच्छा पूरी हो॥

—मधुसूदन बाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्विचारोंका विकास

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवशास्त्रीजी)

सद्विचारोंको चारित्र्यका शरीर कहना चाहिये। उनका विकास कैसे हो सकता है, इसी बातको नीचेके पद्योंमें समझानेका यत्न किया गया है—

क्षेत्रे विना प्रयत्नेन वन्यतृणसमुद्भवः।
भूयो भूयः कृषेः पक्षे महानर्थाय जायते॥

सब कोई जानते हैं कि प्रत्येक खेतमें जंगली घास-पात बिना प्रयत्नके ही बार-बार उगती रहती है और इससे खेतीकी बड़ी हानि होती है।

कृषकस्य प्रयत्नेन सावधानस्य नित्यशः।
वारणं क्रियते तेषां कृषे रक्षा च जायते॥

सावधान किसान बराबर प्रयत्नपूर्वक उस जंगली घास-पातको निकालता रहता है और इसी प्रकार खेतीकी रक्षा की जाती है।

एवं चित्ते स्वभावेन नानादुर्वासनोदयः।
जायमानो मनुष्यस्य क्लेशसंततिकारणम्॥

इसी प्रकार मनुष्यके चित्तमें स्वभावसे ही अनेकानेक दुर्वासनाएँ पैदा होती रहती हैं और उनके कारण उसको बराबर क्लेशोंका अनुभव करना पड़ता है।

केवलं तत्र यत्नेन भूयो भूयः कृतेन वै।
निरोधः शक्यते कर्तुं तासामुन्मूलनं तथा[1]॥

इस स्थितिमें केवल बार-बार किये गये यत्नसे ही उनका निरोध और उन्मूलन किया जा सकता है।

धीरैरुत्साहसम्पन्नैः श्रद्धाविश्वासधारिभिः।
कर्तुं तत्पार्यते नैव संशयाविष्टमानसैः॥

यह कार्य (दुर्वासनाओंका निरोध और उन्मूलन) श्रद्धा और विश्वासको धारण करनेवाले उत्साही धीरवीरोंद्वारा ही किया जा सकता है। जिनके मनमें संशय बैठा हुआ है, वे इस कार्यको नहीं कर सकते।

वासना या शुभोदर्का विचारा ये च साधवः।
कुशलं तत्र रोहन्ति स्वच्छे चित्ते न संशयः॥

शुभ परिणामको उत्पन्न करनेवाली वासनाएँ और अच्छे विचार स्वच्छ चित्तमें ही अच्छी तरह पनपते हैं, इसमें कोई संशय नहीं हो सकता।

तस्य देवस्य सवितुः प्रसवानां य ईशिता।
प्रकाशप्रेरणां लब्ध्वा वस्तुतो जीवनप्रदाम्॥
नष्टा ये दुष्टसंस्कारास्तेषां खाद्येन नित्यशः।
सद्विचाराः प्ररोहन्ति शुभसंकल्पवारिणा॥

समस्त उत्पत्तियोंके स्वामी उन सवितृदेवसे वस्तुतः जीवनको देनेवाली प्रकाशकी प्रेरणाको पाकर, जो दुष्ट संस्कार बराबर नष्ट होते जाते हैं उनके खाद्य (खाद) से और शुभ संकल्पोंके जलसे मनुष्यके चित्तमें सद्विचार उगते और बढ़ते हैं।

अभिप्राय यह है कि अच्छी खेतीके लिये जैसे सूर्य-प्रकाश, खाद और पानीकी आवश्यकता होती है, ऐसे ही मनुष्यके चित्तमें सद्विचारोंकी उत्पत्ति और पुष्टिके लिये भगवान्‌की प्रेरणा (या कृपा), दुष्ट संस्कारोंका नाश और शुभ-संकल्प (क्रमशः सूर्य-प्रकाश, खाद और पानीके स्थानीय)—इनकी आवश्यकता होती है।

उच्छेद्या याश्च संरक्ष्या वासनास्तत्र संस्थिताः।
तासां विवेकः प्रथमं बुद्धिमद्भिरपेक्ष्यते॥

इस कार्यमें सबसे पहले चित्तमें रहनेवाली उच्छेदनीय (=जिनका उन्मूलन करना है) और संरक्षणीय (=जिनकी रक्षा करना अपेक्षित है) वासनाओंमें परस्पर विवेक करनेकी आवश्यकता बुद्धिमानोंको होती है।

---

१. 'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।' 'ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः।' 'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः।' (योगसूत्र २। ३, १०, ११)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तभूमौ प्रयत्नेन पोषितैवं निरन्तरम् ।
सद्विचारकृषिः कृष्टिः संस्कृतिर्वा मता बुधैः ॥

इस प्रकार चित्तरूपी भूमिमें बराबर प्रयत्नपूर्वक पोषित की गयी सद्विचारोंकी कृषिको विद्वान्‌लोग 'कृष्टि' अथवा 'संस्कृति' समझते हैं ।

अभिप्राय यह है कि मनुष्योंके सद्विचारोंकी समष्टिको ही 'संस्कृति' अथवा 'कृष्टि' इन शब्दोंद्वारा कहा जाता है ।

अक्षय्यममृतं पुण्यं दिव्यानन्देन संयुतम् ।
तत्फलं तेन धनिनस्ते धन्यास्ते मनीषिणः ॥

उपर्युक्त सद्विचारोंकी कृषिका फल अक्षय्य, अमृत, पवित्र और दिव्य आनन्दसे युक्त होता है । उस फलसे जो धनी हैं, वे धन्य हैं, वे मनीषी हैं ।

अभिप्राय यह है कि लोकप्रसिद्ध कृषिसे मनुष्योंको साधारण अन्नादिका लाभ होता है, परंतु उपर्युक्त सद्विचारोंकी कृषिसे जो फल प्राप्त होता है वह अक्षय्य आदि गुणोंसे युक्त होनेके कारण अन्नादिसे कहीं बढ़-चढ़कर होता है ।

श्रीजीका पुरुषकारत्व

(लेखक—श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज, समस्त तुलसीसाहित्यके विशद व्याख्याकार)

शरणागति-विद्यामें आचार्योंने शास्त्रानुसार श्री(जानकी)-जीको शरणागत जीवोंकी ओरसे अपने मातृत्व स्वभावसे पुरुषकार-स्वरूप माना है । भगवान्‌में कृपा एवं करुणा उद्दीप्त कर जीवोंके दोषोंको क्षमा कर इनका कल्याण कराना 'पुरुषकारत्व' कहा जाता है । तत्त्वतः अभिन्न होते हुए भी मातृत्व-स्वभावसे श्रीजी सहर्ष पुरुषकारत्व करती हैं ।

श्रीतत्त्व

श्रीजानकीजी और श्रीरामजी मिलकर अखण्ड ब्रह्म हैं; यथा—

यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ।
(वि० पु० १ । ८ । १७)

पराशरजीने मैत्रेयजीसे कहा है कि 'जिस प्रकार विष्णु (व्यापक रूप श्रीरामजी) सर्वव्यापक हैं, उसी प्रकार ये श्री (जानकी) जी भी (सर्वव्यापिका) हैं ।' इन्द्रने भी श्रीजीकी स्तुति करते हुए कहा है—

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥
(वि० पु० १ । ९ । १२६)

'आप सब लोकोंकी माता हैं और देवाधिदेव श्रीहरि पिता हैं । आपसे और श्रीविष्णुसे चराचर जगत् व्याप्त है ।'

व्यापक ब्रह्म तो एक ही है, वही नित्य पति-पत्नीरूपसे भक्त-हितार्थ माता-पितारूपोंसे कल्याण करता है । जहाँ केवल ब्रह्मका वर्णन है, वहाँ श्रीजीका उसीमें अन्तर्भाव समझना चाहिये; यथा—

तदन्तर्भावात्त्वां न पृथगभिधत्ते श्रुतिरपि ।
(भट्टार्कस्वामीकृत श्रीगुणरत्नकोष २८)

'श्रुतिने स्थान-स्थानपर श्रीजीका भगवत्तत्त्वमें अन्तर्भाव कर लेनेके कारण उन-उन स्थानोंपर उनका पृथक उल्लेख नहीं किया ।'

भगवान् अपने युगल रूपोंसे भक्तोंके हितार्थ अवतार लेकर अपने कृपा आदि गुणोंको कष्ट सहते हुए प्रकट करते हैं कि वे उन गुणोंके लक्ष्योंसे भगवान्‌के कल्पतरु स्वभावसे सहायता प्राप्त कर भवसागर पार हों ।

राम भगत हित नर तनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
(रामचरितमानस बाल० २४)

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं ॥
(रामचरितमानस बाल० १२१)

श्रीजानकीजीमें पुरुषकारत्व

शरणागतोंके प्रति श्रीरामजीमें उपायत्व और श्रीजानकीजी-में अपने मातृत्व स्वभावसे पुरुषकारत्व—ये असाधारण गुण हैं । इससे श्रीजानकीजी श्रीरामजीके हृदयमें कृपा एवं करुणगुणका उद्दीपन करा जीवोंके दोष क्षमा करा उनका कल्याण कराती हैं, इससे वे पुरुषकारस्वरूपा कही जाती हैं; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पतितात्मनाम् ।
लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ।
ममापि च मतं होतन्नान्यथा लक्षणं भवेत् ॥

(श्रीनारदपाञ्चरात्र)

'संसारमें अधःपतित तुच्छ जीवोंको मेरी प्राप्तिके लिये महर्षि लोगोंने श्रीलक्ष्मीजीको पुरुषकार कहा है। मेरा भी यही मत है, इसमें अन्य प्रकार लक्षण नहीं हो सकता ।'

आचार्योंने श्रीजानकीजीके पुरुषकारत्वकी रीतियोंका भी वर्णन किया है—

पितेव त्वत्प्रेयान्जननि परिपूर्णागसि जने
हितस्रोतो वृष्या भवति च कदाचित् कलुषधीः ।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः ॥

(भट्टार्कस्वामीकृत श्रीगुणरत्नकोष)

''हे माता ! परिपूर्ण पापी जीवके विषयमें हित करनेकी वृत्तिसे पिताके समान आपके स्वामी कभी कुपित होते हैं। उस समयमें आप 'यह क्या हुआ ?' 'इस जगत्में अपराधरहित कौन है ?' आदि इस प्रकारके उपायोंसे इस जीवके अपराधोंको ईश्वरके चित्तसे भुलाकर उसे अपनाती हैं । इस कारणसे आप हमलोगोंकी माता होती हैं ।''

जयन्तकी शरणागतिके प्रसंगमें इसका चरितार्थ हुआ है । अरण्यकाण्ड रामायणके चरितमें जब श्रीरामजी श्रीजानकीजीका शृंगार कर रहे थे, तब देवोंको श्रीरामजीकी शृङ्गाररस-मग्न वृत्तिपर संदेह हुआ कि इस वृत्तिसे ये रावण-वध कैसे करेंगे ? इसपर जयन्तने श्रीरामजीके बलकी परीक्षा करनी चाही, इससे उसने श्रीजानकीजीके चरणमें काकरूप होकर चोंचोंसे प्रहार किया । श्रीरामजीने सींकपर ही ब्रह्मास्त्र चला दिया । वह घबराकर अपना रूप धारणकर पिताके पास दौड़ा गया, उसने नहीं रक्खा तथा तीनों लोकोंमें उसे कहीं आश्रय नहीं मिला । वह व्याकुल हो गया, तब श्रीनारदजीकी प्रेरणासे उसने श्रीरामजीकी शरणागति की । घबराकर सम्मुख जा गिरा ।

पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा ।
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥
प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम् ।
त्राहि त्राहीति भर्त्तारमुवाच दयया विभुम् ॥
तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूषसागरः ।
ररक्ष रामो गुणवान् वायसं दययैक्षत ॥

(पद्मपुराण)

''देवी श्रीजानकीजीने भूमिपर सामने पड़े हुए काक जयन्तके सिरको श्रीरामजीके चरणोंमें लगा दिया और प्राण जानेके भयसे डरे हुए उस कौएको देखकर श्रीजानकीजीने दया करके अपने समर्थ स्वामीसे 'इसकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' इस प्रकार कहा । कृपानिधान श्रीरामजीने उस कौएको अपने हाथसे उठाकर उसकी रक्षा की और फिर वे दयादृष्टिसे उसकी ओर देखने लगे ।'' देखिये, पति-सेवा-परायणा श्रीजीके चरणमें कितने आघात कर जयन्तने घाव कर दिया था । रुधिरधार बहनेपर स्वामीने जाना । पर श्रीजीने स्वामीके क्रुद्ध होकर पूछनेपर भी उसे नहीं दिखाया, पर वह तो बल-परीक्षार्थ आया ही था, इससे रक्त-सने हुए चोंचोंको दिखाकर उसने स्वयं अपनेको दिखाया था । इस कारण स्वामीने उसपर ब्रह्मास्त्र चला दिया था ।

उसके व्याकुल होकर शरणमें गिरनेपर उसके अपराधोंको सर्वथा भुलाकर उसकी बिगड़ी हुई विधिको भी सँभाल दिया, उसका सिर श्रीरामजीके चरणोंपर रख, उसकी रक्षा करायी और स्वामीको समझाकर उसपर उनकी दयादृष्टि करा दी ।

श्रीजानकीजीको अनुकूल करनेके लिये किसी साधनकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती । माताको अपनी संतानपर स्वभावतः वात्सल्य दृष्टिसे दया होती है । अतः आप निष्कारण प्रसन्न होकर इनकी रक्षा करानेवाली होती हैं ।

देखिये, श्रीकृष्ण भगवान्ने अपनी प्रतिज्ञा (गीता १८। ६६) में मुमुक्षुके प्रति दो क्रियाएँ रख दी हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अर्थात् उपायान्तरका त्याग करना और उनको एकमात्र परम आश्रय मानकर उनकी शरण होना—इन दो क्रियाओंके करनेपर ही मुमुक्षु उनकी कृपाका अधिकारी होता है । इसी प्रकार श्रीरामजीकी प्रतिज्ञा (वाल्मीकि० ६ । १८ । ३३) में भी—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

इसके अनुसार दीन होकर 'तवास्मि' इस भावकी निरन्तर स्थितिकी याचना आवश्यक है । अतएव यहाँ भी एक क्रिया रख दी गयी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु श्रीजीने ऐसी किसी भी क्रियाकी अपेक्षा नहीं रक्खी है। लङ्कामें जब राक्षसियोंने त्रिजटाके स्वप्न-कथनपर अपने कुकृत्योंसे डरकर यह निश्चित किया—

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥

'श्रीजानकीजी तो केवल प्रणाम एवं नम्रतासे ही प्रसन्न होती हैं। अतः ये ही राक्षसियोंकी महाभयसे रक्षा कर सकती हैं।' इसपर बिना प्रणाम आदि क्रियाके किये ही श्रीजानकीजीने कह दिया—

भवेयं शरणं तु वः। (वाल्मीकि० ५। २७। ३९,४७)

'मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी।'

फिर जब विजय-समाचार सुना श्रीजानकीको प्रसन्न कर श्रीहनुमान्‌जीने उन राक्षसियोंके चित्र-वध (अङ्ग-अङ्ग टुकड़े कर डालनेकी क्रिया) करनेका वरदान माँगते हुए कहा कि 'इन राक्षसियोंने आपको नाना प्रकारसे दुःख दिया है, अतएव मैं इनका चित्र-वध करूँगा।' इसपर श्रीजानकीजीने उन्हें समझाते हुए कहा—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥
पापानां वाशुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥

(वाल्मी० ६। ११३। ४२-४३)

'पापियोंके पापोंकी ओर धर्मात्मा पुरुष ध्यान ही नहीं देते, इस मर्यादाकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि संतोंका भूषण सच्चरित्र ही है। पापी हो, अशुभ आचरणवाला हो और चाहे वह वध करनेके योग्य ही क्यों न हो, सज्जनोंको उसपर करुणा ही करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं है जो अपराध न करता हो।'

इस प्रसङ्गमें श्रीजानकीजीने प्रणाम मात्र भी न करनेवाली राक्षसियोंकी श्रीहनुमान्‌जीसे समझाकर रक्षा करायी है। श्रीजानकीजीके इस निर्हेतु-वत्सल स्वभावपर मुग्ध होकर भट्टार्क स्वामीने कहा है—

मातर्मैथिलि ! राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ॥

(भट्टार्क स्वामी कृत श्रीगुणरत्नकोष)

"हे माता ! हे श्रीमैथिलीजी ! तात्कालिक अपराध करनेवाली राक्षसियोंको श्रीहनुमान्‌से रक्षा करानेवाली आपकी कृपाने 'मैं आपकी शरण हूँ' ऐसा वचन कहनेवाले शरणागत जयन्त और विभीषणजीकी रक्षा करनेवाली श्रीरामजीकी कृपाको अत्यन्त लघु सिद्ध कर दिया। वह आपकी निर्हेतुकी कृपा अत्यन्त पापी हम-सरीखे आश्रितोंको सुखी करे।"

घोर अपराधी जयन्तकी श्रीरामजीसे और महान् दुःख-दायिनी राक्षसियोंकी रक्षा श्रीजानकीजीने हनुमान्‌जीसे करवायी। ये सब श्रीजानकीजीके ही अपराधी थे। इनके लिये भी आपके हृदयमें इतनी दया थी तो और प्राणियोंको दुःख देनेवालोंके प्रति रक्षकत्वका क्या कहना है ? अतः श्रीजानकीजीकी अनुकूलता अति सुलभ है।

श्रीमद्रामायणमें श्रीलक्ष्मणजीने प्रपत्ति करते हुए श्रीजानकीजीको पुरुषकारत्वके लिये वरण करनेका रहस्य प्रकट किया है।

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम् ॥

(वाल्मीकि० २। ३१। २)

श्रीलक्ष्मणजीने (वनयात्रा-समय) श्रीरामजीके दोनों चरणोंको बड़े बलपूर्वक पकड़ लिया और अत्यन्त यशस्विनी श्रीसीताजी तथा महाव्रतधारी श्रीरामजीसे कहा।

यहाँ **'सीतामुवाचातियशाम्'** इस पदको पहले देकर महर्षिजीने प्रकट कर दिया है कि अनन्त जीवोंको भगवत्सम्मुख कराके श्रीजीने यश प्राप्त किया है, उन श्रीसीताजीसे कहा, उन्हें अपनी प्रपत्तिमें पुरुषकाररूपमें वरण किया; इस प्रकार उनकी सहायता प्राप्त करनेके पश्चात् **'राघवं च महाव्रतम्'** इस पदके अनुसार लक्ष्मणजीने श्रीरामकी प्रपत्ति की।

वन-लीलामें एक बार श्रीलक्ष्मणजीसे श्रीरामजीने कहा कि कोई ऐसा स्थल इस पञ्चवटीके वनमें देखो—

रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण ।

(वाल्मीकि० ३। १५। ४)

'जहाँ श्रीजानकीजी प्रसन्न रहें और तुम एवं मैं भी प्रसन्न रहूँ।' श्रीरामजीके ऐसा कहनेपर श्रीलक्ष्मणजी यह समझकर दुखी हुए कि स्वामीने मुझे स्वतन्त्र मानकर ऐसा कहा है, इससे तो यह सिद्ध होता है कि स्वामीने मुझे अपनी परतन्त्रतासे पृथक् कर दिया। मुझमें स्वतन्त्रताकी एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स्वसुखकी कोई भावना अवश्य रही होगी; तभी तो स्वामीने वैसा कहा है। अतः मेरी शरणागति खण्डित हो गयी। फिर प्रायश्चित्तरूपमें उन्होंने फिरसे शरणागति की; यथा—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥
(वाल्मीकि० ३। १५। ६-७)

'श्रीरामजीके ऐसा कहनेपर श्रीलक्ष्मणजीने हाथ जोड़कर श्रीसीताजीके सामने श्रीरामजीसे इस प्रकार कहा कि हे श्रीरामजी! आप यदि सैकड़ों वर्षोंतक वनमें रहें, तो भी मैं आपके अधीन हूँ (आपके परतन्त्र हूँ), जो स्थान आपको अच्छा लगे, वहींपर मुझे आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये।'

इस प्रसङ्गमें 'सीतासमक्षम्' इस पदमें श्रीसीताजीको पुरुषकाररूपमें वरण करना और 'संयताञ्जलिः' इस पदमें शरण होनेका भाव है; क्योंकि हाथ जोड़ना नमस्कारकी मुद्रा है और नमःका अर्थ शरणागति होता है।

श्रीलक्ष्मणजीने स्वतन्त्रताकी आशङ्कासे अपनी शरणागतिका खण्डित होना मानकर फिर प्रायश्चित्तरूपमें प्रपत्ति ही की है। इससे यह दिखाया है कि शरणागतसे स्वातन्त्र्य, उपायान्तर, फलान्तर एवं देवान्तर-भावना हो जानेपर यदि भूलसे इसकी प्रपत्ति खण्डित हो जाय तो इसे उसके प्रायश्चित्त-विधिमें भी पश्चात्तापपूर्वक पुनः शरणागति ही करनी चाहिये; तथा—

उपायापायसंयोगे निष्ठया हीयतेऽनया।
उपायसम्भवे भूयः प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥
प्रायश्चित्तिरियं तेषां यत्पुनः शरणं व्रजेत्॥

'भगवत्कृपा छोड़कर एवं अपनी स्थितिके विरुद्ध शास्त्रप्रतिकूल विषयमें प्रवृत्ति होनेपर इस मुमुक्षुकी प्रपत्ति खण्डित हो जाती है, तब इसे पश्चात्तापपूर्वक फिरसे शरणागति ही करनी चाहिये। उपायान्तर नहीं और साथ ही श्रीजीको पुरुषकाररूपसे वरण करना चाहिये।'

शङ्का—श्रीसुग्रीवजी और श्रीविभीषणजीकी शरणागतिपर तो श्रीजानकीजी श्रीरामजीके साथ नहीं थीं, बिना उनके पुरुषकारत्वके इन दोनोंकी प्रपत्ति कैसे स्वीकृत एवं सफल हुई?

समाधान—श्रीसुग्रीवजीको भूषण-वस्त्र देकर श्रीजानकीजीने अपना लिया था; यथा—

ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्चवानरपुङ्गवान्।
तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्॥
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च।
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी॥
(वाल्मीकि० ३। ५४। २-३)

'गिरिशृङ्गपर बैठे हुए पाँच श्रेष्ठ वानरोंको देखा तब श्रीजानकीजीने रेशमी पीत वर्णके उत्तरीय वस्त्रमें लपेटकर अपने शुभ भूषणोंको इस विचारसे गिरा दिया कि यदि श्रीरामजी खोजते हुए आवें तो ये लोग इन चिह्नोंको देकर मेरी वह हरण-व्यवस्था उनसे कहें (और वे मेरे कृपापात्र जानकर इनपर कृपा करें)।'

श्रीजानकीजीने सुग्रीवजीको अपना लिया है, यह जानने-पर यद्यपि सुग्रीवजीने स्वामीके नित्यवीर्यमें संशय किया एवं बल-परीक्षा करनी चाही, यह विपरीत बर्ताव किया (क्योंकि शरणागतका स्वामीमें अविश्वास न होना चाहिये और फिर सेवककी परीक्षा स्वामी भले ही कर सकता है; परंतु सेवक ही स्वामीकी परीक्षा करे, यह विपरीत बर्ताव है); तथापि स्वामीने परीक्षा दी—दुंदुभीकी हड्डी फेंकी और सप्तताल बेधे, क्योंकि प्राणप्रिया (श्रीजी) ने इन्हें अपना लिया है, यह उनका कृपापात्र हो चुका है। अतः अब इसका ग्रहण करना ही है, यह निश्चित कर लिया था। श्रीविभीषण-जीकी स्त्री सरमा और उनकी लड़की कला श्रीजानकीजीकी सेवामें पहलेसे ही रहती थीं और श्रीविभीषणजीकी श्रीजानकी-जीमें भक्ति थी; यथा—

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम्॥
ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम्॥
(वाल्मीकि० ५। ३७। ९,११)

श्रीजानकीजीने श्रीहनुमान्‌जीसे अशोकवाटिकामें कहा है कि 'उस (रावण) के भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिये उसे बहुत समझाया, पर वह उसकी बात नहीं मानता है।.....हे वानर! विभीषणकी बड़ी कन्याका नाम कला है, उसने मुझसे ये बातें कही हैं, उसकी माताने उसे मेरे पास भेजा था।'

यह सब समाचार श्रीहनुमान्‌जीने आकर श्रीरामजीसे कहा ही था; अतः श्रीरामजीने निश्चित कर लिया था कि प्राण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियाने विभीषणजीको अपना लिया है, विभीषणजी रामके कृपापात्र हो चुके हैं। इसपर जब श्रीविभीषणजी शरण होने आये, तब नीतिकी दृष्टिसे एवं अपने सख्यभावका गौरव आगे कर श्रीसुग्रीवजीने मन्त्रियोंके साथ और अन्तमें श्रीलक्ष्मणजीको भी साथ लेकर बहुत प्रकारसे रोकनेका प्रयास किया कि स्वामी इसे न अपनावें, पर श्रीरामजीने बड़ा शास्त्रार्थ कर बलात् विभीषणका ग्रहण किया, यह वाल्मीकीय रामायणमें प्रसिद्ध है।

इन प्रमाणोंसे इन दोनोंकी शरणागतिमें श्रीजीका पुरुषकारत्व रहा। अतः जहाँ शरणागतिमें श्रीजीका पुरुषकारत्व प्रकटमें न दीख पड़ता हो, वहाँ अन्तर्भूतरूपमें होना मानना चाहिये।

श्रीगोस्वामीजीने भी श्रीजीसे पुरुषकारत्वकी याचना की है—

मेरिओ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ ॥ १ ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ ॥ २ ॥
बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥ ३ ॥
जानकी जग जननि जन की किये बचन सहाइ।
तरइ तुलसीदास भव तव नाथ गुन गन गाइ ॥ ४ ॥

श्रीजी अपने मातृत्व-स्वभावसे प्रथम पुरुषकारत्व कर मुमुक्षुके दोषोंको स्वामीके चित्तसे दूरकर इसका कल्याण कराती हैं जैसे माता बच्चेको शुद्ध कर शृंगार कर देती है, तब वह पिताके प्रसादका पात्र होता है। युगल रूप-सेवामें एवं युगल नाम-जपमें भी श्रीसीताजी एवं श्रीरामजीके इन गुणोंका मनन करना चाहिये।

सृष्टिका सौन्दर्य

(लेखक—श्रीशारदाशंकरजी कोचक)

प्रातःकालका समय था और अभी सूरजकी किरणें ओसकी बूँदोंको जगा भी नहीं पायी थीं कि मेरी आँख गुलाबके एक फूलपर पड़ी जो शायद अभी-अभी ही कलीसे एक फूल बना था। उसमें जवानी उमड़ रही थी और उसकी कसूमी रंगकी पत्तियाँ जवानीके जोशमें ऐंठी हुई थीं। उन पत्तियोंकी रगें रससे तनी थीं और उनपर ओसकी नन्हीं-नन्हीं बूँदोंके मानो स्वेद-बिन्दु चमक रहे थे। नीचे दो हरी पत्तियाँ चोटियोंकी तरह लटक रही थीं। इस फूलमें सृष्टिने कितना सौन्दर्य भर दिया था। मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह फूल मेरी ओर देखकर मुसकुरा रहा है। मैं खड़े-खड़े आँखोंसे उस फूलके सौन्दर्य-रसका पान करता रहा, पर मुझसे रहा न गया। मैंने सोचा कि यदि मैं इस फूलको न तोड़ूँ तो कहीं इसके सौन्दर्यका निरादर न हो जाय। इसलिये मैंने उस फूलको तोड़ ही लिया और पूजाघरमें जाकर उस फूलको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर दिया ताकि उसका जीवन सफल हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधारानी दिव्य भावोन्मादमें कभी नव-नील-नीरधर मेघको देखतीं तो उन्हें लगता—मेरे प्रियतम प्राणधन श्रीश्यामघन पधारे हैं। यह समझकर वे अपने प्राणधनपर प्रेमाक्षेप करतीं, उनको न मालूम क्या-क्या कहने लगतीं। जब बदलेमें कोई उत्तर नहीं मिलता, तब यह पता लगता कि यह तो निरा बादल है, श्यामसुन्दर नहीं हैं। ऐसा होते ही वे अत्यन्त विषण्ण होकर अचेत हो जातीं। एक दिन सचमुच ही प्राणधन श्यामसुन्दर पधारे और निकुञ्ज-द्वारपर खड़े होकर उन्होंने मृदु-मन्द स्वरसे मुरलीकी मधुर तान छेड़ दी। राधा चौंकीं—देखा तो प्रियतम श्यामसुन्दर दिखायी दिये पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। सोचा कहीं—बादल न हो। बहुत काल नहीं बीता था, तथापि वे प्रियतम श्रीकृष्णके मिलनानन्दको अपने लिये दुर्लभ मानने लगी थीं, इस कारणसे भी, श्रीकृष्णको देखकर भी वे अपने सौभाग्यपर विश्वास नहीं कर सकीं, सोचा, वे क्यों आने लगे, मेघ ही उमड़ा है। पर फिर दृष्टि गयी तो प्रियतम श्यामसुन्दर दीख पड़े। तब भ्रम मिटानेके लिये उन्होंने प्यारी सखी ललिता-विशाखासे कहा—

खड़ा यह कौन कुंजके द्वार ?
देखो ललिते ! अरी विसाखे ! करो न तनिक अबार ॥
है घनश्याम वारिधर ? है या गिरिधर श्याम सुजान ? ।
उमड़ा घन नूतन ? या आये घर मोहन रसखान ? ॥
नव-जलधरमें इन्द्रधनुष है ? या है सिर शिखि-पक्ष ? ।
बक-पाँती उड़ रही ? हिल रही मुक्त-माल या वक्ष ? ॥
घन-तन-पर बिजली है ? या है मोहन-तन पट पीत ? ।
मन्द मेघगर्जन है ? या है प्रियका मुरली-गीत ? ॥
सजनी जाओ तुरत, बताओ आ मुझको सब बात ।
हँस बोलीं—सखि ! माधवसे मिल करो सुशीतल गात ॥

अरी ललिते, विशाखे ! देखो तो कुञ्जके द्वारपर वह कौन खड़ा है ? जरा भी देर न करो। (दीखते तो हैं श्यामसुन्दर ही, पर मेरा भ्रम भी हो सकता है—देखो तो—) वह जलधर श्याममेघ है, या गिरिधारी सुजान मेरे श्याम हैं ? जलभरा बादल ही उमड़ आया है या रसकी खान मोहन घर पधारे हैं ? (श्यामसुन्दरके मस्तकपर मोर-पंख देखकर कहने लगीं—) नवीन जलधर मेघमें यह बहुरंगा इन्द्रधनुष दिखायी दे रहा है या श्यामसुन्दरके सिरपर मयूर-पक्ष लहरा रहा है ! (श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर उज्ज्वल मोतियोंका हार देखकर बोलीं—) यह बगुलोंकी कतार उड़ी जा रही है या प्रियतमके हृदयपर मुक्तामाला हिल रही है ! (फिर प्रियतमके चमकते हुए पीताम्बरको देखकर पूछने लगीं—) यह मेघके शरीरपर बिजली कौंध रही है या प्यारे मोहनके तनपर पीला वस्त्र फहरा रहा है ! (तदनन्तर श्यामकी मधुर मुरलीकी ध्वनि सुनकर कहती हैं—) यह मेघका मृदु गर्जन है या प्रियतमका मधुर वंशी-गान है ? सजनी ! जाओ और लौटकर मुझे सब बातें तुरंत बताओ। श्रीराधारानीकी बात सुनकर दोनों सखियोंने हँसकर कहा—प्यारी सखी ! मेघ नहीं है, तुम्हारे प्रियतम माधव ही हैं, उनसे मिलकर अपने शरीरको सुशीतल करो !

मधुर प्रेम

जो परतन्त्र सदा प्रिय-सुखके, जो न कदापि स्वतन्त्र ।
जिसका निज प्रिय-सुख केवल जो प्रिय-सुखका ही यन्त्र ॥
जो प्रियमें संदेहरहित नित प्रिय ही जिसका क्षेम ।
प्रिय ही जिसका जीवन-जीवन यही मधुरतम प्रेम ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीविष्णु-माया

(लेखक—पं० श्रीकोशलेशजी भारद्वाज, एम्० ए०)

भगवान्‌की शक्तिसम्पन्नता

श्रीभगवान् अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। वे विभिन्न शक्तियोंके आधार हैं। सभी शक्तियाँ उनके आश्रित हैं और वे सब स्वाभाविकी हैं—

शक्तिः स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा।
एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा॥
अनन्ताः शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादयः।
(शिव०, वायु०, उत्तर०, अ० ७)

यही बात श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में बतायी गयी है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

द्वादश शक्तियोंमेंसे एक माया

अक्रूरको भगवान् श्रीकृष्णने अपना द्वादशशक्ति-निषेवित रूप दिखाया था। उन शक्तियोंके नाम हैं—श्री, पुष्टि, गिरा, कान्ति, कीर्ति, पुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति और माया। इससे विदित होता है कि भगवान्‌की अनेकानेक शक्तियोंमेंसे एकका नाम माया है।

शक्तिका शक्तिमान्‌से सम्बन्ध

भगवान्‌की शक्ति भगवत्स्वरूपा है, अतएव नित्य और सनातन है। जिस प्रकार अग्निमें दाहिका शक्ति अथवा सूर्यमें प्रभा विराजमान है, उसी प्रकार भगवान्‌में भगवच्छक्ति विराजमान है—

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥
अतएव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वज् सदपि नारद॥
(देवीभागवत ९। १। १०)

इस स्वतःसिद्धा शक्तिका नाम माया है। सारा संसार मायाका विलास है। भगवदाश्रिता होनेके कारण भगवान्‌से पृथक् मायाका अस्तित्व नहीं है—

तस्य काचित्स्वतःसिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।
पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः॥
(देवीभा० ७। ३२। ६)

मन्मायाशक्तिसंकृष्टं जगत् सर्वं चराचरम्
सापि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः॥
(देवीभा० ७। ३३। ५)

श्वेताश्वतरमें प्रकृतिको माया एवं भगवान्‌को मायावी बताया गया है। प्रकृतिमें तीन गुण होते हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। प्रभु स्वयं निर्गुण हैं, किंतु अपनी गुणमयी और सूक्ष्म-स्थूल भावोंमें रहनेवाली मायाके द्वारा इस जगत्‌की रचना किया करते हैं—

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः॥
(भागवत०)

मायाके नामान्तर

मायाको ही विष्णु-माया, महामाया, आत्ममाया, योग-माया, योगनिद्रा और विष्णुनिद्रा कहा गया है। उदाहरणार्थ—

१ विष्णुमाया

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
(मार्कण्डेय०)

२ महामाया

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥
(मार्कण्डेय०)

३ आत्ममाया

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥
(भाग० १। १। १८)

४ योगमाया

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥
(भागवत १०। २९। १)

५ योगनिद्रा

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्॥
(मार्कण्डेय०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥
(मार्कण्डेय०)

मायाकी दुरत्ययता

विष्णु भगवान्‌की यह दैवी गुणमयी माया दुरत्यय है। साधारण प्राणियोंकी तो चर्चा ही क्या, बड़े-बड़े योगीन्द्र भी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकते—

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्ययययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवाँस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥
(भागवत)

मायाकी अधिष्ठात्री श्रीदेवी

त्रिगुणमयी मायाकी अधिष्ठात्री हैं—श्रीदेवी। भगवान्‌के समान इनका भी वैभव अनन्त है। इनके स्वरूप, रूप, नाम, धाम और लीलाओंका भक्तोंमें परम समादर है। भगवान् इन्हींकी सहायतासे विचित्र लीलाएँ किया करते हैं। उदाहरणार्थ—विश्वात्मा भगवान्‌ने जब यदुवंशियोंपर दुरात्मा कंसका अत्याचार देखा, तब भगवती योगमायासे कहा कि 'हे देवि! आप व्रजमें जाकर यशोदाके यहाँ पुत्रीरूपसे अवतीर्ण हो जाइये और देवकीके गर्भस्थ शेषजीको रोहिणीके गर्भमें पहुँचा दीजिये। भूमण्डलकी जनता आपकी पूजा-अर्चा किया करेगी। आप सर्वकामवरेश्वरी हैं। आपके नाम अनेक हैं। यथा—दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका। तदनन्तर श्रीदेवीने यशोदाके यहाँ तनयारूपमें अवतार लिया। जब वसुदेव बालकृष्णको यशोदाके पास पहुँचाने आये थे, तब इन्हीं बालदेवीको अपने साथ लेते गये थे। कंसने इन्हें ही देवकी-संतति मानकर, शिलापर पटककर मारना चाहा था, किंतु बालिका कंसके हाथसे छूटकर, आकाशमें निराधार विराजमान होकर और कंसको अपना दिव्य अष्टभुजरूप दिखाकर विन्ध्याचलको चली गयी—

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥
(मार्कण्डेयपुराण)

शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री—ये सब देवीके ही रूप हैं। एवं ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री—ये भी श्रीदेवीकी विभूतियाँ हैं। यह बात शुम्भके प्रति स्वयं भगवतीके वचनसे स्पष्ट है—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥
(मार्कण्डेयपुराण)

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला—ये दस महाविद्याएँ भी परब्रह्मकी दिव्यशक्ति श्रीदेवीके रूपान्तर हैं।

श्रीदेवीके अवतार

श्रीभगवान् जिस प्रकार अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये समय-समयपर अवतीर्ण हुआ करते हैं, उसी प्रकार श्रीदेवी भी मार्कण्डेयपुराणके अनुसार देवीजीके अनेकानेक अवतारोंमेंसे ये प्रसिद्ध हैं—वैप्रचित्त दानवोंके विनाशके लिये रक्तदन्तिका, अनावृष्टिमें मुनिजनरक्षार्थ शताक्षी, मुनियोंके लिये शाकसर्जनी शाकम्भरी, दुर्ग दैत्यके वधके लिये दुर्गा, रक्षोभक्षणकारिणी भीमा एवं अरुण नामक असुरके विनाशके लिये भ्रामरी।

श्रीदेवीकी आराधनासे चतुर्वर्गप्राप्ति

श्रीदेवीकी आराधनाकी बड़ी महिमा है। वे अपने आराधकोंको सांसारिक सम्पत्तियाँ, स्वर्गीय सुख एवं मोक्षतक प्रदान करती हैं—

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा। (मार्कण्डेय०)

देवी-आराधनाकी प्राचीनता

महामाया देवीका आराधन वेदोंके समयसे ही संसारमें चला आ रहा है। ऋग्वेदीय 'वागाम्भृणीय सूक्त' देवीकी महिमाका प्रतिपादक है। उससे स्पष्ट विदित होता है कि देवीजीने इस विश्वकी रचना की है—

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

और वे ही सर्वत्र व्यापक हैं—

अहं द्यावापृथिवी आविवेश।

'देव्यथर्वशीर्ष' में उल्लेख है कि देवीजीसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक जगत्‌की उत्पत्ति हुई है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ब्रह्म।

केनोपनिषद्के अनुसार उमा देवीकी कृपासे ही इन्द्रको यक्षरूपधारी ब्रह्मका वास्तविक परिचय प्राप्त हुआ था—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहु शोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति। सा ब्रह्मेति होवाच।

(केनोपनिषद् तृतीयखण्ड २५)

देवीकी अनेक रूपोंमें उपासनाके प्रतिपादक कई उपनिषद् हैं। उदाहरणार्थ—देव्युपनिषद्, (पूर्वोक्त देव्यथर्वशीर्ष) त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, अन्नपूर्णोपनिषद्, सावित्र्युपनिषद्, सीतोपनिषद्, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्। त्रिपुरातापिनीमें श्रीचक्रका विवेचन है, जिसके मध्यमें प्रणव-पीठपर महात्रिपुरसुन्दरी देवीका आराधन करने, और

क्षीरेण स्नापिते देवि चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रार्चिते देवि दुर्गेऽहं शरणं गतः॥

—इस ऋचासे प्रार्थना करनेपर साधकको इष्टका साक्षात्कार हो जाता है।

माया और प्रकृति

श्वेताश्वतरोपनिषद्ने 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' कहकर माया और प्रकृतिको एक बताया था, किंतु गीताने—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।

इस एक वाक्यमें प्रकृति और मायाको पृथक् कहकर भिन्न कर दिया। अतः माया और प्रकृतिमें अभेद और भेद वाद-विवादके विषय रहे हैं।

शंकराचार्यकी सम्मति

आचार्य शंकरने गीतोक्त 'स्वां प्रकृतिम्' का अर्थ—

'त्रिगुणात्मिका वैष्णवी माया मूलप्रकृतिः'

—किया, किंतु आत्ममायाका अर्थ छोड़ दिया। श्रीधर स्वामीने 'स्वां प्रकृतिम्' का अर्थ किया है शुद्ध-सत्त्वात्मिका प्रकृति एवं मायाका अर्थ किया है—शक्ति और इच्छा—

(अ) स्वमायया सम्भवामि=सम्यग् अप्रच्युत-ज्ञान-बल-वीर्यादिशक्त्यैव भवामि।

(आ) विशुद्धोर्जित-सत्त्व-मूर्त्या स्वेच्छयावतरामि।

विद्यारण्यका विचार

विद्यारण्यने कहा है कि प्रकृतिका शुद्ध सात्त्विक अंश माया कहलाता है, जो ईश्वरकी उपाधि है और रजस्तमस्स्पृष्ट अविद्या कहलाता है, जो जीवकी उपाधि है—

सत्त्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः॥

(पञ्चदशी १। १६)

सदानन्दका अर्थ

सदानन्दने त्रिगुणमयी सत्ताको 'अवस्तु' और 'अज्ञान' बताया है—

अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत् किंचिदिति वदन्ति।

(वेदान्तसार ३४)

और कहा है कि इस त्रिगुणात्मक अज्ञानके समष्टि-व्यष्टिरूपसे दो भेद हैं। समष्टि अज्ञानमें विशुद्ध सत्त्वकी प्रधानता होती है—

इयं समष्टिस्त्वकृष्टोपाधिप्रधानतया विशुद्धसत्त्वप्रधाना।

(वेदान्तसार ३७)

अज्ञानकी इस समष्टिसे उपहित चैतन्यको ईश्वर कहते हैं—

एतदुपहितं चैतन्यमीश्वर इति व्यपदिशन्ति।

(वेदान्तसार ३८)

व्यष्टि अज्ञानमें मलीन सत्त्वकी प्रधानता होती है एवं अज्ञानकी व्यष्टियोंसे उपहित चैतन्य ही जीव कहलाते हैं।

त्रिगुणात्मक अज्ञानमें दो शक्तियाँ होती हैं—आवरण-शक्ति और विक्षेप-शक्ति। आवरणशक्ति आत्माके स्वरूपको छिपा देती है और विक्षेपशक्ति सूक्ष्म-शरीरसे लेकर ब्रह्माण्ड-पर्यन्त प्रपञ्चकी सृष्टि कर देती है।

वैष्णवाचार्योंका दृष्टिकोण

आचार्य रामानुजके अनुसार त्रिगुणमयी माया लीलामय भगवान्की रचना है और इसके दो कार्य हैं—जीवसे भगवान्को तिरोहित करना और अचेतन पदार्थमें भोग्य-बुद्धि करना—

(अ) ममैषा गुणमयी सत्त्वरजस्तमोमयी माया यस्माद् दैवी देवेन क्रीडाप्रवृत्तेन मयैव निर्मिता।

(आ) अस्याः कार्यं भगवत्स्वरूपतिरोधानं स्वस्वरूपभोग्यत्वबुद्धिश्च।

(गीताभाष्य ७। १४)

गीतोक्त 'आत्ममायया'का अर्थ रामानुजके अनुसार ईश्वरकी अपनी इच्छा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्ममायया आत्मीयया मायया आत्मीयेन ज्ञानेनात्मसंकल्पेनेत्यर्थः ।

(गीताभाष्य ४ । ६)

आचार्य मध्व मायाको भगवदिच्छा मानते हैं जैसा कि ब्रह्मसूत्र १ । ४ । २५ पर जो उनके भाष्यमें उद्धृत—

महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च ।
प्रकृतिर्वासनेत्येव तवेच्छानन्त कथ्यते ॥

—इस वचनसे विदित होता है ।

वल्लभसम्प्रदायमें माया भगवान्‌की एक शक्ति-विशेष है ।

मायाके दो भेद

भागवतके अनुसार मायाके दो भेद हैं—विद्या-माया और अविद्या-माया—

विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ।
बन्धमोक्षकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥

(११ । ११ । ३)

जो प्राणी अविद्यामें ग्रस्त रहता है, वह बद्ध कहलाता है और विद्यावान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है—

योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो
विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ।

(११ । ११ । ७)

मायाका कुत्सित अर्थ

ईश्वरकी शक्ति होनेके कारण माया प्राणियोंकी आदरणीय है, किंतु यह भी मायाका ही प्रभाव है कि प्राणी अपने पारमार्थिक स्वरूपको भूल जाते हैं । अपने स्वरूपको भूल जानेसे ही प्राणी सृष्टिके उच्चावच स्तरोंमें भ्रमण करता रहता है । इधर-उधर भटकते हुए प्राणीने मायाको अपने संकटोंका कारण बताया, बस, उसे बुरा कहना प्रारम्भ कर दिया । तबसे मायाको अलीक, अनृत, अविद्या कहनेकी परिपाटी चली और यह परम्परा यहाँतक बढ़ी कि छल और कपट भी मायाके पर्याय माने जाने लगे । माया त्याज्य दोषोंकी सूचीमें परिगणित हुई—

लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो
ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥

(श्रीमद्भा० १ । १७ । ३२)

भागवतमें एक स्थानपर कहा गया है कि अधर्मकी पत्नीका नाम मृषा है । इन दोनोंके दो संतानें हुईं—एक पुत्र और एक पुत्री । पुत्रका नाम दम्भ है और पुत्रीका माया—

मृषाधर्मस्य भार्याऽऽसीद् दम्भं मायां च शत्रुहन् ।
असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥

(श्रीमद्भा० ४ । ८ । २)

मायाकी शंसा और कुत्साका हेतु

विचित्र-कार्य-कारिणी शक्तिको माया कहते हैं । श्रीभगवान्‌ने सुर-नर-किन्नरादि सभी प्राणियोंको विस्मय और व्यामोहमें डालनेवाली जो यह प्रकृष्टा कृति (प्रकृति) बनायी है, यह उनकी माया है । त्रिगुणमय अचेतनको गिरिगह्वर, नद-नदी, समुद्र-सरोवर, तरु-लता, ग्रह-नक्षत्रादिरूप देनेवाली भगवच्छक्ति-का भी नाम माया है । कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌की अघटन-घटना-पटीयसी शक्तिका नाम माया है और उस शक्तिके विलाससे सम्भूत दृश्यका भी नाम माया है ।

एक इन्द्र अपनी शक्तिसे अनेक रूप धारण कर लेता है—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।

इस प्रकार अनेक रूप धारण करना विचित्र कार्य है । इन्द्रकी विचित्र-कार्य-कारिणी शक्ति इन्द्र-माया कहलाती है और उस इन्द्रके एक वास्तविक रूपके अतिरिक्त अन्य रूप मायिक कहलाते हैं । जिस प्रकार इन्द्रकी मायाका वेदमें उल्लेख है, उसी प्रकार इन्द्र-शत्रु वृषशिप्र-नामक दस्युकी मायाका भी—

दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नतुर्नरा पृतनाज्येषु ।

(ऋग्वेद ७ । ९९ । ४)

पुराणोंमें भी अनेक मायावियोंकी मायाओंका उल्लेख है । दिग्दर्शनार्थ भागवतके—

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

(११ । ५ । ३४)

—इस पद्यमें मारीचकी माया-मृगताकी चर्चा विद्यमान है, एवं विष्णुपुराणके—

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य दानवः ।
सप्त माया व्यतिक्रम्य मायां प्रयुयुजेऽष्टमीम् ॥

(५ । २७ । १९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—इस श्लोकमें शम्बरकी सात मायाओंका तथा प्रद्युम्नकी आठवीं मायाका प्रतिपादन है।

पुराणके अनुसार मय एक बड़ा मायावी था। उसके लिये 'अनन्तमायी' उपाधिका प्रयोग किया गया है और कहा गया है कि वह मायावियोंका परमाचार्य था—

(अ) मयेनानन्तमायिना। (श्रीमद्भा० ७। १०। ५१)

(आ) मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः।
(श्रीमद्भा० ७। १०। ५३)

इससे विदित होता है कि सभी प्राणियोंमें ऐसी शक्ति होती है जिससे वे दूसरोंको चकित कर देनेवाले कार्य कर सकें। यदि शक्तिका उपयोग सात्त्विक है तो उसकी शंसा होगी और यदि तामसिक है तो कुत्सा। देवमाया साधारणतया सात्त्विक होनेके कारण प्रशंसनीय होती है, किंतु दैत्यमाया तामसिक होनेके कारण गर्हणीय संस्कृत वाङ्मयमें मायाके सम्बन्धमें शंसा-परक एवं कुत्सा-परक उल्लेखका यही हेतु है। इसी दृष्टिसे छल-कपटवाली मायाका जन्म पुराणमें अधर्मसे बताया गया है। जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।

माया और अमाया

मायाका अर्थ जब छल किया जाता है, तब निश्छलताके लिये 'अमाया' का प्रयोग करना युक्तिसङ्गत ही है। पुराणमें अमायाका भी प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—

(अ) द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया।
(श्रीमद्भा० ११। २७। ९)

(आ) तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥
(श्रीमद्भा० ११। ३। २२)

ब्रह्माजीका भगवन्माया-दर्शन

एक बार ब्रह्माजीने मायापति श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेके लिये इच्छा की। उन्होंने वनमें उन गोवत्सों और गोप-बालकोंको, जो श्रीकृष्णके साथ नित्य गाँवसे आया करते थे, एक कन्दरामें छिपाकर सुला दिया। ब्रह्माजी जानना चाहते थे कि देखें अब श्रीकृष्णकी क्या दशा होती है। श्रीकृष्णने उतने ही गोवत्सों और गोप-बालकोंका रूप स्वयं धारण कर लिया और लगभग एक वर्षतक सब गो-चारणकी लीला पूर्ववत् चलती रही। यह सब कृत्य बलरामजीकी जानकारीमें नहीं हुआ था, अतएव एक दिन गौओंका अपने बछड़ोंके प्रति और गोपोंका अपने बालकोंके प्रति लोकोत्तर अनुराग देखकर वे सोचने लगे कि इस प्रेमाधिक्यका क्या कारण है। मानवी किंवा आसुरी माया तो मुझे मोहित नहीं कर सकती, फिर यह किसकी माया है—

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी॥
(श्रीमद्भा० १०। १३। ३७)

तदनन्तर उन्होंने ज्ञान-दृष्टिसे देखा तो वे सब रहस्य समझ गये कि श्रीकृष्णहीने आजकल यह लीला रच रक्खी है।

इतनेमें ही ब्रह्माजीने वहाँ आकर देखा तो जिन गो-गोप-वत्सोंको वे कन्दरामें छिपाकर अपनी मायासे सुला आये थे उन्हें श्रीकृष्णके साहचर्यमें देखा। वे बड़े विस्मित हुए। कन्दरामें जाकर देखा तो सब सोये हुए थे। अब तो ब्रह्माजी स्वयं यह निश्चय न कर सके कि कौन-से जीव वास्तविक हैं और कौन-से अवास्तविक। वे विश्वमोहनको मोहित करने आये थे, किंतु स्वयं मोहित हो गये—

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः॥
(श्रीमद्भा० १०। १३। ४४)

अपनेसे बड़े मायावीपर माया-प्रयोगका ऐसा ही दुष्फल होता है—

महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः।
(श्रीमद्भा० १०। १३। ४५)

कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने देखा कि प्रत्येक गोप-बालक शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी नारायण हैं, जिनकी आराधनामें ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त चराचर विश्वकी विभूतियाँ दत्तचित्त हैं।

तब तो ब्रह्माजी हंससे उतर पड़े और श्रीकृष्णको प्रणाम करके नानाविध स्तवन करते हुए बोले—'हे प्रभो! मुझ-जैसे बड़े-बड़े मायावी भी आपकी महामायासे मोहित हो रहे हैं, फिर भी मैंने आपके ऊपर अपनी माया चलायी'—

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं
ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ॥
(श्रीमद्भा० १०। १४। ९)

उन्होंने फिर कहा 'भगवन्! जब आप अपनी योगमायाका विस्तार करके लीला करने लगते हैं, तब जगत्में ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन व्यक्ति है जो यह कह सके कि आपकी लीला केवल यहाँ है, केवल इसलिये है, केवल अब है और केवल इतनी है'—

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥

(श्रीमद्भा० १० । १४ । २१)

शिवजीका मोहिनी-माया-दर्शन

एक बार शिवजीने भगवान् विष्णुके मोहिनीरूपको देखनेकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने स्वीकृति दे दी। शिवजी उस सौन्दर्य-राशिका अवलोकन कर विमुग्ध हो गये। जब स्वस्थ हुए, तब भगवान्‌ने शिवजीसे कहा कि हे सुरोत्तम! यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि आप मेरी मोहिनी छटाके दर्शनके अनन्तर अब स्वस्थ हैं—

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥

(श्रीमद्भा० ८ । १२ । ३८)

तत्पश्चात् शिवजी स्वयं पार्वतीजीसे, जो शिवजीके साथ भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ गयी थीं, भगवन्मायाकी चर्चा चलाते हुए बोले कि हे उमा! आपने भगवान् विष्णुकी मायाका दर्शन कर लिया न? मैं स्वयं समस्त विद्याओंका अधिपति हूँ, तथापि विष्णु-मायासे मोहित हो जाता हूँ। अन्य जीवोंकी तो बात ही क्या है। आपने एक बार मुझसे पूछा था कि आप समाधिमें किसका ध्यान किया करते हैं, सो मैं इन्हीं विष्णुभगवान्‌का ध्यान किया करता हूँ—

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां
परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये
ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥

(श्रीमद्भा० ८ । १२ । ४३)

मार्कण्डेयका माया-दर्शन

पुष्पभद्रा नदीके तटपर महर्षि मार्कण्डेयने बड़ी भारी तपस्या की थी। भगवान् नर-नारायणने उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया और वर माँगनेको कहा। मार्कण्डेयने कहा कि प्रभो! मैं आपकी मायाका दर्शन करना चाहता हूँ, मैं यही वर माँगता हूँ। भगवान् 'एवमस्तु' कहकर बदरिकाश्रम चले गये। तदनन्तर एक दिन मार्कण्डेयने देखा कि आँधी आ रही है, फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी, थोड़ी ही देरमें चारों ओर समुद्र लहराने लगा, पृथ्वीका नाम न रहा, केवल मार्कण्डेय बचे सो जलजीवोंसे अपनेको बचाते बचाते संत्रस्त हो उठे, भूख-प्याससे संकटग्रस्त महर्षिको इस दशामें सहस्रों वर्ष बीत गये। इतने समयमें उन्हें शोक, मोह, सुख, दुःख और भय होते रहे। एक दिन वे क्या देखते हैं कि एक स्थलपर एक वटवृक्ष है, उसकी शाखापर एक पर्ण-पुटकमें एक नील-सुन्दर बालक लेटा हुआ है। मार्कण्डेय जिज्ञासावश बालकके निकट गये ही थे कि बालकके श्वासके साथ ही बालकके उदर-विवरमें चले गये और वहाँ उन्होंने वही सारा प्रपञ्च देखा जो बाहर सहस्र वर्षोंसे देख रहे थे। वहाँ आकाश, भूमि, ग्रह, नक्षत्र, नगर, ग्राम सभी कुछ था। और तो और, उन्होंने पुष्पभद्राके तीरपर अपना आश्रम भी देखा! यह अद्भुत दृश्य देखते-देखते मार्कण्डेय बालकके निःश्वासके साथ ही बाहर आ गये और पूर्ववत् प्रलयपयोधिमें वटवृक्षपर पर्ण-पुटकमें मन्द-स्मित-सुन्दर बालकको देखा। कुछ समय पश्चात् मार्कण्डेयके सामनेसे वह विस्मयोत्पादक सारा दृश्य अन्तर्धान हो गया और महर्षिने अपने आश्रममें केवल अपनेको पूर्ववत् बैठे देखा। मार्कण्डेयने समझ लिया कि भगवान्‌ने मेरी इच्छा पूरी की, मुझे मायाका दर्शन करा दिया। इस प्रकार भगवान्‌की योगमायाके वैभवका अनुभव करके महर्षि मार्कण्डेयने भगवान्‌की शरण ग्रहण की और कहा, 'हे प्रभो! बड़े-बड़े ज्ञानी महात्मा भी आपकी मायासे मोहित रहते हैं। मैं शरणागतवत्सल आपके श्रीचरणोंकी शरणमें आ गया हूँ'—

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ।
यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥

(श्रीमद्भा० १२ । १० । २)

यशोदाका माया-दर्शन

माता यशोदाने एक दिन, बालकोंसे यह शिकायत सुनकर कि कृष्णने मिट्टी खायी है, बालकृष्णसे मुँह खोलनेको कहा। श्रीकृष्णने मुँह खोला तो यशोदाको वहाँ त्रिलोकीका दर्शन हुआ—

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥

(श्रीमद्भा० १० । ८ । ३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब भगवान्‌की मायाका खेल था। इसको देखकर माताने श्रीकृष्णको भगवान् मान लिया। तब भगवान्‌ने अपनी मायासे यशोदाका वह ज्ञान भुला दिया और माता श्रीकृष्णको पुत्र ही मानने लगी—

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः॥
(श्रीमद्भा० १०। ८। ४३)

महामायाकी अज्ञेयता

मानव ऐन्द्रजालिकोंके विस्मयोत्पादक इन्द्रजालकी अनेकानेक घटनाएँ देखी-सुनी गयी हैं। 'रोप-ट्रिक' की बात पढ़नेमें भी आयी है जिसके अनुसार ऐन्द्रजालिक रस्सीको आकाशमें फेंक देता है, फिर उसीके सहारे अपने बच्चेको चढ़ा देता है, स्वयं भी उसी तरह वहाँ चढ़ जाता है, बच्चेका एक-एक अङ्ग काटकर जमीनपर डालता है, फिर नीचे उतरकर अपने बच्चेको आवाज देता है तो बच्चा एक ओरसे वहाँ आ जाता है इत्यादि। जब मानवीय माया इतनी प्रबल है, तब सुरोंकी और असुरोंकी माया अवश्य ही अत्यन्त विस्मापक होती होगी और भगवान्‌की माया तो महामाया है ही। इसके रहस्यको तो सुरासुर और ऋषि-महर्षि भी नहीं जान सके हैं।

भगवान्‌पर मायाका प्रभाव नहीं होता

ऐन्द्रजालिकके इन्द्रजालका स्पर्श जनताको होता है, स्वयं ऐन्द्रजालिकको नहीं; अर्थात् इन्द्रजालके चमत्कारको देखकर दर्शकगण विस्मयके साथ-साथ दृश्योत्थ सुख-दुःख-का भी अनुभव करते हैं, किंतु ऐन्द्रजालिकको विस्मय और सुख-दुःख नहीं होते। इसी प्रकार भगवान्‌की मायासे सभी प्राणी विमुग्ध होते हैं, किंतु परम मायावी भगवान्‌पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। प्राकृतिक प्रपञ्चमें अवतीर्ण होनेपर भी भगवान् मायातीत रहते हैं। लीलानिमित्तक सुख-दुःखके दृश्य तो वे करते हैं, किंतु स्वभावका परित्याग नहीं करते। लोक-शिक्षण ही उस समय उनकी मायिकवत् लीलावलीका उद्देश्य होता है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
(श्रीमद्भा० ५। १९। ५)

मायाके संतरणका उपाय

महाराज विदेहने प्रबुद्ध नामक एक संतसे प्रश्न किया था कि हे महर्षे! ईश्वरकी यह माया दुस्तर है, अतएव कृपा करके इसको तरनेका उपाय बताइये। तब प्रबुद्धने उत्तर दिया कि भगवान् नारायणका भक्त इस दुस्तर मायाको शीघ्र ही पार कर लेता है। श्रीमन्नारायणके चरणारविन्दोंमें भक्ति-प्राप्तिके लिये भागवत धर्मोंकी शिक्षा प्राप्त करके उनके अनुसार आचरण करना चाहिये—

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम्॥
(श्रीमद्भा० ११। ३। ३३)

प्रबुद्धका यह उपदेश गीताके अनुकूल है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णका भी अर्जुनके प्रति यही उपदेश था कि हे अर्जुन! मेरी यह गुणमयी दैवी माया दुरत्यय है, किंतु जो लोग मेरी ही शरणमें आ जाते हैं वे इसके पार हो जाते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७। १४)

प्रेम-धर्म

ममता एकमात्र प्रभु-पदमें, मन प्रभुकी स्मृतिमें ही लीन।
प्रभुकी इच्छामें, सब निज इच्छा अर्पित, मन इच्छाहीन॥
प्रभुमें राग अनन्य, चित्त अन्यत्र नित्य आसक्तिविहीन।
प्रभु-प्रेमामृत-रस-सागरका जीवन बना निवासी मीन॥
रहता सदा समाया उनमें, करता नाना भाँति विहार।
छाये नित रहते प्रभु सभी दिशामें करते अनुपम प्यार॥
होते उनमें ही सब मेरे, अच्छे बुरे शुभाशुभ कर्म।
उनका रखना, मेरा रहना, यही सहज दोनोंका धर्म॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन और सांसारिक वस्तुओंकी चिन्तासे पागलपन और मृत्यु

[कुछ प्रत्यक्ष चौंका देनेवाले उदाहरण]

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'ये श्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते'
(अथर्ववेद १२ । २ । ५१)

(जो व्यक्ति ईश्वरके प्रति श्रद्धा-भक्तिको छोड़कर सांसारिक तृष्णाओंमें फँसे हुए हैं, वे नाशकी तैयारी कर रहे हैं । आत्मोन्नतिसे विमुख होकर सांसारिक पदार्थोंके मोह और क्षुद्र वस्तुओंकी मृगतृष्णामें भटकनेकी मूर्खता न करो ।)

अध्यापक-जीवनमें अनेक लोगोंसे सम्बन्ध बनते रहते हैं; फिर ईश्वरने कुछ ऐसा स्वभाव दिया है कि दुःख-दर्दसे पीड़ित अनेक व्यक्ति परामर्श और अपना दुःख बँटानेके लिये मेरे घरपर पधारते रहते हैं । अनेक पत्रव्यवहारद्वारा अपने जीवनकी चौंका देनेवाली घटनाओंकी सूचना देनेकी कृपा करते रहते हैं । उन्हीं व्यक्तियोंके प्रत्यक्ष जीवनसे यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ । धनके प्रति मनुष्यका मोह अनर्थकारी है, पागलपन और मृत्युतक उत्पन्न करनेवाला है ।

खन्ना (पंजाब) के एक वयोवृद्ध जमींदारकी दो वर्ष पूर्व मृत्यु हुई है । ये महाशय सत्तर-अस्सी वर्षकी आयुके रहे होंगे । अन्तिम समयमें नेत्र-ज्योति कम हो गयी थी और ऊँचा सुनते थे । ये स्वभावसे धार्मिक वृत्तिके थे । पाठ-पूजा और स्नान-ध्यानमें काफी समय दिया करते थे । किसी अन्य व्यक्तिका छुआ हुआ भोजन आदि ग्रहण नहीं करते थे । अच्छे खाते-पीते आदमी थे । इनके यहाँ काफी जमीन-जायदाद थी । हाथमें अच्छा पैसा था । हर प्रकारसे लक्ष्मीके कृपापात्र थे । पंजाबका बँटवारा हुआ । नयी जमीनोंकी हदबंदी हुई, तब इनके हाथसे इनकी अच्छी उर्वरा भूमि निकल गयी और दुर्भाग्यसे साधारण भूमि इनको सरकारी अफसरोंके द्वारा दी गयी । उस उर्वरा भूमिके छिन जानेका उक्त जमींदार साहबके मनपर भयानक मानसिक आघात पहुँचा । वे दिन-रात उसी जमीन-जायदादकी याद करके ठंडी साँसें लिया करते, क्षण-क्षण उन्हें उसीकी चिन्ता रहती । एक ओर वृद्धावस्थाके कारण उनकी शारीरिक शक्ति कम होती जा रही थी, दूसरी ओर जमीन-जायदाद हाथसे निकल जानेकी चिन्ता उन्हें अंदर-ही-अंदर खा रही थी । इस अवस्थामें भी उनके हाथमें नकद रुपया पच्चीस-तीस हजारसे कम न रहा होगा; क्योंकि उन्होंने खन्नामें दो वर्ष पश्चात् ही एक अच्छा मकान खरीदा और वे उसमें रहने लगे । यदि उसी धनको वे समझदारी और संयमसे लगाते तो आयुपर्यन्त जीविका-उपार्जन हो सकता था, किंतु वे सदा अपने हाथसे निकली हुई जमीनके लिये परेशान और उद्विग्न रहते; दिन-रात उसीकी याद कर भयानक चिन्तामें डूबे रहते । जो भी कोई मिलता, उसीसे सरकारकी दूषित वृत्तिकी निन्दा करते और श्रीनेहरूजीसे मिलकर अपनी जमीनोंके छिन जानेकी शिकायत करना चाहते । यही चिन्ता बढ़ती ही गयी । उन वृद्धके गुप्त मनमें चिन्ताके प्रविष्ट होनेसे वे अपना भजन-पूजन सब कुछ विस्मृत कर बैठे और घोर सांसारिक बन गये । अभी दो वर्ष पूर्व उनकी मृत्यु उसी जमीन-जायदादकी याद करते-करते हुई है । मेरा ऐसा अनुमान है कि यदि वे इस जमीन-जायदादकी चिन्ता छोड़ संयम और किफायतसे सूखी रोटीमें ही संतुष्ट रहते और धर्म-कर्मसे मनको सांसारिकतासे हटाते तो अधिक दिन जीवित रह सकते थे । किसानके लिये उसकी जमीनका महत्त्व है, किंतु मनुष्यका जीवन—संसारके सर्वोत्कृष्ट प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यका यह जीवन—उस जमीन-जायदादसे श्रेष्ठतर है। अधिक मूल्यवान् है। यदि जीवन है तो खोयी हुई जमीन-जायदाद पुनः प्राप्त भी की जा सकती है।

नजीबाबाद (उ० प्र०) की एक अर्द्धविक्षिप्त लखपति वृद्धा हमारी चिकित्सामें हैं। उनके बहुत-से नकद रुपये, जेवर, बरतन इत्यादि समय-समयपर चोरी जाते रहे हैं। उनके पतिके स्वर्गवासके बाद सब रुपयेकी वे ही मालकिन बनी थीं। उनमें सांसारिकता और बुद्धिकी कमी रही। अतः जिसने जब मौका देखा, उनका रुपया हड़प लिया। जिसने उधार लिया, उसने उन्हें वापस नहीं किया। जिसके यहाँ सूदके लालचसे रुपया दिया, वही दो साल बाद उसे उड़ा गया। जिसके घर वे अतिथिके रूपमें ठहरीं, उसीने सन्दूकका ताला तोड़ रुपया चोरी कर लिया। अतः मनुष्यकी ईमानदारीपरसे उनका विश्वास उठ गया। आज उनके पास तन ढकनेमात्रको वस्त्र है। उनके पागलपनका अंदाज इस बातसे लगाया जा सकता है कि वे अपने खाली सन्दूकमें भी सदा ताला लगाती हैं। जिस कमरेमें वह रक्खा रहता है, उसमें किसीको जाने नहीं देतीं। किसीपर विश्वास नहीं करतीं। धोखा देनेवालोंकी बेईमानीकी बातें विस्तारसे सुनाती हैं। जिन-जिन वस्तुओं, गहनों, बरतनों और नकदीको उन्होंने इकट्ठा किया था, उन्हींकी चिन्तामें रोती रहती हैं। धनकी इस चिन्ताने उन्हें पागल बना दिया है। रुपये हड़पनेवालोंको गालियाँ देती-देती वे उत्तेजित हो उठती हैं और यकायक आँसू बहाने लगती हैं। खोये हुए धनकी चिन्तामें घुली जा रही हैं।

जयपुरके एक उच्च कुलके सज्जन हमारे सम्पर्कमें आये। उनकी समस्या कुछ इस प्रकारकी थी। वे एक धनिकके पुत्र थे, जो मरनेसे पूर्व अपनी लाखोंकी सम्पत्ति उनके लिये छोड़ गये थे। उनका जीवन भी ऐशोआराम और विलासमें चलता रहा। मनपर नियन्त्रण न होनेके कारण उनकी तृष्णाएँ बढ़ती गयीं। सट्टा करनेका शौक उत्पन्न हुआ। पहले थोड़ा-थोड़ा रुपया सट्टेमें लगाते रहे और संयोग ऐसा हुआ कि उन्हें आमदनी भी यथेष्ट हुई। मन खुल गया। फिर क्या था, आजसे दो वर्ष पूर्व उन्होंने अपनी सारी पूँजीको ही सट्टेपर लगा दिया। भाग्यने धोखा दिया और इस बार वे समस्त पूँजी खो बैठे। ऐश्वर्यकी ऊँची चोटीसे यकायक दरिद्रताके खन्दकमें आ गिरे। उनकी आदतों और जीवनमें वही ऐश्वर्य, विलास और असंयम है। मामूली चीजोंके लिये भी मनको वे रोक नहीं पाते हैं, जिह्वापर कोई संयम नहीं; वस्त्रोंका बाह्याडम्बर उन्हें अब बेहद सताता रहता है। मेरे पास निराशा और आत्मग्लानिसे भरे हुए सलाहके लिये आये और बहुत देरतक धन हाथसे निकल जानेकी दुःखद कहानी सुनाते रहे। धन कोई ऐसी चीज तो है नहीं कि जादूकी लकड़ीसे पलक मारते ही दुबारा प्रस्तुत कर दिया जाय। नतीजा यह है कि उनका मन अंदर-ही-अंदर कसकता और रोता रहता है। मुख ग्लानि और चिन्ताग्रस्त रहता है। पुराना रहनेका स्टैण्डर्ड और बाहरी टीप-टाप, समाजमें अपनी अतिरञ्जित स्थिति वे नहीं रख पा रहे हैं। सारे दिन उसीके लिये चिन्तित रहते हैं। धनकी लालसा और धनसंग्रहमें मनकी शान्ति कैसे स्थिर रह सकती है? जो लोग इस प्रकार सट्टा करके, रिश्वत लेकर, डाका डालकर या चोरबाजारी, छीना-झपटी, लूट-खसोट, वैर-विरोध करके मालामाल बननेके अनैतिक उपाय सोचा करते हैं, उनका मन इसी प्रकार अस्त-व्यस्त रहता है।

अहमदगढ़ (जिला लुध्याना) के एक व्यापारीने एक बार हमें बुलाया और बोले, 'अफीमका अनैतिक व्यापार करनेके कारण हम पुलिसको बहुत-सी रिश्वत भी दे चुके हैं, खूब धन भी कमा चुके हैं, पर हमारे मनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैन नहीं। अब तो दिवाला निकलने-जैसी नौबत आ गयी है। जिस दुनियामें व्यापारी-वर्गमें हम इज्जतसे रहे, अब उसीमें दिवालिया रहना हमारे लिये असम्भव है। अतः अब हम चाहते हैं कि ईश्वर हमें इस संसारसे उठा लें जिससे मान-हानिका कड़ुवा विष हमें न पीना पड़े।' सत्य ही है, धनका मनोरथ और अधिक-से-अधिक धन प्राप्त करनेकी कभी न बुझनेवाली यह तृष्णा-पिशाचिनी मनुष्यको इतना उन्मत्त बना देती है कि वह फिर आत्मविनाश करनेमें भी नहीं हिचकता। आज व्यापारीवर्ग अधिक धन कमाने और फिर उसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनाये रखनेकी चिन्तामें क्षीण होता जा रहा है। एक नहीं, दिवाला निकलने या यकायक व्यापारमें हानि आ जाने और उसी पुराने सामाजिक स्तर (Standard) को स्थिर रखनेकी चिन्तामें अनेक साहूकार, सेठ, फर्मोंके मालिक नष्ट हो गये हैं। एक बार जब रहन-सहनका स्तर बहुत प्रमादी तथा खर्चीला हो जाता है, तब कम आयमें उसी टीप-टाप और मिथ्याडम्बरको स्थिर रखना बड़ा कठिन हो जाता है और इसी आर्थिक चिन्तासे मनुष्य नष्ट हो जाता है।

धन कमाने और उसे बनाये रखनेकी भी एक सीमा होती है। जबतक मनुष्य संतोष-वृत्तिसे काम नहीं लेता, तबतक धनसे उत्पात और हानि होनेकी सम्भावना बनी ही रहेगी। कोई उसे रोक नहीं सकता।

जो धनको ही सुखका साधन मानते हैं और उसीके संग्रहमें लगे हुए हैं, दिन-रात उसी मोह-चक्रमें घूमते रहते हैं, वे कभी भी मानसिक शान्ति और दीर्घायु प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

इसके विपरीत प्रायः यह देखा गया है कि गरीब, कम आयसे ही संतुष्ट रहनेवाले संतोषी वृत्तिके व्यक्ति अंदरसे शान्त और तृप्त रहते हैं। उन्हें अधिक कमाने और आर्थिक प्रतियोगितामें लगे रहनेकी अतृप्त आकाङ्क्षा नहीं रहती।

यदि सच पूछा जाय तो बहुत कम पैसेमें मनुष्यका जीवन भलीभाँति स्वस्थ और तृप्त चल सकता है। उसकी समस्त आधारभूत आवश्यकता पूर्ण हो सकती है। शेष तो हम अपने पुत्रोंको ऐश उड़ानेके लिये और विलासिताका जीवन व्यतीत करनेके लिये ही छोड़ जाते हैं। जरूरत यह है कि हम रुपये-पैसेके इस अनर्थकारी पक्षको भी जानकर उधरसे सदा सावधान रहें।

श्रीमद्भागवत(११।२३।१७ से २१)में धनको अनर्थकारी बताते हुए उसके दुर्गुणोंको इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥

अर्थात् मनुष्योंको धनके कमानेमें, कमा लेनेपर उसे बढ़ानेमें, रक्षा करनेमें तथा उसके नाश या व्ययमें सर्वत्र परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है।

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, अहंकार, घमंड, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और शराब पीना—ये पंद्रह पाप रुपयेकी अधिकता या दुरुपयोगसे उत्पन्न होकर मनुष्यका अधःपतन करते हैं।

इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि वह स्वार्थ तथा परमार्थके विरोधी इस 'अर्थ' नामधारी 'अनर्थ' का दूरसे ही त्याग कर दे और इसके मोहसे सदा सावधान रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई-बन्धु, पुत्र-स्त्री, माता-पिता और सगे-सम्बन्धी जो स्नेहके कारण सदा एक बने रहते हैं, इस दुष्ट रुपयेके कारण इतने पराये हो जाते हैं कि एक दूसरेके वैरी और जानके दुश्मन बन जाते हैं। थोड़े-से धनके लालचके कारण इन सबका क्षोभ और क्रोध भड़क उठता है। जरा-सी बातमें सारा स्नेह-सम्बन्ध भूलकर सगे-सम्बन्धी आपसमें लड़ने-झगड़ने लगते हैं और कभी-कभी तो एक दूसरेके प्राण लेनेवाले बन जाते हैं। हत्याएँ तक हो जाती हैं।

यह मानवदेह स्वर्ग और मोक्षका द्वार है। इसको पाकर भी जो लोग इस बन्धनके फंदेमें पड़ते हैं, वे मूर्ख नहीं तो और क्या कहे जा सकते हैं?

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः॥
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

(विदुरनीति)

जो कुल थोड़े धनवाले होनेपर भी सदाचार (सुबुद्धि और संयम) से सम्पन्न हैं, वे उच्चकुलमें गिने जाते हैं और अपने नियम-संयमके बलसे महान् यशको प्राप्त करते हैं। अतएव धनकी इच्छा और अनियन्त्रित इच्छा छोड़कर सदा-सर्वदा यत्नपूर्वक सदाचार-की रक्षा करनी चाहिये।

धनसे क्षीण मनुष्य वास्तवमें निर्बल और दुखी नहीं होता; परंतु जो सदाचारसे भ्रष्ट है, वह तो सदा मरा ही पड़ा है।

अचौर्य

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

श्रीपशुपतिनाथका दर्शन तब इतना सुलभ नहीं था, जितना आज हो गया है। तब पक्की सड़क नेपालतक नहीं बनी थी। कुछ दूर रेलसे यात्रा, कुछ दूर मोटरोंसे और फिर पैदल।

मुझे कल्पना भी नहीं थी कि रेलवे इंजिनमें पत्थरके कोयलेके स्थानपर लकड़ीका ईंधन उपयोग करनेसे क्या कठिनाई आती होगी। शिवरात्रिके अवसरपर कुछ दिनोंके लिये तीर्थयात्रियोंको भारतसे काठमाण्डू जानेकी बिना छान-बीन अनुमति दी जाती है। वैसे ही अनुमति-पत्र उस समय भी दिये गये; और उन्हें एक नेपाली अधिकारीने उदारतापूर्वक सबको बाँट दिया। मार्गमें एक स्थानपर अनुमति-पत्रकी जाँच भी साधारण ही हुई।

मेलेके अवसरपर भीड़की ठेलमठेल सर्वत्र होती है। बड़ी कठिनाईसे हम रेलके एक मालगाड़ीके डिब्बेमें घुस सके और किसी प्रकार दबे-सिकुड़े खड़े हो गये। ट्रेन चली और साथ ही यात्रियोंकी आँखोंसे आँसू चले। इंजिनमें लकड़ी जल रही थी। उसका धुआँ बहुत कष्ट दे रहा था। मिनट-दो-मिनटपर कोई-न-कोई चौंकता था। इंजिनमें लकड़ीके जलनेसे चिन-गारियाँ उड़ रही थीं और वे यात्रियोंके शरीर या वस्त्रोंपर पड़ती थीं। कइयोंके फफोले पड़े, कइयोंको वस्त्रमें लगी आग बुझानी पड़ी।

लकड़ी बहुत कम ताप दे पाती है। ट्रेन इस गतिसे चल रही थी कि कोई भी चाहे जब उतर सकता था या दौड़कर चढ़ सकता था। स्टेशन आया और डेढ़-दो घंटे इंजिनमें लकड़ी चढ़ायी जाती रही। इस प्रकार लगभग २४ मीलकी यात्रा सायंकाल चार बजे जो प्रारम्भ हुई थी रात्रिके लगभग ग्यारह बजे पूरी हुई।

यदि मार्ग होता और घोर जंगल न पड़ता होता तो इतनी देरमें हम पैदल भी यह यात्रा कर ले सकते थे। बैलगाड़ीकी सवारी तो उस समयकी उस ट्रेनसे शीघ्रगामी सिद्ध होती।

हमें मालगाड़ीके डिब्बोंसे छुट्टी मिली। किस दूकानदारने दो हाथ रात्रिके तीन-चार घंटे व्यतीत करनेको प्रदान करनेकी कृपा की, अब स्मरण नहीं। प्रातः चार बजेसे पूर्व ही सामान ढोनेवाली एक मोटर ट्रकमें हम सब लद गये और भीमफेड़ी पहुँचे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ी चक्करदार मार्गोंपर कुछ यात्रियोंको चक्कर आता है, वमन होता है। ट्रकमें यात्री अधिक बैठे थे। यह अच्छा हुआ था; क्योंकि परस्पर सटे होनेसे शरीर हिल नहीं पाते थे। इससे चक्कर एक दो यात्रियोंको ही आया था। विशेषकर सबसे पिछले भागमें बैठे उन यात्रियोंको, जिन्हें बैठनेका स्थान कुछ अधिक मिल गया था।

भीमफेड़ीसे आगे पैदल-यात्रा करनी थी। वहाँ दो घंटे विश्राम, नित्यकर्म, स्नान और भोजन—इतना ही कार्यक्रम था; किंतु वहाँ जो छोटी-सी धर्मशाला थी, उसके घेरेमें जाते ही चित्त खिन्न हो गया। घेरेमें चलनेकी पगदंडी मात्र स्वच्छ थी। पूरा घेरा यात्रियोंने शौच बैठकर गंदा कर दिया था। जब कि समीप ही मैदान था, नाला था और कुछ गज आगे जंगल भी था।

'यात्री–तीर्थयात्री इतने असावधान क्यों होते हैं?' सोचता रहा। मन्दिरमें स्थित देवताके दर्शन ही पुण्य नहीं हैं। पुण्य है उनकी कृपा प्राप्त करना और देवताकी कृपा तपसे, सेवासे, श्रद्धासे तथा भजनसे मिलती है। हम दूसरे देवदर्शनार्थ आनेवाले श्रद्धालुओंको धक्का देकर, उनके लिये असुविधा उत्पन्न करके मन्दिरमें घुस भी जायँ, तो क्या देवता प्रसन्न होंगे? उनकी कृपा मिलेगी हमें?

जहाँ यात्री रुकते हैं, जहाँसे चलते हैं, जहाँ बैठते, जल पीते या स्नान-भोजन करते हैं, उसके आसपास अथवा जलधाराके समीप गंदगी करके हम भक्तापराध ही तो करते हैं। दूसरे श्रद्धालु यात्रियोंके लिये असुविधा ही तो उत्पन्न करते हैं और हम जानते हैं कि भगवान् भी भक्तापराध क्षमा नहीं करते।

यात्रियोंकी सेवा, उनके उपयोगी स्थलोंकी स्वच्छता और देव-दर्शनमें दूसरोंकी सुविधाका ध्यान—यह ऐसी पूजा है जो देवताको किसी भी बहुमूल्य उपचारसे कहीं अधिक प्रिय होती है।

मैं यह सब सोचता रहा और ढूँढ़ता रहा कि कहीं बैठनेको स्थान मिल जाय तो स्नान-संध्याका क्रम प्रारम्भ हो।

× × ×

यात्रामें मेरे साथ दो और यात्री हो गये थे। वे मुझे मुजफ्फरपुर स्टेशनपर मिले थे और काठमाण्डूतक साथ रहे। हम तीनों धर्मशालाके पीछेकी ओर उसके पक्के चबूतरेपर बैठ गये। बारी-बारीसे नित्यकर्म एवं स्नान हमने किया। अब मैं नित्यकर्मके लिये जंगलमें गया और वे दोनों साथी भोजन करनेमें लग गये।

हमें कुलियोंके एक समुदायने घेर लिया था। पर्वतीय दूरस्थ ग्रामोंके ये गरीब लोग इस आशामें इस समय यहाँ आ जाते हैं कि यात्रियोंका सामान ढोकर दो पैसे अपने बाल-बच्चोंके लिये ले जा सकें। वर्षभरके लिये वस्त्र तथा घरेलू खेती आदिके औजार वे मजदूरीके पैसोंसे ही ले जाते हैं।

प्रायः सभी यात्रियोंके पास उन्हें घेरे कुलियोंका समूह खड़ा था। हम तीनोंके पास इतना ही सामान था कि हमने सम्मिलित रूपसे एक कुली करना निश्चय किया था। वे दोनों साथी मेरी ओर संकेत करके कह रहे थे—'इन बाबूको पूजा कर लेने दो तो ये तुमसे बात करेंगे।'

हमको बताया गया था कि यहाँ अपने सामानसे सावधान रहना चाहिये; किंतु ऐसी सावधानी, पता नहीं, मुझमें कभी आयेगी भी या नहीं। संध्या-पूजाके समय भी सब सामान आगे रखकर उसकी चौकीदारी की जाय तो कोई पूजा-पाठ क्या करेगा। मैंने सामान समेटकर पीछे कर दिया था। कम्बलके एक भागमें मेरे कपड़े और सामान लिपटा था। दूसरा भाग आगे बढ़ाकर मैंने आसन बना लिया था।

मेरे दोनों साथी प्रायः मेरे पास एक पंक्तिमें बैठे थे। मैदानकी गंदगी दृष्टिमें न आवे, इसलिये हमने मुख धर्मशाला-की दीवारकी ओर कर रक्खा था। अपना पूरा सामान और वस्त्र गोदमें रक्खे वे मेरे साथके यात्री उसीपर पूड़ियोंकी पत्तलें रक्खे भोजन कर रहे थे।

'ले गया! ले गया! हाय, ले गया!' सहसा साथके दोनों यात्री चिल्ला उठे। उनमेंसे एक खड़े होकर भी फिर बैठ गये और दूसरे दौड़े, कुछ मिनटमें वे भी लौट आये। कोई कुली उनकी गोदमेंसे उनका कोट खींचकर भाग गया था और वह जंगलमें निकल गया। अब उसे ढूँढ़ना सम्भव नहीं था।

× × ×

'वैसे ही क्या कम दरिद्रताका मारा है वह! चोरी तो उसे और कंगाल करेगी!' मुझे पता नहीं क्यों एक सनक है। बचपनमें पिताजीसे पाये संस्कार कह लीजिये। मेरी धारणा तर्कसंगत मैं कैसे कहूँ; किंतु धारणा है कि 'चोरीका धन आया और मनुष्य विपत्तिमें पड़ा। रोग, मुकदमे और कुछ न हो तो कोई दुर्व्यसन घरकी पूँजी भी अवश्य ले जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरी कोटकी जेबमें इनके दो रुपये थे।' मेरे साथीने बताया। उन दोनोंमें एक व्यापारी थे और दूसरे किसी दफ्तरमें काम करते थे। अब संतोष करनेके अतिरिक्त उपाय भी क्या था।

'उसकी मौज हो गयी। एक अन्य यात्रीने कहा—'एक बढ़िया ऊनी कोट और पचास-साठसे कम नकद तो क्या रहे होंगे जेबमें।'

'लेकिन मौज नहीं, विपत्ति गयी उनके पास।' मैंने कहा—'नेपालमें रुकना नहीं है, अन्यथा आप चार महीने बाद उसकी दशा देख सकते थे। जो धन सच्ची कमाईका है, उसे कोई चुरा नहीं सकता और जहाँ चोरीका धन आया, वह किसी-न-किसी रास्ते स्वयं जायगा और घरकी पूँजी भी ले जायगा।'

यह घटना पिछले महासमरसे पहलेकी है। तब 'ऊपरकी आमदनी' गौरवकी वस्तु नहीं थी और व्यापारमें भी इतना छल नहीं घुस सका था। उस समयतक 'ब्लैक मार्केट' शब्दने जन्म नहीं लिया था।

''मैं तो व्यापारी हूँ और व्यापारमें आप जानते ही हैं कि कुछ 'कच्चा-पक्का' करना पड़ता है।'' जिनका कोट गया था, वे कुछ रुष्टसे स्वरमें बोले—'किंतु इनके रुपये भी मेरी जेबमें थे और अपने कार्यालयमें इनके-जैसा हाथका शुद्ध कर्मचारी दूसरा नहीं है। इन्होंने वेतनके अतिरिक्त प्रसन्नतापूर्वक आये उपहार भी कभी स्वीकार नहीं किये।'

मैं अवाक् रह गया। जो बात मैंने कोट चुरानेवालेको लक्ष्यकर कही थी, उसका आघात मेरे साथीको लगा। इस समय उनसे ऐसी बात कहना सर्वथा अशोभनीय था। साथ ही उन्होंने जो तथ्य उपस्थित किया, उसने मेरी धारणाको झकझोर दिया।

'आप सचमुच प्रशंसनीय हैं।' उन ईमानदार कर्मचारीकी ओर मैंने देखा—'आपकी अर्थ-हानि है आश्चर्यकी ही बात। अपने कार्यालयमें आप सम्भवतः सबसे अधिक परिश्रम करनेवाले भी होंगे।'

'परिश्रम तो मैं सबसे कम कर पाता हूँ।' वे बोले—'परिवार बड़ा है। प्रायः समयपर पहुँच नहीं पाता और थोड़ा सुस्त भी हूँ; किंतु हमारे मैनेजर बड़े अच्छे स्वभावके हैं। वे मुझे मानते भी बहुत हैं।'

'तो यह बात है, आप श्रमकी चोरी करते हैं।' मेरा समाधान हो गया था। वैसे मैं इतना अशिष्ट नहीं था कि यह बात मुखसे कहता। मुझे तो अपने दोनों साथियोंको आश्वासन देना था और वह उस समय मेरा कर्तव्य था।

'चोरी तो चोरी है।' धन चुराया तो और उचित श्रम किये बिना पारिश्रमिक ले लिया तो, चोरी तो बिना अनुमति एक इलायची उठा लेना भी है।' मेरे मनने कहा—'जो किसी प्रकारकी चोरी नहीं करेगा, उसे जीवनमें आर्थिक संकट नहीं सहना पड़ेगा।' मेरी इस धारणाके प्रतिकूल अभीतक मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला।

मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् ही मेरे हैं

मेरी सारी ममता सब जगहसे निकलकर एकमात्र भगवान्‌में ही स्थित हो गयी है। भगवान् मेरे हैं, केवल भगवान् ही मेरे हैं, उनके अतिरिक्त और कुछ भी मेरा नहीं है। इसीसे मेरा सारा राग भी सब जगहसे—समस्त प्राणि-पदार्थोंसे सिमटकर एकमात्र भगवान्‌में हो गया है। भगवान् ही मेरे एकमात्र अनुराग या प्रीतिके विषय हैं। एक भगवान्‌के सिवा जगत्‌में कहीं भी मेरी ममता और आसक्ति नहीं रह गयी है। जगत्‌में मेरा जीवन और जीवनके सभी कार्य केवल भगवान्‌का कार्य करनेके लिये ही हैं और तभीतक हैं, जबतक भगवान् चाहते हैं। जगत्‌में दीखनेवाली मेरी ममता-आसक्ति केवल भगवान्‌के नातेसे ही है। जगत्‌से मेरा स्वतन्त्र कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये मेरे पास जगत्‌के पाप-ताप नहीं टिक सकते। टिकना दूर रहा, वे मेरे समीप ही नहीं आ सकते। एकमात्र भगवान्‌में ही मेरी ममता-आसक्ति हो जानेके कारण जगत्‌में सदा सर्वत्र समता हो गयी है। मैं भगवान्‌का हूँ तथा भगवान् ही मेरे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती श्रीरत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

गङ्गोत्तरी

यमुनोत्तरीके उसी मार्गसे जिसपर हम गये थे, लगभग २४ मील लौटकर गंगानी चट्टीपर ठहरे। लौटनेकी इस यात्रामें हमें तीन दिन लगे। गंगानीको यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरी मार्गका जंक्शन कहना चाहिये। यमुनोत्तरी जाकर जो यात्री गंगोत्तरी जाना चाहते हैं उन्हें यहाँतक वापिस जाना पड़ता है और जो गङ्गोत्तरी न भी जाना चाहें उन्हें भी इसी रास्ते लौटना पड़ता है। अतः इस तरहके यात्रियोंकी, जो उक्त धामोंको जा रहे थे और लौट रहे थे, यहाँ खासी भीड़ थी। बड़ी कठिनाइयोंसे हमें एक कमरा रात्रिभरके लिये चार रुपये किरायेपर मिला। हम जिस जगह ठहरे हुए थे, वह मकान यमुनाके तटपर रमणीय पार्वत्य तलीमें स्थित था। मुकामके आस-पास नासपाती, अखरोट आदिके दरख्त फलोंसे लदे थे। समय संध्याका था, कल-कल करती चञ्चल यमुना यहाँ मन्थर गतिसे अपने पथपर अग्रसर थी। रविरश्मियाँ रविनन्दिनीसे अठखेलियाँ कर रही थीं। कुछ देरतक सुनहली संध्याके इस मनोरम दृश्यको हम मन्त्रमुग्ध-से देखते रहे, हमारे देखते-देखते रविने अपनी रश्मियाँ समेट लीं और यमुना हमारी आँखोंसे ओझल हो गयी। दिवसका स्थान रात्रिने ले लिया, पथोंपर चलनेवाले श्रान्त पथिक जो अबतक अपनी निवास-व्यवस्थामें यत्र-तत्र चलते-फिरते बड़े व्यस्त नजर आ रहे थे, थोड़ी देरमें बिस्तरोंमें विलुप्त हो गये। छोटे-बड़े विटपों, लता-गुल्मों और ऊँचे-नीचे गिरि-शृङ्गोंने तमकी ओढ़नी ओढ़ ली। चारों ओर निशाका साम्राज्य था। अब वायुके वे झोंके भी न थे जो दिनमें राहथकित यात्रियोंको सहलाते थे, पवन देव भी मानो दिनभरके अविरल श्रमसे थके-मादे यात्रियोंको सुला स्वयं सो गये थे। ऐसे शान्त, नीरव और निस्तब्ध वातावरणमें भी केवल एक ही शब्द सुन पड़ रहा था, वह था यमुनाका कल-कल। यमुनाका यह कल-कल कितना सारगर्भित था। युग-युगोंसे वह यही 'कल-कल' करती आयी है। आठों पहर, निशि-दिवस उसका यह कल-कल अविराम चलता रहता है। डंडाल गाँवसे यमुनाकी पवित्र धाराके साथ हो हम यमुनोत्तरी पहुँचे और यमुनोत्तरीसे वापिस लौटनेतक इन सात दिनोंमें हमें यमुनाके अनेक रूप देखनेको मिले थे। अनेक ध्वनियाँ और संदेश भी हमने उससे सुने थे। किंतु, आजका यह कल-कल हमें एक अव्यक्त सुख, एक नूतन संदेश दे रहा था। आज यमुनाके तटपर हमारा अन्तिम रैनबसेरा था और भोर होते ही हम उससे विदा लेनेवाले थे। इसीलिये आज मानो वह हमारे कानोंमें कोई नूतन विदामन्त्र दे रही है, ऐसा जान पड़ा। यमुनाका यह विदामन्त्र क्या है। हम विचार-प्रवाहमें बहने लगे। एकाएक हमें ज्ञात हुआ यमुना हमसे कह रही है, 'सोनेसे पूर्व आनेवाले कलकी भूमिका बना लो, अपने पथकी योजना बना, उसका अवलोकन कर लो और अपने इष्ट संकल्पोंको दुहरा लो। जो संकल्प लेकर सोते हैं वे ही कुछ करनेके लिये जागते हैं और जो बिना विचार, बिना संकल्प पड़ते हैं उन्हें प्रगाढ़ निद्राका आवरण ढाँक लेता है। ऐसोंका क्या सोना क्या जागना। हमेशा संकल्पसहित सोओ, संकल्प और विचाररहित मानस तमसे पूर्ण होता है, और इसीलिये इसी अन्धकार,इसी निशा और इसी निद्रासे जिसमें संसारी रोगी-भोगी फँसे रहते हैं, योगी जागते हैं। जो जागते हैं, वही योगी हैं तो यही मेरे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

यमुनाका, यमुनाके प्रियतम, गीताके उद्बोधक भगवान् श्रीकृष्णका उक्त कथन कितना सत्य है। निद्रा और जागरणकी ऐसी सुन्दर परिभाषा कहाँ मिलेगी। विश्रामके क्षण जडताके, नहीं चेतनताके, नव जीवनके प्रतीक होते हैं। इन क्षणोंमें सृजनकी शक्तियाँ जीवन पाती हैं, उभरती हैं, ऊपर उठती हैं। जिस तरह बालकोंके खेलके मैदानमें मध्याह्न होता है, उसी तरह २४ घड़ीके दिन-रातमें रात्रि मध्यबिन्दुका काम करती है। विश्रामकालमें खिलाड़ी अपनी शक्ति सृजन करता है, उसी तरह जीवन-पथका राही रातमें। किंतु, इस विश्रामका मोल तभी बढ़ता है जब यह खिलाड़ी और राही इस विश्राम-कालके महत्त्वको समझे, अवकाशके इस बिंदुको आँके, अपनी आगामी मंजिलकी योजना बना ले, कुछ संकल्प दुहरा ले। मानवका यही कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह सोनेके पूर्व आनेवाले कलकी रूपरेखा, कुछ विचार-सृष्टि, कुछ संकल्प लेकर सोये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि वह यह कर सके तो निश्चित है, वह बहुत कुछ कर गुजरे। ऐसे मानवोंको निशिका अन्धकार और निद्राकी प्रगाढ़ता नहीं व्यापती। इसीलिये जब सारी सृष्टि सोती है। ऐसा योगी जागता है। प्रभुपदवियोगिनी यमुना जागती है और अपने कल-कल शब्दद्वारा उन सोतोंको जगाती है जो प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न खुर्राटे भरते रहते हैं। तमोमयी निशामें बहती यमुनाके इस निर्गुण रवमें कितना गुण और उसके इस करुण स्वरमें कैसा निनाद और विस्तार भरा था आज।

बड़ी रात गये हमलोग इन भावनाओंमें सोये और बड़े तड़के उठ बैठे। हमारे मन एक चेतना, एक ताजगीसे भरे थे।

गङ्गानीसे गङ्गोत्तरी लगभग ७५ मील है। दिनाङ्क १ जूनके प्रातःकाल हम गङ्गानीपर यमुनासे विदा ले गङ्गोत्तरीकी जय बोल रवाना हो गये।

गङ्गोत्तरीके इस मार्गमें आज हमारे कार्यक्रमका पहला मुकाम गंगानीसे ९ मील आगे सिंगोट चट्टी था। गंगानीसे सिंगोटतक इस नौ मीलके मार्गमें हम सघन निर्जन वन-प्रदेशमें चल रहे थे। यमुनोत्तरी जानेमें और यमुनोत्तरीसे सिंगोटतक लौटनेमें हमें मार्गमें सदा यात्रियोंके जाते और आते दल-के-दल मिले थे। किंतु, गंगानी छोड़ते ही हमें ९ मीलका यह पूरा मार्ग जनशून्य ही मिला। डेढ़-डेढ़ दो-दो मीलका सघन वनप्रदेश पार करनेपर कहीं-कहीं इक्के-दुक्के कुछ पहाड़ी आदमी ही मिलते, यात्री नहीं। हाँ, हमें गङ्गोत्तरीके इस मार्गमें एक नये जन्तुका प्रायः पग-पगपर सामना करना पड़ा, वह था बड़ी जातिका गिरगिटान। इसका आकार-प्रकार उस जहरीले गुहेरेके सदृश था जिसके काटनेपर प्राणान्त होना निश्चित रहता है। ये गिरगिटान पहाड़से निकलकर तेजीसे हमारे सामनेसे पथ पारकर गुजर जाते। अनेक बार मार्गमें भी निश्चेष्ट पड़े मिलते। इन्हें देखते ही हम चौंक उठते और लाठी ठोकते ही आगे बढ़ते। सारे मार्गमें इनके आगे-पीछे दायें-बायेंसे निकलनेकी खुटकुटी बनी रहती। फिर कभी-कभी वनकी सघनताके कारण मनमें वनके हिंसक जन्तुओंका भी भय होता, कभी जब यदा-कदा कोई पहाड़ी व्यक्ति दिखता, तब डाकूकी आशङ्का हो बैठती। हमारे भारवाहक सदा हमारे पीछे रहते और चूँकि हम केवल उस लाठीके, जो हमारी इस यात्राकी वास्तविक पथ-साथी थी, कोई बोझ अपने साथ नहीं रखते थे, अतः तेजीसे चलते और कभी-कभी तो अपनी टोलीके धीमे चलनेवाले साथियोंका साथ छोड़ अपनी टोलीके आगे निकल जाते। अपने इसी पुराने रिवाजके कारण नौ मीलके इस मार्गमें भी हम अपनी टोलीसे पृथक् हो गये। सबेरेका वक्त था। अतः वायुसेवनकी धुनके पक्के गोविन्ददासने आज वायुसेवनकी धुनमें कुछ पग आगे बढ़ा दिये। एक बार आगे बढ़कर तो पीछे लौटना मुश्किल होता है। हाँ कभी-कभी पीछेवालोंकी प्रतीक्षामें किसी एक स्थानपर वे कुछ देर रुककर साथियोंके साथ हो जाया करते थे, किंतु आज इन आशङ्काओंके कारण कि न मालूम कब किस झाड़ीसे कोई भालू आ धमके अथवा कोई चोर, डाकू आ झपटे, इस निर्जन सघन वन-क्षेत्रमें सिवा आगे बढ़नेके कोई चारा न देख वे आगे बढ़ते गये आसरेकी खोजमें। आखिर उन्हें सिंगोटसे कोई तीन मील इस तरफ एक चायकी दूकान मिली, जिसके सामने एक वृक्षकी छायामें वे बैठ गये। जब हमलोग उन्हें मिले, तब उन्होंने अपनी मानसिक स्थितिका जो वर्णन किया वह बड़ा रोचक था—गोविन्ददास बोले—'जहाँ मनुष्य नहीं हैं, वहाँ केवल किसी भाव या भगवान्की ओर आकृष्ट होकर चलना उतना सहज नहीं है। इसका मुझे आज अनुभव हुआ। मनुष्यके साथ मनुष्यका आकर्षण अधिक है या भावना अथवा भगवान्का, यही सोचकर मैं आज आपलोगोंसे बहुत दूर अकेला इस एकान्त निर्जन वन-पथपर चला, किंतु मुझे पीछे छोड़ा हुआ आकर्षण ही अधिक आकृष्ट कर रहा था।' गोविन्ददासके इस कथनपर हमें हँसी आ गयी, किंतु कितना सत्य था उनका यह स्वयं अनुभूत कथन। मानवकी कोटिमें रहनेवाला मानव मानवसे विलग होते ही विकल हो जाय तो यह स्वाभाविक ही है। ऐसे ही प्रसङ्गोंपर तो मानव-प्रेमकी भावनाएँ उभरती हैं।

लगभग एक बजे हमलोग सिंगोट पहुँचे। मार्ग बीहड़ था, चढ़ाव-उतार दोनोंसे युक्त। हमारे सुननेमें आया था कि चट्टियोंकी गंदगी यमुनोत्तरी-मार्गमें है, परंतु गङ्गोत्तरी-मार्गकी इस प्रथम चट्टी पहुँचते ही सिद्ध हो गया कि इस मार्गकी चट्टियाँ भी लगभग वैसी ही हैं जैसी यमुनोत्तरी-मार्गकी। वे ही बातें, वैसी ही गंदगी हमें इस चट्टीपर मिली। एक बात और अधिक हुई, हमने लोगोंसे सुना था और मार्गदर्शिका पुस्तकोंमें पढ़ा भी था कि इस तरफ एक विशेष प्रकारकी जहरीली मक्खियाँ होती हैं, जिनके काटनेसे खुजली होकर कभी-कभी सूजन हो जाती है और घावतक होकर पक जाते हैं। सिंगोटमें हमें इन मक्खियोंके काटनेका भी अनुभव हो गया। गनीमत यह हुई कि सूजन बहुत नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई और धाव इत्यादि होकर इनके पकनेकी नौबत नहीं आयी। चट्टीपर हमें यात्री खूब मिले। आज हमारा सामान जो पीछे भारवाहक ला रहे थे, काफी देरसे लाये; अतः भोजन होते-होते संध्या हो गयी। भोजन हमलोग करते एक ही बार। किंतु संध्याके-संध्या नहीं, कभी दोपहरमें, कभी दो-तीन बजेतक निबट जाते थे। जब कभी दूसरी वक्त यात्रापर चलना होता तो शामको फिर थोड़ा नाश्ता ले लिया करते। किंतु दो वक्त भोजनोंकी व्यवस्था हमसे न सध सकी और हमसे ही क्या दोनों वक्त भोजन तो क्वचित् ही यात्री करते थे। सिंगोटमें रात्रि व्यतीतकर बंजारोंकी तरह भोर होते ही अपना बोरिया-बिस्तर समेट आगेकी मंजिलपर चल दिये।

यमुनोत्तरी-मार्गमें यमुनाके दर्शन डंडालगाँवसे होते हैं। गङ्गोत्तरी-मार्गमें गंगानीसे लगभग बारह मील अर्थात् सिंगोट चट्टीसे तीन मील चलनेके उपरान्त नाकुरी नामक गाँवके समीप हमारी भागीरथीसे भेंट हुई। गङ्गोत्तरी-मार्गमें सर्व-प्रथम भागीरथीके यहाँ दर्शन चित्तमें कैसा उल्लास भरते हैं। प्रयागके, हरिद्वारके और ऋषिकेशके गङ्गादर्शनोंमें और यहाँके इन दर्शनोंमें बड़ा फर्क है। उक्त स्थानोंमें नगरोंके सांनिध्यमें गङ्गा बहती हैं, नर-नारियोंके कोलाहलपूर्ण वातावरणमें गङ्गा वहाँ दर्शकोंमें वह भक्तिभाव उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो पातीं, जो यहाँके रम्य प्राकृतिक शान्त वातावरणमें। भागीरथी स्वयं यहाँ एक भक्तिके भावपूर्ण स्वर-ताल और लयमें बहती हैं। उनके इस बहावको देख सहज ही दर्शकोंका हृदय भक्तिरससे प्लावित हो उठता है—यहाँ हमने गङ्गाके इस प्रवाहको यमुनाके तुलनात्मक दृष्टिकोणसे देखा तो यमुनाका प्रवाह हमें एक बड़े प्रपातसे अधिक कुछ और न जान पड़ा। गङ्गाके इस प्रवाहकी गति, उसका वेग उसकी हलचल और उसका नाद सभी कुछ बेमिशाल था। यमुना गङ्गाकी इस हैसियतके मुकाबलेमें सर्वथा सामर्थ्यहीन थी।

यमुनोत्तरी-मार्गमें हमें पैसे माँगनेवाले छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ मिलते रहे थे। गोविन्ददास उन्हें समझाते यह आदत अच्छी नहीं है, किंतु वे पीछा नहीं छोड़ते और हम-लोग उन्हें एक-एक नया पैसा दे दिया करते। गङ्गोत्तरी-मार्गमें जैसे ही हमलोगोंकी यात्रा प्रारम्भ हुई, यहाँ भी यमुनोत्तरीकी तरह पैसे माँगते बालक-बालिकाएँ मिले; किंतु यहाँ इन बालकोंकी याचनामें एक बड़ा आकर्षण था। एक जगह मार्गमें हमें ५ बालक और उनके साथ २ बालिकाएँ मिलीं। ये बालक गङ्गालहरीका निम्न श्लोक उच्च कण्ठसे शुद्ध और स्वरसहित गाते हमारे पीछे हो गये, तन्मयतासे वे गाते जाते और तन्मय ही हम सुनते जाते। कुछ दूरतक वे बराबर हमारे साथ चले। कैसा भला लगता इन सप्त-ऋषियोंसे बालकोंका यह सहगान। इन्हें बड़ी प्रसन्नतासे हमने एक-एक आना दे प्रसन्न किया।

श्लोक

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्-
महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु॥

हिमालयकी जिस शिखरावलीको लाखों वर्ष पूर्वसे काटती हुई उसके बीचसे भगीरथीका यह प्रवाह बह रहा था, यह शिखरावली अभी तो प्रायः वैसी ही थी जैसी कालिन्दीके दोनों ओरकी शिखरावली। सिंगोटसे हम ९ मील चलकर उत्तरकाशी पहुँचे, परंतु उत्तरकाशी पहुँचनेके कुछ पूर्व हम एक भयानक संकटकी स्थितिमें गुजरे। घरासूसे भटवारीतक मोटरकी सड़क बन रही थी। उत्तरकाशीके एकदम निकटके पहाड़ बारूदसे गिराये जा रहे थे। जहाँ ये पहाड़ गिराये जा रहे थे, वहाँका मार्ग इतना भयंकर हो गया था, जिसे मार्ग तो कहा ही नहीं जा सकता, उसे पार करनेका अर्थ एक बड़े-से-बड़े खतरेका मुकाबला करना था। मुश्किलसे छः इंचकी एक आड़ी टेढ़ी रेखाकी तरह खिंची पगडंडी। उसपर यदि जरा भी पैर इधर-उधर हो जाय अथवा आदमीके बोझ या पैरोंकी ठेलसे पत्थर खिसक जायँ जो अभी-अभी पहाड़में सुरंग लगाकर गिराये गये थे और जिनपर पग रक्खे पग-पग हम बढ़ रहे थे तो बेचारे यात्रीका अन्त ही था। जरा-सी चूक होने या इधर-उधर पैर पड़नेपर फिर हजारों फुट नीचे सुरसरिकी शरणमें जानेके सिवा और कोई निस्तार नहीं। यही नहीं नीचे पथ देखकर सम्हालकर पैर रखना पड़ता था और ऊपर सिरपर टँगे लटके-से पत्थरोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानोंको, जो सुरंगके कारण अपने स्थानसे तो हट गयी थीं, किंतु केवल हिलगीमात्र थीं, जब दृष्टि उठा देखते तो प्राण कण्ठमें आ जाते। बेमन, निर्जीवसे साँसोंके सहारे आगे बढ़ रहे थे। इस समय जब हम यह रास्ता पार कर रहे थे जो लगभग आधेके तय हो चुका था, एक घटना और घटित हुई। हमारे इस मार्गके सामनेकी ओर गङ्गापर झूलेका पुल था। गङ्गा उस पारके कुछ व्यक्तियोंने जो इस पुलके पहले सिरेपर खड़े दिख रहे थे, एक आवाज लगायी। इस आवाजके हमारे कानोंमें पड़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही ज्यों ही हमने उस ओर देखा तो वे अपने हाथोंसे कुछ संकेत भी कर रहे थे और साथमें आवाज भी दे रहे थे। भागीरथीके रवके कारण वे क्या कह रहे हैं, यह तो स्पष्ट न समझमें आया, पर उनके संकेतसे और उस आवाजसे हमें यही आभास हुआ कि सुरंग लगी हुई है, 'लौट जाओ।' इस कल्पनाके उठते ही हमारे होश उड़ गये। हमें ज्ञात था जब हम इस अग्नि-पथपर चले थे तो कुछ ही पूर्व हमारे देखते सुरंगने पहाड़ उड़ाया था और यात्रियोंके लिये गेट खुलनेकी घोषणाके बाद ही हम इसे पार करने चले थे। हमें शङ्का हुई कहीं सुरंग लगी तो नहीं रह गयी, ये लोग मना कर रहे हैं, जरूर कोई बड़ा खतरा है। हमलोगोंकी अक्ल काम न करती, न बढ़े खैर न लौटे। न जाने किस क्षण क्या हमारे आगे क्या पीछे पहाड़ हमें दबोच लें। केवल 'इधर कुआँ, उधर खाई' ही नहीं, हमें इस समय ऐसा लगा मानो हमारे तीन ओर आगे-पीछे और बायीं ओरसे पहाड़ गिरनेवाला है और चौथे दाहिनी ओर हजारों फुट नीचे गङ्गा हमें गोद लेने हुलस रही है। जान पड़ता, चारों ओरसे काल कवलित करने चला है। हमलोग इस दीन अवस्थामें एक क्षणको रुक गये। हमारे दलके साथी इस बार साथ ही थे, दो कण्डीके भारवाहक तथा एक पंडाजी और थे, ये कण्डीवाले, पण्डाजी तथा गोविन्दप्रसाद हमारे साथकी महिलाओंको ढाढ़स बँधा रहे थे। वे कहते···'घबराओ नहीं' कोई खतरा नहीं है, किंतु उनका यह कथन स्वयं ही घबराहटसे परिपूर्ण रहता। जल्दी ही पण्डाजी एवं कण्डीवाले भारवाहकोंके कहनेसे तथा उस पारसे फिर एक आवाज ऐसी आनेसे जिससे मालूम हुआ 'पार करो' हमलोग चल पड़े। इस समय प्रत्येकको प्राणोंसे भरपूर मोह था और व्याकुल प्राणोंसे सभी कोई राम-राम जप रहा था। कोई हे राम, हे भगवान् कहते पग बढ़ा रहा था। गोविन्ददास गीताका कोई श्लोक दुहरा रहे थे, गोदावरीदेवी कृष्ण-कृष्ण कह रही थीं, गोविन्दप्रसाद शिव-शिव बोल रहे थे। आज भी वह दृश्य याद आते प्राण सूखते हैं। सचमुच, हमने अनेक स्थलोंपर सड़कें बनते देखा है। जहाँ कहीं भी सड़कें बनायी जाती हैं, वहाँ पहलेसे यातायातके लिये उपमार्गोंकी व्यवस्था कर दी जाती है। किंतु, इस तरहके प्राणघाती पथपर चले यात्रियोंको अपने प्राणोंकी बाजी लगानेको कभी बाध्य नहीं किया जाता। बलिहारी है उत्तर प्रदेशकी सरकारके प्रबन्धकोंकी कि इस प्रकारके उपमार्गकी यहाँ कोई व्यवस्था नहीं की गयी और ऐसे समयपर सड़क बनानेका काम प्रारम्भ किया गया, जब हजारों यात्री गङ्गोत्तरीकी यात्राको जाते-आते हैं और फिर तारीफकी बात यह कि यह सब उत्तरकाशीमें उच्च राज्यकर्मचारियोंका मुकाम खास होते हुए हो रहा था। 'आँखके अन्धे नाम नयनसुख'वाली कहावत कदाचित् ऐसे ही लोगोंके लिये कही गयी है। कम-से-कम हमलोगोंने तो जीवनमें ऐसे भयंकर रास्तेपर कभी भी पैर नहीं रक्खा और न ऐसी जोखिम उठाने हम कभी तैयार होते। किंतु, एक आस्तिकके नाते, दूसरे निरुपाय थे, सिवा इस आपत्तिको उठाये गङ्गोत्तरीके पथपर बढ़ ही नहीं सकते थे। अतः शासनकी इस गैरजिम्मेदारीको शाप देता हमारा दल उत्तरकाशी पहुँचा।

भागीरथीके दाहिने तटकी समतल भूमिपर समुद्रसतहसे ३००० फुटकी ऊँचाईपर स्थित उत्तरकाशी उत्तराखण्डकी एक अच्छी बस्ती है। आबादी लगभग पाँच हजार है। उत्तरकाशीमें वाराणसीके सदृश ही मणिकर्णिका घाट, श्रीविश्वनाथ, कालभैरव और अन्नपूर्णा आदिके छोटे-छोटे मन्दिर हैं। एक मन्दिर दस 'रुद्रों'का महाराजा साहब जयपुरने बनवाया है। यहाँ ठहरनेके लिये काली कमलीवालोंकी धर्मशाला और काली कमलीवालोंके कार्यालयकी एक शाखा भी है, जो यात्रियोंकी यात्रा-व्यवस्थामें सहायता देती है। साधु-संन्यासियोंके भोजनों-भण्डारोंका भी यहाँ आयोजन होता है। इसके अतिरिक्त बिड़ला-परिवारकी यहाँ एक अच्छी धर्मशाला है। श्रीगोस्वामी गणेशदत्तजीने हमारे ठहरनेकी व्यवस्था इसी धर्मशालामें करनेकी कृपा की थी। इस यात्राको आरम्भ करनेके पश्चात् आज हम पहली बार एक अच्छे स्थानपर ठहरे। ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी थी। हमने मणिकर्णिका घाटपर स्नान किये और श्रीविश्वनाथके तथा अन्य मन्दिरोंके दर्शन कर इस दिनके कार्यक्रमको पूरा किया। सुना था कि उत्तरकाशीमें साग-सब्जी पर्याप्त मात्रामें मिल जाती है; किंतु हमें तो आलूके सिवा कुछ न मिला। यद्यपि इस ओर हरी साग-तरकारीका सर्वथा अभाव ही है फिर भी उत्तरकाशी-जैसी जगह जहाँ खासी बड़ी-बड़ी दूकानें हैं, अच्छा बाजार, पोस्ट आफिस, तारघर, डाक्टर और कुछ सरकारी अधिकारियोंका निवास हो तरकारियोंका न मिलना एक बड़ी अजीब बात है। मुमकिन है, हमें ही न मिली हो।

यहाँ कुछ अच्छे और दीर्घायु साधु-महात्माओंका भी निवास है। महात्मा विष्णुदत्त मौनी, महात्माओंका आश्रम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा रामतीर्थ आनन्द स्वामी, स्वामी ब्रह्मप्रकाश, स्वामी महामण्डलेश्वरकी कीर्ति यहाँ सुननेको मिली, इसमें महात्मा विष्णुदत्त मौनीकी आयु १२० वर्षकी बतायी जाती है और ये नग्न रहकर घंटों गङ्गाके प्रवाहमें खड़े रहकर सूर्यकी आराधना करते हैं । स्वामी ब्रह्मप्रकाश संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् हैं । इन महात्माओंमेंसे कईके आश्रम भी हैं—जैसे स्वामी ब्रह्मप्रकाशका देवगिरि आश्रम, स्वामी महामण्डलेश्वर-का कैलास आश्रम । इन आश्रमोंमें यौगिक क्रियाएँ होती हैं और सत्संग । यहाँके समस्त आश्रमोंमें योगनिकेतन प्रमुख है । हमें इस बातका बड़ा खेद है कि इन महात्माओं-के कीर्ति-श्रवणके अतिरिक्त हम इनमेंसे न तो किसी महात्माके दर्शन कर सके और न किसीके आश्रमके । केवल योगनिकेतन आश्रममें हम जा सके । इस आश्रमके अधिष्ठाता ब्रह्मचारी श्रीव्यासदेवजीकी योगमार्गमें इस ओर काफी प्रसिद्धि भी है । आश्रम सचमुच बड़े ही रमणीक स्थानपर बना है, गङ्गाके ठीक किनारे । निकट ही तेजीसे जाह्नवीका प्रवाह बहता है और भागीरथीके नादसे आश्रम सतत शब्दायमान रहता है । आश्रम तो हमने देखा परंतु, व्यासदेवजीके आज दर्शन न हो सके । इस आश्रममें कुछ दान-दाताओंने छोटी-छोटी कुटियाँ बनायी हैं । कुटियोंके निर्माताओं और उनके अधिकारोंके सम्बन्धमें हमें यहाँ कुछ अच्छी बातें मालूम हुई हैं । इन कुटियोंको ये दानदाता बंद कर अपने लिये सुरक्षित नहीं रख सकते । जब वे कभी यहाँ आते हैं, तब उनकी कुटी यदि खाली होती है तो वह उन्हें दी जाती है, यदि उनकी कुटी खाली नहीं होती तो उन्हें कोई दूसरी कुटी देनेका प्रयत्न किया जाता है और यदि कोई भी कुटी खाली नहीं होती तो फिर उन्हें आश्रममें स्थान नहीं मिल पाता । इसमें संदेह नहीं, यह एक सुन्दर व्यवस्था है । ऐसे स्थानोंपर दानदाताओंकी यह निस्पृहता और इन आश्रमोंके संरक्षकोंका स्वाभिमान सर्वथा वाञ्छनीय है ।

उत्तरकाशीसे दूसरे दिन ९ मील चलकर हम मनेरी पहुँचे । चट्टीमें पैर रक्खा तो देखा आदमियोंका आलम पड़ा है, पैर रखनेको जगह नहीं । हमने अपने पण्डा चेतरामजीको मुकाम-व्यवस्थाके लिये यहाँ पहले ही भेज दिया था । उन्होंने एक कमरा हमारे लिये सुरक्षित भी करा लिया था; किंतु उस एक छोटे-से कमरेके सिवा सारी चट्टी यात्रियोंसे भरी थी, सामनेकी दालानपर कमरेकी देहरीसे सटे अपना सामान सटाये यात्री भरे थे । फिर चट्टीके चारों ओर गंदगीका साम्राज्य था । हमलोग कमरेमें घुसे तो सही पर ऐसे वातावरणमें ठहरना और भोजनादिकी व्यवस्था करना कठिन था । अतः गङ्गा-किनारे वृक्षोंकी छायामें रुके, भोजन बनानेका प्रबन्ध किया । दैवयोगसे इसी समय हमें मालूम हुआ कि वन-विभागका एक विश्रामालय भी यहाँ है और उसमें जंगलके जिला-अधिकारी श्रीरामदासजी गुप्ता इस समय ठहरे हुए हैं । गोविन्दप्रसाद तत्काल इनसे मिले और विश्रामालयमें एक कमरा देनेका आग्रह किया । गुप्ताजीने तुरंत हमारे ठहरनेकी व्यवस्था इस विश्रामालयमें कर दी । यही नहीं, उन्होंने आगे जहाँ-जहाँ वन-विभागके विश्रामालय थे वहाँ भी हमारे जाते और लौटते कार्यक्रमके अनुसार स्थान सुरक्षित करानेकी भी कृपा की । विश्रामालय एक पर्वत-खण्डकी चोटीपर स्थित है । सामने भागीरथीका भव्य प्रवाह, इर्द-गिर्द पर्वतमालाएँ अपने हरित परिधानोंसे सुशोभित थीं । विश्रामालयके पीछेसे एक अच्छा जल-प्रपात आता है जिसे बाँधकर सामने बहाया गया है । मनेरीकी ऊँचाई ४३०० फुट होनेके कारण यद्यपि यहाँ शीत थी पर अधिक नहीं । दोपहरका वक्त था, परंतु सहती धूप । हमलोगोंने जीभर झरनेमें नहाया और भागीरथीके तटपर भोजन कर वन-भोजनका आनन्द उठाया । गङ्गाका तेज प्रवाह पवनके प्रवेगसे अठखेलियाँ कर रहा था । वायुके इस वेगसे भोजन बननेमें बड़ी कठिनाई हुई; किंतु भोजनोंके इस विलम्ब-कालमें हम बैठे पानी और पवनकी आँखमिचौनी देखते रहे । भोजनोपरान्त विश्रामालयमें लौटे । आज रात्रि हमने यहाँ मुकाम किया । मनेरीकी संध्या बड़ी मनोरम थी ।

मनेरीसे हम दूसरे दिन फिर ९ मील चल भटवारी पहुँचे । यहाँ हमारे ठहरनेकी व्यवस्था एक माध्यमिक शालामें की गयी थी । हिमालयकी चतुर्दिक्-शिखरावलीके बीच गङ्गा-किनारे इस विद्यालयकी साफ-सुथरी इमारत अपनी एक विशेषता रखती थी । कमरे काफी बड़े और हवादार थे । कमरोंके बाहर विस्तृत बरामदे थे । पहले दिन मनेरीके विश्रामालयमें ठहरने और आज विद्यालयकी इस इमारतमें ठहरनेके कारण हम चट्टियोंके गंदे वायुमण्डलको भूल-से गये और अब इस दृश्यका पूरा आनन्द उठाने लगे ।

उत्तरकाशीके निकटवर्ती जिस मार्गमें हमें एक भयंकर स्थितिका सामना करना पड़ा था, उससे भी अब हमारी निवृत्ति हो गयी थी; क्योंकि गत दो दिनोंमें जिस मार्गसे चलकर हम भटवारी पहुँचे थे, वह मार्ग मोटरके लिये बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहा था, अतः काफी चौड़ी और समतल थी। इसलिये इस मार्गकी चलाईने भी हमें यमुनोत्तरीके कठिन मार्गकी चलाईसे एक प्रकारकी राहत दे दी थी। इस प्रकार कुछ शारीरिक कठिनाइयोंका परिमार्जन हुआ और तब प्राकृतिक दृश्योंपर हमारा ध्यान केन्द्रित हुआ।

भटवारी इस मार्गका वह स्थल है जहाँसे एक मार्ग गङ्गोत्तरीको जाता है और दूसरा श्रीकेदारनाथको। अतः इन दो पृथक् धामोंको पहुँचानेवाले इन दो पथोंके यहाँ मिलनेके कारण यह स्थल एक पथ-संगम, जिसे जंक्शन कहा जा सकता है, हो गया है। हमलोग स्वयं यहाँसे गङ्गोत्तरी जाकर वापिसीमें भटवारीसे ही केदारनाथका मार्ग पकड़नेवाले थे। अतः इस दृष्टिसे भटवारी उत्तरकाशीके बाद गङ्गोत्तरी मार्गका एक विशिष्ट स्थान है। फिर यहाँ एक छोटा किंतु जरूरतकी चीजें मिलने लायक बाजार है। डाकखाना, डाकबँगला, सरकारी अस्पताल आदिसे कुछ प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाती है। यहाँ भी काली कमलीवाला क्षेत्रकी एक कुछ बड़ी धर्मशाला है।

जब हमलोग भोजनादिसे निवृत्त हो अपने मुकामपर विश्राम कर रहे थे कि यकायक श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाके पुत्र श्रीवसंतकुमारजी बिड़ला आ पहुँचे। इनके साथ इनकी धर्मपत्नी सरलादेवी और पुत्र चि० आदित्यविक्रम भी थे। ये लोग गङ्गोत्तरीसे लौट रहे थे। बिड़लाजीके कुटुम्बसे और गोविन्ददासके कुटुम्बसे दो नजदीकी नातेदारियोंका सम्बन्ध है। एक गोविन्ददासके चचेरे भाई जमनादासजीकी पुत्री गोपाका विवाह रामेश्वरदासजीके पुत्र गजानन्दजीसे हुआ है, दूसरे श्रीगजानन्दजी बीयाणीकी पुत्री सरलाका विवाह वसंतकुमारजीसे। गोविन्ददासकी पत्नी बीयाणी कुलसे आती हैं। इसके सिवा बीयाणीजीसे गोविन्ददासका अत्यन्त निकटका सम्बन्ध भी है। अतः इन सम्बन्धोंके कारण ही जब श्रीबिड़लाजीको मालूम हुआ कि गोविन्ददास यहाँ ठहरे हुए हैं, तब वे तत्काल मिलने पहुँचे। सभीको इस मुलाकातसे आनन्द हुआ। बड़ी देरतक सब लोग बैठे विविध विषयोंपर बातें करते रहे, प्रकृतिकी सुषमाको निहारते रहे, अपने-अपने यात्रा-संस्मरणोंको सुनाते रहे। भटवारीकी इस भेंटकी याद बनी रहे, अतः एक-एक फोटो-ग्रूप भी लिया गया। संध्याको गोविन्ददास, गोविन्ददासकी पत्नी गोदावरीदेवी और पुत्री रत्नकुमारी श्रीवसंतकुमारजीके निवास वनविश्रामालयमें जहाँ वे ठहरे थे गये। कुछ देर यहाँ बैठे, सन्ध्याको बिड़लाजीके यहाँ गान्धीजीके आश्रमकी प्रार्थना होती है, अतः इस प्रार्थना-में सब लोग शामिल हुए। बाहर हो रही रिमझिम-रिमझिम वर्षा बड़ी सुखद लग रही थी। आजके प्रार्थनाके इस कार्यक्रमने अबतककी हमारी यात्रामें एक और सुन्दर कड़ी जोड़ दी। बिस्तरोंपर जानेके लिये दो भिन्न राहोंके दो दलोंके रूपमें इन लोगोंने विदा ली। यात्राकालमें इस तरहके सम्बन्धी—स्वजनोंका मिलन कितना प्रेरक होता है। गोविन्ददास और बिड़लाजीके इस कुछ क्षणोंके संयोगका सर्वाधिक सुख गोविन्ददासकी पत्नीने उठाया। उन्हें सर्वापेक्षा खुशी हुई विशेषकर इस वन-प्रदेशमें सरलासे मिलकर। नारी-जातिमें कैसी ममता और कैसी करुणा भरी रहती है, इसका सुन्दर चित्र इस काल हमें देखनेको मिला।

सदा सर्वत्र एक ईश्वर ही सत्य है

मेरे बाहर-भीतर, जंगल-घर—सभी स्थानोंमें, ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सभी दिशाओंमें, रात-दिन, संध्या-प्रातः सभी कालोंमें ईश्वर छाया है। ईश्वर ही मेरे जड शरीररूपमें अभिव्यक्त है। इस शरीरसे होनेवाला सब कुछ ईश्वरका ही लीला-कार्य—खेल है। वही कर्ता है, वही कर्म है; वही भोक्ता है, वही भोग्य है। मैं तो ईश्वरका केवल एक संकल्प मात्र हूँ। जबतक उसका संकल्प है, तभीतक मेरी सत्ता है। संकल्प छूटा कि फिर तो ईश्वर-ही-ईश्वर है। यह परम सत्य है और यह सत्य भी ईश्वर ही है। सदा सर्वत्र एक ईश्वर ही सत्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भविष्यपुराणकी रमणीयता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

'पुराण' भारतवर्षकी राष्ट्रीय निधि हैं। इनमें अथाह ज्ञानका भण्डार भरा है। कोई-कोई पुराण तो पूरे विश्वकोष हैं। श्रीविष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण, गरुड़पुराण आदिमें सारा प्राचीन ज्ञान भरा है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सूक्ष्म विचार, सदाचारके उपदेश, जीवनयात्रासम्बन्धी परम हितकर सुझावोंसे तो ये आदिसे अन्ततक परिपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त विचित्र उपदेशयुक्त रम्य कथाएँ, व्रत-उपवास, संयम, परोपकारादि-धर्म, आयुर्वेद, छन्द, ज्यौतिष, प्राचीन इतिहास, वेद-वेदान्तकी विशिष्ट व्याख्या, व्याकरण, धनुर्वेद, मल्लविद्या, शिल्पकला, नाट्यकला, प्रतिमानिर्माण आदिका ज्ञान, षोडश संस्कार तथा अन्यान्य परम पवित्रता सम्पादन योग्य बहुत-से श्रेयस्कर साधनोंका भी इनमें वर्णन भरा पड़ा है। न्याय्यदृष्टिसे देखा जाय तो इस प्रकारका कल्याणकारी साहित्य भारत ही नहीं विश्वके किसी भी देशमें नहीं है। किंतु खेद है, अत्यन्त असूया-बुद्धि रखनेवाले अब भी कुछ लोग इनसे नाक-भौं सिकोड़ते हैंतथा इनके विरुद्ध घृणित प्रचार करते हुए लज्जाका अनुभव नहीं करते। वाल्मीकि, भास, कालिदास, शंकराचार्य, रामानुज, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, समर्थ रामदास, रवीन्द्रनाथ तथा आधुनिक अगणित विद्वानों, साधु-महात्माओंने इनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। आज प्रायः सब पुराणोंकी महत्ता स्वीकार करने लगे हैं। अब तो 'पुराण' नामक एक स्वन्तत्र पत्र भी प्रकाशित होने लग गया है। 'कल्याण'ने भी इस दिशामें बहुत कार्य किया है। प्रायः १० पुराण विशेषाङ्क उसने पाठकोंको भेंट किये हैं और आगे भी उसका प्रयत्न जारी है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' पत्रमें भी इसी प्रकारकी सामग्री दी जा रही है। उसमें मूलसहित पूरा अनुवाद टिप्पणी और चित्रोंके साथ अल्प मूल्यमें प्रकाशित हो रहा है। यह सब शुभ लक्षण है। प्रत्येक कल्याणकामीको इससे पूरा लाभ उठाना चाहिये।

पुराणोंपर पं० कालूरामजी शास्त्रीका 'पुराणवर्म', पं० ज्वालाप्रसादजीका 'अष्टादश पुराणदर्पण', पं० माधवाचार्यजीका 'पुराण-दिग्दर्शन' एवं बंगला तथा हिंदी विश्वकोषका 'पुराण' शब्दके अन्तर्गतकी विस्तृत सामग्री पर्याप्त उपयोगी है। इसके अतिरिक्त पं० दीनानाथजीके 'सनातनधर्मालोक' श्रीरामदासजी गौड़के 'हिंदूत्व' आदिमें भी पुराणोंपर अच्छा वर्णन है। किंतु इन सबका वर्णन इतना मिलता-जुलता है कि देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। विशेषकर विश्वकोषकी सामग्री तथा अष्टादश पुराण-दर्पणमें तो कोई भेद ही नहीं दीखता। पण्डितजीकी पुस्तक १९९३ वैक्रमीयकी छपी है। बंगला विश्वकोष इससे बहुत पुराना है। हिंदीका संस्करण भी सन् १९२७ ईस्वी; १९८४ विक्रमीका है। अतः निःसंदेह पण्डितजीकी पुस्तकका आधार यह विश्वकोष या वह पुस्तक है, जिसके आधारपर विश्वकोषकारने यह सामग्री ली है। जो हो हमारा तो यहाँ वर्ण्य विषय केवल 'भविष्यपुराण'मात्र है।

'भविष्यपुराण'पर प्रायः सभी सशंक हैं। पुराण-दिग्दर्शन-कारको तो आधेसे अधिक पुराण गड़बड़ ही लगते हैं। विश्वकोषकार तथा अन्यान्य लोगोंने चार भविष्योंकी चर्चा की है। नवलकिशोर प्रेसकी भाषा प्रतिमें इनमेंसे दोका अनुवाद है। पर वेंकटेश्वरकी प्रतिमें प्रायः ये सब सम्मिलित हैं। अब देखा जाय कि इसकी प्रामाणिकता कहाँतक ठीक है?

भविष्यपुराणकी प्रामाणिकता

आपस्तम्बधर्मसूत्र अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। उसमें भविष्यपुराणके नामसे कहा गया है—

आभूतसंप्लवान्ते स्वर्गजितः पुनः सर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्यत्पुराणे (२ । २४ । ५-६)।

अर्थात् पितृगण प्रलयकालतक स्वर्ग भोग करते हैं और पुनः नयी सृष्टिके आरम्भमें वे प्रजाकी उत्पत्तिके लिये प्रकट होते हैं। पुराणोंमें इसके समानार्थक श्लोक मिलते हैं। वायु-पुराण तथा ब्रह्माण्डपुराणके अनुषंग-पादमें ये श्लोक मिलते हैं—

बीजार्थे न स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात्।
ततस्ताः सृज्यमानास्तु संतानार्थं भवन्ति हि॥
(८ । २५)

इससे मिलते-जुलते श्लोक भविष्यपुराण ब्रह्मपर्वके आरम्भ-में हैं। नारदपुराणमें जो भविष्यका वर्णन है, वह भी अधिकांश भविष्यपुराणसे मिल जाता है। शंकराचार्यने विष्णुसहस्रनाम भाष्य (१०) में भविष्यपुराणके श्लोक उद्धृत किये हैं। हेमाद्रिने अपने चतुर्वर्ग-चिन्तामणिमें भविष्यपुराणके बहुत-से श्लोक उद्धृत किये हैं। वे सब-के-सब अभी भविष्य-पुराणमें उसी प्रकार उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ दान-खण्ड (हेमाद्रि) के महिषीदान (पृ० ६१०), मेषीदान, वराहदान आदि प्रकरणके सभी श्लोक भविष्य-पुराणके दान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरणमें ठीक उसी प्रकार हैं। इसी तरह याज्ञवल्क्यस्मृतिकी अपरार्क टीकाके व्यवहाराध्यायस्थ दानप्रकरणमें भविष्यपुराणके सैकड़ों श्लोक आये हैं और वे सब भी 'भविष्योत्तर' (भविष्यपुराणके चौथे) पर्वमें अभी ज्यों-के-त्यों मिलते दीखते हैं। इनमें हेमाद्रिका समय १२ वीं शती तथा अपरार्कका ११ वीं शती माना जाता है। इसी प्रकार अन्यान्य सभी निबन्धकारोंने भी जो 'भविष्यपुराण'के उद्धरण दिये हैं, वे उसमें मिलते ही हैं। इसी प्रकार व्रतरत्न, व्रतराज, व्रतार्क, रणवीरसिंह-व्रतरत्नाकर आदिके जो तीन चतुर्थांश व्रत भविष्यपुराणके नामसे निर्दिष्ट हैं, आज भी उसके ब्राह्म एवं उत्तर पर्वमें प्रायः ज्यों-के-त्यों मिल जाते हैं। यहाँ उन सभी श्लोकोंको लिखकर मिलानेसे विस्तार बहुत हो जायगा। जिन्हें रुचि अधिक हो, वे मिलाकर देख सकते हैं।

पाश्चात्त्य लेखकोंने भी भविष्यपुराणको प्रमाण माना है। विलियम जोन्सने, जिनके प्रयत्नसे बंगालकी एशियाटिक सोसाइटी स्थापित हुई थी, भविष्यपुराणके ही आधारपर ताश और शतरंजका उद्गम भारतसे सिद्ध किया था। यह बात इन्साइक्लोपीडिया ब्रीटानिकाके 'चेस' (Chess) शब्दमें विस्तारसे प्रतिपादित है।

वर्ण्य विषय

इसमें प्रथम चार अध्यायतक मनुस्मृतिके ही श्लोक हैं। यहाँ मनुका तीसरा अध्याय समाप्त होता है। इसके पाँचवें तथा छठे अध्यायोंमें स्त्री-पुरुषोंके विशेषकर स्त्रियोंके शारीरक (सामुद्रिक) लक्षणोंका वर्णन हुआ है। सातवें अध्यायमें पुनः मनुस्मृतिके ही श्लोक हैं। बादमें व्रतविधि है। २७-२८ अध्यायोंमें पुनः स्त्री-पुरुषोंका लक्षण वर्णित है। तत्पश्चात् विशेष तिथियोंमें विशेष देवताओंकी विस्तृत पूजाविधि है। पृष्ठ ३८० से ३९० में (वेंकटेश्वर-प्रेसका नवीन १९५९ का छपा तृतीय संस्करण) ग्रहों, दिक्पालों, देवताओं एवं देवियोंके ध्यानका विशाल संग्रह है। ७८९ पृष्ठपर ध्यानके आद्य, शुक्ल, धर्म्य तथा रौद्र ये चार भेद निरूपित हैं। पृष्ठ २०२ तथा ८६२ पर उनके आवाहनके बड़े सुन्दर मन्त्र हैं। पृष्ठ ३३५ से ३५० तक यज्ञके सभी लक्षण, अङ्ग एवं विधियोंका विस्तारसे निरूपण है। ७१४ पृष्ठमें देवपूजाके सभी तान्त्रिक मन्त्र हैं। पृष्ठ ५७४ से ५८० तक श्रीरामकथा निरूपित है। पृष्ठ ५८९ पर उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डे एवं चतुर्वेदी—इन दशविध ब्राह्मणोंके भेदका निरूपण है। (प्रतिसर्गपर्व, अध्याय ९३, श्लोक ७-८)। ७८८ से ८१५ पृष्ठोंतक ज्योतिषका अच्छा वर्णन है और सभी ग्रहोंके फलादेश निरूपित हैं। ८२२ पृष्ठपर रोगावली चक्रका विवरण है।

भविष्यपुराणमें ऐतिहासिक सामग्री

भविष्यपुराणमें भारतके प्राचीन तथा आधुनिक इतिहासकी प्रचुर सामग्री है। हमारा सम्पूर्ण सच्चा इतिहास इसमें सुरक्षित है। हमें यदि सच्चा इतिहास लिखना है तो इसकी सहायता लेनी अनिवार्य है। आर्योंका बाहरसे आना, जातिव्यवस्थाका निर्मित होना, रामायणकाल, अमुककाल आदि उलूल-जुलूल इतिहास तथा समय सर्वथा मिथ्या एवं निराधार हैं। इसे अविनाशचन्द्रराय, बाबू सम्पूर्णानन्द आदिने अच्छी प्रकार सिद्ध कर दिया है।* इसके ५४६ तथा ५४७ पृष्ठोंपर कन्नौज, कालिञ्जर आदि नगरोंकी दिव्य रीतिसे स्थापनाका निरूपण है। अजमेर नगरकी व्युत्पत्तिमें लिखा है—

अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र समागता।
तया च नगरं रम्यमजमेरमतो स्मृतम्॥

(प्रतिसर्गपर्व ४। २। २)

अर्थात् यहाँ ब्रह्माकी तपःशक्ति लक्ष्मी समाविष्ट हुई थीं, अतः अजमेर नाम पड़ा। 'कन्नौज' की उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है कि अग्निवंशके प्रजय नामक राजाने एक दिव्य नगरकी कामनासे गङ्गातटपर बारह वर्षोंतक सरस्वतीकी आराधना की। एक दिन एक कन्या वंशी बजाती हुई घोड़ेपर सवार होकर वहाँ आयी और हँसकर कहने लगी, 'तुम यह घोड़ा लो और आँख मूँदकर इसपर सवार होकर पश्चिम दिशाको जाओ। पुनः पूर्वको लौटो।' राजा जब लौटकर 'मर्कण' पक्षीके पास पहुँचा, तब डर गया। उसने आँख खोली और देखा तो जितनी दूरमें गया-आया था, वहाँतक उस कन्याने एक दिव्य नगर निर्माण कर दिया था। नगरके पश्चिमी छोरपर ईशसरिता—गङ्गाजी थीं और पूर्वी छोरपर मर्कणपक्षी था। इस प्रकार टेढ़े ढंगसे ग्रामके बसने एवं कन्याद्वारा निर्मित होनेके कारण इसका नाम 'कान्यकुब्ज'

* पुराणके शत्रुओंने भविष्यपुराणको गप कहा है और 'पुराणानां समुद्धर्ता खेमराजो भविष्यति' की बात जोड़कर भविष्यपुराणका उपहास किया है। किंतु यह वचन किसी भी भविष्यमें नहीं मिला। आर्यसमाजके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् अनुसंधाता श्रीभगवद्दत्तजी रिसर्च स्कालरने भी अपने 'भारतवर्षके बृहद् इतिहास'में भविष्यपुराणकी महत्ता स्वीकार की है। (द्र० पृ० ९९; १०१)। हाँ! प्रूफकी अशुद्धियाँ इस संस्करणमें अवश्य बहुत रह गयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। इस तरह अजमेर ब्रह्माजीद्वारा [illegible] कान्यकुब्ज सरस्वतीद्वारा निर्मित हुआ है—

पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कणः ।
कुब्जभूतमभूद्ग्रामं कान्यकुब्ज इति स्मृतः ॥
(प्रतिसर्गपर्व ४ । ३ । ५१)

यहीं आगे चलकर कलिंजर (मध्यप्रदेश) नगरको कलिद्वारा निर्मित बतलाया गया है। यह भी लिखा है कि यह नगर चित्रकूट पर्वतपर है और यहाँ कलियुगका प्रवेश नहीं है—

नगरं चित्रकूटाद्रौ चकार कलिनिर्जरम् ।
कलिर्यत्र भवेद्बद्धो नगरेऽस्मिन्सुरप्रिये ।
अतः कलिंजरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ॥
(४ । २ । ४)

सम्भव है, नाना पुराणके प्रेमी पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने इसी आधारपर—

अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु ।
कोपित कलि लोपित मंगलमग बिलसत बढ़त मोह मायामलु ॥

—आदि पद लिखा हो।

इसमें महाराज विक्रमादित्यकी कथा बड़े विस्तारसे वर्णित है। प्रतिसर्गपर्वके प्रथम खण्डके सातवें अध्यायसे आरम्भ होकर द्वितीयखण्डके २३ वें अध्यायतक विक्रमादित्यकी ही कथा है। प्रतिसर्गपर्वके चतुर्थ खण्डके २३ वें अध्यायमें भी इनकी कथा है। किंतु खेद है, इन सब सत्य आधारोंके रहते हुए भी पाश्चात्य कूटनीतिज्ञ इतिहासलेखकोंने इनका अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया। यह सब उनकी धूर्ततामात्र थी। उनके यह सब अध्यापनका इतना ही लक्ष्य था कि भारत सदाके लिये उनका ही हो जाय। क्योंकि यहाँ द्रविड भी बाहरसे आये, अनार्य भी आये, आर्य भी आये, पठान भी आये, मुगल भी आये, अंग्रेज भी आये, तो अंग्रेज जायें क्यों ? और यहाँके आदिनिवासियोंका तो अब पता नहीं रहा, किंतु भारतवासी उनकी चाल समझ गये; क्योंकि वेद, पुराण, सूत्र, दर्शन आदि किसी भी ग्रन्थमें आर्योंके उस बाहरकी मातृभूमिका तो उल्लेख होता। किंतु सभी पुराणों, रामायण-भारतादि इतिहासोंमें अयोध्या आदिमें ही सृष्टि होने तथा मनु आदि राजाओंके रहनेकी बात है। फिर तो 'अंग्रेज भारत छोड़ दो' का नारा काम कर गया और उनकी यह कूटनीति काफूर हो गयी।

इसी प्रकार इस ग्रन्थमें महाराज पृथ्वीराज, आल्हा ([illegible]), उदल ([illegible]), मलिखान आदिका भी विस्तृत इतिहास है। ५५० से ६०० पृष्ठोंतक श्रीशंकराचार्य, रामानन्दाचार्य, निम्बादित्य, श्रीधर स्वामी, विष्णुस्वामी, वाराहमिहिर, भट्टोजिदीक्षित, धन्वन्तरि, श्रीकृष्णचैतन्यदेव, श्रीरामानुज, श्रीमध्व एवं गोरखनाथका विस्तृत चरित्र है, और उन्हें द्वादशादित्यका अवतार बतलाया है। ये धर्मरक्षार्थ कलियुगमें अवतीर्ण हुए[1]। पृष्ठ ५८२ पर सूरदासजी, तुलसीदासजीकी कथा है। पृष्ठ ५७६–८० पर कबीर, नरसी, पीपा, नानक, रैदास, नामदेव, रंकण, धन्ना भगत आदिकी कथा है। ५६३ पर आनन्द, गिरि, पुरी, वन, आश्रम, पर्वत, भारती एवं नाथ आदि दसनामी साधुओंकी भी व्युत्पत्तिका कारण लिखा है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थमें पाणिनि, बोपदेव, पतञ्जलिको लेकर शिवाजीतकका इतिहास भी है।

अर्थशास्त्रीय सामग्री

इसके ५९४ पृष्ठपर लोहा, सोना, चाँदी आदिका परस्पर कितना विनियम होगा—यह निरूपित है। तदनुसार पित्तलका सौगुना चाँदीका मूल्य होगा, पित्तलका पाँच गुना ताँबेका मूल्य होगा। किंतु इसके अनुसार चाँदीकी अपेक्षा सुवर्णका मूल्य कुल पाँच गुना ही होना चाहिये—

तारधातोः पञ्चमूल्यं सुवर्णं भुवि तत्कृतम् ।
आरधातोः शतं मूल्यं राजतं तेन वै कृतम् ॥
ताम्रधातोः पञ्चमूल्यमारधातोश्च तत्कृतम् ।
(प्रतिसर्ग० ४ । २३ । ५६ ५७)

इसी प्रकार ब्राह्मपर्वके १२ वें अध्यायमें अन्नोंके परस्पर परिवर्तनका भाव बतलाया है। फिर उसमें भी सूखे, गीले, पीसे अन्नोंका बदलेका ढंग अलग बतलाया है। तेल, घी, दूधका भी परिवर्तन-नियम यहाँ बतलाया गया है। श्रमिकोंका वेतन क्या होना चाहिये, इसका भी यहाँ विस्तृत विचार किया है।

---

१. यों इस ग्रन्थमें सूर्यको ही प्रधान देवता बतलाया है और उनके उपासक शाकद्वीपीय (मग, भोजक) ब्राह्मणोंकी ही अधिक प्रशंसा है। गौओं एवं भगवान् विष्णुकी भी बड़ी महिमा है। पृष्ठ ७५६–६३, ७८८, ८३४ आदिपर उनकी बड़ी महिमा है। उत्तरपर्वके १५३ वें अध्यायमें लिखा है कि बिना पुरुषार्थके और बिना गृहस्थाश्रम त्यागे ही भगवान्में मन लगाकर वैष्णवी मायाको पार किया जा सकता है—

अवाप्यैव च गार्हस्थ्यमनवाप्यैव पौरुषम् ।
छिनत्ति वैष्णवीं मायां केशवार्पितमानसः ॥
(५९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha Foundation Chennai and eGangotri

रेशमी, सूत, ऊन आदिके काममें [illegible] पाँचवाँ भाग देना—न्याय्य बतलाया है—

क्षौमकार्पासयोर्विद्यात्सूत्रं पञ्चमभागकम्।
(१ । १२ । २२)

बृहस्पति-स्मृति (बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र) भी यही बात बतलाती है—

त्रिभागं पञ्चभागं वा गृह्णीयात्सीरवाहकः।
भक्ताच्छादभृतः सीराद् भागं भुञ्जीत पञ्चमम्॥

(बृहस्पति-स्मृति, गायकवाड़ ओरि.-सी. द्वारा प्रकाशित संस्करण)

यह मजदूरी आजके देखते अच्छी ही थी। इसमें उत्पादक, श्रमिक और राष्ट्र सभीको लाभ था। आज कोई तो बहुत काम करके पाँचवाँ भाग भी नहीं पाता और कोई बैठे-ही-बैठे लंबा वेतन खींचता है। इसमें राष्ट्रको भी विशेष क्षति है और महर्घताके कई कारणोंमें यह भी एक कारण बनता है।

व्रत-माहात्म्य एवं कथाएँ

भविष्यपुराण व्रतोंका तो विश्वकोष ही है, उनका मूल उद्गमग्रन्थ भी यही है। व्रतराज, व्रतरत्न, व्रतार्क, रणवीरसिंह-व्रतरत्नाकर, जयसिंहकल्पद्रुम, हेमाद्रि-व्रतखण्ड, कृत्यकल्पतरु-व्रतखण्ड, आदिका भी एकमात्र आधार यही है। इन सभी ग्रन्थोंके प्रायः तीन चतुर्थांश व्रत इसीमेंसे, इसीके नामसे लिये हैं। उनके अतिरिक्त भी इसमें अधिक व्रत हैं। केवल उत्तरपर्वमें ही २०६ अध्यायोंमें व्रतोंका वर्णन है। अन्य ब्राह्मादि पर्वोंमें भी व्रतनिरूपण है। भारतके घर-घरमें प्रचलित 'सत्यनारायणव्रतकथा' इसी ग्रन्थमें उपलब्ध होती है। यह कथा प्रतिसर्गपर्वके दूसरे खण्डमें २४ वें से २९ वें अध्यायतक ६ अध्यायोंमें है। शकटव्रत, भद्रव्रत, कुक्कुटमर्कटी (६७२), अचलासप्तमी (६७९), श्रवणद्वादशी (पृ० ७१२) आदि व्रतोंकी कथाएँ इतनी मधुर, सुन्दर सुखद एवं रोचक हैं कि बार-बार पढ़नेपर भी तृप्ति नहीं होती। होलीका प्रचलित रिवाज मनानेकी विधि तथा ढूँढा राक्षसीकी विस्तृत कथा केवल इसी ग्रन्थमें मिलती है (उत्तरपर्व १३२ वाँ अध्याय)। इसमें बतलाया गया है कि माली दैत्यकी ढूँढा नामकी एक कन्या थी। उसने उग्रतपके द्वारा भगवान् शंकरकी आराधना की और उनसे यह वर माँगा कि हमारा देवता, राक्षस, मनुष्य या किसी भी अस्त्र-शस्त्रादिसे वध न हो। भगवान्ने 'एवमस्तु' के साथ ही उसे उन्मत्त बच्चोंसे भय होनेकी बात कही—

उन्मत्तेभ्यः शिशुभ्यश्च भयं ते सम्भविष्यति।
(उत्तरपर्व० १३२ । १७)

'अडाडा' ही उसके निग्रहका सिद्ध मन्त्र है, इसलिये [illegible] घरसे बाहर निकलकर 'अडाडा' कहते हैं। वसंतके प्रारम्भमें प्रतिवर्ष रोगादिके रूपमें विशेषकर बाल-रोगोंद्वारा इसका आक्रमण होता है; क्योंकि बालकोंसे ही इसे भय था; किंतु इस शब्दसे तथा उपल-काष्ठादिके दाहसे वह नष्ट हो जाती है—

अडाड्येति निगृह्णाति सिद्धमन्त्रं कुटुम्बिनी।
तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता॥

प्रतिसर्गपर्वके चतुर्थ खण्डके १३ वें अध्यायमें हनुमान्‌जीकी उत्पत्ति-कथा है। इसमें वायुदेवता केसरीमें प्रविष्ट थे, इसलिये इन्हें वायुपुत्र भी कहा गया है (श्लोक ३४)। एक बड़ी मजेदार कथा यह है कि इनकी उत्पत्तिके समय ही जब ये सूर्यको नहीं छोड़ रहे थे, तब इन्द्रने निराश होकर सूर्यको बचानेके लिये 'सूर्य त्राहि' की आवाज लगायी। इसे सुनकर रावण दौड़ पड़ा और हनुमान्‌जीकी पूँछ पकड़कर उनसे बुरी तरह उलझ गया। सद्योजात हनुमान्‌जी भी सूर्यको छोड़कर इसीसे भिड़ गये। पूरे वर्षपर्यन्त यह महाघोर मल्लयुद्ध चलता रहा। अन्तमें रावण हनुमान्‌जीके द्वारा बुरी तरह मार खा श्रमित तथा भयभीत होकर भागा। विश्रवा मुनिने शंकरजीकी बड़ी स्तुति की; तब हनुमान्‌जीने उसे छोड़ दिया। लोकरावण—रावणको मुष्टिसे हनन करनेसे ही तबसे इनका नाम हनुमान् हुआ—

निघ्नन्तं च सुरान्मुख्यान् रावणं लोकरावणम्।
निहन्ति मुष्टिभिर्येन हनुमानिति विश्रुतः॥
(प्रतिसर्ग० ४ । १३ । ४५)

आश्चर्यपूर्ण समस्याएँ

'भविष्यपुराण' प्रतिसर्गपर्वके लिये नारदपुराणमें लिखा है कि यह पुराण अघोरकल्पका है और इसमें नानाश्चर्यमयी कथाएँ हैं—

अघोरकल्पवृत्तान्तं नानाश्चर्यसमन्वितम्।
(पूर्वभाग अ० १००)

मत्स्यपुराण (५३ । ३०) में यही बात बतलायी गयी है; किंतु स्वयं भविष्यपुराणका प्रतिसर्गपर्व इसे श्वेतवाराह-कल्पका (चालू कल्पका) ही वृत्तान्त कहता है—

कल्पारम्भे श्वेतवाराहे ब्रह्माब्दस्य दिनत्रये।
(प्रति० १ । १ । ३)

इसके सम्पादकने लिखा है कि शेष पर्वोंकी तो आठ प्रतियाँ मिली थीं; किंतु प्रतिसर्गपर्वकी एक ही आदर्श पुस्तिका मिली, इसलिये इसमें अशुद्धियाँ बहुत रह गयीं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्य महापुराणस्याष्ट प्रतिसर्गाणि संख्या ।

(पृ० १ प्रस्तावना)

अपरभागानां बहून्यादर्शपुस्तकान्युपलब्धानि परं प्रतिसर्गपर्वणः एकमेव ।

(पृ० ६०८)

तथापि इतिहास आदिकी दृष्टिसे यह बहुत उपयोगी है। कथासरित्सागर, मंजुश्रीकल्प आदिसे इसकी कथाएँ रोचक एवं प्रामाण्यतर हैं। आजके अटकलपच्चू इतिहासोंका तो कहना ही क्या ? इसका भविष्य वर्णन भी बड़ा आश्चर्यकर है। यदि इसे थोड़ा भी प्राचीन माना जाय तो बाबर, अकबर, सलीम, औरंगजेब, अधिक क्या रानी विक्टोरिया और लार्ड वैवेल (१९४४ से १९४७) के अन्तिम शासक होनेतककी बात लिखी है—

लार्डलो नाम विख्यातो गुरुण्डो दशमो हि सः ।

(प्रतिसर्ग ४ । २२ । ८७)

स्वराज्य भी इसीके अनुसार मिला (वेदधरातल पृ० ६ में शृंगेरीकी हस्त लि० प्रतिका हवाला)।

इसीके २० वें अध्यायमें यह भी लिखा है कि बादमें न तो कोई कहीं राजा रह जायगा, न विवाह-शादियाँ होंगी—

न विवाहो न भूपश्च नोद्यमो न हि कर्मकृत् ।
भविता च तदा तेषां द्वितीयचरणान्तिके ॥

(प्रति० ४ । २४ । ४३)

ये सभी श्लोक इसके संवत् १९६७—सन् १८१० ई० आजसे ५० वर्ष पूर्वके प्रकाशित द्वितीय संस्करणमें भी यों ही लिखे हैं। इसका प्रथम संस्करण तो और भी बहुत पहले प्रकाशित हुआ होगा। उसमें भी ये श्लोक होंगे ही। ये सब बातें कम आश्चर्यकी नहीं हैं। आज भारत या विश्वमें राजा नामकी कोई वस्तु नहीं रह गयी। विवाहसंस्कार भी प्रायः समाप्त होने जा रहा है। स्वच्छन्दाचार, स्वतन्त्रता ही सर्वथा सर्वत्र अभीष्ट है।

उपदेशप्रद सूक्तियाँ

ग्रन्थका निष्कर्षभूत उपदेश है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणपति, कार्तिकेय आदि देवता तथा गौरी, लक्ष्मी, सावित्री, शारदा आदि देवियाँ तत्त्वतः एक ही हैं। इनमें भेदबुद्धि या द्वेष-बुद्धि नहीं करनी चाहिये—

न भेदस्तत्र मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत् ।

(उत्तर० २०५ । १३)

यज्ञ, तपस्वी, सती स्त्री तथा गुरुकी निन्दा न करे, न सुने (१२९)। क्षुद्राचारी, मिथ्यावादी, निन्दक तथा अत्यन्त व्ययशील लोगोंसे मैत्री न जोड़े। जहाँके नागरिक संयमित रहते हों, न्यायप्रिय हों, स्त्रियाँ अमत्सरी हों, ओषधि, कृषि आदिका भला प्रबन्ध हो, वहीं निवास करना चाहिये। टूटी खाट, टूटे बर्तन, कुत्ता, मुर्गी आदि न रखे। भोजनके समय पहले मधुर, फिर नमकीन, फिर कड़ुआ, तब तीक्ष्णादि पदार्थ खाये। पहले मृदु, मध्यमें कठोर तथा अन्तमें लघु द्रव्योंको खानेवालेके रोग दूर हो जाते हैं। दरिद्रा देवी दिनमें यवके भूँजेमें, रातमें दही तथा सत्तूमें वास करती हैं और कोविदार (कचनार) में तो सदा ही वास करती हैं, अतः लक्ष्मीकी कामनावाला व्यक्ति इनका अवैध सेवन न करे—

दिवा धानासु वसति रात्रौ च दधिसक्तुषु ।
अलक्ष्मीः कोविदारेषु सर्वदैव कृतालया ॥

(वही ११२)

(यह श्लोक थोड़े अन्तरसे लघुशंखस्मृति ६८ तथा अन्य कई स्थलोंपर भी है) सोनेके समय सिर पूर्व या दक्षिण होना चाहिये। इसके विपरीत सोनेसे रोग होता है। गुरु, देवता, अग्निकी ओर पैर न फैलाये, एक साथ आग-पानी न ले चले। (१३०, १४५) इसका दान-धर्म बहुत बड़ा है, अनेक प्रकारके दानोंद्वारा पूर्ण समता लानेका उपदेश है। व्रतोंका भी समत्वसम्पादनमें सहयोग है। अनेक प्रकारके उपद्रवोंकी शान्तिके लिये कोटिहोम आदि महाशान्तियोंका वर्णन है। अनेक प्रकारके रुद्रस्नान, ग्रहस्नानका वर्णन है। मरनेके पहले आतुर संन्यास लेनेका उपदेश है। ऐसा करनेसे सर्वपातकयुक्त प्राणी भी अच्युतमें लीन हो जाता है। (उत्तरपर्व १२६)।

लेखनशैली एवं ग्रन्थ-समीक्षा

भविष्यपुराणकी लेखन तथा प्रतिपादनशैली बड़ी ओजस्विनी तथा सभ्यतापूर्ण है। ब्राह्मपर्वके ८७ तथा अन्य भी कई अध्यायोंमें बड़ी तीव्र तथा ओजपूर्ण शैलीसे संस्कारका मण्डन किया है और जाति आदिके अहंकार खण्डन किया है। उत्तरपर्वके ७१ वें अध्यायमें बड़ी मृदु एवं मनोहर शैलीमें स्त्री-प्रशंसा है। तथापि अभी पर्याप्त पाठभेद आदिद्वारा इसके परिष्कारकी आवश्यकता है। ग्रन्थ-संख्यामें भी गड़बड़ी चलती है। भविष्यपुराण अपनेको ५० हजार श्लोकात्मक बतलाता है, पर इस समय इसकी श्लोकसंख्या २६ सहस्रके ही लगभग है। अन्य पुराणोंमें इसकी संख्या प्रायः १४॥ सहस्र बतलायी गयी है—(मत्स्यपुराण ५३ । ३१; भागवत० १२ । १३ । ६; देवीभाग० १ । २ । ४; अग्नि० २७२; वायु० १०४ । ३ आदि)।

१. (क) भविष्यमेतदृषिणा लक्षार्द्धं संख्यया कृतम् । (१ । १ । १०५)
(ख) 'शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां' (पुष्पिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे यही अनुमान होता है कि इसमें भविष्यपुराणके साथ उपपुराण भी जुड़ा हुआ है—जैसे विष्णुपुराणके साथ विष्णुधर्मोत्तर है। अन्य शिवधर्मोत्तर आदि भी उपपुराण हैं, वैसे भविष्योत्तर भी है, जिसे इसमें साथ ही मिला दिया गया है। इसीलिये नारदपुराणमें केवल ब्राह्म, वैष्णव, माहेश्वर, सौर तथा प्रतिसर्ग—इन पाँच पर्वोंका ही उल्लेख है। भविष्योत्तरपर्वका यहाँ वर्णन नहीं है। ग्रन्थावलोकनसे भी भविष्योत्तर अलग ही प्रतीत होता है। इसमें केवल दान-धर्म तथा व्रतोपवासोंका ही वर्णन है। ब्राह्मपर्वमें भी बहुत-से व्रतोंका उल्लेख है। इस पुनरुक्तिसे भी भविष्योत्तरपर्वकी भिन्नता प्रतीत होती है। ग्रन्थ प्रतिसर्गपर्वके अन्तमें समाप्त भी कर दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थोंमें पर्वनाममें भी भेद है। ब्राह्म और प्रतिसर्गपर्व तो ठीक है, किंतु सौर पर्वका नाम मध्यमपर्व हो गया है। वैष्णव पर्व उत्तर पर्वको कहा जा सकता है, शैवपर्वका पता नहीं रहा। सम्भव है मध्यमपर्वके चार खण्डोंमें इन सभीका अन्तर्भाव हो गया हो। पर ऐसी गड़बड़ियाँ कूर्म तथा वाराहपुराणमें भी हैं। उनका आधेसे अधिक भाग गायब है। वायुपुराणका अस्तित्व ही समाप्त है। वह तो प्रायः अक्षरशः ब्रह्माण्डपुराणसे मिल जाता है। केवल ब्रह्माण्ड-पुराणमें ललितोपाख्यान अधिक है। नारदपुराणके अनुसार वायुपुराणका लक्षण सर्वथा भिन्न है। यत्र-तत्र प्राचीन छापेका उसका माघमाहात्म्य अलगसे उपलब्ध होता है। ऐसी दशामें पुराणोंकी ओर विशेष ध्यान देकर इनकी शुद्ध प्रति तैयार करनेके लिये पर्याप्त समालोचना, श्रम एवं अनुसंधान परमावश्यक हैं।

पातिव्रत धर्मकी सार्वभौमिकता

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन एम्० ए०, एल्०-टी०)

सन् १९५८ में इंगलैंडके प्रसिद्ध प्राणिशास्त्रविशेषज्ञ प्रोफेसर हलडनने आलइंडिया रेडियो, नयी दिल्लीसे बोलते हुए कहा था—

यूरोपके अल्पजीवी पक्षी अपने साथीके मर जानेपर दूसरा विवाह कर लेते हैं, परंतु बड़े पक्षी आजीवन एकके ही साथ विवाह करते हैं और विधवा एवं विधुर पक्षियोंके लिये पुनर्विवाह-से इन्कार कर देना कोई असाधारण बात नहीं है।* प्रोफेसर साहबने सिंह और मछलियोंकी विवाह-प्रणालीका भी जिक्र किया है। प्रोफेसर साहब सिंहोंकी विवाह-प्रणाली मानवी आदर्शके अनुरूप बतलाते हैं और यह भी कहते हैं कि कुछ विशेष प्रकारकी मछलियोंमें तलाकका पूर्णतया निषेध है।

कामशास्त्रके महान् पण्डित श्रीहैवलक एलिस पक्षियोंके सती होनेका भी उल्लेख करते हैं। अपनी विश्वविख्यात पुस्तक Psychology of sex में वे लिखते हैं—

कामवासना कुछ जानवरोंमें, विशेषतया पक्षियोंमें आदर्शरूपमें पायी जाती है; क्योंकि जब एक पक्षी अपने साथीके वियोगमें झूर-झूरके प्राण दे देती है, तब इसका कारण केवल कामवासना ही नहीं हो सकती; बल्कि इसके साथ जीवनके वे तत्त्व अवश्य मिले रहते होंगे, जो आज सभ्यतम मानव-समाजमें भी कठिनाईसे ही मिलेंगे।†

पक्षियोंके वैवाहिक सदाचारका जिक्र करते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, नोबल पुरस्कारसे सम्मानित ८० वर्षीय बर्टरंड रसल महोदय लिखते हैं— 'Most birds one models of virtue' (Marriage and Morals) —'अधिकांश पक्षी सदाचारके नमूने होते हैं।' ('मैरिज एण्ड मार्ल्स' नामक पुस्तकसे) अपनी इसी पुस्तकमें आगे चलकर रसल महोदय लिखते हैं—

* "While the short-lived birds in Europe remarry after the death of their partners, the larger birds marry for their joint lives and it is not rare for widows and widowers to refuse to marry again."

† "Sexual desire becomes idealized even by some animals, especially birds; for when a bird pines to death for the loss of its mate this can not be due to the uncomplicated instinct of sex, but must involve the interweaving of that instinct with the other elements of life to a degree which is rare even among the most civilized men."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यतया जिन पशुओंमें विवाह होते हैं, उनमें बहुविवाहका निषेध रहता है और कुछ अधिकारी विद्वानोंके अनुसार उच्च कक्षाके लंगूरोंमें यह बात विशेषरूपसे देखनेको मिलती है। यदि इन विद्वानोंकी बातपर विश्वास किया जाय तो मानना पड़ेगा कि इन सौभाग्यशाली पशुओंमें वे समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं, जो मानव-समाजको परेशान किये हुए हैं, क्योंकि न तो कोई लंगूरी किसी विवाहित लंगूरको मोहित करनेका प्रयत्न करती है और न कोई लंगूर किसी विवाहित लंगूरीकी ओर खिंचता है। किसी धार्मिक विधानकी सहायताके बगैर ही इन लंगूरोंमें व्यभिचार जैसी-कोई वस्तु नहीं है। नैसर्गिक भावनाएँ ही सदाचारकी रक्षाके लिये पर्याप्त सिद्ध हुई हैं।*

प्राग्-ऐतिहासिक कालकी वीर जातियोंमें विधवा-विवाहका निषेध एवं सती-प्रथाका प्रचलन पाया जाता है। श्रीडोनल्ड ए० मैकेंजी महोदय अपनी पुस्तक Myths of Babylonia and Assyria में लिखते हैं—

गाल सभ्यता कई बातोंमें भारतीय सभ्यतासे मिलती-जुलती है। उदाहरणतः उत्तरवैदिककालीन आर्योंकी तरह गाल भी पुनर्जन्ममें आस्था रखते थे और उनमें सतीप्रथाका प्रचलन था। रोमनोंद्वारा पराजित होनेपर गाल विद्वान् भागकर आयरलैंड पहुँचे और अपने विश्वास तथा अपनी परम्पराओंको भी वे साथ लेते गये। आयरलैंडमें पहुँचकर गाल जातिने ऐसी महान् सभ्यताको जन्म दिया, जो ईसाई धर्मके उदयसे पहलेतक इस द्वीपको बराबर प्रकाशित करती रही।†

यहूदी धर्ममें पुरोहितवर्गके लिये विधवा-विवाहका स्पष्ट निषेध है। देखिये—Leviticus—लेविटिकस—२१

—और वह केवल कुमारीसे ही विवाह करेगा।

—वह विधवासे, परित्यक्तासे अपवित्रासे या वेश्यासे विवाह नहीं करेगा। वह केवल सजातीय कुमारिकासे ही विवाह करेगा।*

हमने ये उद्धरण बाइबिलके, पुराने टेस्टामेंट Old Testament से दिये हैं। बाइबिल चार धर्मपुस्तकोंके संग्रहका नाम है, जिनमें प्रथम तीन—मुसहफ़, तौरित और ज़बूर ओल्ड टेस्टामेंट कहलाते हैं और यहूदियोंमें स्वतःप्रमाण हैं। चौथी इञ्जील न्युटेस्टामेंट कहलाती है, जिसे यहूदी नहीं मानते; परंतु ईसाइयोंमें स्वतःप्रमाण मानी जाती है। ईसाईलोग यहूदियोंकी धर्मपुस्तकोंको स्वतः प्रमाण न मानकर परतःप्रमाण मानते हैं और कहते हैं कि प्रभु ईसाके आनेपर उनका युग समाप्त हो गया। अब वे वहींतक प्रामाणिक हैं, जहाँतक उनमें प्रभु ईसाके आदेशोंसे विरोध नहीं है।

हजरत ईसाने विधवा-विवाहकी स्पष्ट आज्ञा दी है; परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विधवा-विवाहको अच्छा समझते थे। बात यह थी कि हजरत ईसा बहुत कुछ साम्यवादी थे। यहूदी धर्ममें विवाहके बारेमें भी बड़ी भारी विषमता थी। एक ओर तो पुरोहितवर्गके लिये विधवा-विवाहका भी निषेध था, दूसरी ओर गैर-पुरोहितवर्गके लिये तलाककी भी इजाज़त थी। हज़रत ईसाने यह विषमता हटाकर सभी वर्गोंके लिये तलाक वर्जित करके विधवा-विवाहकी अनुमति प्रदान कर दी। हज़रत ईसाने एक बार स्वयं कहा था—

तुम्हारे हृदयकी कठोरताको देखकर ही मूसाने तुम्हें अपनी स्त्रियोंके परित्यागकी अनुमति दे दी थी, परंतु सृष्टिके

* "As a rule, animal marriages are monogamic, and according to some authorities this is the case in particuler amongst the anthropoid apes. It seems, if these authorities are to be believed, that these fortunate animals are not faced with the problems that beset human communities, since the male, once married, ceases to be attracted to any other female, and the female, once married, ceases to be attractive to any other male. Among the anthropoid apes, therefore, although they do not have the assistance of religion, sin is unknown since instinct suffices to produce virtue."

† The culture of Gauls resembles that of India in certain particulars, both the Gauls and the post-vedic Aryans for instance believed in the doctrine of transmigration of souls and practised 'Suttee' After the Roman occupation of Gaul Ireland appears to have been the refuge of Gaulish scholars who imported their beliefs and traditions and laid the foundation of that brilliant culture which shed lustre on the Green isle in late Pagan and early Christion times."

* 13. And he shall take a wife in her virginity.

14. A widow, or a divorced woman, or profane, or an harlot, these shall he not take but he shall take a virgin of his own people to wife.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिमें ऐसी प्रथा नहीं थी।* (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका)

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका विश्वमें सबसे बड़ा कोष है। पूरी पुस्तकका मूल्य ९७५.०० है और इंगलैंडके सर्वोच्च कोटिके विद्वानोंके सम्पादनमें इसका समय-समयपर संशोधन होता रहता है। विधवा-विवाहके बारेमें यह विद्वत्-मण्डल लिखता है—

इससे भी अधिक प्रमाण हमारे पास इस बातके मौजूद हैं कि मृत्युसे विवाह नहीं टूटता। वैवाहिक बन्धन मृत्युसे स्वतः नहीं टूट जाते, यह बात विधुरोंकी अपेक्षा विधवाओंके ऊपर ज्यादा लागू होती है।† आगे चलकर ये ही विद्वान् फिर लिखते हैं—

वैवाहिक जीवनकी स्थिरताका सबसे निश्चित प्रमाण वे जातियाँ उपस्थित करती हैं, जिनमें विधवा-विवाहका पूर्ण निषेध पाया जाता है।‡

विद्वान् सम्पादकोंने ऐसी कई जातियोंके नाम गिनाये हैं, जिनमें आज भी विधवा-विवाह पूर्णतया वर्जित है—

१. Tikopians—टिकोपियन्स, २. Rotumans रोटूमन्स, ३. Marquesans—मार्क्वीसन्स, ४. Line Islanders in Polynesia—पॉलीनीसियाके लाइन आइलैंडर्स, ५. चीनकी कुछ विशिष्ट जातियाँ, ६. जापानकी ऐनू जाति, ७. फारमूसा-निवासी और ८. भारतवर्षमें ब्राह्मण-धर्मके अनुयायी।

मैं समझता हूँ कि विद्वान् सम्पादकोंने पूरी तालिका नहीं दी है; क्योंकि भारतवर्षमें न केवल ब्राह्मण-धर्मके अनुयायियोंमें, बल्कि जैन-धर्मके अनुयायियोंमें भी विधवा-विवाह सर्वथा वर्जित है। विद्वान् सम्पादकोंने मार्क्वीसन्स जातिकी बहुत प्रशंसा की है। ये प्रशान्त महासागरमें इसी नामके एक द्वीपके निवासी हैं। ये बहुत ही सुन्दर, सबल और सुडौल होते हैं। इस समय इस जातिकी कुल जनसंख्या १० लाखसे घटकर केवल २४०० रह गयी है। क्या हमारी सनातनधर्म-सभाएँ और राम-राज्य-परिषद् हमारी संस्कृतिके इन टिमटिमाते दीपकोंको बुझानेसे बचानेका प्रयत्न करेंगी? भारतमें विधवा-विवाहका आन्दोलन न चला होता, पातिव्रत्यका महत्त्व कुछ शिथिल न हुआ होता तो हमारे विद्वान् और हमारी राष्ट्रीय सरकार शायद इनकी खोज कर डालते और करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करके जो सहानुभूति इन विदेशियोंकी अब हमें प्राप्त नहीं हो सकती, वह सांस्कृतिक एकताके अनुभवसे स्वतः प्राप्त हो जाती।

विद्वान् सम्पादकोंने कुछ ऐसी जातियोंके भी नाम गिनाये हैं, जिनमें सती-प्रथाका प्रचलन है—उत्तर अमरीकाकी कुछ जातियाँ जैसे कोमांची, क्री; कैलीफोर्नियाँकी कुछ जातियाँ; अफ्रीका, न्यूजीलैंड, फिजी, सुलेमान टापूकी कुछ जातियाँ और पेंटीकोस्टकी कुछ जातियाँ।

होमरने अपने काव्योंमें सतीत्व और पातिव्रत्यके आदर्शको सामने रक्खा है। अपने महाकाव्य ओडेसीमें उसने उलेसिसकी स्त्रीको श्रद्धाके फूल चढ़ाये हैं, क्योंकि उलेसिसके चौदह वर्ष-तक लापता रहनेपर भी वह साध्वी उसकी प्रतीक्षामें अपने दिन काटती रही। ऐनीड महाकाव्यका रचयिता वरजिल उस वीर जातिमें जन्मा था, जिसे गॉल कहते हैं और जिसमें विधवा-विवाह और तलाक़का पूर्ण निषेध था और सती-प्रथाका प्रचलन था।

होमर युगके यूनानियोंमें तलाक़ अज्ञात थी।* (ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका)। इस बारेमें यूनानी, रोमन तथा हिंदू सभ्यताका आदर्श एक ही था।

प्रारम्भिक युगके यूनानियों, रोमनों तथा हिंदुओंमें विवाह-सम्बन्ध बहुत स्थायी होता था†। (ऐन० ब्रि०)

बादके युगमें भोग-विलास बढ़ जानेसे यूनान और रोम दोनों ही देशोंमें तलाक़ और दुराचार हदसे ज्यादा बढ़ गये।

---

* "Moses, because of the hardness of your hearts, suffered you to put away your wives; but from the beginning it was not so."—Encyclopaedia Brittanica.

† Far more material is at our disposal referring to the persistence of matrimonial bonds at death. They are never dissolved automatically by the decease of either partner, and their tenacity is greater for the widow than for the widower."

‡ "The most definite affirmation of the persistence of marital bonds is found among those people who completely forbid remarriage to widows."

* "Among the Greeks of the Homeric age divorce seems to have been almost unknown." Encyclopaedia Brittanica.

† "Among the Greeks and Romans in the early days, as among the Hindus, marriage evidently was a union of great stability."—Encyclopaedia Brittanica.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलतः इन दोनों सभ्यताओंका पतन हो गया। यूरोपके ईसाई बन जानेपर फिर सारे यूरोपसे तलाक़-प्रथाका अन्त हो गया; क्योंकि ईसाई-धर्म तलाक़की आज्ञा नहीं देता। इस बारेमें न्युटेस्टामेंट—बाइबिलका वह भाग, जिसे ईसाई स्वतःप्रमाण मानते हैं—उसमेंसे कुछ उद्धरण उपस्थित करता हूँ—

जो अपनी स्त्रीका परित्याग करके दूसरीसे विवाह करता है, व्यभिचारका दोषी है; जो किसी परित्यक्तासे विवाह करता है, उसे भी व्यभिचारका दोष लगता है।*

१०. विवाहितोंको मेरा, नहीं-नहीं प्रभुका आदेश है कि स्त्री अपने पतिका परित्याग न करे।

११. परंतु यदि स्त्री अपने पतिको छोड़ दे तो उस स्त्रीको दूसरा विवाह नहीं करना चाहिये। वह अविवाहित रहे या पतिसे समझौता कर ले। पति अपनी पत्नीका परित्याग न करे।†

ईसाका यह कथन तो कहावतके तौरपर प्रसिद्ध ही है—

"What God hath joined together let no man put asunder".—'विवाहके द्वारा ईश्वर पति-पत्नीको एक सूत्रमें बाँधता है, मनुष्यको उसे तोड़नेका अधिकार नहीं है।'

इन्हीं कारणोंसे ईसाई-धर्मके कारण यूरोपसे तलाक बिदा हो गया। परित्यक्तासे विवाह करनेवाला ईसाई-धर्मके अनुसार व्यभिचारका दोषी माना जाता था। "And who so marrieth her which is put away doth commit adultery. (Matt XiX 3—9) ग्यारहवीं शताब्दीमें यहूदियोंके सभी वर्गोंसे तलाक-प्रथा हटा दी गयी। परंतु इस बातको ईसाइयोंके प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायने नहीं माना। इनसाइक्लोपेडिया ब्रिटैनिकाके सम्पादक लिखते हैं, "Before the Revolution, when the Roman Canon law prevailed, marriage was considered indissoluble"— फ्रेंच क्रान्तिसे पहले ईसाई देशोंमें रोमन कैथलिक सम्प्रदायका कानून चलता था, इसलिये विवाह अटूट समझा जाता था। रोमन कैथलिक सम्प्रदाय आज भी तलाकको धर्मविरुद्ध समझते हैं। इस बारेमें रसल महोदयका साक्ष्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं—

रोमन कैथलिक सम्प्रदाय इस आधारपर कि विवाह एक धार्मिक संस्कार है, किसी भी दशामें तलाककी अनुमति नहीं देता।* इटली, स्पेन और पुर्तगाल-जैसे रोमनकैथलिक देशोंमें आज भी तलाकका विधान नहीं है। इन देशोंसे जो तलाकके समाचार आते हैं, वे दो धाराओंमें विभक्त हैं—

१. ईसाई-धर्म एक प्रकारके तलाककी अनुमति देता है, जिसमें विवाह तो टूट जाता है; परंतु विवाह टूटनेके बाद भी पति-पत्नी पुनर्विवाह नहीं कर सकते। इस प्रकारके तलाकसे सतीधर्म तथा वैवाहिक पवित्रताको कोई हानि नहीं पहुँचती। कुछ दिनों अलग रहनेके बाद यदि समझ आ जाय तो पति-पत्नी फिर एक साथ रह सकते हैं, अदालतमें एक सादा प्रार्थनापत्र देकर। उसके लिये किसी विधि-विधानकी आवश्यकता नहीं। यह एक प्रकारका judicial separation है, तलाक नहीं। यूरोपकी कानूनी भाषामें इसे Divorce mensa et thoro कहते हैं। जिस तलाकमें पुनर्विवाहकी आज्ञा मिल जाती है, वह divorce vinculo matrimonii कहलाता है।

२. कानूनी पण्डितोंने तलाकके बारेमें ईसाई-धर्मकी एक कमजोरीसे लाभ उठाया है। ईसाई-धर्मके अनुसार यदि विवाह ईसाई-धर्मके नियमोंके विरुद्ध हुआ है तो वह विवाह विवाह नहीं है। इसलिये समर्थ लोग तलाक लेनेके लिये अदालतमें जाकर यह साबित कर देते हैं कि 'हमारा विवाह ही धर्मविरुद्ध था, इसलिये हम विवाहित हैं ही नहीं और इसलिये हमें विवाहकी आज्ञा मिल जानी चाहिये।' रुपये, पैसे और प्रभुत्वके बलपर झूठी साक्षी इकट्ठी कर ली जाती है।

तलाकके विरुद्ध सबसे कठोर नियम संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके दक्षिण करोलिना राज्य और आयर्लैंडमें हैं। आयर्लैंडमें तो विधानतकमें यह धारा जोड़ दी गयी है कि इस देशमें कभी भी कोई कानून ऐसा नहीं बन सकेगा, जिसमें विवाह-विच्छेदकी अनुमति दी गयी हो। आयर्लैंडके विधानकी धारा ४१ कहती है—

St. Luke सेन्ट लूक

18. * Whosoever putteth away his wife and marrieth another committeth adultery, and whosoever marrieth her that is put away from her husband committeth adultery.

Corinthians

10. † And unto the married I command, yet not I but the Lord. Let not the wife depart from her husband.

11. But if she depart, let her remain unmarried, or be reconciled to her husband, and let not the husband put away his wife.

* "The catholic church, on the ground that marriage is a sacrament, does not allow divorce for any purpose whatsoever."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी कानून ऐसा नहीं बन सकेगा जो विवाह-विच्छेदकी अनुमति दे। यदि किसी व्यक्तिने किसी दूसरे देशकी अदालतसे तलाककी आज्ञा प्राप्त कर ली हो तो वह भी आयर्लैंडमें आकर विवाह नहीं कर सकेगा जबतक कि उसका पूर्व पति या पत्नी जीवित है।*

प्रोटेस्टैंट सम्प्रदायमें भी विचारशील लोग तलाकके विरुद्ध होते जा रहे हैं। महात्मा गान्धी जिन्हें अपना धर्म-गुरु मानते हैं, वे काउंट लियोटालस्टाय तलाक़के कट्टर विरोधी थे। रसल महोदय लिखते हैं—

आजकल चर्च ऑव इंगलैंडके पादरियोंका बहुमत हर प्रकारके तलाक़के विरुद्ध है।†

चर्च ऑव इंगलैंड इंगलैंडका राष्ट्रीय धर्म है, जिसकी मान्यताएँ कैथलिक और प्रोटेस्टैंट सम्प्रदायके बीचकी हैं। वहाँकी बहुसंख्यक जनता इसी धर्मको मानती है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिकाका सम्पादक-मण्डल भी, जिसमें बहुमत प्रोटेस्टैंट धर्मके अनुयायियोंका है, तलाकके विरुद्ध मत देता हुआ लिखता है—

'विवाह रखेलबाजी और व्यभिचार न होकर एक सम्बन्ध है, जिसका अर्थ ही आजीवन अटूट गाँठ है।‡

सभ्य जातियोंको छोड़कर बहुत-सी पिछड़ी जातियोंमें भी तलाक पूर्णतया वर्जित है—मलायाकी उच्च जातियाँ, सुमात्राकी कुछ जातियाँ, लङ्काके बद्दा और अंडमान निकोबारके मूल निवासी यह बतलानेकी तो आवश्यकता है ही नहीं कि जिन जातियोंमें विधवा-विवाहका निषेध है, अथवा सतीका प्रचलन है, उनमें तलाकका कोई स्थान नहीं।

इस्लाममें विधवा-विवाह और तलाककी स्पष्ट अनुमति है, परंतु आदर्श रूपमें ये प्रथाएँ वहाँ भी ग्रहण नहीं की गयीं। डा० सयद सुलेमान नदवी, जो १९२६ ई० में खिलाफ़त कमेटीके देहली अधिवेशन और उसी वर्ष कलकत्तेमें होनेवाले जमीयत उल-उलमाये हिंदके अधिवेशनके भी सभापति रह चुके हैं, अपनी पुस्तक 'हजरत आयशा सद्दीका'में लिखते हैं—'पैगम्बर मुहम्मद साहबकी तमाम धर्मपत्नियोंमें हजरत आयशा ज्येष्ठ मानी गयी हैं, जिसका एक कारण यह भी है कि विवाहके समय वे कुँआरी थीं।' ध्यान रहे पैगम्बर साहबकी और जितनी भी स्त्रियाँ थीं, वे सब विवाहके समय विधवाएँ अथवा परित्यक्ताएँ थीं।

जब हजरत मुहम्मदका देहान्त हुआ तब हजरत आयशाकी आयु कुल अठारह वर्षकी थी; परंतु पैगम्बरकी विधवाओंका विवाह शाने पैगम्बरीके खिलाफ था, लिहाजा अल्ला तालाका हुक्म हुआ—

वला अन तनकेहु अज़्वाजे मिन बादेहि अबदा—कुरआन (३३।२२।७)

—और न तुम्हारे लिये उचित है कि तुम रसूलके बाद उसकी बीवियोंसे कभी भी विवाह करो।

रसूलकी सभी विधवाओंने अल्लाहके इस हुक्मकी पूरी-पूरी तामील की।

इसी आधारपर शिया सम्प्रदायके सैयद पुनर्विवाहका निषेध करते हैं; क्योंकि उनका कहना है कि हम रसूलकी औलाद हैं। जो ईश्वरीय आज्ञा रसूलकी विधवाओंके लिये है, वह रसूलकी औलादपर भी लागू होती है। नूरजहाँ शिया थी, परंतु सैयद नहीं थी फिर भी उसका जो जहाँगीरसे पुनर्विवाह हुआ, वह सैयदोंको बहुत बुरा लगा। जिस क्षेत्रमें मैं रहता हूँ, वह सादाते बाराहके नामसे प्रसिद्ध है और भारतवर्षमें इन सैयदोंका सबसे बड़ा गढ़ समझा जाता है। हमने इनमें कभी पुनर्विवाह नहीं देखा। नूरजहाँके पुनर्लग्नका मैंने कुछ सैयदबुजुर्गोंसे जिक्र किया तो उन्होंने उत्तर दिया—'शिया धर्मके प्रचारके लालचमें आकर नूरजहाँने पुनर्विवाह किया था, फिर भी विवाह करते समय नूरजहाँने जहाँगीरसे यह वचन ले लिया था कि वह सिवा नूरजहाँके कंधेके उसके शरीरके किसी और भागको नहीं छुयेगा। तभी तो जहाँगीरके नूरजहाँसे कोई औलाद नहीं हुई, हालाँ कि और बेगमोंसे जहाँगीरके औलाद थी और नूरजहाँके भी अपने पूर्वपतिसे औलादें हुई थीं।'

* No law shall be enacted providing for the grant of dissolution of marriage. Further, no person whose marriage has been dissolved under the civil law of any other state shall be capable of contracting a marriage in Ireland during the life time of an other spouse."

† Nowadays the great majority of clergymen in the Church of England are opposed to all divorce."

‡ "Marriage as distinguished from concubinage or promiscuous sexual intercourse is a relationship which envisages, in its inception, a life-long union of parties."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब जबसे मुस्लिम साम्प्रदायिकता, पश्चात्य संस्कृति और हिंदुओंमें विधवा-विवाहका आन्दोलन चला है, तबसे इन सैयदोंकी भी मर्यादाएँ टूटने लगी हैं। ३०, ३५ वर्ष हुए हमारे इलाकेमें इसी बातको लेकर बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया था। जौली ग्रामके हाथी नशीन सैयद मुर्तजा मेरे पितामहके बड़े घनिष्ठ मित्रोंमें थे। उनका जवान लड़का विवाहके कुछ दिनों बाद ही मर गया। लड़कीवाले विधवा पुत्रीके पुनर्विवाहपर जोर देने लगे। उनका कहना था कि 'तुम अपने दूसरे लड़केसे इसकी शादी कर दो, घर-की-घरमें बात रहेगी।' सैयद मुर्तजाके इन्कार करनेपर वे मुसल्मान मौलवियोंके फतवे लाये कि इस्लाममें विधवाका विवाह जायज है। इसपर सैयद मुर्तजाने कहा कि 'मैं जानता हूँ कि इस्लाममें बेवाका निकाह जायज है; पर मैं नहीं चाहता कि 'मैं उन लोगोंके जजबातको ठेस पहुँचाऊँ जो मेरी रिआया हैं।' इसपर झगड़ा बढ़ गया। लड़कीवाले लड़कीको अपने घर ले गये और सैयद मुर्तजापर ६० हजारका हकेमेहरका दावा कर दिया। सैयदने ६० हजार रुपया दिया, परंतु पुनर्विवाहसे साफ इन्कार कर दिया। अन्तमें लड़कीवालोंको ही मुँहकी खानी पड़ी, जब लड़कीने भी पुनर्विवाहसे इन्कार कर दिया। 'बापकी इज्जत रखनेके लिये मैंने मुकदमा उन्हें जितवा दिया, परंतु दूसरी शादी मैं नहीं करूँगी, सैयदके घरमें जन्म लिया है किसी भंगीके घरमें नहीं।'

हिंदुओंमें तो सनातनसे ही सती-मर्यादा और पातिव्रत्य स्वरूप भूतरूपसे स्थापित है, इसके उदाहरण दे-देकर लेखका कलेवर नहीं बढ़ाना है। हमें तो केवल इतना ही कहना है कि १९ वीं शताब्दीसे पहले हिंदू-समाजमें हजारों सुधारक और क्रान्तिकारी हो चुके हैं, परंतु किसीने भी जरा भी सती-धर्मके विरुद्ध आवाज नहीं उठायी। महावीर, बुद्ध, कबीर, दादू, नानक, गुरु गोविन्दसिंह—इन सबने सती-मर्यादाको दृढ़ करनेका ही प्रयत्न किया। हिंदुओंका सतीत्व—पातिव्रत्यका आदर्श सदासे उन भारतीय जातियोंको भी प्रभावितकरता रहा है, जिनमें पहलेसे पुनर्लग्नकी चाल थी। पंजाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह जाट थे, परंतु उनकी मृत्युके बाद उनकी कई रानियाँ सती हो गयीं। डा० सर जदुनाथ सरकार भरतपुरके जाट राजा सूरजमलकी विधवा पुत्रवधूका उल्लेख करते हैं, जो अपने समयकी प्रख्यात सुन्दरी थी और अपने पति नाहर-सिंहके मरनेके बाद ब्रह्मचर्यके कठोर नियमोंका पालन कर रही थी। सूरजमलका एक और पुत्र जवाहरसिंह, जो बापके बाद भरतपुरकी गद्दीपर बैठा, इस विधवा भावजसे विवाह करना चाहता था। मतलबके ठुकराये जानेपर उसने भावजको सताना प्रारम्भ किया। इसपर यह बाला भागकर जयपुर चली गयी और वहाँके राजपूत राजासे उसने सतीधर्मकी रक्षाकी भीख माँगी। राजाने उसे शरण दी। इसपर जवाहरसिंहने जयपुरपर आक्रमण कर दिया। उधर जयपुरनरेश भी युद्धके लिये तैयार हो गये। दोनों ओर तलवारें खिंच गयीं। विधवाने इस युद्धको रोकनेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु जवाहरसिंह किसी भी तरह राज़ी न होता था। उल्टे वह जयपुरनरेशके चरित्रपर लाञ्छन लगाने लगा। इसपर इस वीर बालाने विषपान करके प्राण दे दिये। युद्ध रुक गया।

मुसल्मानोंने इस देशमें आकर हिंदू-सभ्यताको जो हानि पहुँचायी, वह सर्वविदित है; परंतु वे भी यहाँकी दिव्य देवियोंके पातिव्रत-धर्मसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। फारसीके किसी कविका यह शैर बहुत पाठकोंने सुना होगा—

दर आशिक़ी चूँ ज़ने हिंदी कसे मर्दाना नीस्त।
सोख़्तन बर शमये मुर्दन कारे हर पर्वाना नीस्त॥

—'प्रेममार्गमें हिंदू-स्त्रीकी कौन समता करेगा। पतंग तो केवल जलते हुए दीपकपर प्राण न्योछावर करता है, परंतु हिंदू-स्त्री बुझे हुए दीपकके साथ जल मरती है।' १३-१४ वीं शताब्दीके अमर कवि हज़रत अमीर खुसरो, जिनका उर्स प्रतिवर्ष दिल्लीमें मनाया जाता है, जिसमें पं० जवाहरलाल नेहरू भी भाग लिया करते हैं, अपने काव्यमें विवाह-इच्छुक तुर्क विधवाओंकी मज़ाक़ उड़ाते हैं। हिंदू-स्त्रियोंके बारेमें हज़रत अमीरने बड़े सुन्दर विचार प्रकट किये हैं—

नै कम ज़ाँ ज़ने हिंदी दरीं कूए।
के खुदरा ज़िंदा सोज़द अज़ पये शूए॥

—मस्नवी खुसरवो शीरीं

—'हिंदू-स्त्रीकी प्रेम-मार्गमें कौन समता करेगा, जो मुर्दा पतिके साथ अपना ज़िंदा शरीर जला डालती है।'

तैमूर अपने आत्मचरित्रमें लिखता है कि 'भटनेरके राजपूत राजाने पठानोंकी सहायतासे मेरा मुक़ाबला किया और विजयकी कोई आशा न रहनेपर उन्होंने जौहर किया। अन्तर केवल इतना था कि राजपूतोंने अपनी स्त्रियाँ अग्नि-को भेंट की और पठानोंने तलवारकी धारको। अपनी-अपनी स्त्रियोंको स्वर्ग भेजकर दोनों तुर्कसेनापर टूट पड़े।

इब्न बतूता अपने यात्रा-वर्णनमें लिखता है कि 'मैंने देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि एक हिंदू-स्त्री सती होने जा रही थी और उसके पीछे श्रद्धालु हिंदू-मुसल्मानोंकी अपार भीड़ चल रही थी।'

जहाँगीर काश्मीरके राजौर क्षेत्रमें मुस्लिम स्त्रियोंके सती होनेका उल्लेख करता है और यह भी लिखता है कि चूँकि यह प्रथा इस्लामके विरुद्ध थी, इसलिये मैंने मुस्लिम विधवाओंका सती होना बंद करा दिया।

इन सबका फल यह हुआ कि एक बार तो पुनर्लग्न मुसल्मानोंके उच्च कुलोंसे भी पूर्णतया उठ गया। १८ वीं शताब्दीके प्रसिद्ध मौलवी शाह वलीउल्ला और उनके पुत्र शाह अब्दुल अज़ीज़को फिरसे मुसल्मानोंमें विधवा-विवाह जारी करानेमें बड़ी शक्ति लगानी पड़ी। सबसे पहला व्यावहारिक पग शाहवली उल्लाके पोते शाह मुहम्मद इस्माइलने अपनी विधवा बहिनका पुनर्विवाह करके उठाया, जिससे दिल्लीके मुसल्मानोंमें काफी बेचैनी फैली। मौलवी इन्तज़ामुल्ला शहरबी अपनी पुस्तक 'उल्माएहक़ और उनकी मज़लूमियत-की दास्तानें'में इस घटनाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

'अक़्द बेवगानका तरीक़ा मसनून मुसल्मानोंने उठा दिया था, चुनांचे शाह साहबने अक़्द बेवगानका सिलसिला घरसे शुरू किया। अपनी बेवा बहिनको तर्जुमा मशकूता पढ़ाते, मगर वह बाब जिसमें अक़्द बेवगानके मुतअल्लिक़ अहादीस हैं वह न पढ़ाते। मगर सबसे पहले इन्हीं बेवा बहिनका अक़्द कर दिया।'

सैयद अहमद बरेलवी (अलीगढ़वाले सर सैयद अहमदखाँ दूसरे हैं) अपने समयके साम्प्रदायिक सुन्नी मुसल्मानोंका नेता था। यह मुग़ल सम्राटोंके भी विरुद्ध था, क्योंकि मुग़लराज्यमें हिंदू और शियोंके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार होता था। यह ऐसी हुकूमत चाहता था, जिसमें हिंदुओं और शियोंके लिये कोई स्थान न हो। कहते हैं इसे अंगरेज बहादुरकी शह थी। सैयद अहमदके सबसे बड़े सहायक पठान थे। उन्हींकी सहायतासे इसने सिक्ख राज्यको उखाड़ फेंकनेकी कोशिश की और इन्हीं प्रयत्नोंमें वह सिक्खों-से लड़ता हुआ सन् १८३१ में पेशावरके पास बालाकोटमें मारा गया। सैयद अहमदकी पराजयके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए मौलाना अबैदुल्ला सिंधी लिखते हैं—'हिंदोस्तान-के आम ख़ान्दानोंकी तरह अफ़ग़ानिस्तान और सरहदमें आम रिवाज था कि बेवाओंका निकाह सानी नाजायज़ समझा जाता था। इसके अलावा खुद निकाहमें इस क़िस्मकी पाबंदियां आयद थीं कि कुआरी लड़कियाँ बैठे-बैठे उमर गुज़ार देती थीं। सैयद साहबने निकाह बेवगानके रिवाज और दूसरी बुरी रस्मोंके क़मै-क़मैके लिये हुक्म दिया। इससे बहुत-से खान्दान और उमरा नाराज़ हुए। उनकी मुखालफ़तके असबाबमेंसे एक यह भी बड़ा असबाब था।' ('शाह वलीउल्ला और उनकी सियासी तहरीक' ले० मौलाना अबदुल्ला सिंधी, प्रकाशक सिंध सागर अकादमी लाहौर, पाकिस्तान, सन् १९५२ ई०।)

यह लिखना मैं भूल गया था कि जिन पठानोंके बलपर सैयद अहमद सिक्खोंसे भिड़ने गये थे, वे ही उनके विरुद्ध हो गये थे और पठान किन कारणोंसे विरुद्ध हुए, यह ऊपरके उद्धरणसे स्पष्ट हो गया होगा।

मौलाना हालीने अपनी नज़्म 'मुनाजाते बेवा' में इस बातका रोना रोया है कि इस्लामधर्ममें विधवा-विवाहकी आज्ञा होते हुए भी मुसल्मान विधवाओंका विवाह क्यों नहीं करते। वैसे जहाँतक अन्य-अन्य मुसल्मान कवियोंका प्रश्न है, उन्होंने हमेशा सतीत्व—पातिव्रत्यका आदर्श ही सामने रक्खा है। फ़िर्दौसीके शाहनामेकी चर्चा करते हुए एक बार देवी सरोजिनी नायडूने कहा था, 'हिंदुओंको तो अपनी एक सीता-सावित्रीपर गर्व है; यहाँ देखो, शाहनामेके फ़िर्दौसीने कितनी सीता-सावित्रियोंकी सृष्टि कर डाली है।' हज़रत इमाम हुसैनकी शहादतको लेकर जो मर्सिये उर्दूमें लिखे गये हैं, उनमें मुस्लिम विधवाओंका चित्र हिंदू-संस्कृतिके अनुसार खींचा गया है—

रोके बहिनसे कहने लगे शाहे बहरो बर।
उस बदन सीब राँड़को ले आओ लाशपर॥
बेटी लुटेगी यूँ, हमें इसकी न थी खबर।
अब शर्म क्या है, देख लो दूल्हेको इक नज़र॥
चादर सफ़ेद उढ़ाके दुलहनको बहाले ज़ार।
गोदीमें लाई जैनबे ग़मग़ीन सोगवार॥
चिल्लाई यह, गिरके तने पाश पाश पर।
क़ासिम बने उठी, दुलहन आई है लाशपर॥

(मीर अनीस)

इसीको लक्ष्य करके शम्शुलउलेमा मौ० शिबली नूमानी लिखते हैं—'यह मलहूज रखना चाहिये कि मिर्जा साहब और दीगर तमाम मर्सियागोयोंने अहले हरमकी आदात और मरासिम हिंदोस्तानके शुर्फ़ाकी मस्तूरातके मुताबिक़ फ़र्ज किये हैं।'—(मवाज़ना अनीसो दबीर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवाओंके ऊपर हिंदू-संस्कृतिके अनुसार मुसलमान कवियों ने आधुनिक युगमें भी बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं, जिनमें सबसे अच्छी कविता 'जोश' मलीहाबादीकी है। जोशसाहब जातिसे पठान और विचारोंसे कम्यूनिस्ट हैं, रहनेवाले मलीहाबाद जिला लखनऊके हैं, परंतु अब पाकिस्तान चले गये हैं। पतिकी जलती हुई चिताके पास खड़ी हुई विधवा-को तुलसीदासके मुखसे सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

मरना जीना एक है, जिनको ज़रा भी ज्ञान है।
वह उधरका मर्तबा है, यह इधरकी शान है॥
जिंदगी है रूहको महदूद कर लेनेका नाम।
मौत है इन्साँके लामहदूद हो जानेका नाम॥
कहते हैं फानी जिन्हें हम, वह फ़ना होते नहीं।
मरनेवाले अस्लमें हमसे जुदा होते नहीं॥
इश्ककी मालाका इक मोती बिखर सकता नहीं।
इत्तिहादे बातिनी मरनेसे मर सकता नहीं॥
इश्ककी सरगोशियाँ मरनेसे मर सकती नहीं।
इश्ककी शाखें किसी आँधीसे झुक सकती नहीं॥
ज़िंदगी आँसुओंका जल्वा है, और कुछ भी नहीं।
मौत इक बारीक सा पर्दा है, और कुछ भी नहीं॥
ग़ौरकर दिलमेंके हो जाये हक़ीक़त बेनक़ाब।
टूटते देखे तो होंगे बार-हा तूने हुबाब॥
मरके भी दरियाके सीनेसे कहीं जाते नहीं।
रहते हैं दरियाहीमें लेकिन नज़र आते नहीं॥
यूँ ही तेरी शमए-सोज़ाँ भी तेरी महफ़िल में है।
मरनेवाला आँखसे ओझल है, लेकिन दिलमें है॥
जो चिता में जल रहा है, वह तेरे पहलू में है।
काँपते होटों में है, बहते हुए आँसू में है॥
यह कहा शाइरने और कुछ देर आँखें बंद कीं।
देखते-ही-देखते बेवा की आँखें खुल गइ॥
हँसके फिर कहने लगी, बाबा मेरा बिसवास था।
दूर मैं जिसको समझती थी, वह मेरे पास था॥
ख़ाक, तुलसी की नज़रसे रश्के-गुलशन हो गई।
मारफ़त में डूब कर बेवा सुहागन हो गई॥

क्या करूँ ?

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

लीलामय, रसमय !

अखिल सृष्टिका कण-कण तुम्हारे लीला-सौन्दर्यसे चकित-चमत्कृत है।

एक-एक प्राणीका उर-प्राङ्गण तुम्हारी रस-अठखेलियोंसे हर्ष-विह्वल है।

नित्य-निरन्तर लीला-सौन्दर्य बखेरते, रस-रास रचाते, तुम श्रान्त-क्लान्त हो गये होओगे। अवश्य हो गये होओगे। सोचता हूँ—

सदा-सुहाती स्नेह-ज्योतिसे आलोकित, लघु-लोचन-कक्षिकामें पलकोंकी हवादार चिक डालकर, भावोंकी भव्य शय्यापर तुम्हें शयन कराकर, चित्तको तुम्हारी चरण-चर्यामें लगाकर, मतिको तुममें खोकर स्वयं तुममें समाधिस्थ-सा हुआ, तुम्हें तनिक विश्राम देकर जीवनका रस लूँ मैं। न, न, इतना ही नहीं, तनिककी तनिकताको नित्य-निरन्तरतामें बदलकर रस-ही-रस हो जाऊँ।

क्यों, ठीक रहेगा न यह, प्रियतम !

अथवा—

हे सर्वमय, करुणामय !

अखिल सृष्टिके कण-कणमें जो तुम नित्य-निरन्तर अमृत-से झर-झरकर उसे अमरत्व प्रदान कर रहे हो, एक-एक प्राणी-के तन-मनपर अनवरत करुणावृष्टि कर रहे हो, करके सतत उसका हित साध रहे हो, तुम्हारी इसी अखण्ड सर्वमयता एवं सर्वभूतहितरतता करुणामयताको सप्त-सागरा-सी नयन-गागरमें भरकर, चित्तको तुम्हारे नित्य कर्मरत चारु चरणोंकी डोरसे बाँध तुम्हारा अनुचर बना, कण-कणमें तुम्हारी सर्वव्यापकताकी प्रगाढतम अनुभूति कर, अपनी कर्मशीलताको विचार-शक्तिसे सुजान और भावशक्तिसे प्राणवान् कर प्राणीमात्रकी सेवामें, तुम्हारी अपनी श्रान्तता-क्लान्तताकी चिन्ता किये बिना, पल-पल, क्षण-क्षणके लिये रत हो जाऊँ·····अन्य सब कुछसे विरत होकर। हाँ, नित्य-निरन्तर कर्मरततामें ही, समाधिस्थकी-सी रसमयतामें रहते हुए, रत होकर, जीवनको एक साधना बना डालूँ·····रसमयी साधना। बनाये रक्खूँ और बनाये-बनाये साध्य बन जाऊँ किसी दिन·····रस-स्वरूप साध्य।

बोलो मेरे प्रियतम, मेरे अपने आप ! मैं क्या करूँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

(१)

सादर प्रणाम । आपका पत्र मिला । आपने अपना और अपने परिवारका परिचय लिखा सो सब पढ़ लिया । जीवनका कोई ठिकाना नहीं है—यह सर्वथा सत्य है । मनुष्य-शरीरका समय अवश्य ही अमूल्य और दुर्लभ है, फिर भी इसके व्यर्थ चले जानेकी घोर चिन्ता क्यों नहीं है ? इस विषयपर विचार करना चाहिये । विचार करनेपर पता चल सकता है कि इसका कारण जाननेकी कमी नहीं है । जाननेकी शक्ति तो भगवान्‌ने कृपा करके सभीको दी है और समय-समयपर भगवान् हृदयमें चेतावनी भी देते रहते हैं तो भी प्राणी अपनी जानकारीका और प्रभुकी प्रेरणाका आदर न करके और इन्द्रियोंके ज्ञानका आदर करके इन्द्रियोंके भोगोंमें ही रमण करता रहता है । अपने मनुष्य-जीवनके समयको प्रमादवश व्यर्थ खो देता है, उस हानिको सहन करता रहता है । अपने प्रभुके लिये उतना व्याकुल नहीं होता, जितना कि क्षणभङ्गुर विषय-भोग-सामग्रीके लिये व्याकुल रहता है ।

हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषासम्बन्धी विद्या भी साधनमें बाधक नहीं है । उनका भी प्रभुकी सेवामें उपयोग किया जा सकता है और उनको साधन बनाया जा सकता है ।

हृदयमें प्रेरणा करके प्राणीको अपनी ओर आकर्षित करना, यह उस परम सुहृद् प्रभुकी विशेष कृपा है । इसपर ध्यान देकर साधकको विशेषरूपसे प्रभुका कृतज्ञ होना चाहिये और उनके परम मधुर कृपालु स्वभावको बार-बार याद करके उनके प्रेममें विभोर रहना चाहिये । यह है उनकी विशेष कृपाका आदर करना—उसे स्वीकार करना ।

भगवान् अपने शरणागतको अवश्य अपनाते हैं इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है । यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि वे किसीको नहीं ठुकराते, चाहे कोई कितना ही पतित क्यों न हो । एक बार जो सरलभावसे सब प्रकारसे उनका हो जाता है, उसके भूत-कालके अपराधोंको भगवान् नहीं देखते । यह उनकी घोषणा है (गीता अ० ९ श्लोक ३०-३१) । वे स्वयं उसकी जीवन-नौकाके केवट बन जाते हैं और उसे संसार-समुद्रसे पार करके अपने परम धाममें ले जाते हैं (गीता अ० १२ श्लोक ७) । सारी सुध-बुध भगवान् स्वयं प्रदान करते हैं—यह उनका नियम है (गीता अ० १० श्लोक १०)।

भगवान्‌को श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अपना मानकर अपने-को उनपर छोड़ देनेमें किसी प्रकारका परिश्रम या कठिनाई नहीं है । लाभ तो इतना है कि जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता ।

काम, क्रोध, मद, मोह आदि शत्रुओंका बल तभीतक चलता है जबतक साधक संसारको अपना मानता रहता है । उसके द्वारा मिथ्या सुखकी इच्छा रखता है । जब वह संसारसे सम्बन्ध तोड़कर सर्वतोभावसे भगवान्‌का हो जाता है, फिर इन शत्रुओंका बल नहीं चलता ।

भगवान्‌के भजनमें मन न लगनेका कारण भगवान्‌में श्रद्धा, प्रेम और विश्वासकी कमी है । भगवान्‌की चाह तीव्र और अनन्य होनी चाहिये । सत्सङ्ग तो आप हरेक परिस्थितिमें भगवान्‌की शरण होनेसे भगवान्‌की कृपासे पा सकते हैं, वह हर समय आपके साथ रहता है । जीविका आपकी चलायी नहीं चलती । अपनी योग्यताके अभिमानका त्याग करके प्रभुपर निर्भर रहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये । कर्तव्यपालनसे कभी निराश नहीं होना चाहिये । भगवान्‌की कृपासे मिली हुई शक्ति और वस्तुओंका सदुपयोग ही कर्तव्य है । उसके पालनमें कठिनाई या पराधीनता किंचिन्मात्र भी नहीं है । फिर साधनमें रुकावटका तो प्रश्न ही कैसे आ सकता है ?

(२)

सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार जाने । उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

१—भगवान्‌की प्राप्ति केवल इच्छासे होती है, इसका भाव यह है कि वह प्रयत्नसाध्य नहीं है । इच्छाका ऐकान्तिक होना ही भगवान्‌की प्राप्तिका अचूक साधन है । अन्य सब साधन भगवत्प्राप्तिकी इच्छाको अनन्य बनानेके लिये ही हैं ।

धन और सांसारिक पदार्थ न तो इच्छामात्रसे मिलते हैं और न प्रयत्न करनेपर ही मिलते हैं, प्रयत्न करनेपर भी प्रारब्धका संयोग हो तभी मिलते हैं; क्योंकि कर्मके फलकी प्राप्तिमें मनुष्य सर्वथा परतन्त्र है । कर्मके फलरूपमें जो कुछ मिलता है, वह भी परिवर्तनशील और विनाशी है । उसकी चाह भी मनुष्यको परतन्त्रतामें बाँधनेवाली है ।

भगवान्‌की प्राप्ति किसी सकाम कर्मके फलरूपमें नहीं होती, अनासक्त कर्म (गीता ३ । १९), भगवदर्पण कर्म (गीता ९ । २७-२८) एवं भगवदर्थ कर्म (गीता १२ । १०) से होती है । भगवान् केवल इच्छासे इसलिये भी मिलते हैं कि वे अन्तर्यामी हैं । उनको जो वास्तवमें चाहता है, वह उनसे छिपा नहीं है । अतः गीता अ० ४ श्लोक ११ की घोषणाके अनुसार जो भगवान्‌को चाहता है, उसे भगवान् भी उसी तरह चाहते हैं एवं वे सर्वथा समर्थ हैं, अतः जब वे अपने प्रेमीसे मिलना चाहें तो उस मिलनमें कठिनाई कैसे रह सकती है ।

भोगोंकी प्राप्तिका उदाहरण इसमें नहीं लग सकता; क्योंकि भोग जड हैं । अतः जो उनको चाहता है, उसे वे नहीं चाहते । अतः उनकी इच्छा करनेसे उनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

आपने योगदर्शनके सूत्रका प्रमाण दिया, वह चित्त-निरोधका विषय है भगवान्‌से मिलनेका नहीं । चित्त-निरोध तो भगवान्‌के प्रेमी भक्तका भगवान्‌की कृपासे स्वतः हो जाता है; क्योंकि अन्य इच्छाओंका नाश हो जानेके बाद चित्तकी चञ्चलताका कोई कारण नहीं रहता, वैराग्य तो उसमें स्वाभाविक होता है ।

आपने अपनी राय प्रकट की कि धन कमानेकी अपेक्षा भगवान्‌को प्राप्त करना अधिक कठिन है, सो वास्तवमें ऐसी बात नहीं है । भगवान् दूर नहीं हैं; वे तो इतने निकटतम हैं कि उनसे निकट कोई है ही नहीं । अहंका नाश करना तभीतक कठिन है, जबतक मनुष्य अपने बलके अभिमानसे अहंका नाश करनेके लिये प्रयत्न करता रहता है; क्योंकि प्रयत्न करनेवाला स्वयं कुछ बनकर ही प्रयत्नशील होता है । स्वयं कुछ बन जाना ही अहं है; अतः प्रयत्नसे अहंकार पुष्ट होता रहता है, उसका नाश नहीं होता । विवेकपूर्वक विचार करनेसे भी ज्ञान होकर अहंकारका नाश हो जाता है ।

भगवान्‌का विश्वासी एवं एकमात्र भगवान्‌को ही चाहनेवाला निष्काम प्रेमी भक्त तो सर्वथा अपने आपको भगवान्‌के समर्पण करके सर्वथा भगवान्‌का हो जाता है, उसका अपना कोई प्रयत्न नहीं रहता । अतः उसके अहंकारका नाश भगवान्‌की कृपासे हो जाता है, इसलिये इस मार्गमें कोई कठिनाई नहीं है । कठिनाई प्रतीत होनेका कारण अपने बलका अभिमान है । बल वास्तवमें अपना नहीं है, वह भी भगवान्‌से मिली हुई वस्तु है । उसे अपनी माने रहनेके कारण वह अभिमानमें फँसा रहता है । यही कारण है कि अनेक जन्म साधन करते-करते बीत जाते हैं, सिद्धि नहीं मिलती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञासा

(रचयिता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

पूछ रहा हूँ एक बात मैं, प्रिय ! करुणामय ! स्वामी !
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

(२)

हम-तुम एक, हमारे तुम हो, हम हैं प्रभो ! तुम्हारे ;
फिर परदा क्यों पड़ा बीचमें—हम न्यारे, तुम न्यारे ?
हम निर्बल, निरुपाय अकिंचन, तुमतक पहुँच न पाते ,
तुम समर्थ ! निज हाथ बढ़ाकर क्यों न हमें अपनाते ?
दूर रहे स्वामीसे कबतक शुचि सेवक अनुगामी ?
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

(३)

माना अघी, अपावन हम हैं; तुम तो पतितोद्धारी !
सोम-सदृश तुम हो स्वभावसे पाप-ताप-तम-हारी ।
तुम सींचो घनश्याम ! जिसे, वह उपवन हरा न होगा ?
कहो, आगमें तपकर भी क्या कंचन खरा न होगा ?
तुम भी जिसे मिटा न सको, ऐसी क्या हममें खामी ?
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

(४)

नाथ ! तुम्हारा ही तो घर है मन-मन्दिर यह मेरा ,
बसा कहाँसे आकर इसमें कुत्सित काम लुटेरा ?
दुष्टभाव बढ़ रहा निरन्तर, साधुभाव है हारा ;
मानसकी इस भूपर होगा कब अवतार तुम्हारा ?
ईश्वरके होकर नश्वरकी क्यों हम करें गुलामी ?
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

(५)

सुनता हूँ—तुम ही यह जग हो, तुमने सृष्टि रचायी ;
तुम ही इसके उपादान हो, तुम निमित्त सुखदायी
तुम सुखमय, चेतन, अविनाशी, रसके सिन्धु कन्हाई !
दुख, जडता, नश्वरता इसमें कहो, कहाँसे आई ?
क्या कुछ भी न तुम्हारी इसमें, सोचो तो, बदनामी ?
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

(६)

सुखी, धनी क्यों अल्प ? अधिक क्यों दुखी, दरिद्र यहाँ हैं ?
सभी तुम्हारे ही, समदर्शी ! क्यों वैषम्य महा है ?
मिला पापका फल, यह सुन मस्तिष्क और चकराया ;
पुण्य-सिन्धुकी इस दुनियामें पाप कहाँसे आया ?
क्यों पैदा होने देते तुम पापी, लोभी, कामी ?
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

(७)

तुम चाहो तो क्या न दूर जडता इस जगकी कर दो ?
वैभव निज वैकुण्ठधामका क्या सर्वत्र न भर दो ?
तुम चाहो तो क्या न धरापर पुण्य-पुण्य ही छाये ?
राग-द्वेषकी, पाप-तापकी चर्चा ही उठ जाये ?
क्यों सम्भव हो रहा न ऐसा ? हे समर्थ ! हे स्वामी !
करके कृपा बता दो मुझको, मेरे अन्तर्यामी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सांस्कृतिक कार्यक्रमके नामपर पतन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पं० श्रीभवानीलालजी भारतीय एम्० ए० वाचस्पतिके लेखसे)

आज हमारे देशमें सांस्कृतिक कार्यक्रमोंकी सर्वत्र धूम है। किसी शिक्षण-संस्थाको देखिये, किसी राष्ट्रीय पर्वमें सम्मिलित होइये, या किसी भी विदेशी अतिथिके स्वागत-समारोहमें जाइये—आपको सर्वत्र पायलोंकी झनकार और नूपुरोंकी मधुर रुमझुम सुनायी देगी—आज प्राइमरी स्कूलोंके नन्हे-मुन्ने बालकों-बालिकाओंसे लेकर विश्वविद्यालयोंके विकसित मस्तिष्कवाले युवक एवं युवतियाँ भी इन तथाकथित सांस्कृतिक कार्यक्रमोंमें मग्न दिखायी दे रहे हैं। तब सहसा प्रश्न होता है कि क्या हमारे देश-की संस्कृति केवल नृत्य, गीत, रागरसतक ही सीमित रह गयी है, अथवा उसके उपादान और भी अधिक गम्भीर हैं।

आज हमने सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका क्या अर्थ समझा है? क्या समय-समयपर आयोजित होनेवाले नृत्य-गीतके कार्यक्रमों-को ही हम सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके अन्तर्गत लेते हैं? संस्कृतिके उदात्त तत्त्वोंको केवल संगीत और अभिनयतक ही सीमित कर देना कहाँतक न्याय है? संस्कृति तो किसी राष्ट्रकी सम्पूर्ण परम्पराओंका आकलन होती है—शताब्दियोंसे हमारे राष्ट्रने ज्ञान-विज्ञान-नीति-धर्म-कला और चिन्तनके क्षेत्रमें जो कुछ उपलब्ध किया है, उसकी समष्टि ही हमारी संस्कृति है। फिर यह समझमें नहीं आता है हम आज केवल संगीत और अभिनयको ही संस्कृति क्यों समझ बैठे हैं।

हम यहाँ संस्कृतिकी कोई परिभाषा देनेका प्रयत्न नहीं करेंगे। परंतु इतना तो निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि आज यहाँ तथा विदेशोंमें संस्कृतिके नामपर जो प्रदर्शन हो रहे हैं, संस्कृतिके पवित्र नाम-रूपके व्याजसे जो कुछ ताण्डव हो रहा है, वह शोचनीय है। वह संस्कृति तो है ही नहीं, और चाहे कुछ हो। सरलता, सौम्यता, अध्यात्मनिष्ठा, प्राणिमात्रके प्रति आत्मीयता तथा मैत्रीभाव, त्याग, सेवा, अहिंसा, सत्य और विश्व-बन्धुत्वकी भावना ही तो भारतीय संस्कृतिके मूल तत्त्व हैं, जिनके कारण संसारमें हमारे राष्ट्रका सम्मान है।

परंतु आज हम क्या देख रहे हैं? हमारे देशके विद्यालयों-के अधिकांश छात्रोंका पर्याप्त समय इन कार्यक्रमोंकी तैयारियोंमें ही नष्ट होता है। आज १५ अगस्त है तो कल २६ जनवरी है। आज युवक-युवतियोंका समारोह है तो कल कुछ और है। स्कूल और कालेजोंका कोई उत्सव तबतक सफल नहीं समझा जाता जबतक एक मधुर और कर्णप्रिय सांस्कृतिक प्रोग्राम उसके साथ न हो। इन उत्सवोंपर शिक्षाके उच्च अधिकारियों और मन्त्रियोंका भी शुभागमन होता है—छात्रोंकी शिक्षा और उनके चरित्रके विषयमें चाहे उन्हें कुछ भी अवगत न कराया जाय, परंतु एक रसिक प्रोग्राम अवश्य होगा। इन प्रोग्रामोंकी तैयारियोंमें छात्रोंका अमूल्य समय और उससे भी मूल्यवान् चरित्र कितना नष्ट होता है, इसकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं है।

लेखकको स्मरण है कि एक नगरमें जब राष्ट्रपतिके आगमन-का प्रोग्राम बना, तब कई दिन पूर्व ही नगरके प्रमुख शिक्षण-संस्थाओंके छात्र एवं छात्राओंको एकत्रकर वहाँके शिक्षा-अधिकारी इस 'कलचरल प्रोग्राम' की तैयारीमें लग गये। भड़कीले और वासनोत्तेजक नाईलोनके वस्त्र तथा अभिनेत्रियोंके-से मेक-अप (Make-up), साज-सामानको धारणकर जब हाई-स्कूलकी युवती और किशोरियाँ शृङ्गारपूर्ण मुद्रामें राजस्थान पनिहारी-गीत उपस्थित करती हैं, तब हम मनोविज्ञानके पण्डित शिक्षाविदोंसे पूछना चाहते हैं कि क्या इसका कुछ बुरा असर उन अविकसित बुद्धिवाले वयस्क छात्रों और छात्राओंपर नहीं पड़ता?

भारतके केन्द्रीय शिक्षा-विभागने एक और शिक्षण छेड़ा है और वह है 'अन्तर-विश्वविद्यालय युवक-समारोह'। इन युवक-समारोहोंके नामपर शिक्षा-विभाग जनताकी गाढ़ी कमाईका पैसा बेदर्दीसे लुटाता है; परंतु क्या किसीको यह पता है कि इन समारोहोंमें क्या होता है? यदि आप जानना चाहते हैं तो गत वर्ष अजमेरमें हुए राजस्थानी विश्वविद्यालयके युवक-समारोह-का यथार्थ वर्णन 'न्याय' साप्ताहिकके ३ और १० अक्टूबर सन् १९५९ के अङ्कोंको पढ़िये। आपको ज्ञात होगा कि उस समय-पर युवकोंने क्या गुंडागर्दी की। अभद्रता और नारियोंके शील-हरणको प्रत्यक्ष प्रोत्साहन मिला। रास्ते चलती स्त्रियोंके शील-भङ्गकी जो चेष्टाएँ की गयीं तथा सारे नगरमें जो अराजकताका प्रचार हुआ, उसे देखते हुए तो यह कहना ही पड़ता है कि 'युवक-समारोह था या गुंडा-समारोह?' इस वर्ष मैसूरमें भी ऐसा ही हुआ, जहाँ गुंडागर्दीको रोकनेके लिये पुलिसको गोली चलानी पड़ी, जिसके कारण बहुत-से छात्र जख्मी हुए।

तब प्रश्न उठता है कि क्या देशवासियोंकी आँखें अब भी नहीं खुलेंगी, जब हमारे सीमाक्षेत्रपर चीन हमें ललकार रहा है और हमारे पौरुष, स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेमको चुनौती दे रहा है और क्या हमारे मन्त्री, अधिकारी, युवक और युवतियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कर्त्तव्यको तिलाञ्जलि देकर निर्लज्जतापूर्वक कला-रसीले सांस्कृतिक कार्यक्रमोंमें ही तल्लीन रहेंगे ?

आज विदेशी अतिथि आते हैं, हमारी सभ्यता और विचारधारा और जीवन-निर्वाहके साधन देखनेके लिये, परंतु हम भारतकी वास्तविकताको दिखानेकी अपेक्षा 'कलचरल प्रोग्राम' के नामपर उन्हें दिखलाते हैं अपनी तरुणी बहिन-बेटियोंका नाच ? क्या हमारे पास कोई अच्छी चीज दिखानेको नहीं है ? क्या हम उन्हें अरविन्द-आश्रम, शान्तिनिकेतन और गुरुकुलोंकी सैर नहीं करा सकते ?

स्वराज्य आनेसे पहले हम अपने यहाँके राजा-महाराजाओंकी, उनकी सुरा, सुन्दरी और विलासिताकी उपासनाके कारण निन्दा करते थे। परंतु क्या आज सरकारी मन्त्रियों और अधिकारियोंके द्वारा इन्हीं बातोंको प्रोत्साहन नहीं दिया जा रहा है ? अंग्रेजोंके जमानेमें कभी किसी स्कूल या कालेजमें लड़कियाँ नहीं नचायी जाती थीं। सन् १९३७ में कांग्रेस गवर्नमेंट आनेपर बहुत-से रसिक लोग मन्त्रियोंकी कृपासे सरकारी शिक्षा-समितियोंमें घुस पड़े और उन्होंने शिक्षा-कार्यक्रमोंमें लड़कियोंका नचाना भी शामिल करा दिया। शुरू-शुरूमें तो छोटी-छोटी लड़कियाँ ही नाचती थीं—एक दफा जो लज्जाका पर्दा हटा कि वे छोटी लड़कियाँ बड़ी होकर धड़ल्लेसे पब्लिकके सामने नाचने और नचायी जाने लगीं और हमारे राजमन्त्री और अधिकारी बड़े शौकसे उन्हें देखने लगे। नतीजा यह हुआ कि स्कूलोंकी जवान लड़कियाँ पब्लिकके सामने और बारातोंमें बरातियोंके सामने नाचने लगीं। इस तरह हमारे मन्त्री इस पतनके जिम्मेदार हैं।

हम माननीय मिनिस्टरोंसे निवेदन करते हैं कि वे कालेज और स्कूलकी लड़कियोंका नाच देखना बंद कर दें और आदेश जारी करें कि सरकारी अधिकारी इन नाचोंको न देखें और न कभी इनका आयोजन करायें। हम दावेसे कह सकते हैं कि अगर मन्त्रीलोग और अफसरान इन नाचोंका देखना तथा कराना बंद कर दें तो इन वयस्क लड़कियोंका नाचना, जो पेशेवरोंकी हदको पहुँचता जाता है, बंद हो जायगा और समाजमें बढ़ता हुआ विलासिता और व्यभिचारका प्रवाह रुक जायगा।

जो लोग इन नाचोंको कराते हैं, चाहे वे माता-पिता हों या शिक्षक हों या सरकारी अफसर हों अथवा मन्त्री हों, वे अवश्य ही पापोंको प्रोत्साहन देनेवाले हैं।

हम साहित्यकारोंसे निवेदन करते हैं कि वे अपने प्रोग्रामोंको रसीला बनानेकी लालसामें समाजमें विलासिता न फैलने दें और उसके दूषित परिणामोंको न आने दें। वे लड़कियोंको पब्लिकमें न नचायें।

पत्रकारोंने देशको आजादी दिलाने और देशसुधार करनेमें बड़ा काम किया है। वे देशको विलासिताकी बुरी हालतमें जानेसे रोक सकते हैं। खेद है पत्रकार अभीतक इस विषयमें सो रहे हैं—हम आशा करते हैं कि वे शीघ्र इस ओर ध्यान देंगे।

हम शिक्षकों और शिक्षिकाओंसे अपील करते हैं कि कृपया वे लड़कियोंको नचाना न सिखायें और उनका जीवन विलासिताप्रिय न बनायें।* लक्ष्मणप्रसाद गुप्त ऐडवोकेट

---

*प्रसिद्ध आचार्य श्रीक्षितिमोहन सेनने लिखा था—

मुझे तो ऐसा लगता है कि हमलोग 'संस्कृति' शब्दका अर्थ ही भूल गये हैं। आज तो सांस्कृतिक उत्सवोंके कार्यक्रम ही संस्कृतिके मूल अङ्गरूप बन गये हैं। गीत-गान, संगीतवादन, अभिनय और नृत्य, जलपान तथा अल्पाहार—क्या यह संस्कृति है ? मनुष्यके सामाजिक व्यवहारमें चाहे संस्कृति व्यक्त होती हो, पर संस्कृतिका निवासस्थान तो मनुष्यका अन्तःकरण है। संस्कृतिका जितना ही विकास होता है, उतना ही हमारे मन तथा वासनाओंमेंसे हिंसा तथा आशाके तत्त्वोंकी कमी होती है। उनका स्थान स्नेह तथा साहसकी भावना ले लेती है। संस्कृति हमारी चेतनाको परिष्कृत करती है, इससे हमारे विचार, आचार, व्यवहार भी परिष्कृत होते हैं, सुन्दर बन जाते हैं।

हमारा सामाजिक जीवन, पड़ोसियोंके साथ हमारा सम्बन्ध, हमारे सांस्कृतिक उत्सव-समारोह—ये सभी हमारी संस्कृतिकी बाह्य वस्तुएँ हैं। अंदरकी वस्तु तो यह है कि हम यथार्थमें संस्कृत हो गये हैं या नहीं ? हमने अपनी जंगली और पाशवी वृत्तियोंका त्याग करके अपने संस्कारोंको सुन्दर बना लिया है या नहीं ? हमारी जीवनचर्या हमारे देश और जातिकी परम्पराओंको आगे बढ़ा रही है या नहीं ? अपने शरीरों तथा घरोंको किस प्रकारसे सजा रहे हैं, यह तो 'फैशन' का विषय है; और हम अपने मन-हृदयको और अपने समग्र जीवनको किस प्रकारसे सजा रहे हैं, यह संस्कृतिका विषय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

बुराईके बदले भलाई—हृदय-परिवर्तन

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। बाबू रामानन्दके बगलमें ही एक सोनारका घर था। सोनार बहुत अच्छा आदमी था, उसकी पत्नी भी साध्वी थी, पर पता नहीं, क्यों बाबू रामानन्दको सोनारके प्रति द्वेष हो गया था। वे चाहे जिससे उसकी निन्दा करते। कोई भी गहना बनवाने आते तो रामानन्द उसकी बेईमानी-चोरी बताकर उसमेंसे कइयोंको लौटा देते। पर वास्तवमें सोनार बड़ा ही ईमानदार था। इससे उसकी बहुत अच्छी साख थी। रामानन्दके विपरीत प्रयत्नपर भी उसको बहुत काम मिलता। उसकी लड़कीका ब्याह था। पड़ोसीकी सहायता करना तो दूर रहा, रामानन्दने अपने दुष्ट स्वभाववश विवाहमें भी कई तरहके विघ्न डाले। बरातियोंका अपमान कराया। उन्हें भड़काया भी। विवाह किसी तरह हो गया। पर सोनारने न कुछ बुरा माना, न रामानन्दका प्रतिकार किया और रामानन्दके साथ व्यवहारमें भी कहीं रूक्षता-कटुता नहीं आने दी। वह वैसे ही विनम्र तथा निश्चल बना रहा। एक दिन रामानन्दने कुछ दे-लेकर गुंडेके द्वारा राह चलते सोनारको गालियाँ दिलवायीं और उसे मरवाया। उसके घर तथा दूकानपर एक दिन गंदा कूड़ा गिरवा दिया। इस तरह अपनी ओरसे रामानन्दने सोनारको नुकसान तथा कष्ट पहुँचानेमें कोई बात उठा नहीं रक्खी। पर सोनार सहज ही शान्त रहा।

एक रात्रिकी बात थी, रामानन्द कहीं बाहर गया हुआ था। घरमें उसकी स्त्री तथा बालक अकेले थे। चोरोंने सुअवसर देखकर रामानन्दके घरमें सेंध लगायी। वह धनी था। हजारों रुपये नकद उसके घरमें रहते और गिरवी रक्खा हुआ तथा अपना हजारों रुपयेका गहना भी उसके घरमें था। ठीक उसी समय सोनारकी पत्नी जाग गयी। उसने पतिको जगाया। तबतक सेंध लगाकर एक चोर अंदर घुस गया था। दो बाहर खड़े थे। उजियाली सुनसान रात थी। माल भी बाहर निकाल लिया था। नकद रुपये तथा बहुत-सा गहना था। वे भागना ही चाहते थे। सोनारने जाकर चोरोंको ललकारा। चोर वहींके जान-पहचानके थे। सोनार उन्हें पहचानता था। उन्होंने सोनारसे कहा—'तुमको तो हमारी सहायता करनी चाहिये। तुम्हें कितना रुलाता तथा कष्ट देता रहता है यह नीच रामानन्द। आज वह घर नहीं है, हमलोग सब मालमता ले जायँगे तो उसका मिजाज ठंडा हो जायगा। तथा वह सीधा हो जायगा। तुम्हारे लिये तो यह खुशीकी बात है।' सोनारने कहा—'भाई! ऐसा नहीं हो सकता। हमलोगोंका आपसमें पुश्तैनी भाईचारेका सम्बन्ध है। क्या हुआ, जो भूलसे हमें वह कुछ कह-सुन लेता है; आखिर है तो हमारा पीढ़ियोंका पड़ोसी भाई ही। जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, मैं अपने देखते-जानते भाई रामानन्दका तनिक-सा भी नुकसान नहीं होने दूँगा।' चोरोंने छूरा निकालकर कहा—'बड़े धर्म पालनेवाले आये हो, हट जाओ यहाँसे, नहीं तो, अभी काम तमाम हो जायगा।'

सोनारकी स्त्री इसी बीचमें उठकर कुछ ही दूरपर एक धनी सज्जन हरचन्दरायका घर था, उसमें रातको पहरा लगा करता था, वहाँ पहुँच गयी और पहरेदारको प्रार्थना करके तुरंत थानेमें खबर करवा दी। मुहल्लेमें और लोग भी जग गये। सोनारकी स्त्रीके उद्योगसे यह सब हो गया। थानेसे पुलिसके सिपाही चले और मुहल्लेके लोग भी। इधर चोर छूरा मारनेको तैयार हुए ही थे कि सिपाही तथा और लोग समीप आ गये। चोर माल लेकर भागे। सोनारके रोकनेपर एक चोरने सोनारको छूरा मारा, पर वह भाग रहा था। सोनारने बायाँ हाथ सामने किया तो उसकी हथेलीपर कुछ चोट लगी। इतनेमें पुलिस तथा लोग आ गये। तीनों चोर मालके साथ रँगे हाथों पकड़ लिये गये। रामानन्दकी स्त्री यह सब देख रही थी। मुहल्लेके लोग सोनारका यह पवित्र भाव तथा महान् कार्य देखकर दंग रह गये। सब उसकी प्रशंसा करने लगे। सभी जानते थे कि रामानन्द वर्षोंसे निर्दोष सोनारको बेहद सता रहा था। उन्होंने उसकी स्त्रीसे कहा—'देखो, अपने पतिकी काली करतूतपर विचार करो और इस सोनारका भला काम देखो। छूरा कहीं भी लग सकता था और इसकी जान जा सकती थी। पर इसने तुम लोगोंको अपनी जान देकर भी बचाना चाहा और दोनों स्त्री-पुरुषने मिलकर आखिर बचा ही लिया।' रामानन्दकी पत्नी रो रही थी अपने काले कारनामोंको याद करके और सोनार-दम्पतिका अनोखा त्याग तथा प्रेम देखकर। पश्चात्तापके आँसुओंने उसका सारा कलुष धो दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे दिन रामानन्द लौटा। पत्नीने सारा हाल बतलाया। मुहल्लेके लोगोंने तथा पुलिसने भी बतलाया। रामानन्दका हृदय पलट गया। उसके हृदयका सारा विष सोनार-सोनारीके विलक्षण स्नेहामृतसे नष्ट हो गया। वह जाकर सोनार-सोनारीके चरणोंमें पड़ गया। उनसे रो-रोकर क्षमा माँगी, पर उनके मनमें तो कोई द्वेष था ही नहीं। उन्होंने रामानन्दको सरल हृदयसे सान्त्वना दी।

केस चला। चोरोंने अपने बयानमें सोनारके कर्तव्य-पालन, त्याग, रामानन्दके प्रति उसके सद्भाव तथा सोनारकी ठीक समयपर काम करनेवाली बुद्धि तथा बहादुरीकी बातें बतायीं। मैजिस्ट्रेटने सोनार-सोनारीकी बड़ी प्रशंसा की। चोरोंको सजा हुई। सोनारको सरकारने इनाम देना चाहा। पर सोनारने यह कहकर नहीं लिया कि 'रामानन्द मेरा भाई है। मैंने उसपर कोई उपकार थोड़े ही किया है। अपने घरको बचानेकी चेष्टा करनेमें उपकार-पुरस्कारकी कैसी बात। मैं यह न करता तो मैं कर्तव्यसे गिरता। किया तो अपने स्वार्थका काम किया—' सब लोग दंग रह गये। रामानन्द तो उसका चरणसेवक ही बन गया। परस्पर प्रेमका प्रवाह बह चला।

—हरिप्रसाद शर्मा

(२)

प्रतिशोध

हमारे मकानमें नहर-विभागके पं०XXXXXXXXशर्मा रहते हैं, उनसे मैंने यह घटना सुनी है। आपने बतलाया कि मैं जैगारा चौकीपर पतरौल था। जब मैं एक दिन राजवाहा जाजऊ (जि० आगरा) पर जा रहा था तो मुझे एक साधु पुलपर बैठे मिले। प्रणाम करनेके पश्चात् मैं उनके पास बैठ गया; न जाने क्यों वे महात्मा मुझसे बातें करने लगे। इसी समय मैंने उनसे उनके साधु होनेका कारण पूछा—तो उन्होंने काफी आग्रह करनेपर निम्न शब्दोंमें बतलाया—

'मैं कलकत्तेका एक महाजन था। मैं अपनी छोटी बहिनके साथ, जो उस समय १७ वर्षकी थी, एक अन्धकार-मय, छोटे मकानमें रहता था। खोमचेका काम करनेपर मैं इतने थोड़े पैसे कमा पाता था कि उदरपूर्ति नहीं होती थी। जीवन दुखी तथा संकटमय था।

'भगवान्‌की लीला अद्भुत है। एक रात्रिको जब हम दोनों भाई-बहिन सोनेवाले ही थे कि एक पंजाबीने मकानमें प्रवेश करते हुए रात्रिनिवासकी अनुमति माँगी। पर्याप्त अनुनय-विनयके पश्चात् हमने उसे स्वीकृति दी तथा तीनों उस तंग मकानमें सो गये तथा स्वप्नोंके संसारमें पहुँच गये। लगभग रात्रिके ११ बजे मेरी बहिनने मुझे जगाया और नोटोंका बंडल देकर कहा—'मैंने इस सम्पत्तिको उस अतिथिको मारकर प्राप्त किया है, जिससे कि हमारा जीवन सुखमय व्यतीत हो सके।' यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया, परंतु पुलिसके भयसे मैंने शीघ्र ही एक गहरा गड्ढा खोदा और पंजाबीकी लाशको उसमें रखकर मिट्टीसे दबाकर अदृश्य कर दिया। इसके अतिरिक्त चारा ही क्या था·····

'शनैः-शनैः उस सम्पत्तिसे मेरा कारोबार बढ़ा और मैं एक अच्छा व्यापारी हो गया। मेरी बहिन, इससे पहले ही कि मैं उसका विवाह कर पाता, स्वर्ग सिधार गयी। परंतु अवस्था अधिक होनेपर भी मेरा विवाह हो गया और पुत्र भी उत्पन्न हुआ। कालान्तरमें मेरी पत्नी भी चल बसी।

'भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध होनेके कारण मेरा पुत्र (जो मेरी एक कल्पनामात्र था) दूजके चन्द्रमाकी तरह विकसित होने लगा। नवयुवक होनेपर मैंने उसका एक धनी परिवारकी सुशीला लड़कीके साथ विवाह-संस्कार कर दिया। परंतु विवाहके दो वर्ष पश्चात् मेरे पुत्रको रोगने इस प्रकार आ घेरा कि मैं उसकी चिकित्सा कराते-कराते सम्पूर्ण संचित धन-सम्पत्तिसे हाथ धो बैठा, मकान भी दूसरोंके हाथमें चला गया। परंतु बीमारी कम न हुई। निराश हो एक दिन मैं पुत्रके पास बैठकर आँसू बहाने लगा। पुत्र हँसा और बोला—'क्या अब आपके पास कुछ भी नहीं रहा है ! तो मैं इस संसारमें कल नहीं रहूँगा।' मैंने प्यारसे पूछा—'बेटा ! ऐसा क्यों··तथा यह नवयुवती वधू मेरे सामने विधवा होकर रहेगी तो मैं कैसे सहन··।' कहते-कहते मेरा गला रुँध आया। लड़केने कहा—'मैं वही पंजाबी हूँ जिसका कल आपकी बहिनके हाथ हुआ था तथा मेरी यह पत्नी आपकी वही बहिन है। अब मैं इस संसारसे इसका लोक तथा परलोक बिगाड़कर मुख मोड़ता हूँ। मैंने अपनी सम्पत्ति इलाजके रूपमें खर्च कराके वसूल पायी और आप पहलेकी भाँति निर्धन हो गये।'

मुझे उसकी बातोंपर आनेवाले कल ही विश्वास आ गया, जब कि मेरा बेटा मुझे तथा पत्नीको संसारमें दीन तथा निःसहाय बनाकर संसारसे चल बसा। मुझे प्रेरणा मिली। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने गृह त्यागकर ईश्वरकी शरण ली और अब भगवद्भजनमें समय बिता रहा हूँ। अब मेरी अवस्था ९५ वर्षकी हो गयी है। यही है मेरे साथ पंजाबीका प्रतिशोध तथा मेरे साधु होनेका कारण।'

यह साधु श्रीशर्माजीको दिसम्बर ५७ में मिला था। काफी आग्रह करनेपर भी साधुने नाम-पता अज्ञात ही रक्खा। अब ज्ञात नहीं वह साधु जीवित है अथवा नहीं।

—ओम्प्रकाश चौहान

(३)

छोटी-सी लड़कीकी समयसूचकता

मेरे मित्रके पिताजी एक बार कलकत्तेसे बंबई आनेके लिये हवड़ा मेलमें सवार हुए। उस समय जो घटना हुई, उसे उन्हींके शब्दोंमें यहाँ लिख रहा हूँ—

मैं कलकत्तेसे बंबई जाते समय हवड़ा मेलमें सवार हुआ। सारी गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी। ठीक समयपर गाड़ी खुल गयी। बरसातका मौसिम था। बहुत वर्षा हो रही थी। पर गाड़ी इसकी चिन्ता किये बिना ही दौड़ी चली जा रही थी।

अचानक इंजिन-ड्राइवरकी दृष्टि दूर हवामें हिलती हुई लालटेनपर पड़ी। उसे कुछ जोखिमकी निशानी प्रतीत हुई। गाड़ी धीमी हुई; स्टेशन नहीं था, पर गाड़ी खड़ी हो गयी। यात्रियोंने बाहर मुँह निकाले। इंजिनवाले तथा बहुत-से यात्री उतरकर दूर, जहाँ लालटेन दीख रही थी, जा पहुँचे। देखा तो एक दस वर्षकी लड़की हाथमें लालटेन लिये खड़ी थी।

लोगोंने पूछा—'बेटी! क्या बात है, गाड़ी क्यों रुकवायी?' उसने कहा—'देखो, आगे वह पुल टूट गया है। मेरे पिताको इस समय बुखार आनेसे वे सिग्नल नहीं दे सके, इससे उनके बदले मैंने आकर लालटेन दिखाकर गाड़ी रुकवायी।'

इस बातको सुनकर सभीने लड़कीकी बहादुरी तथा कर्तव्यपालनके लिये उसे शाबाशी दी। तदनन्तर फर्स्टक्लासमें बैठे हुए एक डॉक्टरने आकर उसके पिताके इलाजकी व्यवस्था की और गाड़ी वापस कलकत्ते लौटी। (अखण्ड आनन्द)

—नलिन सी. बैंकर

(४)

'गजेन्द्र-स्तवन'से संकट-मुक्ति

आजसे कई माह पूर्व एक दिन मुझे 'मालवीयजी महाराजके द्वारा प्रशंसित लेख' गीताप्रेस, गोरखपुर-मुद्रणालयसे मुद्रित गजेन्द्र-स्तवनका मिला, जिसमें महान् संकटसे त्राण पानेकी प्रशंसा की गयी थी। मैंने भी लिखे मुताबिक उसे अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लिया, इसलिये कि विपत्कालमें इसकी शक्ति देखूँगा। प्रभुकी इच्छासे थोड़े दिनों पूर्व मैं संकटमें फँस ही तो गया। तब इस महान् अस्त्रका ४ बजे रात और निरन्तर हृदयसे उच्चारण करके प्रयोग किया। मुझे संकटसे छुटकारा मिलनेकी आशा नहीं थी; परंतु आखिरकार मैं इस स्तवनके प्रतापसे संकटसे मुक्त होकर प्रसन्न हूँ।

—रामायण पाण्डेय

(५)

दाद-खाजकी अनुभूत दवा

मूलीका बीज पानीमें पीसकर आगपर खूब गरम कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसे उस स्थानपर, जहाँ दाद-खाज हो, खूब गरम-गरम लगा देना चाहिये। पहले दिन तो मूलीका बीज खूब लगेगा और मरीजको थोड़ा कष्ट भी होगा; किंतु याद रखना चाहिये कि दवा जितनी जोरोंसे लगेगी उतना ही अधिक फायदा होगा। दूसरे दिन भी यही प्रयोग करना चाहिये। दूसरे दिन पहले दिनकी अपेक्षा कम तकलीफ होगी और इसी प्रकार तीन-चार दिनोंके प्रयोगसे दाद-खाज, चाहे जैसा भी पुराना हो, जड़से आराम हो जायगा। यह मेरी अनुभूत दवा है। आशा है 'कल्याण'के पाठक एवं पाठिकाएँ इससे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगी।

—जयकान्त झा, प्रधान लिपिक, हरिश्चन्द्र कालेज, वाराणसी

कण्टक न सींचा कर

(रचयिता—महात्मा श्री'निरञ्जन'जी)

प्रबुध प्रभाकर प्रासाद प्रभा पुंज छोड़ि अबुध तमिस्रा तमतोम ना बसेरा कर।
भव भय हारी भव्य भागीरथी-वारि छोड़ि खारी मलिन नारी नीर से न तिरखा हर॥
पुनित पीयूष पयोधर पय अम्ब! छोड़ि कुलिश कठोरी कठ-चूसनी न चूसा कर।
अलख 'निरंजन' मुरभंजन चरण कंज पाकर, कदंब, अंब, कंटक न सींचा कर॥

प्रेषक—श्रीजगदीशनारायण शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र]

वर्ष ३४

संवत् २०१६–२०१७ वि०

सन् १९६० ई०

की

निबन्ध, कविता

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार] * [प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे)
विदेशोंके लिये १०.०० [१५ शिलिंग]
प्रतिसंख्या .४५ (पैंतालीस नये पैसे)

क—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवतकी विषय-सूची

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पातालका वर्णन ...	४४६
२	आदिगौ सुरभीदेवीका उपाख्यान ...	५७८
३	इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी, भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाके द्वारा हयग्रीवरूपकी, हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी, केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी और रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना	४३०
४	ऋषिगण तथा सूतजीका संवाद, देवीभागवतकी महिमा	२५
५	कंसके हाथ मारे जानेवाले देवकीके छः बालकोंके पूर्वजन्मोंकी कथा तथा देवताओं और दानवोंके अंशावतारका वर्णन ...	२०५
६	कलियुगके भावी चरित्रका, कालमानका तथा गोलोककी श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन ...	४७८
७	कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग ...	६२१
८	कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीके द्वारा श्रीकृष्णको नन्दभवनमें पहुँचाना, योगमायाके द्वारा कंसको चेतावनी, नवजात बालकोंको मारनेके लिये कंसका राक्षसोंको आदेश, श्रीकृष्णावतारका संक्षिप्त चरित्र—नन्दोत्सवसे लेकर प्रद्युम्नके जन्मतककी कथा	२०७
९	(श्री)कृष्णका शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीके द्वारा श्रीकृष्णको वरदान	२१२
१०	कौरव-पाण्डवोंका संक्षिप्त इतिहास, युद्धमें प्रायः सभीका संहार, व्यासजीके द्वारा श्रीभुवनेश्वरीकी कृपासे गान्धारी, कुन्ती, उत्तरा आदिको मृत सम्बन्धियोंके दर्शन, भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामका अन्तर्धान, पाण्डवोंका हिमालय-प्रवेश, परीक्षित्को राज्य-प्राप्ति और ब्राह्मण-कुमारका शाप	८९
११	गङ्गाकी उत्पत्तिका विस्तृत प्रसङ्ग ..	४८५
१२	गङ्गाके ध्यान और स्तवनका वर्णन और श्रीराधा-कृष्णके अङ्गसे ही गङ्गाका प्रादुर्भाव	४८८
१३	(श्री) गायत्रीका ध्यान और गायत्री-कवचका वर्णन	६२६
१४	गायत्रीके अनुग्रहसे गौतमके द्वारा असंख्य ब्राह्मण-परिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान	६५८
१५	गायत्रीपुरश्चरण और प्राणाग्निहोत्रकी विधि	६१५
१६	गायत्री-महिमा तथा पूजा-विधि ...	६०९
१७	(श्री) गायत्री-सहस्रनाम ...	६३१
१८	गायत्री-हृदयन्यास और गायत्री-स्तोत्र ...	६२८
१९	चण्ड-मुण्डका निधन तथा रक्तबीजके साथ देवीकी बातचीत	२६७
२०	चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी गतिका, शिशुमार-चक्रका तथा राहुमण्डलादिका वर्णन ...	४४३
२१	चाण्डालकी आज्ञासे हरिश्चन्द्रका श्मशानघाटपर जाना	३८६
२२	चिक्षुराख्य, ताम्राक्ष, असिलोमा और विडालाक्षका वध	२४१
२३	च्यवनको नेत्रयुक्त तरुण देखकर शर्यातिका संदेह, संदेह-भङ्ग, शर्यातिके द्वारा यज्ञानुष्ठान और उसमें च्यवनकी कृपासे अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकार प्राप्त होना, राजा रेवतका ब्रह्मलोकमें जाना	३५९
२४	जगदम्बाके दुर्गा, शताक्षी और शाकम्भरी नामोंका इतिहास; महागौरी, महालक्ष्मीके अन्तर्धान तथा पुनः प्राकट्यकी कथा; सिद्ध-पीठोंका वर्णन	३९५
२५	जगदम्बिकाके द्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरके लिये महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकालीको अर्पण करके उनको कार्य करनेका आदेश ...	१११
२६	जनमेजय और व्यासजीके अवतारविषयक प्रश्नोत्तर, कश्यपजीको वरुण और ब्रह्माका शाप तथा अदितिको दितिका शाप ...	१६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७–जनमेजयका प्रश्न, श्रीव्यासजीके द्वारा देवीके मणिद्वीप पधारने तथा राजा शत्रुघ्नके राज्यकी सर्वोत्तम स्थितिका वर्णन ... २५४

२८–जनमेजयका राज्याभिषेक, उत्तङ्कके अनुरोधसे सर्पयज्ञका आयोजन, आस्तीकको वचन देनेके कारण जनमेजयके द्वारा सर्पयज्ञकी समाप्ति और आस्तीकके जन्मका इतिहास ... ९८

२९–जनमेजयका श्रीव्यासजीसे प्रधान देवता तथा ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति एवं स्वरूपके सम्बन्धमें प्रश्न, ब्रह्माजीके द्वारा नारदजीके प्रति भगवती आद्याशक्तिके प्रभावका वर्णन, श्रीदेवीजीके द्वारा दिये हुए विमानपर श्रीब्रह्मा, विष्णु-महेशका विविध लोकोंमें गमन तथा वहाँके विलक्षण दृश्योंको देखते हुए अन्तमें भगवतीके दिव्य द्वीपमें पहुँचना १०३

३०–जनमेजयके द्वारा अम्बायज्ञ तथा देवीभागवत-की महिमा ६७०

३१–जनमेजयके पूछनेपर व्यासजीके द्वारा मायाकी महिमाका कथन १७३

३२–जनमेजयके पूछनेपर व्यासजीके द्वारा भगवान्-के विविध अवतारोंका वर्णन तथा नारायण-के आश्रमपर आयी हुई अप्सराओंका पूर्व-वृत्तान्त १९६

३३–जनमेजयके प्रश्न करनेपर श्रीव्यासजीके द्वारा देवीकी महिमाका कथन; राजा ध्रुवसंधिकी कथा, अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें राजा युधाजित् और वीरसेनका विवाद एवं युधाजित् और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु; मनोरमाका पुत्र सुदर्शनको लेकर मन्त्री विदल्लके साथ मुनि भरद्वाजके आश्रममें गमन और भरद्वाजके द्वारा उसे आश्रयदान १२९

३४–तामिस्र आदि नरकोंका वर्णन ... ४४९

३५–ताम्रका भागकर लौट आना, महिषासुरका मन्त्रियोंके साथ परामर्श करना और वाष्कल तथा दुर्मुखको भेजना, देवीके द्वारा वाष्कल और दुर्मुखका वध २३६

३६–तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा हिमालयके घर देवीका प्राकट्य; हिमालयकी प्रार्थनापर देवीका ज्ञानोपदेश प्रारम्भ ४०२

३७–तीन प्रकारके यज्ञ, मानसयज्ञकी महत्ता और जनमेजयसे देवी-यज्ञ करनेके लिये व्यासजीकी प्रेरणा १२४

३८–तुलसीके कथाप्रसङ्गमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन ४९७

३९–तुलसीके साथ शङ्खचूड़का गान्धर्व-विवाह तथा देवताओंके प्रति उसके पूर्वजन्मका स्पष्टीकरण ५०६

४०–तुलसीको स्वप्नमें शङ्खचूड़के दर्शन और शङ्खचूड़ तथा तुलसीके विवाहके लिये ब्रह्माजीका दोनोंको आदेश ५०३

४१–तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसी-स्तवनका वर्णन ५२१

४२–त्रिविध कर्म, युगधर्म, तीर्थ, चित्तशुद्धि, तीर्थकी महत्ता और वशिष्ठ-विश्वामित्रके कलहका वर्णन ३०६

४३–त्रिविध साहित्य तथा त्रिविध श्रवणका विवेचन करते हुए पुराणकी श्रेष्ठताका प्रति-पादन, मधु-कैटभको देवीका वरदान, भगवान् विष्णुका योगनिद्राके अधीन होना, ब्रह्माजीके द्वारा देवीकी स्तुति और भगवान् विष्णुका योगनिद्रासे जागरण ... ४९

४४–त्रिशंकुपर विश्वामित्रकी कृपा, विश्वामित्रके तपोबलसे त्रिशंकुका सदेह स्वर्गगमन, हरिश्चन्द्रकी कथा ३७२

४५–दीक्षा-विधि ६५०

४६–देवताओंका बृहस्पतिजीसे परामर्श, बृहस्पति-की सम्मतिके अनुसार कार्यसम्पादन, इन्द्राणी-पर देवीकी कृपा, नहुषका मुनियोंकी पालकी-पर सवार होना और मुनिके शापसे नहुषका पतन तथा उसे सर्पयोनिकी प्राप्ति ... ३०२

४७–देवताओंका विजयगर्व, अग्नि और वायुकी तृणको जलाने-उड़ानेमें असमर्थता, इन्द्रको भगवती उमाके दर्शन और उमाके द्वारा ज्ञानोपदेश ६५५

४८–देवताओंकी शक्तियोंका प्राकट्य और महायुद्ध तथा रक्तबीज-वध २७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४९–देवताओंके साथ दैत्योंका युद्ध और हारे हुए दैत्योंको शुक्राचार्यके द्वारा अभयदान, शंकरकी तपस्या, देवताओंका दैत्योंपर आक्रमण, दैत्योंका शुक्रमाताकी शरणमें जाना, शुक्रमाताका देवताओंको निद्रावश कर देना, भगवान् विष्णुके सुदर्शन-चक्रसे शुक्रमाताका वध १८४

५०–देव-दानव-युद्ध और देवीके द्वारा देवासुर-संग्रामका निवारण १९४

५१–देवीका अपना विराट् रूप दिखाना तथा पुनः सौम्य रूपमें प्रकट हो जाना, तदनन्तर हिमालयको पुनः ज्ञानोपदेश करना ... ४०७

५२–देवीका हिमालयको ज्ञानोपदेश–विविध योगोंका वर्णन ४११

५३–देवीकी उपासनाके प्रसङ्गका वर्णन ... ४५३

५४–देवीकी महिमाका वर्णन तथा श्रीकृष्णावतारके कथा-प्रसङ्गमें वसुदेवजीकी बुद्धिमत्तासे देवकीकी कंसकी तलवारसे रक्षा, देवकीके बालकका कंसके द्वारा मारा जाना ... २०१

५५–देवीके द्वारा ज्ञानोपदेश—भक्तिका प्रकार तथा ज्ञान-प्राप्तिकी महिमा ... ४१५

५६–देवीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों, उत्सवों तथा पूजनके प्रकारोंका वर्णन ... ४१६

५७–देवीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्म-स्वरूपका वर्णन ४१३

५८–देवी-पूजनके विविध प्रसङ्गोंका संक्षिप्त वर्णन ४१८

५९–देवीभागवतके माहात्म्य-प्रसङ्गमें जाम्बवान्के यहाँसे श्रीकृष्णके मणि प्राप्त करने तथा जाम्बवतीसे विवाह करके द्वारका लौटनेकी कथा २७

६०–देवीभागवतके माहात्म्य-प्रसङ्गमें मुनिके शापसे रेवती नक्षत्रके पतन, पर्वतसे रेवती नामकी कन्याके प्रादुर्भाव, ऋषि प्रमुचके द्वारा उसके पालन तथा राजा दुर्दमके साथ उसके विवाहकी एवं रेवती नक्षत्रके पुनः स्थापनकी कथा ... ३२

६१–देवीभागवतके माहात्म्य-प्रसङ्गमें राजा सुद्युम्नके स्त्री बनने और श्रीमद्देवीभागवत-श्रवणके फलस्वरूप सदाके लिये पुरुष बनकर राज्य-लाभ और परमपद प्राप्त करनेकी कथा ... ३०

६२–(श्रीमद्) देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणके महान् फल तथा माहात्म्यका वर्णन ३५

६३–देवी षष्ठीके ध्यान, पूजन एवं स्तोत्र तथा विशद महिमाका वर्णन ... ५६८

६४–धूम्रलोचन और देवीका संवाद तथा धूम्रलोचन-वध २६२

६५–नरककुण्डों और उनमें जानेवाले पापियों तथा पापोंका वर्णन ५३५

६६–(श्री) नर-नारायणको तपसे डिगानेमें इन्द्रकी असफलता और इन्द्रके द्वारा कामदेव एवं वसन्तका अप्सराओंसहित वहाँ भेजा जाना, नारायणके द्वारा उर्वशी आदिकी उत्पत्ति और नारायणके साथ अप्सराओंका संवाद ... १७५

६७–नवरात्रव्रतके प्रसङ्गमें श्रीरामचरित्रका वर्णन १६१

६८–नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका, त्रिविध सृष्टिका तथा गुणादिका वर्णन ... ११४

६९–नारदद्वारा भगवान् अनन्तका यशोगान तथा नरक-नामावली ४४८

७०–नारायणसे नरकी बातचीत, च्यवन-प्रह्लाद-संवाद, प्रह्लादका नैमिषारण्य-गमन तथा प्रह्लादके साथ नारायणका युद्ध ... १७९

७१–निशुम्भ और शुम्भका निधन ... २७५

७२–पञ्चदेवोपासकोंके नरकमें न जानेका कथन तथा छियासी प्रकारके नरककुण्डोंका विशद परिचय ५४२

७३–पञ्चविध प्रकृतिका स्पष्टीकरण तथा अंश, कला एवं कलांशका विशद विवेचन ... ४५६

७४–परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवी और देवताओंके चरित्र ... ४६१

७५–परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी श्रीराधासे प्रकट विराट्-स्वरूप बालकका वर्णन ... ४६६

७६–पुष्पदन्तका दूत बनकर शङ्खचूड़के पास जाना और शङ्खचूड़के द्वारा तुलसीके प्रति ज्ञानोपदेश ५०८

७७–पूजा-विधि एवं फलश्रुति ... ४२०

७८–पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, ध्यान और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनका प्रकार तथा स्तुति एवं पृथ्वीके प्रति शास्त्र-विपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन ४८२

७९–प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन ... ६१८

८०–प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, काक और पुष्कर द्वीपोंका वर्णन ... ४३८

८१–ब्रह्माजीका भगवतीके चरणनखमें समस्त देवता, लोक आदिको देखना तथा भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर और ब्रह्माके द्वारा भगवती जगदम्बिकाकी स्तुति ... १०८

८२–भगवतीका विन्ध्यगिरिपर पधारना, विन्ध्यके प्रति नारदजीके द्वारा सुमेरुकी महिमाका कथन, विन्ध्यके द्वारा सूर्यका मार्गावरोध, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास गमन, भगवान् विष्णुकी सम्मतिसे देवताओंका काशीमें अगस्त्य मुनिकी शरणमें जाना और अगस्त्यजी-की कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना ... ५८४

८३–भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य, देवीकी कालिकारूपमें परिणति, देवताओंको आश्वासन, शुम्भ-निशुम्भको देवीके पधारने-का संवाद प्राप्त होनेपर उनका मन्त्रियोंसे परामर्श, शुम्भके द्वारा प्रेरित दूत सुग्रीवसे जगदम्बाकी बातचीत ... २६०

८४–भगवती चण्डिकाद्वारा महिषासुरका वध तथा देवताओंके द्वारा जगदम्बाकी स्तुति ... २४९

८५–भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग ... ५०२

८६–भगवती दक्षिणाके प्राकट्यका प्रसङ्ग, उनका ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तोत्र-वर्णन एवं चरित्र-श्रवणकी फलश्रुति ... ५६५

८७–भगवती देवीकी कृपासे मूर्ख उतथ्यके महान् पण्डित सत्यव्रत ब्राह्मण बन जानेकी कथाका आरम्भ, अनायास सारस्वत मन्त्रके उच्चारणसे भगवतीकी महती कृपा ... ११९

८८–भगवती भुवनेश्वरीके स्वरूप, महत्त्व और गुणोंकी अनिर्वचनीयता ... ५४७

८९–भगवती मङ्गलचण्डी और मनसादेवीका उपाख्यान ५७०

९०–भगवती महालक्ष्मीके प्राकट्य तथा विभिन्न व्यक्तियोंसे उनके पूजित होनेका तथा दुर्वासा-के शापसे महालक्ष्मीके देवलोक-त्याग और इन्द्रके दुखी होकर बृहस्पतिके पास जानेका वर्णन ... ५५१

९१–भगवती लक्ष्मीका समुद्रसे प्रकट होना और इन्द्रके द्वारा महालक्ष्मीका ध्यान तथा स्तवन किये जाने और पुनः अधिकार प्राप्त किये जानेका वर्णन ५५५

९२–भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन ... ५७९

९३–भगवती स्वाहा तथा भगवती स्वधाका उपाख्यान, उनके ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तोत्रोंका वर्णन ... ५६१

९४–भगवान्‌के मुखारविन्दसे भक्तोंके महत्त्व और लक्षणोंका विशद वर्णन ... ४७६

९५–भगवान् विष्णु और महालक्ष्मीका तथा भगवान् विष्णु और ब्रह्माका संवाद, व्यासजीके द्वारा शुकदेवजीसे जनकजीके पास मिथिलापुरी जाकर संदेह-निवारण करनेका अनुरोध और शुकदेवजीका जानेके लिये प्रस्तुत होना, श्रीशुकदेवजीका मिथिलापुरी-में पहुँचकर नगरके द्वारपालको उपदेश देना, महलके द्वारपर रोके जानेके बाद उनका विलास-भवनमें पहुँचना तथा प्रत्येक स्थितिमें निर्विकार रहना ६६

९६–भगवान् विष्णुको भृगुका शाप, शुक्रमाता या भृगुपत्नीका पुनर्जीवन, इन्द्र-कन्या जयन्तीके द्वारा तपनिरत शुक्राचार्यकी सेवा, बृहस्पति-का शुक्राचार्य बनकर दैत्योंको छलना, दैत्योंके द्वारा शुक्राचार्यका तिरस्कार, शुक्राचार्यके द्वारा दैत्योंको शाप, दैत्योंका पुनः शुक्राचार्यकी शरणमें जाना तथा शुक्राचार्यका प्रसन्न होना ... १८८

९७–भगवान् विष्णुकी सम्मतिसे देवताओंके द्वारा तेजःप्रदान तथा उस सम्मिलित तेज-समूहसे भगवतीका प्राकट्य, देवताओंके द्वारा देवीको आयुध-आभरणादि दान और महिषासुरकी आज्ञासे उसके मन्त्रीका देवीके पास जाना २२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९८–भगवान् विष्णुके द्वारा महामायाका महत्त्व-वर्णन, व्यासजीके द्वारा जनमेजयके प्रति भगवतीकी महिमाका कथन ... ३४४

९९–भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारका कारण तथा 'हयग्रीव' स्वरूपसे 'हयग्रीव' दानवका वध ४५

१००–भगवान् विष्णुद्वारा अम्बिका-यज्ञ और आकाश-वाणी ... १२७

१०१–भगवान् शंकर और शङ्खचूड़के पक्षोंमें घोर युद्ध, शंकर और शङ्खचूड़का युद्ध, शंकरके छोड़े हुए त्रिशूलसे शङ्खचूड़का भस्म होना और सुदामा गोपके स्वरूपमें विमानद्वारा गोलोक पधारना ... ५१४

१०२–भगवान् शंकरद्वारा लक्ष्मीको वरदान, अश्वरूप बने हुए भगवान् विष्णुके द्वारा अश्वीरूपा लक्ष्मीको पुत्रकी प्राप्ति, लक्ष्मीका पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त होना ... ३२१

१०३–भाराक्रान्त पृथ्वीका भगवान्‌की शरणमें जाना, योगमायाका आश्वासन देना ... १९८

१०४–भीष्म-प्रतिज्ञा तथा सत्यवतीके साथ शंतनुके विवाह और कौरव-पाण्डवोंके जन्मकी कथा ८४

१०५–भूतशुद्धि, भस्म-माहात्म्य तथा प्रातः-संध्याका वर्णन ६०४

१०६–भूमण्डलके विस्तारका और आम्र, जाम्बू, कदम्ब एवं वटवृक्षके फलोंके रससे प्रकट हुई नदियोंका वर्णन तथा गङ्गाजीके अवतरण-का वृत्तान्त ४२६

१०७–मणिद्वीपका वर्णन ६६२–७०

१०८–मधु-कैटभके साथ भगवान् विष्णुका युद्ध, भगवतीकी स्तुतिसे भगवान्‌के द्वारा मधु-कैटभका सम्मोहन और भगवान् विष्णुके द्वारा उनका वध ५४

१०९–मध्याह्न-संध्या, तर्पण और सायं-संध्याका वर्णन ६१३

११०–महिषासुर आदिके साथ भगवान् विष्णु और शंकरका भीषण युद्ध; भगवान् विष्णु, शंकर और ब्रह्माका स्वधाम लौट जाना; इन्द्रादि देवताओंकी पराजय और इन्द्रका ब्रह्माजी तथा शिवजीको साथ लेकर वैकुण्ठमें भगवान्‌के समीप गमन २२३

१११–महिषासुरका देवीके सामने जाकर उनसे संग्राम करनेका प्रस्ताव, इसी प्रसङ्गमें मन्दोदरीका इतिहास कहना २४५

११२–महिषासुरका सामना करनेके विषयमें इन्द्रका देवताओंसे तथा गुरु बृहस्पतिजीसे परामर्श एवं बृहस्पतिजीका इन्द्रके प्रति उपदेश, इन्द्रका भगवान् ब्रह्मा, शंकर तथा विष्णुके पास जाना और इन्द्रादि देवताओंका महिषासुर, विडाल और ताम्रके साथ युद्ध ... २१९

११३–महिषासुरके मन्त्रीके साथ देवीकी बातचीत और मन्त्रीका लौटकर महिषासुरको देवीका संदेश कहना, महिषासुरका मन्त्रियोंसे परामर्श और महिषासुरके द्वारा ताम्रको देवीके पास भेजा जाना २३१

११४–मुनि नारदको मायावश स्त्रीके रूपकी प्राप्ति, राजा तालध्वजसे विवाह, अनेकों पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति, सबका मरण और शोक, भगवत्कृपासे नारदजीको पुनः स्वरूप-प्राप्ति ... ३३९

११५–याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति ... ४७२

११६–रम्भ-करम्भकी कथा तथा महिषासुर और रक्तबीजकी उत्पत्ति, महिषासुरके द्वारा इन्द्रके पास दूत भेजा जाना, दूतका लौटना और महिषासुरका देवताओंपर आक्रमण करनेके लिये दैत्योंको प्रोत्साहन देना ... २१५

११७–राजकुमार सुदर्शनको मारनेके लिये युधाजित्‌का भरद्वाजाश्रमपर जाना, मुनिसे मनोरमा तथा सुदर्शनको बलपूर्वक छीन ले जानेकी बात कहना तथा मुनिका रहस्यभरा उत्तर देना, भरद्वाजकी बात सुनकर मन्त्रीकी सम्मतिसे युधाजित्‌का लौट जाना तथा कामबीज मन्त्रके प्रभावसे सुदर्शनका जगदम्बिकाकी कृपा प्राप्त करना १३३

११८–राजकुमारी एकावलीका चरित्र, एकावलीका कालकेतुके द्वारा हरण, एकवीरके द्वारा काल-केतुका वध और एकावली-एकवीरका विवाह ३२९

११९–राजकुमारी शशिकलाका सुदर्शनको मनमें वरण करना, काशीराज-रानीका कन्याको समझाना, कन्याका सुदर्शनसे विवाह करनेका निश्चय प्रकट करना, सुदर्शनका तथा अन्यान्य राजाओंका स्वयंवरमें पहुँचना १३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२०–राजा अश्वपतिद्वारा सावित्रीकी उपासना तथा फलस्वरूप सावित्री नामक कन्याकी उत्पत्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद ... ५२६

१२१–राजा जनक और शुकदेवजीके प्रश्नोत्तर, राजा जनकके उपदेशसे शुकदेवजीकी शङ्काका निराकरण, व्यासजीके पास लौटनेके बाद उनका विवाह, चार पुत्र तथा एक कन्याकी उत्पत्ति, कन्याके विवाह और संतानका वर्णन, शुकदेवजीका गृहत्याग और व्यासजीका विषाद, श्रीशंकरजीका अनुग्रह, व्यासजीको शुकदेवका प्रतिबिम्बदर्शन ७०

१२२–राजा महाभिष और गङ्गाजीको ब्रह्माजीका शाप, महाभिषकी शंतनुके रूपमें उत्पत्ति तथा शंतनुके राज्यपदपर प्रतिष्ठित होने, शंतनुके साथ गङ्गाजीके विवाह और वसुओंके उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न होने, उनके गङ्गा-प्रवाह किये जाने तथा भीष्मके उत्पन्न होनेपर गङ्गाके चले जानेकी कथा ८०

१२३–राजा रेवतका ब्रह्माजीके पास जाना और उनकी सम्मतिसे रेवती-बलरामका विवाह, इक्ष्वाकुवंशका तथा यौवनाश्वकी दक्षिण कुक्षिसे मान्धाताके जन्मका वर्णन ... ३६३

१२४–राजा शर्यातिकी कथाका आरम्भ, सुकन्याके द्वारा महर्षि च्यवनके नेत्रोंका छेदा जाना, महर्षिके कोपसे शर्यातिका ससैन्य अस्वस्थ होना, च्यवनका अपने साथ सुकन्याका विवाह करनेके लिये कहना और सुकन्याकी प्रसन्नतासे च्यवनके साथ उसका विवाह ३५०

१२५–राजा सुरथ और समाधि वैश्यका सुमेधामुनिके आश्रमपर गमन और सुमेधाके द्वारा देवी-महिमाका वर्णन २८०

१२६–राजा हरिश्चन्द्र और रानी शैब्याका परस्पर परिचय, शरीरत्यागकी तैयारी, देवताओंका आगमन और हरिश्चन्द्रका अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्गगमन ३९०

१२७–राजा हरिश्चन्द्रपर विश्वामित्रका कोप तथा विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर हरिश्चन्द्र-का राज्यदान, दक्षिणाके लिये हरिश्चन्द्रके साथ विश्वामित्रका दुर्व्यवहार ... ३७५

१२८–(श्री)राधाजीका गङ्गापर रोष, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, श्रीराधाके भयसे गङ्गाका श्रीकृष्णके चरणोंमें छिप जाना, जलाभावसे पीड़ित देवताओंका गोलोकमें जाना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गङ्गाका प्रकट होना, देवताओंके प्रति श्रीकृष्णका आदेश तथा गङ्गाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसङ्ग ४९२

१२९–रुरुके द्वारा आधी आयु देनेपर प्रमद्वराका पुनः जीवित होना, तक्षकके द्वारा धन प्राप्त करनेपर मन्त्रविद् कश्यपका लौट जाना, फलके अंदर कीड़ेके रूपमें पैठकर तक्षकका परीक्षित्‌के पास पहुँचकर उन्हें काटना और परीक्षित्‌की मृत्यु ९३

१३०–लक्ष्मीपुत्र एकवीरका चरित्र ... ३२५

१३१–लोकालोक पर्वतकी व्यवस्था तथा सूर्यकी गति-का वर्णन ४४१

१३२–वशिष्ठजीके मैत्रावारुणि नामका कारण और निमिके नेत्र-पलकोंमें रहनेकी कथा ... ३११

१३३–विश्वामित्रकी दक्षिणा चुकानेके लिये राजा हरिश्चन्द्रका काशीगमन, रानीसे बातचीत, ब्राह्मणके हाथ रानी और राजकुमारका विक्रय ३७९

१३४–विष्णुपत्नी लक्ष्मी, सरस्वती एवं गङ्गाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना ... ४७४

१३५–वृत्रासुरका वध, ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका मानसरोवरमें छिप जाना, नहुषको इन्द्रपदकी प्राप्ति और नहुषकी शचीपर आसक्ति ... २९८

१३६–वृत्रासुरकी तपस्या, वरप्राप्ति, वृत्रके द्वारा देवताओंपर विजय, वृत्रको मारनेकी योजना २९४

१३७–वृत्रासुरके द्वारा इन्द्रकी पराजय ... २९२

१३८–वृत्रासुरके प्रसङ्गमें ऋषियोंका प्रश्न, सूतजीका उत्तर, इन्द्रके द्वारा विश्वरूपका वध, त्वष्टाके यज्ञसे वृत्रका प्रादुर्भाव २८८

१३९–वेदवतीकी कथा, इसी प्रसङ्गमें भगवान् रामके चरित्रका एक अंश-कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त ... ४९९

१४०–वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, मेरुसावर्णि, सूर्यसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, रुद्रसावर्णि और विष्णुसावर्णि नामक मनुओंका वर्णन, अरुण-दानवके वरलाभ, देवविजय तथा भ्रामरीदेवीके द्वारा उसके निधनका वर्णन ... ५९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४१–व्यासजीका वनमें जाना, नारदजीका मिलना और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मामें हुए प्राचीन संवादका वर्णन करते हुए व्यासजीको देवीकी उपासना करनेके लिये कहना ... ४३

१४२–व्यासजीका सरस्वती नदीके तटपर निवास, शंतनुके कथा-प्रसङ्गमें भीष्मजीके द्वारा काशि-राजकी कन्याओंके हरण, चित्राङ्गदके मरण और विचित्रवीर्यके विवाह आदिकी कथा और व्यासजीके द्वारा संतानोत्पादनका प्रसङ्ग ... ७४

१४३–व्यासजीकी तपस्या और भगवान् शंकरका वरदान, राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीरूपमें परिणति, पुरूरवाकी उत्पत्ति, सुद्युम्नकी देवी-उपासना तथा भगवतीकी कृपासे सुद्युम्नको परमधामकी प्राप्ति, राजा पुरूरवाको उर्वशीकी प्राप्ति और प्रतिज्ञा-भंगके कारण उर्वशीका राजाको छोड़कर चले जाना ... ५७

१४४–व्यासजीके प्रति जनमेजयका सृष्टिविषयक प्रश्न ३४९

१४५–व्यासजीद्वारा नवरात्र-व्रत-विधिका वर्णन तथा पूजामें निषिद्ध कन्याओंका विवेचन, सुशील वैश्यको देवीकी प्रसन्नता-प्राप्ति ... १५६

१४६–व्यास-नारद-संवाद, नारद और पर्वतका परस्पर शाप-प्रदान, नारदको वानरमुखकी प्राप्ति और दमयन्तीसे विवाह, दोनों ऋषियोंका परस्पर शाप-मोचन तथा मेल ३३४

१४७–शङ्खचूड़का पुष्पभद्रा नदीके तटपर जाना, वहाँ भगवान् शंकरका दर्शन तथा उनसे विशद वार्तालाप ५११

१४८–शङ्खचूड़वेषधारी श्रीहरिद्वारा तुलसीका पातिव्रत्य-भङ्ग, शङ्खचूड़का पुनः गोलोक जाना, तुलसी और श्रीहरिका वृक्ष एवं शालग्राम-पाषाणके रूपमें भारतवर्षमें रहना तथा तुलसी-महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण तथा महत्त्वका वर्णन ... ५१७

१४९–शशिकलाका सुदर्शनके साथ विवाह, सुदर्शनका नवविवाहिता पत्नी शशिकलाको लेकर जाना, राजाओंसे संग्राम, देवीका प्राकट्य, देवीके द्वारा युधाजित् और शत्रुजित्का वध तथा सुबाहुके द्वारा देवीकी स्तुति १४८

१५०–शशिकलाके स्वयंवरमें राजाओंका परस्पर विवाद, शशिकलाका सुदर्शनसे विवाह करनेका पूर्ण निश्चय, राजाओंके कोलाहल करनेपर सुबाहुका शशिकलासे सम्मति लेना १४३

१५१–(श्री) शुकदेवजीका जन्म और व्यासजीके द्वारा विवाहके लिये कहे जानेपर शुकदेवजीका अस्वीकार करना, वटपत्रपर स्थित बालकरूप भगवान् विष्णुकी कथा ... ६२

१५२–शुम्भ-निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय, देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति और उनका प्राकट्य ... २५५

१५३–सत्यवतीकी उत्पत्ति तथा भगवान् व्यासके प्राकट्यकी कथा ७७

१५४–सत्यव्रतका त्रिशंकु नाम होनेका कारण, भगवतीकी कृपासे सत्यव्रतकी शापमुक्ति, सत्यव्रतका सदेह स्वर्ग जानेका आग्रह, वशिष्ठके द्वारा सत्यव्रतको शाप, हरिश्चन्द्रकी कथाका प्रारम्भ ३६७

१५५–सदाचारका वर्णन ५९८

१५६–सदाचारके विषयमें नारदजीका भगवान् नारायणसे प्रश्न, नारायणद्वारा गायत्रीकी प्रधानताका प्रतिपादन तथा गायत्रीके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द और देवताओंका एवं गायत्रीके वर्णोंकी शक्ति, रूप तथा मुद्राओंका वर्णन ६२५

१५७–सदाचार-वर्णन और रुद्राक्षका माहात्म्य-कथन ६०१

१५८–सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच ... ४६८

१५९–साँपके काटनेसे रोहितकी मृत्यु, रानीका विलाप और उनके प्रति चाण्डालका नृशंस व्यवहार ३८७

१६०–सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान ... ५२३

१६१–सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर तथा सावित्रीके द्वारा धर्मराजको प्रणाम-निवेदन ... ५३१

१६२–सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर, सावित्रीको वरदान ५२८

१६३–सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली शक्तियोंकी नामावली ३९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६४–सीताहरण और दैवके विषयमें राम-लक्ष्मणकी बातचीत, श्रीनारदजीद्वारा नवरात्र-व्रतोपदेश और श्रीरामका व्रत करना ... १६३
१६५–सुकन्याद्वारा च्यवनमुनिकी सेवा, अश्विनीकुमारोंका आगमन, उनके द्वारा च्यवन ऋषिको नेत्र तथा यौवनकी प्राप्ति ... ३५५
१६६–सुबाहुको देवीका वरदान और आदेश, सुदर्शनके द्वारा देवीकी स्तुति और देवीका वरदान, राजाओंके पूछनेपर सुदर्शनके द्वारा देवीकी महिमाका वर्णन, सुदर्शनके द्वारा अयोध्यापुरीमें देवीकी स्थापना, राज्याभिषेक और सुबाहुके द्वारा काशीमें दुर्गाजीकी प्रतिष्ठा १५२
१६७–सुमेधाके द्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन एवं सुरथ-समाधिकी तपस्या तथा देवी-कृपासे सुरथको राज्यलाभ और समाधिको ज्ञान-प्राप्ति २८४
१६८–सूतजी और शौनकजीका संवाद, शौनकजीकी प्रार्थनापर सूतजीके द्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोक-संख्याका कथन एवं उपपुराणों तथा अट्ठाईस व्यासोंके नाम; भागवतकी महिमा ३९
१६९–सृष्टिके आरम्भमें स्वायम्भुव मनुके द्वारा देवीकी स्तुति तथा वाराहावतारकी संक्षिप्त कथा ४२२
१७०–स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना और वर-प्राप्ति ... ५८३
१७१–स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका संक्षिप्त परिचय और सातों द्वीपोंके उत्थानका उपक्रम ४२५
१७२–स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामक मनुओंका वर्णन ... ५८९
१७३–हरिश्चन्द्रका चाण्डालके हाथ बिककर विश्वामित्रकी दक्षिणा चुकाना और चाण्डालके आज्ञानुसार श्मशानघाटका काम सँभालना ३८४
१७४–हिरण्मयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीदेवीके द्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी और भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासनाका वर्णन तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन ४३४
१७५–हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार, देवीकी कृपासे एक भार्गव ब्राह्मणीकी जाँघसे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति ... ३१७

निबन्ध-सूची

१–अध्यात्मकी भावनासे विश्वशान्ति सम्भव है (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्० डी०) ८११
२–अनुभूति (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न) ६९७
३–अन्नशुद्धि (श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम्०ए०, काव्यतीर्थ) ११७३
४–अपने उत्थानके प्रयत्नकी आवश्यकता (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... १२१९
५–अपने जीवनको दिव्य बनाइये (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी) ९१६
६–अपार धन-राशि आपको सुखी नहीं बना सकती (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०) ... १००६
७–अब ऐसे होगा मरना (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ८८०
८–अबेर तो हो ही रही है (श्रीवचनेशजी त्रिपाठी) १११९
९–अमर बननेके लिये (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) १३२९
१०–'अविभक्तं विभक्तेषु' (अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मलीन श्रीशंकरस्वामीजी श्रीशंकरतीर्थजी महाराज) ७७१
११–अव्यय ब्रह्मसंयोगका फल (अनन्तश्रीशंकरस्वामीजी श्रीशंकरतीर्थजी महाराज) ... ७०७
१२–असंस्कारीको संस्कारी बनाना (श्री 'सीकर') १११७
१३–आगामी अष्टग्रह आदिका भय और उससे बचनेके उपाय १३३३
१४–आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजीके सिद्धान्त (श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव, विष्णुस्वामी) ... ९१९
१५–आद्याशक्ति भगवती देवी और ब्रह्मकी एकता (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ११
१६–आध्यात्मिक स्तर-परम्परा (श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम) १०३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

१७–आन्तरिक परिपूर्णता (श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम, पांडिचेरीका उपदेश) ... ११९१
१८–आपका सर्वोत्तम समय और सबसे बड़ी सफलता भविष्यमें आनेवाली है (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ११११२
१९–आपको तीन प्रकारके कलुषित विचार दुखी बनाते हैं (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच० डी०) ... ११७०
२०–इस प्रभुकी वस्तुके द्वारा प्रभुका ही कार्य होता रहता है १२१२
२१–ईश्वर-कृपा (श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज) ८५४
२२–उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव) १०६३, ११२१, ११९३, १२५०, १३१३, १३८२
२३–एक महात्माका प्रसाद (पूज्य स्वामीजी श्रीशरणानन्दजीके जयपुरके एक प्रवचनके आधारपर) ... १२८३, १३४७
२४–एक साधकके उद्गार ... ७६१, ८६४
२५–एतद्वै तत् (श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालंकार) ७८८
२६–कबीरकी विरहिणी आत्मा (एक अज्ञात सत्यान्वेषक) १३०६
२७–कल्याण ('शिव') ३, ७०६, ७७०, ८३४, ८९८, ९६२, १०२६, १०९०, ११५४, १२१८, १२८२, ... १३४६
२८–कल्याण-योजना (श्रीविश्वम्भरदत्तजी गौड़, 'वसिष्ठ' एम्०ए०) ... ११३०
२९–कामके पत्र ... १०१८, १०८०
३०–क्या करूँ ? (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') १४००
३१–गीता और जीवन (श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि, एम्० ए०) ... १०४४
३२–गीतामें 'ओंतत्सत्' की व्यापकता (श्रीमिश्रीलालजी एडवोकेट) १०००
३३–गीतामें भजन (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १२८५
३४–गीतोक्त कर्मयोगी (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र, एम्०एल्०सी०) ...११६५
३५–गृहस्थमें स्वर्ग (डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्०) ... १३३७
३६–गो-रक्षा और गो-सेवाकी आवश्यकता (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका संदेश) ... १३४१
३७–गोविन्दस्वामी (श्री क० गोकुलानन्दजी वेदान्त, साहित्यरत्न) ... १२६६
३८–चित्त-शुद्धि (ठाकुर श्रीसुदर्शनसिंहजी) ७८५
३९–चित्रकूटमें नैसर्गिक प्रेम-प्रवाहकी एक दिव्य झाँकी (कुँवर श्रीराजेन्द्रसिंहजी एम्० ए०, एल-एल्० बी०) ७८०
४०–जब मैं प्रभुके पावन प्रकाशको अपने भीतर अनुभव करता हूँ, मेरा सम्पूर्ण असंतोष सर्वथा विलीन हो जाता है (अनु०-श्रीकुञ्जविहारी) १३३४
४१–(श्रीश्री) जयदेव महाप्रभु (गोस्वामीजी श्रीयमुनावल्लभजी) ७४६, ७९९, ८७५, ९४६
४२–जीव (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) ९६३
४३–जीव और ईश्वर (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती) ७२०
४४–जीवन-संगीत (श्रीशारदाशंकरजी कोचक) ... ११९०
४५–जीवन-संदेश (एक महात्माका पत्र) ... ८४१
४६–जीवन्मुक्त कौन है ? (स्वामीजी श्रीप्रज्ञानन्दजी) १०९१
४७–ज्ञान और ध्यानका सदुपयोग (साधुवेषमें एक पथिक) १०३९
४८–ज्ञान और भक्तिके साधनसे अहंता-ममताका अभाव (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... १०९२
४९–ज्ञान-तत्त्व-दर्शन (स्व० डा० श्रीक्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०, पी-एच० डी०) ... ९८२
५०–ज्ञान-विज्ञानका रहस्य-रस—प्रेम (पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी डाँगीजी) ... १२०६
५१–ज्ञानसंधानशक्ति (स्व० डा० श्रीक्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ८६२
५२–तत्त्वचिन्तकोंकी परिभाषामें देवी-तत्त्व (अनन्तश्री श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज) १०
५३–तत्त्व-मीमांसा अर्थात् मूलतत्त्वका विचार (विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री) ७७८
५४–तदहं नित्यमाश्रये (विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री) ९१८
५५–त्रिजटा कौन थी ? (पं० श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०) ११०६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५६–दर्शनकी अभिलाषा (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... ७९७
५७–दान-धर्मकी आवश्यकता और उसका महत्त्व (श्रीअगरचंदजी नाहटा) ... १२०९
५८–दीपावली—कर्मकी प्रेरणा-ज्योति (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०) १२७२
५९–देवी-देवताओंके चित्रोंके दर्शनसे तमोगुण और मानसिक रोग दूर होते हैं (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्० डी०) ९५१
६०–(श्री) देवीभागवतका अध्ययन कैसे करना चाहिये ? (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ... ७०१
६१–(श्रीमद्) देवीभागवतकी पाठविधि (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... ६९९
६२–(श्री) देवीभागवत-महापुराण (श्रीबालमुकुन्दजी मिश्र) १८
६३–(श्रीमद्) देवीभागवतमें तन्त्राधिकारी (अनन्तश्री शंकरस्वामी श्रीशंकरतीर्थजी महाराज) ५
६४–(श्री) देवीभागवतमें शक्ति और शक्तिमान् ६७३
६५–देशकी सर्वोत्तम नस्लकी दुधार जवान गायोंको बर्बादीसे बचाओ (लाला श्रीहरदेवसहायजी) ८१५
६६–दोनों भागवतोंका समन्वितरूप एक ही महापुराण है (तत्त्वचिन्तक स्वामीजी श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी तर्कशिरोमणि महाराज) ६९८
६७–धन और सांसारिक वस्तुओंकी चिन्तासे पागलपन और मृत्यु (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... १३७६
६८–धन्यो गृहस्थाश्रमः (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड़, वेदाचार्य, काव्यतीर्थ) ११६७
६९–धर्मकी जड़ सदा हरी (ठा० नाथूसिंह कैसरेहिन्द, आयुर्वेद-मनीषी आदि) ... ९४२
७०–नन्ददास [एक भाव-विश्लेषण] (श्रीगोकुलानन्दजी तैलङ्ग साहित्यरत्न) ७५६
७१–'नाहं कर्तेति मुच्यते' (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) ७७३
७२–(श्री) निमाई-संन्यास [नाटक] (स्व० महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोष, अनुवादक—व्रजगोपालदासजी अग्रवाल एम्० ए० 'वक्र') ९३७, १००९, १०५१, ११३३, १२००, १२५६, १३२०
७३–निरानन्द विजय (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ८३१
७४–निवेदन और क्षमा-प्रार्थना (सम्पादक) ७०३
७५–नैतिक पूर्णताका आदर्श क्या है ? (श्रीमाताजी, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी) ... १२२३
७६–पढ़ो, समझो और करो ७६२, ८२४, ८८८, ९५७, १०२०, १०८४, ११४८, १२१४, १२७७, १३४२, १४०६
७७–पतनमें उत्थानका भ्रम (हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक भाषणके आधारपर) ... १३३५
७८–परम त्यागी गोस्वामी रघुनाथदास ... ११४१
७९–परमानन्दस्वरूप निरतिशय असली सुखकी प्राप्तिके साधन (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १०२८
८०–परमार्थ-पत्रावली (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) ... ८४२, १४०१
८१–परिवार-नियोजन वा संतति-निरोधका एकमात्र हल (श्रीउमरावसिंहजी रावत) ... १३११
८२–पागलकी झोली (१००८ श्रीश्रीसीतारामदास ओंकारनाथ) ... ८५९, ९२९, ९७६
८३–पातिव्रत धर्मकी सार्वभौमिकता (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन, एम्० ए०, एल्० टी०) ... १३९३
८४–पितामहका पौत्रके रूपमें जन्म (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ९५५
८५–पुनर्जन्म और प्रेत-तत्त्वसम्बन्धी सत्य घटना (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ... १०७२
८६–प्रकाश-पथका यात्री (आचार्य सर्वे) ... ८६५
८७–प्रभुका परिष्वङ्ग (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ९८५
८८–प्रभुकी ही लीला चल रही है ... १११५
८९–प्रभो ! कृपा करो ८३०
९०–प्रारब्ध और पुरुषार्थका रहस्य (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .. ९०५
९१–बहुत आवश्यक ध्यान रखनेकी बातें ... ११४५
९२–बुरा कहे कोई तो (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') १३१२
९३–ब्रह्मचर्यकी महिमा (विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवशास्त्रीजी) ... १११६
९४–ब्राह्मणोंके आलोचना-प्रधान चरित्रकी दिशामें देवीभागवतगत एक प्रसङ्ग-चित्रका अनावरण (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ... ६७९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९५–(श्रीमद्) भगवद्गीता (एक दृष्टि) (पं० श्रीवाराणसीप्रसादजी त्रिवेदी एम्-ए०, एल्-एल्० बी०, काव्य-सांख्यतीर्थ) ... ९८७
९६–(श्री) भगवन्नाम-जप ... १२७३
९७–(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना १२७०
९८–भगवान् और पूर्ण मानव (हनुमानप्रसाद पोद्दारका एक भाषण) ... ९९१
९९–भगवान्‌की अनुपम अनुकम्पा ... ७१०
१००–भगवान्‌की अमोघ कृपाने अब मुझे पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया है ... १०६७
१०१–भगवान्‌की दिव्य ज्योति ... ७३३
१०२–भगवान्‌की शरणागति (श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका) १२९९
१०३–भगवान्‌की सरस संनिधिमें मेरे जीवनका रूखापन नष्ट हो गया है ... ९५०
१०४–भगवान्‌में मेरा श्रद्धा-विश्वास सुदृढ़ और अटल है ७६०
१०५–भगवान् मेरे अंदर आकर सदाके लिये विराज गये हैं ८५०
१०६–भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य-महोत्सव (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ... ११८०
१०७–भगवान् श्रीरामका वानरोंके साथ सख्यभाव (पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालङ्कार, काव्यतीर्थ) ७४३
१०८–भविष्यके रोग, दवा और युद्धका स्वरूप (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ... १०६८
१०९–भविष्यपुराणकी रमणीयता (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) १३८८
११०–भारतकी लुप्तप्राय विद्या—स्वरविज्ञान (श्रीशशिप्रकाशजी शर्मा एम्० ए०, बी० काम०, विशारद) ७५३
१११–भारतमें हिंसा-उद्योग ७६८
११२–भौतिक विज्ञान कैसे आसुरी होता जा रहा है (स्वामीजी श्रीचिन्दानन्दजी सरस्वती महाराज) ... १२९२, १३५६
११३–मधुर ७३४, ७९१, ८७३, ९४३, ९८०, १०४७, १११४, ११७८, १३६८
११४–मनुष्य अपना कल्याण करनेमें स्वतन्त्र है (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ९७१
११५–मशीनी कसाईखाने क्यों ? (लाला श्रीहरदेवसहायजी) ... १०७६
११६–महामानव श्रीकृष्ण (श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री आर्योपदेशक) १२१३
११७–मांसका वास्तविक अर्थ (श्रीविष्णुशर्माजी चतुर्वेद, आचार्य) ९३३
११८–मानसिक उत्तेजनाओंको छोड़ दीजिये (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७३६
११९–मुझमें भगवान्‌का प्रकाश हो गया है ... ११०५
१२०–मुझे जल-सदृश बना दो (अनु०—श्रीकुञ्जविहारी) १३१०
१२१–मेरा जीवन प्रभुका मङ्गलमय धाम बन गया है १२०८
१२२–मेरा भगवान्‌में पूर्ण विश्वास है ... ७९०
१२३–मेरी चित्तवृत्ति भगवान्‌में ही रमण करती है ९७०
१२४–मेरे जीवनमें भगवान्‌का दिव्य प्रकाश और निर्मल रस भर गया १०७९
१२५–मेरे जीवनमें भगवान्‌का बल आ गया है ... १०५६
१२६–मैं अपने भगवान्‌के सामने सच्चा हूँ ... ९२०
१२७–मैं केवल प्रभुमय ही हो रहा हूँ ... ११४०
१२८–मैं जगत्‌के दुःख-सुखसे सर्वथा अतीत भगवान्‌के आनन्द और शान्तिसे ओत-प्रोत हूँ १२३३
१२९–मैं नित्य भगवान्‌की संनिधिका अनुभव करता हूँ ९९९
१३०–मैं प्रभुकी कृपामयी सत्ताको पहचान गया हूँ १२६९
१३१–मैं भगवान्‌का शेष हूँ ९१७
१३२–मैं भगवान्‌का सनातन चेतन अंश हूँ ... ८६८
१३३–मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं ... ८१४
१३४–मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् ही मेरे हैं ... १३८१
१३५–मैं सबमें भगवान्‌को देखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ ८०४
१३६–मैं सभीमें अपने भगवान्‌का साक्षात्कार करता हूँ ९९०
१३७–मैं स्वभावसे ही सबके सुख तथा हितके विचारों तथा कार्योंमें ही लगा रहता हूँ ... ९८४
१३८–योगः कर्मसु कौशलम् (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) ८१९
१३९–योगवासिष्ठका तत्त्वज्ञान (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती) ... ८९९
१४०–(श्री) राधा-स्मृति (श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ... १२३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४१–(श्री) रामके विलापसे शिक्षा (पं० श्री-जानकीनाथजी शर्मा) ... १०४२
१४२–(श्री) राम-स्वभाव (मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न) ९२१
१४३–राहीकी मंजिल (श्रीशंकरदयालसिंहजी एम्० ए०, साहित्यरत्न) ११९१
१४४–वन्य भारत (श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम्०-ए०, काव्यतीर्थ) १२३१
१४५–वास्तविक शिक्षा क्या है ? (श्री वि० प्र० उपाध्याय) १३०८
१४६–विचार (पं० श्रीवंशीधरजी शर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ७२४
१४७–विवाह-विच्छेद [आधुनिक सभ्यताका अभिशाप] (प्रा० श्रीरवीन्द्रप्रतापरावजी) ... १३३९
१४८–विशुद्ध आत्मचेतना (डा० श्रीराजेश्वरप्रसाद-जी चतुर्वेदी एम्० ए०, पी-एच्० डी०, बी० एस्-सी०, साहित्यरत्न) ... ११२७
१४९–(श्री) विष्णुपुराणका महत्त्व (पं० श्री-जानकीनाथजी शर्मा) ७९३
१५०–वेद-शास्त्रोंमें गो-महिमा (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य, काव्यतीर्थ) ८०५
१५१–वेदाब्धि-मन्थन (मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीराम-कुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्य-रत्न) १३०४
१५२–व्रतसे आत्मविशुद्धि (विद्यामार्त्तण्ड डा० मङ्गलदेव-शास्त्रीजी) ११८७
१५३–शक्तितत्त्व (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) १६
१५४–शङ्का-समाधान (श्रीश्रीकान्तशरणजी, तुलसी-साहित्यके विशद व्याख्याकार) ... १२२४
१५५–शोक-मोहकी निवृत्ति (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) ८३५
१५६–श्रीजीका पुरुषकारत्व (श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज, समस्त तुलसीसाहित्यके विशद व्याख्याकार) १३६३
१५७–श्रीविद्या (पं० श्रीनारायणशास्त्रीजी खिस्ते) ६८९
१५८–श्रीविष्णु-माया (पं० श्रीकोशलेशजी भारद्वाज, एम्० ए०) १३६९
१५९–श्रीस्तुति (अनु० अनन्तश्री आचार्य श्री-राघवाचार्यजी महाराज) ... ४
१६०–संगका रंग (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') १२०५
१६१–सत-महात्माओंकी दृष्टिमें जीवित प्राणी (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... ११७६
१६२–संतोषसे शान्ति (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी) ११५८
१६३–संयमसे आत्मोद्धार (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १३५०
१६४–संसार रोग और उसकी दवा (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ८६९
१६५–सच्चा समर्पण कैसा हो ? (श्रीमाताजी, श्री-अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी) ... १३५४
१६६–सच्चे अर्थोंमें स्वार्थी बन जाइये (श्रीचूड़ामन मोतीलाल मुन्शी) १२४७
१६७–सत्यकी महिमा (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ११५५
१६८–सत्सङ्गका प्रसाद ८४६, ९१०
१६९–सद्विचारोंका विकास (विद्यामार्तण्ड डा० श्री-मङ्गलदेव शास्त्रीजी) १३६२
१७०–सदा दीवाली संतकी (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी) ७२३
१७१–सदा सर्वत्र एक ईश्वर ही सत्य है ... १३८७
१७२–सनातन शौचाचार (पं० श्रीगुप्तेश्वरजी पाण्डेय) ... १०९९, ११५९
१७३–साधकोंके उद्गार १०२७
१७४–साधनको साध्यसे भी अधिक आदर देना चाहिये (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७११
१७५–सांस्कृतिक कार्यक्रमके नामपर पतन (पं० श्री-भवानीलालजी भारतीय एम्० ए० वाचस्पतिके लेखसे) १४०४
१७६–सुखी होनेका उपाय (श्रीपूर्णानन्दजी) ... ९०९
१७७–सृष्टिका सौन्दर्य (श्रीशारदाशंकरजी कोचक) १३६७
१७८–स्नायुमण्डल (श्रीगौरीशंकरजी गुप्त) ... ९९४
१७९–(श्री) हनुमान्‌जीकी भाषा (श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, आचार्य, साहित्यरत्न) ... १२४२
१८०–हमारा दुःख कैसे दूर हो (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) ... ८७१
१८१–हमारा वर्णाश्रमधर्म ही विश्वहितकारी समाज-रचनाका मूल है (आचार्य श्रीनरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ) १२२८
१८२–हमारी प्रगतिका नग्न स्वरूप ... ११५२
१८३–हिंदू-नारीका सती-धर्म (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) ११४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संकलित गद्य-पद्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१–जगदम्बिकाको नमस्कार (श्रीदेवीभागवत ७ । २८ । ३०-३१) १५

२–दशावतार-स्तुति (श्रीदे० भा० १० । १ । ४–१४) ९

३–देवीको नमस्कार (देवीभागवत ७ । ३१ । ४४–४७) १

कहानी

१–अकाम (श्री'चक्र') ... ८६६

२–अक्रोध (,,) ... १०१५

३–अचौर्य (,,) ... १३७९

४–अदम्भ (,,) ... १२६३

५–अमोह (,,) ... ११३८

६–अलोभ (,,) ... १०५८

७–अहिंसा (,,) ... १३२६

८–जीवनका चौराहा (श्री'चक्र') ... ७५१

९–निरभिमानता (,,) ... ७९६

१०–रामायण भक्त बाबा रामदास (श्रीरामकृष्ण शर्मा) ८८४

११–विनय (श्रीकमलाकान्तजी, बी० ए० आनर्स) १०७८

१२–संयम (श्री 'चक्र') ... ११८८

पद्य

१–अग्निदेवकी भगवान् रामसे प्रार्थना (देवीभागवत ९ । १६ के आधारपर) ... ७०५

२–अनुकूल रहें ११२९

३–अनोखा प्यार १३५५

४–अपना प्रचार १०३५

५–अरे राम ! कितना निष्फल ! (ब्रह्मानन्द 'बन्धु') १०३८

६–ईशावास्यमिदं सर्वम् (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ... ७५०

७–कण्टक न सींचाकर (महात्मा श्री'निरञ्जन'जी, प्रे०—श्रीजगदीशनारायण शर्मा) ... १४०८

८–कन्हैयाका जादू १०८९

९–कन्हैयाकी करामात ९६१

१०–(श्री) गणेश-प्रार्थना (श्रीपद्मकान्त मालवीय) ११६४

११–गीत (श्रीमावलीप्रसादजी श्रीवास्तव) ... ८१८

१२–गीत (डा० श्रीहरिवंशरायजी 'बच्चन' एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... १००८

१३–गीत (डा० श्रीहरिवंशरायजी 'बच्चन' एम० ए०, पी-एच्० डी०) ... ११४४

१४–गोप्रेमी गोपालकी जय ८९७

१५–घरके पवित्र तीर्थ १३०३

१६–चरणारविन्द (प्रो० पं० श्रीकण्ठमणिजी शास्त्री 'देशिकेन्द्र') १०५७

१७–चरित्र-निर्माण (कविरत्न डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०) १२७२

१८–श्रीजटायुजीकी विशेषता (मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न) ८९६

१९–जययुक्त श्रीदेवी-अष्टोत्तर-सहस्रनाम ... ६८१

२०–जिसके कोई नहीं, उसके भगवान् हैं ... ८७९

२१–जिज्ञासा (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') १४०३

२२–जीवोंके जीवनमें ज्योति (श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... १३४९

२३–तेरी इच्छामें ही मेरी इच्छा (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) १३६१

२४–दयामय ! विश्वास प्रदान करो ! ... ८३२

२५–दयामयी माँ, भक्ति-दान दो ! (श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण') ६७८

२६–ध्यान और प्रार्थना ७०४

२७–निराश मत होओ १०९१

२८–प्रभुका मधुर सम्बन्ध ७६१

२९–प्रभुकी कृपा पाकर मैं धन्य हो गया ... ७९८

३०–प्रभो ! कृपा करो ८३०

३१–प्रार्थना ९६०

३२–प्रेमधर्म १३७५

३३–बछड़े तथा मोरके प्रेमी मुरलीमनोहर ... १२८१

३४–भगवती गौरी देवी ! ११५३

३५–भगवान्का दिव्य अंश होनेसे मेरा मृत्यु-रुग्णता-दोषरहित दिव्य रूप विलास कर रहा है ११९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६–भगवान्‌ने मेरी आँखोंकी पुतलीही बना दी ... १०८३
३७–भगवान् सदा कहाँ निवास करते हैं ? ... १३०५
३८–मधुर १३२८
३९–मधुरप्रेम १३६८
४०–मुझमें भगवान् अपनी नित्य भगवत्ताको लिये भरे हैं ८८३
४१–मृत्यु-महिमा (श्रीयुधिष्ठिरप्रसादजी सिंहानिया) ९८१
४२–मेरा पवित्र जीवन-बिल्वदल शिव-चरणपर चढ़ गया ९०४
४३–मेरा मनोरथ (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) ... ८२३
४४–मेरे द्वारा भगवान् ही बोल रहे हैं ... १२१६
४५–मेरे परम सुहृद् भगवान् जो कुछ देते-करते हैं, सबमें स्वयं ही भरे रहते हैं ... ७८४
४६–मैं प्रभुका हूँ और प्रभु मेरे हैं ... ७४२
४७–मैं भगवान्‌के रंगमें रँगा सदा निश्चिन्त, नम्र, निर्भ्रम और निर्भय रहता हूँ ... ११७५
४८–मैं राममें स्थित हूँ, प्रकृतिस्थ नहीं ... ११२०
४९–मैयासे ! ६९६
५०–यदि तुम सबका शुभ चाहोगे (श्रीबालकृष्णजी बलदुआ) ११७९
५१–रस-ही-रस (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ७६७
५२–(श्री) राधा-शुककी प्रेमसमाधि ... ७६९
५३–वनवैभव (मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न) ११७२
५४–वरदायिनी श्रीलक्ष्मीमाता ८३३
५५–विनय (श्रीपद्मकान्त मालवीय) ... १२९८
५६–शक्ति-तत्त्व और प्रार्थना २
५७–संगम [मुक्तक काव्य] (ब्र० श्रीप्रेमवर्णीजी) १०६०
५८–सबका कल्याण (श्रीब्रह्मानन्द 'बन्धु') ... १२२२
५९–सब रूपोंमें मैं प्रभुको प्रणाम करता हूँ ... १२७६
६०–सर्वोत्तम काम १३४०
६१–सुधार (ब्रह्मानन्द 'बन्धु') ९८६
६२–सुमनका आत्मकथन (श्रीमावलीप्रसादजी श्रीवास्तव) ८७२
६३–हनुमान्‌को भगवान् श्रीरामका आलिङ्गन-दान १३४५
६४–हमारे सर्वस्व वही हैं १०१७

संकलित पद्य

१–अपनी स्थिति और प्रार्थना (सूरदासजी) १११६
२–गोविन्दके हो रहो (,,) ... १०५०
३–जन्म व्यर्थ ही बीत गये ! (तुलसीदासजी) ११२६
४–प्रार्थना (विनय-पत्रिका) १२८४
५–भगवती परा अम्बिका १०२५
६–मनकी नीच दशा (सूरदासजी) ... १३३२
७–साँपसे शालग्राम (मीराबाई) ... १२१७
८–हरि बिना कोई तेरा मित्र नहीं (सूरदासजी) १०४१
९–हरिसे प्रेम करो (सूरदासजी) ... १२५५

चित्र-सूची

रंगीन

१–अग्निदेवकी भगवान् रामसे प्रार्थना ... ७०५
२–इन्द्रदर्पहारिणी भगवती (बहुरंगा) विशेषाङ्कका मुखपृष्ठ
३–उमा हैमवती देवी ,, ... १
४–कन्हैयाका जादू ,, ... १०८९
५–कन्हैयाकी करामात ,, ... ९६१
६–(श्री) कृष्णके दक्षिणार्धसे द्विभुज तथा वामार्धसे चतुर्भुजका प्राकट्य ... ३४४
७–(श्री) कृष्णके वामाङ्गसे पञ्चमुख महादेवका प्राकट्य ५९८
८–(श्री) कृष्णके वामाङ्गसे मूलप्रकृति राधाका प्राकट्य ५९८
९–(श्रीश्री) गायत्रीदेवी ... १६९
१०–गायत्रीदेवी—प्रातःकाल बाला हंसवाहिनी ब्रह्मारूपा ६२८
११–गायत्रीदेवी—मध्याह्नकाल युवती गरुड़वाहिनी विष्णुरूपा ६२८
१२–गायत्रीदेवी—सायंकाल वृद्धा वृषभवाहिनी शिवरूपा ६२८
१३–गो-प्रेमी गोपाल ८९७
१४–(श्रीश्री) दशभुजा गायत्रीदेवी ... १०३
१५–देवताओंको श्रीराधाकृष्णके दर्शन ... ४९५
१६–परात्पर श्यामसुन्दर ४५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७–बछड़े तथा मोरके प्रेमी मुरलीमनोहर ... १२८१
१८–भगवती गौरीदेवी ... ११५३
१९–भगवती जगदम्बिका (दुरङ्गा) विशेषाङ्कका मुखपृष्ठ
२०–भगवती परा अम्बिकादेवी ... १०२५
२१–भगवती शताक्षी या शाकम्भरी ... ३९६
२२–(श्री) भुवनेश्वरीदेवी ... ६६९
२३–(श्री) भ्रामरीदेवी ... ७७
२४–(श्री) महाकाली ... ५८०
२५–महादेवी महिषमर्दिनी ... २२९
२६–(श्री) महालक्ष्मी ५८०
२७–(श्री) महासरस्वती ... ५८०
२८–मूलप्रकृति राधाके दक्षिण अङ्गसे राधाका और वाम अङ्गसे लक्ष्मीका प्रकट होना ... ४२२
२९–राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीके दर्शन २८६
३०–(श्री श्री) राधादेवी ३९
३१–(श्री) राधाशुककी प्रेमसमाधि ... ७६९
३२–वरदायिनी श्रीलक्ष्मी माता ... ८३३
३३–साँपसे शालग्राम १२१७
३४–हनूमान्‌को भगवान् श्रीरामका आलिङ्गनदान १३४५

इकरंगे

१–(श्री) कृष्णके श्रीविग्रहसे सुरभिकी उत्पत्ति ५७८
२–कौशिकी देवीका प्राकट्य ... २६०
३–गङ्गा-भगीरथके सामने गोप-वेषधारी श्रीकृष्णका प्राकट्य ४८६
४–(श्री) गायत्रीयन्त्रम् ... ६०९
५–(श्री) गायत्रीयन्त्रम् ६४४
६–तक्षक नाग और कश्यप ब्राह्मण ... ९५
७–(श्री) दुर्गायन्त्रम् ५८२
८–नरक-पीड़ा ४५०
९–नरक-पीड़ा ४५१
१०–(श्री) पृथ्वीदेवी ४८३
११–भगवती गङ्गा ४८८
१२–भगवती तुलसी ४८८
१३–भगवती दक्षिणा ५६७
१४–भगवती लक्ष्मी ४६९
१५–भगवती षष्ठी ५६७
१६–भगवती सरस्वती ४६९
१७–भगवती स्वधा ५६१
१८–भगवती स्वाहा ५६१
१९–भगवान् विष्णुकी सेवामें पृथ्वीसहित देवता १९९
२०–शचीपर देवीकी कृपा ३०३
२१–सुदर्शनको देवीके दर्शन ... १५३

रेखाचित्र

१–अगस्त्यजीके द्वारा नहुषको शाप ... ३०६
२–अग्निदेव एक तृणको नहीं जला सके ... ६५६
३–अरुण असुरका श्रीब्रह्माजीसे वर-याचन ... ५९३
४–असफल लौटी हुई अप्सराएँ इन्द्रको नर-नारायणकी महिमा सुना रही हैं ... १९८
५–इन्द्र-कन्या जयन्तीके द्वारा तपोनिरत शुक्राचार्य-की सेवा १८९
६–इन्द्रके द्वारा फेंके गये फेनयुक्त वज्रसे वृत्रका मारा जाना २९९
७–इन्द्र दिव्य-देहधारी त्रिशङ्कुको विमानमें बैठा रहे हैं ३७४
८–इन्द्रद्वारा नर-नारायणको तपस्यासे डिगानेका प्रयास १७६
९–इन्द्रप्रेरित अप्सराओंकी नर-नारायणसे अपनी सेवामें रखनेकी प्रार्थना ... १७८
१०–इलारूप राजा सुद्युम्नपर भगवतीकी कृपा ... ५९
११–उतथ्य मुनि और व्याध ... १२३
१२–उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीके द्वारा वाराहरूपकी स्तुति-उपासना ४३५
१३–एकवीर-एकावली-परिणय ... ३३४
१४–एकवीरके द्वारा कालकेतुका वध ... ३३३
१५–ऋषियोंद्वारा निमिके शरीर-मन्थनसे जनककी उत्पत्ति ३१५
१६–कालिकाके द्वारा चण्ड-मुण्डका वध ... २६९
१७–कालिकाके द्वारा शुम्भका वध ... २८०
१८–काली तथा स्वामीकार्तिकेयसहित भगवान् शंकरको शङ्खचूड़ प्रणाम कर रहा है ... ५१२
१९–किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी स्तुति-उपासना ... ४३६
२०–कृतघ्न ब्राह्मणोंको गौतम मुनि शाप दे रहे हैं ६६१
२१–(श्री) कृष्णका गङ्गाको पृथ्वीपर जानेका आदेश ४८६
२२–(श्री) कृष्णके रोमकूपोंसे गोपोंका प्राकट्य ४६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३–(श्री) कृष्णके वामांश भागसे प्रकट देवीकी जीभके अग्रभागसे सरस्वतीका प्राकट्य ... ४६३
२४–(श्री) कृष्ण तथा गोपोंद्वारा भगवती राधिकाकी स्तुति ४९३
२५–केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेव-रूपकी उपासना ४३३
२६–गङ्गावतरण १०वें अङ्कका मुखपृष्ठ
२७–(श्री) गङ्गाका ध्यान ... ४८८
२८–गोभिलका देवदत्तको शाप देना ... १२०
२९–गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ९वें अङ्कका मुख्य-पृष्ठ
३०–गौतमजीको भगवती पूर्णपात्र दान कर रही हैं ६५९
३१–चण्डिकाके द्वारा रक्तबीजका वध ... २७४
३२–चाक्षुष मनुद्वारा देवीकी स्तुति ... ५९०
३३–जगदम्बाके बाणोंसे दुर्गमकी मृत्यु ... ३९७
३४–जरत्कारु मुनिके द्वारा पत्नी जरत्कारुका त्याग १०२
३५–तक्षकका राजा परीक्षित्को डँसना ... ९७
३६–तपस्वी नर-नारायणके साथ प्रह्लादका युद्ध ... १८३
३७–तरुणावस्थाको प्राप्त महर्षि च्यवनके साथ पत्नी-सहित राजा शर्यातिकी बातचीत ... ३६०
३८–तुलसी दिव्यविग्रहधारी श्रीहरिको उलाहना दे रही हैं ५१७
३९–त्वष्टाके यज्ञसे वृत्रकी उत्पत्ति ... २९१
४०–दितिका अदिति और इन्द्रको शाप ... १७३
४१–दृष्टिहीन हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भार्गववंशी ब्राह्मणीसे क्षमा-याचना ... ३२०
४२–देवकीको मारनेके लिये कंसका तलवार उठाना २०३
४३–देवताओंके द्वारा कुन्तीपुत्रोंके देवपुत्र होनेका भीष्मादिको आश्वासन ८९
४४–देवताओंके द्वारा भगवती जगदम्बाकी स्तुति २२९
४५–देवताओंके द्वारा भगवती भुवनेश्वरीकी स्तुति २००
४६–देवताओंद्वारा श्रीराधाकी स्तुति ... ४९५
४७–देवराज इन्द्रके द्वारा भगवतीकी स्तुति ... ६५७
४८–देवर्षि नारद और विन्ध्याचलकी बातचीत ... ५८४
४९–(श्री) देवीका देवताओंको आश्वासन ... ४०५
५०–देवीकी आज्ञासे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके विमानपर चढ़नेपर विमानका आकाशमें उड़ जाना १०६
५१–देवीके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरको स्त्रीरूपमें परिणत कर देना ... १०८
५२–देवीके संदेशके बारेमें वृद्ध मन्त्रियोंके साथ महिषासुरका परामर्श २३४
५३–देवी दुर्गाको श्रीकृष्ण सिंहासनपर बैठनेको कह रहे हैं ४६५
५४–देवी मनसा तथा जरत्कारुद्वारा श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा एवं कश्यपजीकी वन्दना ... ५७४
५५–देवी स्वाहाको श्रीकृष्णका वरदान ... ५६२
५६–दैत्योंका शुक्राचार्यकी शरणमें जाना तथा उनका प्रसन्न होना ... १९३
५७–दैत्योंके द्वारा शुक्राचार्यका तिरस्कार ... १९२
५८–धर्मराजका सावित्रीको आशीर्वाद देना ... ५५०
५९–धर्मात्मा च्यवनजीका अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराना ३६३
६०–नरसी और साँवरिया ग्यारहवें अङ्कका मुखपृष्ठ
६१–नारदको दक्ष प्रजापति दुखी होकर शाप दे रहे हैं ३५०
६२–नारदजी भगवान् विष्णुसे अपने आनेपर लक्ष्मीजीके उठकर चले जानेका कारण पूछ रहे हैं ३४०
६३–नारद-ब्रह्मा-संवाद ... ११५
६४–नारद-राम-संवाद ... १६७
६५–नारद-व्यास-संवाद ... ४४
६६–नारायण-नारद-संवाद ... ५९८
६७–नारीके रूपमें परिणत नारद तथा तालध्वजकी बातचीत ३४१
६८–नारीरूप नारदका परिवार ... ३४३
६९–नारीरूप नारदको ब्राह्मणवेषधारी विष्णुका समझाना ३४३
७०–निमि वशिष्ठजीको शाप दे रहे हैं ... ३१३
७१–पर्वतमुनिके वरदानसे नारदको पूर्ववत् सुन्दर रूपकी प्राप्ति ... ३३९
७२–पितामह ब्रह्माजीका समझा-बुझाकर वशिष्ठ और विश्वामित्रको युद्धसे विरत करना ... ३१०
७३–पुरवासियोंका केश पकड़कर रानीको चाण्डालके पास पहुँचाना ... ३८९
७४–पृथ्वीदेवीका ध्यान ... ४८३
७५–पृथ्वीपर पड़े हुए विन्ध्यपर्वतके ऊपरसे अगस्त्यजीका लोपामुद्राके साथ दक्षिण दिशाको प्रयाण ५८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७६–प्रह्लादद्वारा जगदम्बाकी स्तुति ... १९६

७७–प्रेममयी गोपाङ्गनाएँ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कर रही हैं ... ५४८

७८–बृहस्पतिजीका दुखी इन्द्रको आश्वासन देना ५५४

७९–ब्रह्माजीकी सभामें भगवती स्वधाका प्राकट्य ... ५६४

८०–ब्रह्मादि देवता भगवान् हयग्रीवको प्रणाम कर रहे हैं ४९

८१–ब्रह्मादि देवोंसहित भगीरथके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति ४८६

८२–भक्त-नारी चौथे अङ्कका मुखपृष्ठ

८३–भगवतीका श्रीकृष्णको पुत्रको पुनः प्राप्त करनेके लिये आश्वासन ... २१२

८४–भगवतीकी हुङ्कारसे धूम्रलोचन जलकर भस्म हो गया ... २६५

८५–भगवती चण्डिकाके द्वारा निशुम्भका वध ... २७७

८६–भगवती चण्डिका तथा महिषासुरका वार्तालाप २४६

८७–भगवती चण्डिकाद्वारा महिषासुरका वध ... २५१

८८–भगवती तुलसीकी तपस्या ... ५०२

८९–भगवती भ्रामरीका देवताओंको आश्वासन ५९६

९०–भगवती षष्ठीद्वारा प्रियव्रतके मृतपुत्रको जीवन-प्रदान ५६९

९१–भगवान् विष्णु दूसरे अङ्कका मुखपृष्ठ

९२–भगवान् विष्णु और देवताओंका संवाद ... २२६

९३–भगवान् विष्णुके द्वारा मधु-कैटभका वध ... ५७

९४–भगवान् विष्णुको जगानेके लिये ब्रह्माजी योगनिद्राकी स्तुति कर रहे हैं ... ५२

९५–भगवान् विष्णुको भृगुका शाप ... १८८

९६–भगवान् विष्णु गङ्गा तथा सरस्वतीको शिव एवं ब्रह्माके पास जानेकी आज्ञा दे रहे हैं ४७६

९७–भगवान् शंकर तीसरे अङ्कका मुखपृष्ठ

९८–भगवान् शंकरका श्रीकृष्णको वरदान ... २१३

९९–भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी उपासना ... ४३०

१००–भगवान् शंकरको शङ्खचूड़को मारनेके लिये भगवान् विष्णु अपना त्रिशूल दे रहे हैं ... ५०८

१०१–भगवान् श्रीहरिका तालध्वजको आश्वासन ... ३४५

१०२–भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाके द्वारा हयग्रीवरूपकी उपासना ४३१

१०३–भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासना ... ४३७

१०४–भार्गववंशी स्त्रियोंको स्वप्नमें देवीके दर्शन ... ३१९

१०५–भृगुजीको ब्रह्माजी विश्वजय नामक सरस्वती-कवच बतला रहे हैं ... ४७०

१०६–मछलीरूपा अद्रिका अप्सराके पेटसे राजा मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाका जन्म ... ७८

१०७–मधु-कैटभद्वारा शक्तिकी उपासना ... ५०

१०८–मनुपुत्रोंके द्वारा भगवतीकी स्तुति ... ५९२

१०९–मनुसहित देवाधिदेव ब्रह्माकी बाराहरूपधारी भगवान् श्रीहरिकी स्तुति ... ४२४

११०–मन्त्री विदल्लके साथ रानी मनोरमा और सुदर्शनका भरद्वाजके आश्रममें पहुँचना ... १३२

१११–महाराज इक्ष्वाकुके द्वारा बालक वशिष्ठके पालन-पोषणकी व्यवस्था ... ३१४

११२–महाराज निमिको देवीका वरदान ... ३१५

११३–महाराज यौवनाश्वके पुत्रके मुखमें इन्द्र अपनी तर्जनी अंगुली दे रहे हैं ... ३६७

११४–महिषासुर और रक्तबीजकी उत्पत्ति ... २१६

११५–महिषासुर-वधके सम्बन्धमें इन्द्र बृहस्पतिसे परामर्श कर रहे हैं २२०

११६–मातृ-स्तवन १

११७–मुरलीधर श्रीकृष्ण ... १२ वें अंकका मुखपृष्ठ

११८–मैयाकी गोदमें लाला ... आठवें अङ्कका मुखपृष्ठ

११९–यज्ञपुरुषद्वारा भगवती दक्षिणाकी स्तुति ... ५६७

१२०–याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति ... ४७२

१२१–युद्धभूमिमें शङ्खचूड़ पृथ्वीपर मस्तक टेककर शंकरको प्रणाम कर रहा है ... ५१५

१२२–युद्धसे बचे हुए असुरोंका महिषासुरके सामने रुदन २४४

१२३–युधाजित् राजा सुबाहुको डाँट रहा है ... १४६

१२४–योगमायाका प्रकट होकर कंसको डाँटना ... २०९

१२५–रणमें युधाजित् और शत्रुजित्की मृत्यु ... १५१

१२६–रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना ४३४

१२७–राजा एकवीरके साथ एकावलीकी सखी यशोवतीकी बातचीत ३२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२८–राजा जनक तथा शुकदेवजी ... ७१

१२९–राजा युधाजित् भरद्वाज मुनिसे मनोरमाको आश्रमसे निकाल देनेके लिये कह रहा है ... १३५

१३०–राजा शन्तनु भीष्मको गङ्गामें बहा देनेसे गङ्गाको रोक रहे हैं ८३

१३१–राजा संजयकी पुत्री दमयन्ती वानरमुख नारदजी-की सेवा कर रही है ३३८

१३२–राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीका वरदान २८७

१३३–(श्री) राधाके रोमकूपोंसे गोपकन्याओंका प्राकट्य ४६४

१३४–(श्री) राधाजीके सामने श्रीकृष्णका प्राकट्य ४८१

१३५–रानी अपनी पुत्री शशिकलाको सुदर्शनसे विवाह न करनेके लिये समझा रही है ... १४०

१३६–(श्री) रामकी गोदमें जटायु ... १६४

१३७–(श्री) राम-लक्ष्मणके सामने भगवती जगदम्बाका प्राकट्य १६७

१३८–राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नकी बालक्रीडा १६१

१३९–रास-मण्डलमें भगवान् शंकर श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पद्यगान कर रहे हैं ४९१

१४०–रुरुके द्वारा आधी आयु देनेपर देवदूतका प्रमद्वराको जीवित करना ... ९४

१४१–वटपत्रशायी भगवान् विष्णु तथा भगवती महालक्ष्मीका संवाद ६६

१४२–वरुणकी गौएँ न लौटानेके कारण ब्रह्माजीका कश्यपको शाप १७१

१४३–वसुदेवका नवजात पुत्रको लेकर जानेके लिये तैयार होना २०९

१४४–वसुदेव-प्रभृतिके सामने जाम्बवतीसहित श्रीकृष्णका आगमन २९

१४५–वायुदेव एक तृणको नहीं उड़ा सके ... ६५६

१४६–विन्ध्याचलद्वारा सूर्यके मार्गका अवरोध ... ५८५

१४७–विराट्मय बालकको श्रीकृष्णका वरदान ... ४६७

१४८–विश्वामित्र हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेच रहे हैं ३८५

१४९–विष्णुभगवान्के द्वारा प्रेरित सुदर्शनचक्र शुक्रमाताका सिर काट रहा है ... १८८

१५०–विष्णु-शंकर-संवाद ४९९

१५१–वृत्रकी तपस्यासे प्रसन्न [illegible] वरदान ... ९४

१५२–व्यासजी भगवती भुवनेश्वरीकी कृपासे गान्धारी, कुन्ती आदिको दिवंगत परिजनोंका दर्शन करा रहे हैं ९१

१५३–व्यास-नारद संवाद ३३५

१५४–व्यास-शुकदेव संवाद ६३

१५५–शंकरका दूत चित्रलेख भगवान् विष्णुको शुक्र-जीका संदेश सुना रहा है ... ३२३

१५६–शङ्खचूड-तुलसीको ब्रह्माजीका आदेश ... ५०६

१५७–शशिकलाके स्वयंवरमें केरल-नरेश और युधाजित्की बातचीत १४३

१५८–शुक्राचार्यकी भगवान् शंकरसे मन्त्र-प्रदान करनेकी प्रार्थना १८६

१५९–शुक्राचार्यकी माता देवताओंको निद्राभिभूत कर रही हैं १८७

१६०–शुम्भ और निशुम्भको ब्रह्माजीका वरदान २५६

१६१–शुम्भके दूत सुग्रीवके साथ देवीकी बातचीत २६३

१६२–संध्या-वन्दन करते हुए राजा हरिश्चन्द्रके सामने विश्वामित्रका आगमन ... ३७८

१६३–सत्यव्रतको जगदम्बाके दर्शन ... ३६८

१६४–सावित्री-धर्मराज-प्रश्नोत्तर ... ५३१

१६५–सीताजीके विरहसे कातर श्रीरामको लक्ष्मण समझा रहे हैं १६५

१६६–सुकन्याकी भगवती जगदम्बासे सतीधर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना ३५७

१६७–सुकन्याके द्वारा महर्षि च्यवनके नेत्रोंका छेदा जाना ३५२

१६८–सुकन्याद्वारा च्यवनमुनिकी सेवा ... ३५५

१६९–सुदर्शनद्वारा देवीकी प्रार्थना तथा शशिकला-को स्वप्नमें देवीका दर्शन ... १३७

१७०–सुदर्शन शत्रुजित्की माताको आश्वासन दे रहे हैं १५५

१७१–सुबाहु और सुदर्शनके द्वारा देवीका स्तवन १५२

१७२–सुशील वैश्यको भगवतीके दर्शन ... १६१

१७३–सूतजीके द्वारा ऋषियोंके प्रति श्रीदेवी-भागवतकी महिमाका कथन ... २५

१७४–सूर और श्याम ६ ठे अङ्कका मुख्य

110331

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110331

१७५–सूर्योदय न होनेसे त्रस्त ब्रह्मा आदि देवताओं-को भगवान् विष्णुका आश्वासन ...
१७६–सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वरकी झाँकी पाँचवें अङ्कका मुखपृष्ठ
१७७–स्कन्दके द्वारा अगस्त्य ऋषिके प्रति श्रीदेवी-भागवतका माहात्म्य-कथन ... ३३
१७८–स्वायम्भुव मनुकी देवीसे वर-याचना ... ५८३
१७९–(श्री) हरिका लक्ष्मीजीको क्षीरसमुद्रके यहाँ जन्म लेनेके लिये भेजना ... ५५७
१८०–हरिवर्माकी तपस्यासे संतुष्ट भगवान् लक्ष्मी-नारायण उन्हें वरदान दे रहे हैं ... ३२६
१८१–हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी उपासना ४३२
१८२–हरिश्चन्द्रके सामने इन्द्रके साथ धर्मसहित सम्पूर्ण देवताओंका प्रकट होना ... ३९३
१८३–हारे हुए दैत्योंको शुक्राचार्यद्वारा अभय-प्रदान १८५
१८४–हिमालयपर तपस्या करनेवाले देवताओंके सामने भगवतीका प्राकट्य ... ४०३
१८५–हिमालयपर हर-गौरी-गणेश सातवें अङ्कका मुखपृष्ठ
१८६–हिरण्यकशिपुका अपने पुत्र षड्गर्भोंको शाप देना २०६६
१८७–हिरण्यमयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी स्तुति-उपासना ४३५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क

२२ वें वर्षका नारी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र २ सुनहरी, ९ रंगीन, ४४ इकरंगे तथा १९८ लाइन, मूल्य ६.२० (छः रुपये बीस नये पैसे), सजिल्द ७.४५ (सात रुपये पैंतालीस नये पैसे) मात्र ।

२४ वें वर्षका हिंदू-संस्कृति-अङ्क—पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६.५० (छः रुपये पचास नये पैसे), साथमें अङ्क २-३ बिना मूल्य ।

२८ वें वर्षका संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र तिरंगे २०, इकरंगे लाइन चित्र १९१ (फरमोंमें), मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे), सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) ।

२९ वें वर्षका संतवाणी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, तिरंगे चित्र २२ तथा इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे), सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) ।

३२ वें वर्षका भक्ति-अङ्क—जनवरी १९५८ का विशेषाङ्क, सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) ।

३३ वें वर्षका मानवता-अङ्क—जनवरी १९५९ का विशेषाङ्क, पूरी फाइलसहित, पृष्ठ-संख्या १४०८, रंगीन चित्र ३५, दुरंगा १, इकरंगे ३६, रेखाचित्र १९, मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे), सजिल्द ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) ।

३४ वें वर्षका संक्षिप्त देवीभागवताङ्क—जनवरी १९६० का विशेषाङ्क केवल प्राप्य है । इस वर्षके साधारण अङ्क समाप्त हो गये हैं । मूल्य ७.५०, सजिल्दका ८.७५ है ।

डाकखर्च–सबमें हमारा है ।

व्यवस्थापक—**कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

मासिक महा भारतके पाँचवें वर्ष (जनवरीसे दिसम्बर १९६०) में

सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण (हिंदी-टीकासहित)

अबतक ग्यारह अङ्क निकल चुके हैं । उत्तरकाण्डका थोड़ा-सा अंश शेष है । जिसके बारहवें अङ्कमें निकलते ही ग्रन्थ पूरा हो जायगा । पूरे वर्षका मूल्य १५.००, डाकखर्च हमारा ।

व्यवस्थापक—**मासिक महा भारत, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोखेसे सावधान

तुमसर, दिल्ली, छिन्दवाड़ा आदि कई स्थानोंसे ऐसे पत्र मिले हैं कि अपनेको इन्दौरनिवासी श्रीबलराम शर्मा बतलानेवाले कोई व्यक्ति 'कल्याण' के भक्ति-अङ्कमें प्रकाशित श्रीबलरामजी शास्त्री आचार्य एम्० ए० साहित्यरत्नद्वारा लिखित 'जन्माङ्गसे भक्तिविचार' तथा 'बालकाङ्क' में प्रकाशित 'बालकोंका प्रथम शत्रु बालारिष्ट' आदि लेखोंके अपनेको लेखक बताते हैं और 'कल्याण' के सम्मान्य लेखक एवं प्रसिद्ध ज्योतिषीके रूपमें लोगोंको धोखा देते तथा रुपये ठगते हैं।

अतएव 'कल्याण'के सभी पाठकोंको सावधान हो जाना चाहिये। उपर्युक्त लेखोंके लेखक (वर्तमानमें) सलोन—रायबरेलीनिवासी श्रीबलरामजी शास्त्री हैं, इन्दौरनिवासी नहीं। न कभी ये इन्दौर, तुमसर, छिन्दवाड़ा आदि स्थानोंमें गये ही हैं। इन लेखोंके लेखक बतलाकर अपना परिचय देनेवाले व्यक्तिको मिथ्यावादी और धोखेबाज समझना चाहिये और कभी भी पैसे आदि नहीं ठगाने चाहिये।

भूल-सुधार और निवेदन

'कल्याण' सितम्बरके पृष्ठ १२१३ पर 'महामानव श्रीकृष्ण' शीर्षक एक लेख श्रीमंगलदेवजी शास्त्री आर्योपदेशकके नामसे छपा है। इसके सम्बन्धमें श्रीजगदीशजी चतुर्वेदी लिखते हैं कि यह लेख श्रीमंगलदेवजीका लिखा नहीं है, मेरा है जो 'वेदप्रकाश' के 'भगवान् कृष्ण' विशेषाङ्कमें छप चुका है। उसी विस्तृत लेखसे लेकर यह लेख भेज दिया गया है। और आपने उसे बिना नाम दिये कैसे छाप दिया?.....

हमने 'वेदप्रकाश' का उक्त अङ्क नहीं देखा, इससे हमें कुछ भी पता नहीं था। दूसरे, कोई भी सम्पादक सर्वज्ञ नहीं होता, जो यह जानता हो कि अमुक लेख वास्तविक है या उड़ाया हुआ। तथापि इस भूलके लिये हम मूल लेखकसे क्षमा चाहते हैं और श्रीमंगलदेवजीसे निवेदन करते हैं कि यदि ऐसी बात हुई हो तो यह कदापि उचित नहीं है। ऐसा कार्य सर्वथा अशोभन तथा त्याज्य है। वे भविष्यमें ऐसा न करें और मूल लेखक महोदयसे अपनी भूलके लिये क्षमा माँग लें।

निवेदन

किन्हीं सज्जनके पास विक्रम-संवत् १७००से पूर्वकी या १७०० के कुछ ही वर्षों बादकी गो० श्रीतुलसीदासजी रचित श्रीरामचरितमानसकी पूरी (सातों काण्ड) या अधूरी (कुछ काण्ड) प्रति हो तो वे हमें कृपया प्रदान करें। डाकखर्च यहाँसे दिया जायगा और हम बड़े कृतज्ञ होंगे।

गीताप्रेसमें सुरक्षाकी दृष्टिसे प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह किया जा रहा है। अतएव जिनके पास संस्कृत या हिंदी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हों और देना चाहें, कृपया भेज दें। रेल या डाक-खर्च यहाँसे दिया जायगा।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

मानस-पीयूष खण्ड ६ (सुन्दरकाण्ड तथा लंकाकाण्ड)

सजिल्द, मूल्य ११.०० । डाकखर्च २.६२ । गीताप्रेसमें मानस-पीयूषका लंकाकाण्ड तो पहले छप चुका था, अब सुन्दरकाण्ड भी छप गया है और इस प्रकार छठा खण्ड पूरा हो गया है। जिन्हें लेना हो, मँगवाने-की कृपा करें। अब खण्ड १, ४, ५ तथा ६ मिल सकते हैं। रेलसे मँगानेपर भारी डाकखर्च बच सकता है।

विक्रम-संवत् २०१८ का गीता-पञ्चाङ्ग (सन् १९६१–६२)

तैयार हो गया है। मूल्य .४५। रजिस्ट्रीसे डाकव्यय .७०। कुल १.१५, १००० प्रतियोंका चार सौ रुपया। कमीशन तथा विशेष कमीशन नियमानुसार। रेल भाड़ा हमारा।

पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र तैयार नहीं है, अतएव उसके लिये कोई सज्जन लिखा-पढ़ी करनेकी कृपा न करें।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कल्याण के सभी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा उनसे प्रार्थना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह 'कल्याण'के चौंतीसवें वर्षका अन्तिम बारहवाँ अङ्क है। इतने लंबे कालतक 'कल्याण'के स हार्दिक प्रेम रखनेवाले सभी ग्राहक, पाठक-पाठिकाओंके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं।

१–इसके बाद पैंतीसवें वर्षका प्रथम अङ्क 'संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क'के नामसे प्रकाशित होगा। इस माया, मायाके स्वरूप, वैराग्य, मुमुक्षुत्व, साधन-ज्ञान, तत्त्वज्ञान, सदाचार आदिका बड़ा ही विशद, उपदे पूर्ण, रोचक वर्णन रहेगा; साथ ही अनेकों इतिहास-आख्यायिकाएँ भी रहेंगी। रंगीन, सादे और रेखाचि भी पर्याप्त संख्यामें होंगे। लगभग सात सौ पृष्ठोंका सुन्दर अङ्क होगा।

२–योगवासिष्ठ प्रसिद्ध लोकप्रिय ग्रन्थ होने तथा इसकी बहुत दिनोंकी माँग होनेके कारण ऐस अनुमान है कि यह जल्दी ही समाप्त हो जायगा। इसलिये ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) मनीआर्ड द्वारा भेजकर तुरंत ग्राहक बन जाना चाहिये। रुपये भेजते समय पुराने ग्राहक महोदय मनीआर्डर-कूपन अपनी 'ग्राहक-संख्या' अवश्य लिखें। नाम, पता, ग्राम या मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि ब बड़े साफ अक्षरोंमें अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' अवश्य लिखनेकी कृपा करें।

३–'ग्राहक-संख्या' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जाना सम्भव है। इससे विशेषा नये नंबरोंसे चला जायगा और पुराने नंबरोंसे वी० पी० द्वारा अङ्क दुबारा जायगा। यह भी सम्भव कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेसे पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उन नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। ऐसा करके आप अपने कल्याण-कार्यालयको व्यर्थकी हानि बचायेंगे।

४–सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा ग्राहिका देवियोंसे निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे उन 'कल्याण'के प्रचार-प्रसारमें बड़ी सहायता मिलेगी और वे एक महान् पुण्यके भागी होंगे।

५–जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ ही 'कल्याण'-कार्यालयको डाकखर्चकी हानि न सहनी पड़े। जिनको सजिल्द अङ्क लेना हो वे १. २५ (एक रुपया पचीस नये पैसे) अधिक यानी आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे भेजें परंतु यह ध्यान रहे कि सजिल्द अङ्क चार-छः सप्ताह बाद भेजा जाना सम्भव है।

६–किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो 'विशेषाङ्क' और उसके बाद जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले 'विशेषाङ्क'का मूल्य ही ७. ५० (सात रुपया पचास नये पैसे) है।

७–गीताप्रेसका 'पुस्तक-विभाग' तथा 'महाभारत- (मासिकपत्र) विभाग' 'कल्याण' विभागसे पृथक् है। इसलिये 'कल्याण'के मूल्यके साथ पुस्तकोंके तथा 'महाभारत'के लिये रुपये कृपया न भेजें और पुस्तकोंके तथा 'महाभारत'के लिये आर्डर भी 'मैनेजर, गीताप्रेस' और 'मैनेजर, महाभारत-विभाग' गीताप्रेस नामसे अलग भेजें।

८–योगवासिष्ठ ग्रन्थ बहुत बड़ा होनेके कारण प्रसंगोंके चुनाव तथा अनुवादमें कुछ विलम्ब हो गया है। अतएव यह विशेषाङ्क जनवरीके अन्ततक प्रकाशित हो सकेगा। ग्राहक महानुभाव कृपया धैर्य रक्खें और इसके लिये पत्र-व्यवहार न करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar